निर्बन्ध

महासमर-8



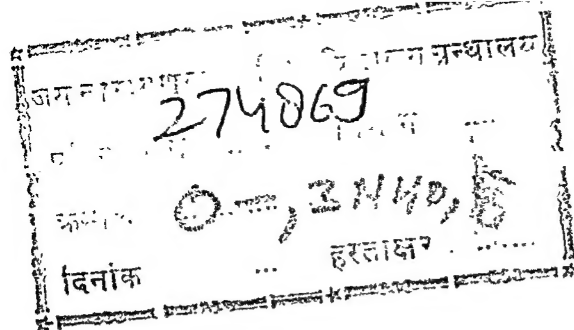
वाणी प्रकाशन

नयी दिल्ली-110002

निर्बन्ध

महासमर-8

नरेन्द्र कोहली



वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 2000

मूल्य : 300.00 रुपये

शब्द-संयोजक
विनायक कम्प्यूटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

मेहरा ऑफसेट प्रेस, नयी दिल्ली-110002
द्वारा मुद्रित

NIRBANDH
(Mahasamar-8)
by Narendra Kohli

आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के चरणों में
एक श्रद्धावनत मन का विनीत प्रणाम

1

"पिताजी !"

द्रोण ने अपनी पलकें उठाकर अश्वत्थामा की ओर देखा तो लगा कि उन्हें उस प्रकार पलकें उठाना भी जैसे भारी पड़ रहा है। कदाचित् अश्वत्थामा ने इस प्रकार सहसा आकर उनकी एकाग्रता भंग कर दी थी।

"क्या बात है पिताजी !" अश्वत्थामा ने पूछा, "आप सहज प्रसन्न नहीं दीखते ?"

द्रोण की दृष्टि में अश्वत्थामा के लिए भर्त्सना थी। क्या वह इतनी-सी भी बात नहीं समझता ? पर अपनी उस दृष्टि का अश्वत्थामा पर कोई प्रभाव न देखकर बोले, "भीष्म धराशायी हो चुके हैं।"

"तो चिंता किस बात की ?" अश्वत्थामा के स्वर में उल्लास था, "सेनापति वीरगति प्राप्त करता है तो उसका सहयोगी उपसेनापति, प्रधान सेनापति बन जाता है। सेनापति कभी नहीं मरता।"

इस बार द्रोण ने कुछ मुस्कराकर उसकी ओर देखा, "तो मुझे प्रसन्न होना चाहिए कि भीष्म के धराशायी होने से मेरी उन्नति का द्वार खुल गया है ?"

"मैं तो यही समझता हूँ; और यह भी मानता हूँ कि भीष्म के पश्चात् आपका ही प्रधान सेनापति चुना जाना स्वाभाविक, न्यायोचित तथा निश्चित है।"

"शिक्षा के समय जो कुछ तुमने अपने उपाध्याय से सुना, उसे सुग्गे के समान रट रहे हो।" द्रोण का स्वर कठोर हो गया, "अपनी स्थिति पर भी कुछ विचार किया है तुमने ?"

"अपनी स्थिति पर ?" अश्वत्थामा उनका अभिप्राय नहीं समझ पाया।

"किसी समय मैंने द्रुपद को अपना मित्र माना था। उससे मन खट्टा हुआ तो उसके सबसे समर्थ विरोधी का अवलंब ग्रहण करने मैं हस्तिनापुर आया था।..." द्रोण ने उसकी ओर देखा, "पर तुमने कभी इस पर विचार किया है कि मैं हस्तिनापुर क्या करने आया था ?"

अश्वत्थामा अपने पिता की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखता रहा।

"तुमने कभी सोचा कि यदि मुझे युद्ध ही करना था तो मैंने स्वयं द्रुपद से युद्ध क्यों नहीं किया ?" द्रोण बोले, "कौरव राजकुमारों का गुरु बनने के लिए क्यों चला आया ? द्रुपद से तत्काल प्रतिशोध न लेकर उसे कौरव राजकुमारों की शिक्षा समाप्त होने तक टाल क्यों दिया ?"

अश्वत्थामा अपने पिता का एक सर्वथा नवीन रूप देख रहा था।... हाँ ! यह प्रश्न उसके मन में तो कभी नहीं उठा। पिता तब भी धनुर्वेदाचार्य थे। व्यूहों का ज्ञान तो उनको तब भी था। तो उन्होंने युद्ध की बात क्यों नहीं सोची ?

"तुम कह सकते हो कि तब मेरे पास सेना नहीं थी।" द्रोण बोले, "किंतु जिस समय मैं कौरव राजकुमारों को साथ लेकर द्रुपद से युद्ध करने गया था, तब सेना भी थी मेरे पास। फिर भी युद्ध मैंने नहीं किया। कौरवों ने भी नहीं किया। दुर्योधन और कर्ण तो पराजित होकर भाग ही आए थे। युद्ध पांडवों ने किया था।" द्रोण ने अपने पुत्र को देखा, "यदि पांडव भी द्रुपद को जय न कर सकते तो क्या मैं युद्ध करता ?"

"आप युद्ध नहीं करते ?" अश्वत्थामा चकित था।

"मैं द्रुपद की पराजय चाहता था, उसका अपमान चाहता था, उससे प्रतिशोध चाहता था, पर मैं उससे स्वयं युद्ध करना नहीं चाहता था। मैं उससे युद्ध करने नहीं गया था, उसे अपमानित करने गया था।"

"यदि अर्जुन और भीम पांचालों को पराजित नहीं कर पाते तो आप चुपचाप हस्तिनापुर लौट आते ? युद्ध नहीं करते ?"

"नहीं !" द्रोण जैसे अपने आपसे कह रहे थे, "कौरव राजकुमार पराजित होकर लौटते तो उनके अपमान और पराजय का प्रतिकार करने के लिए, भीष्म स्वयं युद्ध करने जाते। मैं तो द्रुपद और भीष्म को युद्धक्षेत्र में आमने-सामने कर देना भर चाहता था।"

"आप अर्जुन की क्षमता पर विश्वास कर नहीं गए थे ?"

"मुझे अर्जुन से अपेक्षाएँ तो बहुत थीं; किंतु इतना विश्वास नहीं था कि वह द्रुपद को पराजित कर इस प्रकार बाँध लाएगा।"

"तो आपने अर्जुन को उस युद्ध के लिए तैयार नहीं किया था ?"

"युद्ध के लिए तो तैयार किया था, किंतु यह विश्वास नहीं था कि वह विजयी होगा ?" द्रोण बोले, "निश्चित विश्वास नहीं था।"

"तो आप उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी नहीं मानते थे ?"

"नहीं ! मैं उसे एक श्रेष्ठ धनुर्धारी ही मानता था। उसके सर्वश्रेष्ठ होने का विश्वास तो मुझे विराटनगर के गोहरण वाले युद्ध में हुआ है।" द्रोण बोले।

"तो आपने एकलव्य का अँगूठा क्यों लिया ? अर्जुन को संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी बनाए रखने के लिए नहीं ?"

द्रोण की आँखों में खीज जन्मी, "तुम अर्जुन के संसार में सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी होने

की बात बार-बार क्यों कहते हो ? उससे अधिक तो मैंने तुमको सिखाया है। उसे पानी भरने के लिए भेज कर भी तुम्हें शिक्षा देता रहा। उसके वारणावत चले जाने के पश्चात् भी तुम्हें सिखाता रहा। तुम मेरे प्रिय पुत्र हो। एकमात्र पुत्र हो। तो फिर मैं तुमसे अधिक और किसे सिखा सकता था।"

"तो फिर एकलव्य का अँगूठा...?" अश्वत्थामा कुछ झपटकर बोला, "यदि आपको उसके अर्जुन पर भारी पड़ने का भय नहीं था, तो उमको इस प्रकार अपंग करने का प्रयोजन ?"

अश्वत्थामा ने अपने पिता की ओर देखा तो चकित रह गया। उनकी आँखों में जैसे क्रोधाग्नि धधक रही थी।

"क्या बात है पिताजी ?" अश्वत्थामा कुछ शांत होकर बोला, "मैंने ऐसा तो कुछ नहीं कहा।" और फिर जैसे वह सँभल गया, "यदि मेरी किसी बात ने आपका मन दुखाया हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।"

"मैंने एकलव्य का अँगूठा लिया था, क्योंकि वह मेरा अपमान कर रहा था।" द्रोण की शिराओं में जैसे घृणा का विष धधक रहा था।

अपमान ?... अश्वत्थामा सोचता रह गया... जिस एकलव्य ने गुरुदक्षिणा में अपने अँगूठे के रूप में उन्हें अपना सारा धनुर्ज्ञान दे दिया, अपना सारा सामर्थ्य उनकी झोली में डाल कर स्वयं पूर्णतः अकिंचन हो गया, उसके विषय में उसके पिता कह रहे हैं कि वह उनका अपमान कर रहा था ?...

पिता की मनःस्थिति इस समय विवाद करने की नहीं थी। वे तो उसकी जिज्ञासा से ही क्षुब्ध हो रहे थे, उसके विरोध को कैसे सहन करते।...

"अपमान ?" न चाहते हुए भी अश्वत्थामा के मुख से अनायास ही निकल गया।

"हाँ अपमान।" द्रोण के अधर जैसे क्रोध से फड़फड़ा रहे थे, "वह यह सिद्ध कर रहा था कि द्रोण के सिखाए बिना भी कोई संसार का श्रेष्ठ धनुर्धारी हो सकता है। जिसका मैंने तिरस्कार किया, जिसे मैंने शिक्षा नहीं दी, वह मेरे शिष्य से अच्छा धनुर्धर प्रमाणित हो जाए तो फिर मेरे चयन और मेरे प्रशिक्षण का अर्थ ही क्या रह गया ?"

अश्वत्थामा स्तब्ध रह गया। उसने आज तक एकलव्य की ओर से ही सोचा था। अपने पिता के मन को भी जानना चाहा तो उनके उदात्त रूप के विषय में ही सोचा। उनके इस रूप को तो उसने जाना ही नहीं था। किसी अबोध की श्रद्धा और निष्ठा से भी किसी ज्ञानी का अहंकार आहत होता है, यह उसके लिए नया ही अनुभव था। तभी तो अर्जुन की प्रत्येक उपलब्धि के साथ कर्ण का रक्त खौलने लगता है।... तो यह अहंकार उसके पिता में भी है। हाँ ! अहंकार तो है ही, अन्यथा वे द्रुपद से इतने रुष्ट क्यों होते। उसके एक वाक्य से पिता अपना संतुलन क्यों खो देते ? वह उनका स्वाभिमान मात्र होता तो वे द्रुपद के आतिथ्य का तिरस्कार कर कांपिल्य छोड़ देते... किंतु यह प्रतिशोध... और फिर प्रतिशोध की भी कितनी लंबी योजना। कौरव राजकुमार

द्रुपद को अपमानित न कर सकें तो भीष्म जाएँ द्रुपद का अपमान करने।...यह मात्र अहंकार ही था अथवा...? क्या-क्या छिपा है मनुष्य के मन में...

"तो फिर आप हस्तिनापुर ही क्यों आए ?" अश्वत्थामा ने पिता की उत्तेजना देखते हुए विषय बदल दिया।

"मैं भीष्म के बल के भरोसे हस्तिनापुर आया था, भीष्म के धर्म पर विश्वास कर।"

"अपने बल के भरोसे क्यों नहीं ?"

"मैं युद्धाचार्य था, योद्धा नहीं।" द्रोण बोले, "शस्त्रों के विषय में जानना और समरभूमि में अपने शरीर पर आघात झेलना, अपने शरीर को चिरवाना और दूसरे जीवित शरीर को चीरना दो भिन्न बातें हैं। सैद्धांतिक पक्ष का मैं ज्ञाता था; किंतु युद्ध न कभी किया था, न देखा था। मनुष्य का रक्त बहाने के साधनों का मुझे ज्ञान था; किंतु किसी का रक्त मैंने बहाया नहीं था। अपने शरीर से रक्त बहाने की तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी।... और पुत्र ! जो केवल सिद्धांत की बात करता है, आवश्यक नहीं कि वह वीर भी हो, वह प्रायः भीरु होता है। वह किसी का संरक्षण पाकर सुरक्षित ढंग से अपना कार्य करना चाहता है। मैं भी भीष्म की छाया में सुरक्षित रहकर द्रुपद से प्रतिशोध लेना चाहता था।... मैं उसे अपमानित और वंचित करना चाहता था; किंतु अपना कुछ भी दाँव पर लगाना नहीं चाहता था।..."

"पर पिछले दस दिनों से हो रहे इस युद्ध में तो आप कहीं दुर्वल नहीं पड़े।"

"हस्तिनापुर में रहते हुए, युद्धों का पूर्वाभ्यास भी हुआ है और कुछ-कुछ अभ्यास भी।" द्रोण बोले, "विराटनगर में पहली बार मैंने वास्तविक युद्ध का अभ्यास किया, किंतु वह युद्ध अकेले योद्धा अर्जुन के विरुद्ध था और यह मैं तब भी जानता था कि अर्जुन मेरा वध करने नहीं आया है, वह केवल विराट का गोधन लौटा ले जाने आया है। इसलिए वस्तुतः वह भी प्राणांतक युद्ध नहीं था।"

"पर यह युद्ध ?"

"यह युद्ध भी तो मैंने, तुमने, हमने भीष्म की ही छाया में ही लड़ा है।..." द्रोण अपने स्थान से उठ खड़े हुए। उनका चेहरा अवसाद में डूबा हुआ था। इस वार बोले तो उनके स्वर में भी विषाद था, "अब भीष्म ही नहीं रहे।..."

"तो ?"

"तो हम अब असुरक्षित हैं। अब हमें किसी दृढ़ कवच की सुरक्षा से वंचित होकर अपने वल पर युद्ध करना होगा।"

"तो भय का क्या कारण है पिताजी ! हम समर्थ हैं।"

द्रोण कुछ नहीं वोले। वे सिर झुकाए चुपचाप बैठे कुछ सोचते रहे।

"आप भयभीत हैं पिताजी ?"

"मैं आरंभ से ही भीरु रहा हूँ।" द्रोण वोले, "मैं अपने ज्ञान के सामर्थ्य से तो अवगत था किंतु अपने योद्धा रूप को नहीं जानता था। पिछले दस दिनों में मैंने अपना

योद्धा रूप भी देखा है। मन-ही-मन कहीं यह भी जानता हूँ कि अर्जुन मुझसे प्रेम करता है, मेरा सम्मान करता है। मेरे सम्मुख वह अपना परम शौर्य प्रकट नहीं करेगा। वह मेरा वध नहीं करेगा, जैसे वह भीष्म का वध करना नहीं चाहता था। किंतु अर्जुन न राजा है, न प्रधान सेनापति। फिर उधर कृष्ण भी हैं। इसका अर्थ है कि...''

''पिताजी ! भय का कोई कारण नहीं है।'' अश्वत्थामा कुछ व्यग्र स्वर में बोला, ''हम क्षत्रिय नहीं हैं; किंतु योद्धा तो हैं। आपके प्राणों को कोई भय नहीं है। महाराज दुर्योधन आपकी सुरक्षा का पूर्ण प्रबँध करेंगे। अब भीष्म के पश्चात् दूसरा योद्धा ही कौन है।''

''तुम्हें अपनी क्षमता का ज्ञान है, अपने शत्रुओं की क्षमता का नहीं। हमें बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। पलक झपकने भर का समय धृष्टद्युम्न को दे दो और देखो, वह मेरा मस्तक काट कर ले जाएगा।'' द्रोण रुके, और फिर तमककर बोले, ''वैसे मुझे भय अपने प्राणों का नहीं है। पिता बन जाने के पश्चात् सारी चिंता पुत्र की होती है। मैं अपनी भूख से पीड़ित होकर द्रुपद के पास नहीं गया था। तुम्हें ही दूध के स्थान पर आटे का घोल पी कर प्रसन्न होते देख मेरा मन रक्त वमन करने लगा था और मैंने द्रुपद के पास जाने की योजना बनाई थी।...''

''तो अब भी आपको मेरे ही प्राणों का भय है ?''

''पुत्र पिता की आत्मा होता है। वह उसका आत्मज है। वह उसका भविष्य है, उसका विकास और विस्तार है। मैं तुम्हारे लिए चिंतित नहीं हूँगा तो और किसके लिए हूँगा।...''

''मैं तो आज तक यही समझता रहा कि आप मुझसे भी कहीं अधिक अर्जुन से प्रेम करते हैं।...'' अश्वत्थामा ने हँसने का प्रयत्न किया।

''अर्जुन का भी मोह है मुझको। वह मेरा मानसपुत्र है।... किंतु देह के संबंधों का मोह बड़ा होता है। किसी गुरु को अपना शिष्य अपने औरस पुत्र से अधिक प्रिय नहीं होता।... और मेरे तो तुम एकमात्र पुत्र हो। तुम्हें कुछ हो गया तो मेरे जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाएगा।...''

''पिताजी !''

अश्वत्थामा को रोमांच हो गया। उसने अपने पिता का यह रूप पहले कभी नहीं देखा था।... और इस प्रकार... इतने मुखर रूप में उन्होंने अपने प्रेम को अभिव्यक्ति पहले कभी नहीं दी थी।

''वह तो ठीक है पिताजी ! किंतु अपने शस्त्रों और अपने युद्ध-कौशल के साथ हम इतने असुरक्षित भी नहीं हैं।'' अश्वत्थामा धीरे से बोला, ''और युद्ध करने पर क्षत तो लगते ही हैं। हम यह अपेक्षा कैसे कर सकते हैं कि हम तो शत्रु पर प्रहार करेंगे; किंतु वह हम पर प्रहार नहीं करेगा।...''

''ठीक कहते हो पुत्र !'' द्रोण बोले, ''इस बात को मैं भी समझता हूँ। सिद्धांत

रूप में कहीं चर्चा करनी हो अथवा किसी को समझाना हो तो ये सारी बातें मैं भी कह सकता हूँ··· किंतु अपनी प्रकृति को मैं जानता हूँ। यह देखते हुए भी कि यहाँ असंख्य योद्धाओं ने स्वेच्छा से अपने साथ अपने पुत्रों को भी रणसज्जित किया है, मैं अपना मोह दूर नहीं कर पा रहा। मैंने देखा है कि विराट के चक्षुओं के सम्मुख उनके तीन-तीन पुत्रों का वध हुआ है। अर्जुन के सारे सामर्थ्य और पांडव सेना की सारी शक्ति के होते हुए भी इरावान मारा गया··· और फिर भी वे पिता योद्धाओं के रूप में सहज भाव से युद्ध कर रहे हैं। मैं सोचता हूँ कि अपने पुत्र के हताहत होने का समाचार पाकर कोई पिता जीवित कैसे रह सकता है।···"

"राजा दुर्योधन ने भी तो अपने पुत्रों को रणभूमि में उतारा है पिताजी !"

"जानता हूँ।" द्रोण ने धीरे से कहा, "उसने तो राज्य के मोह में बहुत कुछ किया है, पर प्रश्न यह है कि मैं इस रणभूमि में क्या कर रहा हूँ ? अपने पुत्र और मानस पुत्रों की मृत्यु देखने के लिए क्यों खड़ा हूँ यहाँ ? मुझे क्या लेना है इस रण से ?"

"आप भूलते हैं कि हमने इसी राजा से बहुत धन-धान्य पाया है। उसी के कारण हमारे पास अहिछत्र का राज्य सुरक्षित है। उसी के कारण···"

"भ्रांति है तुम्हारी।" द्रोण एक विचित्र प्रकार की उत्तेजना में बोले, "हमने जो कुछ पाया, भीष्म से पाया। मैंने तुमसे कहा था कि मैं भीष्म के संरक्षण में आया था। उनके शौर्य पर भी विश्वास था मुझको और उनके धर्म पर भी।··· दुर्योधन के न तो शौर्य में मेरी आस्था है और न उसके धर्म में। अधर्मी है वह। अपने स्वार्थ के कारण वह घुटनों के बल गिर भी सकता है और किसी के तलुवे भी चाट सकता है।··· किंतु धर्म का लेश भी नहीं है उसमें।"

"हम भी धर्म की रक्षा के लिए युद्ध नहीं कर रहे।" अश्वत्थामा के स्वर में हल्की-सी उत्तेजना उभरी, "हम हस्तिनापुर के साम्राज्य और उसके राजा की रक्षा के लिए रणस्थली में आए हैं।"

"इसी का तो संताप है मुझे।" द्रोण जैसे अपने आपसे कह रहे थे, "मैंने धर्म की रक्षा के लिए धनुष क्यों नहीं उठाया, स्वार्थ की रक्षा के लिए शस्त्रग्रहण क्यों किया।"

अश्वत्थामा हतप्रभ-सा अपने पिता को देखता रहा और फिर कुछ उत्तेजना में बोला, "आज युद्ध का पहला दिन नहीं है पिताजी ! ग्यारहवाँ दिन है। यह सब सोचना था तो आपको युद्ध आरंभ होने से पहले सोचना चाहिए था। मन में द्वंद्व ही उठने थे तो युद्ध के पहले दिन उठने चाहिए थे। बीच युद्ध में आज ग्यारहवें दिन यह सब सोचने का तर्क क्या है।···"

"एक ही कारण है पुत्र ! और वही इसका तर्क भी है। भीष्म अब नहीं हैं। वे असमर्थ होकर शर-शैया पर पड़े हैं और उनके प्राण अपने प्रयाण के लिए जाने किस अनुकूल क्षण की प्रतीक्षा में हैं।" द्रोण ने प्रयत्लपूर्वक अश्वत्थामा की ओर देखा, "और इधर दुर्योधन स्वयं को हमारा स्वामी माने बैठा है। मेरा स्वाभिमानी मन अपने मित्र द्रुपद

का एक वाक्य नहीं सह सका तो इस अधर्मी का स्वामित्व कैसे सह पाएगा।"

अश्वत्थामा अपने पिता के प्रेम से भीग रहा था। अकस्मात् ही पिता की इस हठ से कुछ खीज उठा।"' स्वाभिमान और धर्म की बात कर रहे हैं वे"'। अपने अहंकार को नहीं देखते। अपने स्वार्थ को नहीं देखते।

"तो मैं दुर्योधन से कह दूं कि आप उसके प्रधान सेनापति नहीं बनना चाहते ?"

"तनिक भी विचार क्षमता नहीं है तुममें ?" द्रोण सहसा ही फुफकार उठे, "मैं प्रधान सेनापतित्व अस्वीकार कर दूँगा तो दुर्योधन को उस अहंकारी कर्ण को प्रधान सेनापति बनाने का एक बहाना मिल जाएगा।"

"तो क्या चाहते हैं आप ? सेनापति बनना भी चाहते हैं और नहीं भी बनना चाहते ?"

"मूर्ख हो तुम।" द्रोण बोले, "मैं भीष्म की छत्रछाया के न रहने का शोक कर रहा हूँ। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि मैं कर्ण की छत्रछाया अंगीकार कर लूँ।" उन्होंने रुककर अश्वत्थामा को देखा, "सत्य तो यह है कि मैं युद्ध करना नहीं चाहता; किंतु अब चाहूँ भी तो इससे बच नहीं सकता।"

"क्यों ?" अश्वत्थामा ने कुछ चकित होकर पूछा, "आप लड़ना न चाहें तो कौन आपको बाध्य कर सकता है ?"

"मेरे कर्म।" द्रोण कहीं शून्य में देख रहे थे, "यदि मैं दुर्योधन को त्यागना चाहूँ तो वह इस बात से डर जाएगा कि मैं पांडवों के पक्ष में चला जाऊँगा। वह इसे सहन नहीं कर पाएगा। स्वच्छंद और मुक्त द्रोण को वह जीवित नहीं रहने देगा।"

"क्यों ? हम असमर्थ हैं क्या ?" अश्वत्थामा फुफकारकर बोला, "दुर्योधन युद्ध में हमें पराजित कर सकता है क्या ?"

द्रोण हँसे, "युद्ध क्यों करेगा वह ? वह भोजन में विष देगा, वह विषधर भेजेगा, जो छिपकर विष बुझा बाण मारेंगे, वह आग लगाएगा और हमें सोते हुए ही परलोक पहुँचाएगा। नहीं पुत्र ! मैं इतना जोखिम नहीं उठा सकता। मेरे साथ जो हो वह तो हो, किंतु मैं तुम्हारे प्राणों को भी संकट में नहीं डालना चाहता।"

अश्वत्थामा को आज अपने पिता की कोई बात समझ में नहीं आ रही थी। यह अकस्मात् ही उनको क्या हो गया था। वे अतिवृद्ध हो गए थे क्या ? अपनी छाया से भी डरने लगे थे। दुर्योधन को अपना शत्रु मान बैठे थे और अपने तथा अपने पुत्र वीर अश्वत्थामा के प्राणों के लिए चिंतित थे।

"यद्यपि मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं है, किंतु तर्क के लिए कहता हूँ, हम दुर्योधन के शत्रुओं से मैत्री कर सकते हैं।" उसने अपने पिता को सांत्वना देने का प्रयत्न किया, "हम अहिछत्र लौटा देंगे।"

"हम अहिछत्र लौटा सकते हैं। हम फिर से उनका सम्मान करना भी आरंभ कर सकते हैं। किंतु हमने उनका जो अपमान किया है, उसे नहीं लौटा सकते।" द्रोण जैसे

अपने आपसे बात करने लगे थे, "द्रुपद तो कदाचित् मुझे क्षमा कर भी दे, किंतु धृष्टद्युम्न, शिखंडी और द्रौपदी मुझे क्षमा नहीं करेंगे। मित्र तो मेरा एक ही था द्रुपद ! किंतु शत्रु तो उसका सारा परिवार है।" उन्होंने अश्वत्थामा की ओर देखा, "हम जब कर्म करते हैं तो यह कल्पना भी नहीं करते कि उसके परिणाम रूपी रज्जू भविष्य में हमें किन जटिलताओं में उलझा देगी। हम चाहेंगे भी तो मुक्त नहीं हो सकेंगे। कर्म तो भाग्य का ऐसा आलेख है, जो किसी भी प्रकार मिटाया नहीं जा सकता।"

"तो ?" अश्वत्थामा ने पूछा।

"हमें युद्ध करना ही होगा। और यदि लड़ना ही है तो सैनिक के रूप में लड़ने से तो सेनापति के रूप में लड़ना ही अधिक सम्मानजनक है। कम क्षमता और कम बुद्धि के व्यक्ति की आज्ञा के अधीन लड़ने में भी तो कोई सुख नहीं है।" द्रोण निश्चयात्मक स्वर में बोले, "सेनापति सेना का तो सर्वोच्च अधिकारी होता है, किंतु वह राजा नहीं हो सकता। मैं सेनापतित्व स्वीकार कर लूँ तो कर्ण, जयद्रथ अथवा शल्य की आज्ञाओं का पालन करने से तो बच जाऊँगा; किंतु इस पापी दुर्योधन की आज्ञाओं से मुक्ति नहीं है।"

द्रोण को इतना हताश देखकर भी अश्वत्थामा कुछ नहीं बोला। उसके चेहरे से स्पष्ट था कि उसका मौन उसकी सहमति का द्योतक नहीं था। बस वह अपने पिता का विरोध नहीं कर रहा था, क्योंकि वह उन्हें और दुखी नहीं करना चाहता था।

2

अपने मंडप में कर्ण को सहसा अपने सम्मुख देखकर दुर्योधन को थोड़ा आश्चर्य हुआ।

...ठीक है कि उसने सदा ही कहा था कि कर्ण को उसके मंडप में प्रवेश करने के लिए किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। वह अधिकारपूर्वक भीतर आ सकता है।...पर कर्ण प्रायः पहले संदेश भिजवाता था और फिर अनुमति मिलने पर ही भीतर आया करता था। आज उसका व्यवहार कुछ बदला हुआ था। न तो उसने सूचना भिजवाई थी और न ही अनुमति की प्रतीक्षा की थी। वह आकर जिस प्रकार विश्वविजयी मुद्रा में उसके सम्मुख खड़ा हो गया था, उससे यह नहीं लगता था कि वह भूमि पर खड़ा था। वह भूमि से कुछ ऊपर खड़ा था और संसार जैसे उसके चरणों में रेंग रहा था।...

"मैं भीष्म पितामह से मिलकर आ रहा हूँ युवराज !" उसने कहा।

दुर्योधन को कुछ आश्चर्य हुआ। आज वह भीष्म को 'पितामह' कह रहा था। उसने उनके लिए किसी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया था।

"क्या चर्चा हुई ?" दुर्योधन की उत्सुकता कुछ-कुछ जाग उठी थी।

"उन्होंने स्वीकार किया कि वीर और योद्धा के रूप में मैं किसी से कम नहीं हूँ।

वे नहीं चाहते थे कि यह युद्ध हो, इसलिए वे मुझे हतोत्साहित करने के लिए जानबूझकर मेरा तिरस्कार करते रहते थे। वे जानते थे कि यह युद्ध आप मेरे ही भरोसे कर रहे हैं। मैं हतोत्साहित हो गया तो आप यह युद्ध नहीं करेंगे।" कर्ण ने कहा, "उन्हें खेद है कि उनका व्यवहार मेरे प्रति सौहार्दपूर्ण नहीं रहा।"

दुर्योधन का मन कहीं और भटक गया था। वह कल्पना कर रहा था कि पितामह ने कर्ण से यह सब कैसे कहा होगा और क्यों कहा होगा ?''उनके मन में कर्ण के प्रति जो घृणा थी, वह केवल इसकारण तो मिट नहीं सकती कि अब वे युद्ध के योग्य नहीं रहे थे।''

"क्या उन्होंने तुम्हें युद्ध में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया ?" दुर्योधन ने पूछा।

"आरंभ में तो यही कहा कि अब भी समय है, पांडवों से संधि कर लो; किंतु जब मैंने स्पष्ट कह दिया कि यह संभव नहीं है, तो हँसकर बोले, ठीक है। यदि यह संभव नहीं है तो अपने शस्त्र उठाओ और अर्जुन से युद्ध करो। जाओ दुर्योधन को विजय दिलाने के लिए प्रयत्न करो। उसका तुम जैसा हितैषी कोई और नहीं है।''"

दुर्योधन दो भागों में बँट गया। उसका वाहरी आवरण कर्ण से संबोधित था; किंतु उसका अन्तर्मन कहीं दूर अपनी शरशैया पर लेटे भीष्म पितामह के मन में सेंध लगाने का प्रयत्न कर रहा था। क्या सचमुच पितामह चाहते हैं कि कर्ण शस्त्र लेकर अर्जुन से लड़े और दुर्योधन को विजय दिलाए ?'' क्या वे यह मानते हैं कि कर्ण अर्जुन को पराजित कर सकता है ? उन्होंने आज तक तो यही कहा था कि अर्जुन को देवता भी नहीं जीत सकते।''

सहसा उसे लगा कि उसने पितामह के मन में सेंध लगा ली है'' वह कल्पना कर रहा था कि किस प्रकार पहले पितामह ने कर्ण को संधि कर लेने के लिए समझाया होगा और जब कर्ण ने सहमति प्रकट नहीं की तो उन्होंने उसे निश्चित मृत्यु के हवाले करने के उद्देश्य से अर्जुन से युद्ध करने का परामर्श दिया होगा।'' वे मानते हैं कि कर्ण अर्जुन को पराजित नहीं कर सकता। वे यह भी मानते होंगे कि अर्जुन कर्ण का काल है। तो वे कर्ण को उसके काल को समर्पित कर रहे होंगे और कर्ण प्रसन्न था कि पितामह ने जैसे उसे विजय का वरदान दे दिया है''

पर कर्ण इतना नासमझ तो नहीं हो सकता।'' पता नहीं पितामह ही बदल गए थे या दुर्योधन ही उन्हें समझने में भूल कर रहा था।''

उसने सिर को झटका। वह इस प्रकार विभाजित नहीं होना चाहता था। उसे एक ही ओर रहना था। द्वंद्वों के मध्य टँगे रहने के लिए युधिष्ठिर ही पर्याप्त था।

"अंगराज !" दुर्योधन बोला, "यह तो निश्चित ही है कि पितामह के युद्धक्षेत्र से हट जाने के कारण तुम्हारे लिए समरभूमि में लौटने के मार्ग में कोई बाधा नहीं रही। यह भी सत्य ही है कि पितामह के धराशायी हो जाने से हमारी सेना में जो एक भयंकर

शून्य उत्पन्न हो गया है, वह तुम्हारे लौट आने से भर जाएगा। तुम्हारे लौट आने के समाचार से मेरे सैनिकों में जैसा और जितना उत्साह जागेगा, उसकी कल्पना करके ही मैं जैसे तृप्त हो जाता हूँ। तुम्हारे आगमन से हमारी सेना पर सूर्योदय का-सा प्रभाव होगा। उनके मन पर पड़ा हुआ निराशा का कुहासा छँट जाएगा।''' किंतु मित्र ! इस समय मेरे सम्मुख एक बड़ी समस्या है।''

कर्ण को पहली बार लगा कि दुर्योधन के मन में उसके युद्ध में लौट आने के अतिरिक्त कुछ और भी है।

''क्या बात है राजन् !'' कर्ण ने गंभीर स्वर में पूछा।

''पितामह अब युद्ध के योग्य नहीं हैं।''

''जानता हूँ।''

''हमें एक प्रधान सेनापति चाहिए।''

कर्ण ने दुर्योधन की ओर देखा : क्या है राजकुमार के मन में ? क्या वह चाहता है कि कर्ण अपने मुख से कहे कि वह प्रधान सेनापति का पद स्वीकार कर रहा है ?''' नहीं ! ऐसा होता तो दुर्योधन स्वयं ही कह देता कि वह प्रधान सेनापति के रूप में उसका अभिषेक कर रहा है।''' तो क्या है राजकुमार के मन में ? क्या वह चाहता है कि कर्ण अपने मुख से किसी और योद्धा का नाम प्रधान सेनापति के रूप में प्रस्तावित करे ? किसे चाहता है दुर्योधन ?'''

''आपके पास योद्धाओं की तो कोई कमी नहीं है राजन् ! दुःशासन, शल्य, शकुनि, जयद्रथ, भगदत्त, कृतवर्मा, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य''' ।'' कर्ण बोला। उसने सायास अपना नाम इस सूची से पृथक् रखा था।

''यह प्रसन्नता का विषय है।'' दुर्योधन बोला, ''किंतु सेनापति के चयन में यही तथ्य बाधक भी तो हो सकता है।''

''राजकुमार ठीक कह रहे हैं।'' कर्ण उसके मन की बात समझ गया, ''उन नरेशों में परस्पर स्पर्धा है। उनमें से किसी एक का नाम प्रधान सेनापति के रूप में सामने आएगा तो अन्य लोग ईर्ष्या से जल मरेंगे। विद्रोह भड़क सकता है। संभव है शस्त्रों से एक-दूसरे को काट डालें। यह भी संभव है कि उनका शरीर तो इस पक्ष में लड़े और मन उस ओर हो जाए'''। वे लोग आपके हित की भावना से युद्ध नहीं करेंगे।''

''तो ?''

कर्ण समझ गया कि दुर्योधन अपने मुख से कोई नाम उच्चरित नहीं करेगा।

''तो एक ही मार्ग है कि आचार्य द्रोण को प्रधान सेनापति बना दिया जाए।'' कर्ण बोला, ''वे वयोवृद्ध है, आचार्य हैं, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं। और उनके सेनापति बनने से कृपाचार्य और अश्वत्थामा भी प्रसन्न होंगे।''

''मेरी इच्छा तो तुम्हें प्रधान सेनापति पद देने की थी, किंतु मेरे मन में अनेक संशय थे।'' अंततः दुर्योधन ने अपना भाव प्रकट किया, ''तुम्हारे प्रधान सेनापति बनते

ही द्रोण विदककर परे हो जाते और उनके पीछे नथुने फुलाते हुए कृपाचार्य चले जाते। उनके साथ होता अश्वत्थामा अपनी दुम हिलाता हुआ। इन लोगों ने अपने वाप का राज समझ रखा है और युद्ध के इस संकटपूर्ण काल में मैं उनका विरोध कर नहीं सकता। सव अपना-अपना मूल्य माँग रहे हैं। तनिक-सी बात पर तुनककर पांडवों की ओर चल देंगे। युद्ध का समय न होता तो मैं इन तीनों को उनका उचित स्थान दिखा देता। इस समय तो जिसको देखो, वही अपना भाव बढ़ा रहा है।..."

"तुम चिंता मत करो मित्र !" कर्ण बोला, "तुम उनको सेनापति वना दो। मुझे तनिक भी बुरा नहीं लगेगा। मैं मानता हूँ कि वे वृद्ध हैं। उनके पास समय कम है। आज हैं, कल नहीं भी हो सकते। उनको मुझसे पहले सेनापति वनना चाहिए। मेरे लिए अपना सेनापति वनना महत्त्वपूर्ण नहीं है। मेरे लिए महत्त्वपूर्ण है तुम्हारी विजय।"

"तुम मेरे वास्तविक मित्र हो, इसलिए मेरे मन की बात समझते हो।" दुर्योधन के स्वर में असाधारण माधुर्य था, "द्रोण के सेनापति होने के और भी लाभ हैं। अर्जुन किसी भी स्थिति में अपने गुरु का वध नहीं करेगा। द्रोण सम्मुख होंगे तो अर्जुन का परम शौर्य प्रकट नहीं होगा। हमारे लिए बहुत आवश्यक है कि अर्जुन का शौर्य किसी न किसी प्रकार दवा रहे।" दुर्योधन ने कर्ण के कंधे पर हाथ रख अत्यंत आत्मीयता से कहा, "मेरे मन में दो एक लक्ष्य हैं, जो आचार्य के माध्यम से पूरे हो सकते हैं। एक बार वे पूरे हो लें तो मैं द्रोण और कृपाचार्य को उठाकर बाहर फेंक दूँगा। यदि अश्वत्थामा भी उनके साथ जाना चाहे तो जाए। मैं भूला नहीं हूँ कि विराटनगर के युद्ध में अपने पिता के सम्मान की रक्षा के नाम पर वह किस प्रकार मुझसे लड़ पड़ा था। कितने अपमानजनक ढंग से..."

"नहीं ! नहीं ! इसकी क्या आवश्यकता है।" कर्ण बोला, "मैं जानता हूँ, तुम्हारे मन में मेरे लिए कितना प्रेम है। वैसे तो मैं स्वयं अकेला ही पाँचों पांडवों और धृष्टद्युम्न के लिए पर्याप्त हूँ, किंतु इतने वड़े युद्ध में अनेक प्रकार के योद्धाओं की आवश्यकता होती है। और फिर पिछले तेरह वर्षों से आपने इतने राजाओं के साथ जो मैत्री की है, उसका निर्वाह किया है, वह इसलिए तो नहीं कि युद्ध के अवसर पर मेरे मोह में आप योद्धाओं को अपने से दूर कर दें। हमें उन सवकी आवश्यकता है।"

"इसीलिए तो वक्ष पर पत्थर रख कर सब कुछ सहन कर रहा हूँ, अन्यथा रंगभूमि में तुम्हारा अपमान करने वाले कृपाचार्य को मैं अपने निकट भी फटकने देता ?" दुर्योधन ने कर्ण की ओर देखा, "तुम्हें स्मरण है, जब तुमने अर्जुन को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा था तो इसी कृप ने तुमसे पूछा था कि तुम कौन हो ? तुम्हारी जाति क्या है ? तुम्हारा परिचय क्या है ? मेरे मन से तो वह उसी दिन उतर गया था। यह तो युद्ध की ही वाध्यता है कि मैं ऐसे लोगों को भी अपने हृदय से लगाए हुए हूँ, अन्यथा...।"

"कोई वात नहीं राजन् !" कर्ण ने उसकी बात बीच में ही काट दी, "पहले हम पांडवों से निवट लें, फिर इन लोगों का भी प्रवंध कर लिया जाएगा।"

"एक कठिनाई यह भी तो है कि द्रोण स्वयं को मेरा गुरु ही मानते रहेंगे, सेनापति नहीं।"

"तो मानते रहें।" कर्ण बोला, "भीष्म भी तो सदा स्वयं को तुम्हारे पितामह ही मानते रहे। यदि इससे उन लोगों को कोई प्रसन्नता मिलती है तो उन्हें प्रसन्न हो लेने दो।"

कर्ण चला आया।

अपने मंडप के एकांत में आकर वह लेट गया। उसे लगा कि उसके वक्ष के भीतर उनचासों पवन चल रहे हैं और उसके ऊपर असंख्य बवंडर मचल रहे हैं। दुर्योधन उससे कितना प्रेम करता है। उसको उसके सम्मान की कितनी चिंता है... किंतु जिस दिन उसे ज्ञात होगा कि वह कुंती का पुत्र है और उसने अपनी माँ को यह वचन दे रखा है कि वह चार पांडवों का वध नहीं करेगा उस दिन क्या सोचेगा दुर्योधन उसके विषय में ?

क्या वह दुर्योधन को अपना रहस्य बता दे ? नहीं। तब दुर्योधन इस सहजता से युद्ध नहीं कर पाएगा और कर्ण अपना प्रतिशोध कैसे लेगा उस विश्वविजेता अर्जुन से ? कर्ण के जीवन की एकमात्र महत्त्वाकांक्षा कैसे पूर्ण होगी ? नहीं ! जैसे दुर्योधन समय की प्रतीक्षा में है और बहुत कुछ सहन करता चल रहा है, वैसे ही कर्ण को भी मौन रहना होगा। सहना होगा।...

दुर्योधन का मन लौट-लौटकर अपनी जीवन-कथा के पृष्ठ उलट रहा था।...कहाँ से आरंभ किया और कहाँ तक चला आया। किन-किन मार्गों और मोड़ों से चल कर आई उसके जीवन की यात्रा यहाँ तक।... आज मन बहुत सारे प्रश्नों से जूझना चाहता था, बहुत सारी स्वीकृतियों को प्रकाशित करना चाहता था...

वह बहुत छोटा था जब उसे ज्ञात हो गया था कि हस्तिनापुर का राज्य पांडु काका का था। वे कुछ कारणों से साधना के लिए वन चले गए थे। इस समय धृतराष्ट्र हस्तिनापुर के सिंहासन पर आसीन थे। जब कभी महाराज पांडु हस्तिनापुर लौट आएँगे, सिंहासन उनको लौटा दिया जाएगा।... दुर्योधन को इस प्रकार की सूचनाएँ अच्छी नहीं लगती थीं। यह राज्य उनका नहीं था, यह सारा धन, वैभव, सत्ता, शक्ति... उनकी नहीं थी। अपने पिता से उत्तराधिकार में उसे यह सब मिलने वाला नहीं था। कभी न कभी तो पांडु लौट ही आएँगे और राज्य उनको लौटा दिया जाएगा। हाँ ! यदि वे कभी न लौटें तो संभव है कि महाराज धृतराष्ट्र के पश्चात् राज्य उसको मिल जाए।... और तब उसका मन अपने लिए कोई मार्ग खोजने लगता था। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि महाराज पांडु कभी हस्तिनापुर न लौटें और यह राज्य सदा के लिए उसके पिता का और उनके पश्चात् उसका हो जाए ?... यह कैसे संभव था। पांडु को कभी तो लौट कर आना ही था। पर क्यों लौट कर आना था उनको ? क्या यह संभव नहीं कि पांडु वहीं मर

जाएँ ? उनकी नैसर्गिक मृत्यु हो जाए, उनको कोई हिंस्र पशु खा जाए अथवा हस्तिनापुर से जाकर कोई उनकी हत्या कर आए ? क्या यहाँ से कोई विषधर नहीं भेजा जा सकता था, जो विष में बुझा एक बाण उनके वक्ष में उतार आए ?...

पर तब दुर्योधन बहुत छोटा था। नैसर्गिक मृत्यु तथा हिंस्र पशुओं पर तो कभी उसका वश नहीं रहा, किंतु उन दिनों तो वह किसी भृतक हत्यारे को भेजने की व्यवस्था भी नहीं कर सका था।... अपनी असहायता उसे बहुत कचोटती थी। और तब उसके मन में अनेक योजनाएँ जन्म लेने लगती थीं।... यदि उसके बड़े होने तक पांडु वन से हस्तिनापुर नहीं लौटे तो वह किसी न किसी हत्यारे को अवश्य ही उनके पीछे भेज देगा या फिर सैनिकों को ही भेज देगा, पूरी की पूरी एक वाहिनी अथवा सारी सेना कि वे वहाँ जा कर पांडु की हत्या कर आएँ।...

पर यदि पांडु उसके बड़े होने से पहले ही हस्तिनापुर लौट आए तो ?... इस आशंका से वह पागल हो उठता था और तब उसके मन में विभिन्न प्रकार के तर्कों का झंझावात चलने लगता था।... पांडु और धृतराष्ट्र—दोनों भाइयों में उसके पिता बड़े हैं, राज्य उनको ही मिलना चाहिए था। यह राज्य पांडु को क्यों दे दिया गया ? इसलिए कि उसके पिता अंधे थे ? नेत्रहीन थे ? पर उसके पिता अंधे ही क्यों थे ?... जब प्रत्येक मनुष्य के दो नेत्र होते हैं तो उसके पिता ही नेत्रहीन क्यों थे ? उसका मन विधाता से लड़ने को हो आता। उसी के साथ ऐसा अन्याय क्यों ? विधाता स्वयं क्यों नेत्रहीन नहीं हुए ? "उसके पिता ही क्यों हुए ?..." वैसे उसे अपने पिता के नेत्रहीन होने में कोई आपत्ति नहीं थी। आपत्ति इस बात में थी कि उन्हें राज्य क्यों नहीं मिला ? संसार में अपंग तो अनेक लोग होते हैं, पर उनसे उनके पिता का उत्तराधिकार तो नहीं छीन लिया जाता। उसे समझाया गया कि नियम यही है कि राजा को अपंग नहीं होना चाहिए ? पर वह नियम को तो तभी तक स्वीकार कर सकता था, जब तक वह उसके अनुकूल हो। प्रतिकूल नियमों से उसको कोई सहानुभूति नहीं थी।... ऐसा नियम क्यों नहीं बनाया गया कि राज्य बड़े पुत्र को ही मिलेगा, वह चाहे अपंग और अपाहिज ही क्यों न हो। ... दुर्योधन बनाता तो ऐसा ही नियम बनाता। पर वह नियम बना नहीं सकता था।...

उसके जन्म से पूर्व ही राज्य उसके पिता के हाथों से छीनकर पांडु को दिया जा चुका था... पांडु वन भी जा चुके थे।... अपने जन्म से पूर्व वह राज्य संबंधी नियम कैसे बनाता।... नियम तो वह आज भी नहीं बना सकता। शास्त्रों की रचना वन में बैठे ऋषि करते हैं, जिनके पास न अपना राज्य है, न किसी का राज्य उन्हें छीनना है। उन्हें क्या पता कि भाइयों में सबसे बड़े होने पर भी राज्य का न मिलना कितना कष्टप्रद है।... तो फिर उन ऋषियों को राज्य संबंधी नियम बनाने का अधिकार किसने दे दिया, जिनके पास न राज्य है, न जिन्हें राज्य मिलने की कोई संभावना है।... राज्य तो दुर्योधन को मिलना है। वंचना की संभावना भी उसको ही होती है, जिसके पास कुछ हो। ऋषियों का क्या है।... तो क्यों न नियम बनाने की अनुमति भी केवल उसे ही हो, जिसका

राज्य से कोई संबंध है।''' पर राज्य होते हुए भी दुर्योधन नियम वना नहीं सकता।''' दुर्योधन के शरीर का सारा रक्त जैसे उसके मस्तिष्क की ओर दौड़ने लगता था।''' उसे बनाने नहीं दिया जाएगा तो वह तोड़ देगा। अपनी इच्छानुरूप निर्माण नहीं हो सकता तो अपनी इच्छा के अनुसार ध्वंस तो हो सकता है ?''' हाँ ! वह नियम वना नहीं सकता, पर नियम तोड़ अवश्य सकता था। उसकी इन नियमों में कोई आस्था नहीं थी, जिनसे उसके पिता के हाथों से राज्य निकल गया था। उसके मन में उन लोगों के प्रति भी कोई श्रद्धा नहीं थी, जिन्होंने उन नियमों को मान कर उसके पिता को राज्य से वंचित किया।''' इसीलिए भीष्म और विदुर उसे कभी अच्छे नहीं लगे। सत्यवती और व्यास के प्रति भी कोई श्रद्धा नहीं थी उसके मन में। अच्छे लगे मातुल शकुनि, जिन्होंने सदा से उसे प्रकृति का एक ही नियम सिखाया था कि अधिकार से अधिक महत्त्वपूर्ण है, आधिपत्य। जो कुछ तुम्हें चाहिए, उस पर आधिपत्य जमाओ, अधिकार की चिंता मत करो। जिसके पास अधिकार है, उसे आधिपत्य मत जमाने दो, वह टापता रह जाएगा। और आधिपत्य के लिए आवश्यक है, बल। यदि तुम्हारे पास वल है तो फिर किसी नियम और नैतिकता की ओर ताकने की कोई आवश्यकता नहीं है। नियमों को व्यवहार में लाने के लिए, उनका कार्यान्वयन करने के लिए भी उनके पीछे राज्य अथवा समाज का वल होता है। नियम के पीछे वल न हो तो नियम का कोई अर्थ नहीं है। तो तुम बल एकत्रित करो। मात्र नियम वनाने से कुछ नहीं होगा। जिस समय धृतराष्ट्र को शारीरिक रूप से अपूर्ण मान कर राज्य नहीं दिया गया, उस समय यदि वे भीष्म, विदुर और सत्यवती से अधिक बलवान होते तो राज्य कदापि पांडु को नहीं मिलता।'''

दुर्योधन ने उसी दिन से वल की प्रतिष्ठा और नियमों की अवहेलना का सिद्धांत सीख लिया था।''' पर वह अभी वालक ही था कि वन में पांडु का देहांत हो गया। कुंती अपने पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर आ गई।'''दुर्योधन ने उन लोगों को देखा : उसे बताया गया कि वे उसके भाई थे। उसे यह भी बताया गया कि वे पांडु के पुत्र थे, अतः अपने पिता का राज्य उनको ही मिलना था। उनका बड़ा भाई हस्तिनापुर का युवराज होने वाला था।''' दुर्योधन को दोनों ही बातें स्वीकार्य नहीं थीं। न वह उनको अपने भाई मानने को प्रस्तुत था और न ही वह राज्य युधिष्ठिर को दे देने को तैयार था। आज तक वह हस्तिनापुर का अघोपित युवराज था। आज कुछ लोग वन से आ गए थे तो वे युवराज हो जाएँगे ? उनको देखकर कौन उन्हें राजकुमार मानेगा। वनवासियों जैसे वस्त्र थे, वैसे ही केश। स्वभाव भी राजकुमारों जैसा नहीं था। सबको झुक-झुककर प्रणाम करते रहते थे। दिन भर अध्ययन-अध्यापन की चर्चा करते थे। कभी जप कभी तप। कभी पूजा कभी उपवास। राजकुमार क्या ऐसे होते हैं ? न कोई व्यसन न विलास'''

पर भयभीत तो वह था ही।''' धृतराष्ट्र से उसका राज्य भीष्म और सत्यवती ने छीन लिया था, कहीं उससे उसका राज्य भी ये कुल वृद्ध न छीन लें। भीष्म अब भी जीवित थे और शक्तिशाली थे। यह दूसरी बात थी कि वे राजकाज में बहुत हस्तक्षेप

नहीं करते थे।''' राज्य के महामंत्री विदुर थे, जो भीष्म के बहुत आज्ञाकारी थे। हाँ ! अव सत्यवती हस्तिनापुर में नहीं थीं।'''

पर दुर्योधन आश्वस्त था, उसके साथ उसके मातुल थे। क्रमशः उसने कर्ण और अश्वत्थामा से मित्रता कर ली थी। दुःशासन भी ठीक उसी के समान सोचता था और सदा उसका साथ देने को तत्पर रहता था।''' वैसे भी कुछ ही दिनों में उसने परख लिया था कि पांडवों में से कोई भी उससे संघर्ष के लिए उत्सुक नहीं था। वे न तो उसके पिता धृतराष्ट्र से राज्य लौटा लेने की स्थिति में थे और न ही वड़े हो जाने पर वे उससे राज्य छीन पाएँगे। हस्तिनापुर का प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि दुर्योधन हस्तिनापुर और कौरवों का भावी सम्राट् था। उस पर कोई नियम लागू नहीं होता था। उस पर कोई शासन नहीं कर सकता था। उसने जव क्रुद्ध होकर एक सारथि को मार डाला था तो भी किसी ने कुछ नहीं कहा था। संभव है कि महाराज को किसी ने उसकी सूचना भी न दी हो। सारथि के परिवार को साहस ही नहीं हुआ होगा कि वे युवराज पर ऐसा अभियोग लगाएँ।'''

पर भीम का शरीर शक्तिशाली होता जा रहा था। वह न तो युधिष्ठिर और अर्जुन के समान अनमना था, न वह दुर्योधन की धौंस सहता था। वह किसी भी बात पर उसका विरोध करने और भिड़ने के लिए भी तैयार रहता था।''' दुर्योधन समझ रहा था कि यह भीम उसके मातुल शकुनि का आधिपत्य वाला सिद्धांत चलने नहीं देगा। वह उससे उसका राज्य भी छीन लेगा।''' पर दुर्योधन उसे छीनने देगा, तव तो। वह उसे उस दिन के लिए जीवित ही नहीं रहने देगा। और तब दुर्योधन ने उसे विषाक्त मोदक खिलाकर अचेत कर दिया था। चेतनाहीन भीम को रस्सियों से भली भाँति बाँधकर गंगा की धारा में फेंक दिया था। विष से नहीं मरेगा तो गंगा में डूबकर मर जाएगा। डूबकर नहीं मरता तो विपधरों के दंश से मर जाएगा। उसके शव को ठिकाने लगाने की भी आवश्यकता नहीं थी। वह तो गंगा में बह ही गया था।'''

जिस किसी ने उसे समझाने का प्रयत्न किया, दुर्योधन ने यही माना कि वह उसका शत्रु था। वह नहीं चाहता था कि दुर्योधन के मार्ग के काँटे हटें। वे उसे हत्या कहते थे, किंतु दुर्योधन उसे राजनीति कहता था। युद्ध में भी तो इतने लोग मारे जाते हैं। किसलिए ? राज्य के लिए, सत्ता के लिए, धन के लिए, भोग के लिए।''' तो वह भीम की हत्या क्यों नहीं कर सकता ? माँ ने उसे समझाया था कि युद्ध की बात और होती है। वहाँ हम शत्रुओं को चुनौती देते हैं, शस्त्र देते हैं और क्षत्रियों के समान आमने-सामने लड़ते हैं। नियम ही ऐसा था।''' किंतु दुर्योधन को नियमों की चिंता नहीं थी। उसे अपना लक्ष्य प्राप्त करना था, जैसे भी हो।''' कभी तनिक-सा चिंतित भी हुआ तो मातुल ने समझा दिया कि नियम कायरों के लिए होते हैं। वीर लोग अपने नियमों का निर्माण स्वयं करते हैं।'''

भीम मृत्यु के मुख से वच कर हस्तिनापुर लौट आया था। आचार्य द्रोण की शिक्षा

से अर्जुन धनुर्धारी हो गया था। रंगशाला में आचार्य द्रोण ने अपने शिष्यों के कौशल का प्रदर्शन किया तो अर्जुन ने बहुत प्रशंसा पाई थी और पांडव बहुत शक्तिशाली होते प्रतीत हुए थे दुर्योधन को। उसने उनके सम्मुख कर्ण को खड़ा कर दिया था। कर्ण से अर्जुन का द्वंद्वयुद्ध हो जाता तो कर्ण कदाचित् दुर्योधन के उस शत्रु को सदा के लिए समाप्त कर देता, पर कृपाचार्य ने उसकी इच्छा पूरी नहीं होने दी। उन्होंने द्वंद्वयुद्ध ही नहीं होने दिया। द्वंद्वयुद्ध तो नहीं हुआ, किंतु कृपाचार्य और भीम की उक्तियों ने कर्ण को सदा के लिए दुर्योधन की झोली में अवश्य डाल दिया। दुर्योधन ने कर्ण का आवृत व्रण देख लिया था। वह उसकी महत्त्वाकांक्षा को भी समझ गया था।''' न कर्ण किसी की श्रेष्ठता स्वीकार कर सकता था और न दुर्योधन। वे अच्छे मित्र थे और आगे भी रह सकते थे। दुर्योधन को सत्ता चाहिए थी और कर्ण को सत्ता की कृपा, सान्निध्य और सम्मान। दुर्योधन उसकी प्रशंसा करता रहेगा और कर्ण आजीवन उसके लिए लड़ता रहेगा।'''

कृष्ण ने कंस को मार कर मथुरा पर आधिपत्य जमा लिया था। यादव लोग शक्तिशाली हो गए थे और एक दिन पांडवों के मातुल के रूप में अक्रूर हस्तिनापुर आया। परिणाम यह हुआ कि युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का युवराज बना दिया गया। धृतराष्ट्र ने उसे और उसके भाइयों को द्रुपद के साथ होने वाले युद्ध में झोंक दिया था। पर पांडव उसमें विजयी हो आए थे। अब युधिष्ठिर को युवराज पद से नहीं हटाया जा सकता था। वह दुर्योधन का राज्य छीन कर ही रहेगा।''' दुर्योधन के लिए यह असह्य था। वह इसको स्वीकार नहीं कर सकता था। न वह धर्म को मानना चाहता था, न शास्त्र को। न परंपरा को न कुल वृद्धों के आदेश को। वह तो यह जानता था कि वह अपना राज्य किसी को नहीं दे सकता था। कुछ हो जाए। यदि उसे सीधे-सीधे राज्य नहीं दिया जाएगा तो वह उसे कुटिल मार्ग से प्राप्त करेगा।''' वे कहते थे कि हस्तिनापुर का राज्य उसका नहीं था। पर क्यों नहीं था ? जिस राज्य को वह अपना मानता था, वह उसका था। किसी के कहने से वह उसे कैसे त्याग सकता था।'''

वारणावत में उसने पाँचों पांडवों को उनकी माता के साथ जला कर मार डालने की योजना बनाई थी।''' कितना सुखी था वह, जब तक ये पांडव और उनकी यह माता हस्तिनापुर में नहीं आए थे। उनके आते ही उसके प्रतिद्वंद्वी उत्पन्न हो गए थे। सामने शत्रु दिखाई पड़ने लगे थे। यदि उनकी उपस्थिति से दुर्योधन की इच्छाओं में बाधा पड़ती थी तो उनको जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं था। उनको मरना होगा। पिता को मना लिया था उसने। पिता मानते थे कि यह अनुचित है। उनके मन में कहीं यह धारणा भी हो सकती है कि यह पाप है; किंतु पांडवों को अपने और अपने पुत्र के मार्ग से तो वे हटा ही देना चाहते थे। हाँ ! उस पाप का भार अपने कंधों पर उठाना नहीं चाहते थे। दुर्योधन को उसमें न कुछ अनुचित लगता था और न कुछ पापपूर्ण। यह तो राजनीति थी, जिसमें शत्रु का विनाश कर देना ही एकमात्र उपाय था। शत्रु का नाश

पाप नहीं था। वह तो विजय थी। पिता यह काम घोषित रूप से नहीं करना चाहते थे अतः गोपनीय ढंग से किया गया।

इस कृत्य का बहुत विरोध हुआ। सबने उसको धिक्कारा। पर वह आज भी जानता है कि यदि वारणावत में पांडव मर गए होते तो यह साम्राज्य उसका होता और इस राजनीतिक विजय के लिए उसके पिता भी उसके कृतज्ञ होते। उसे बार-बार कहा गया कि पांडव तो धर्म पर चलते हैं। वह क्यों अधर्म का मार्ग नहीं छोड़ता। उसका उत्तर उसके मन में था। मूर्ख थे पांडव, जो राजनीति में रहकर धर्म की बात करते थे। उन्हें धर्म इतना ही प्यारा था तो वे वनों में रहकर आरण्यक जीवन व्यतीत करने को स्वतंत्र थे। कृष्ण आजीवन कभी सिंहासन पर नहीं बैठ पाया, क्योंकि सदा धर्म की बात करता रहा। नहीं तो कंस के वध के पश्चात् उसे तत्काल मथुरा का सिंहासन अधिकृत कर लेना चाहिए था। तब नहीं कर पाया, क्योंकि अवस्था कम थी और उसे राजनीति का कोई अनुभव नहीं था। वस्तुतः वह राज्य का न महत्त्व जानता था और न उसका सुख। द्वारका जा कर तो उसे राजा बन ही जाना चाहिए था''' पर वह तब भी धर्म का राग अलापता रहा और स्वयं अपने-आपको तथा अपने बंधुओं को वंचित करता रहा।''' दुर्योधन उस मिट्टी का बना हुआ नहीं है। वह एक पूर्ण राजनीतिज्ञ है। वह रजोगुणी है। उसका धर्म क्षात्र धर्म है; और क्षत्रिय के लिए आवश्यक है कि वह अपने शत्रुओं को ही नहीं, संभावित शत्रुओं का भी वध कर दे। किसी के पास इतना धन न छोड़े कि वह धन भविष्य में उसके लिए किसी प्रकार का संकट उत्पन्न कर सके। किसी को इतना शक्तिशाली न बनने दे कि वह उसके लिए कोई चुनौती खड़ी कर सके। राजनीति में कोई आदर्श नहीं होता, कोई सिद्धांत और कोई धर्म नहीं होता। यदि होता भी है तो दुर्योधन उसको नहीं मानता। वह सब युधिष्ठिर के लिए है कि जाए और उन वनवासी तपस्वियों से चर्चा करे कि राजा का क़र्तव्य क्या होता है। दुर्योधन का अपना चिंतन है। राजा का एक ही कर्तव्य है कि वह स्वयं को शक्तिशाली, धनी और समर्थ बनाए। जिसका हित करने में उसका लाभ हो, उसका हित करे और जिससे प्रतिकूलता की संभावना हो, उसे किसी भी प्रकार नष्ट कर दे। राजनीति में कोई स्थायी मित्र और शत्रु नहीं होता। अपना स्वार्थ ही एकमात्र मित्र है। उसे सैनिक सहायता चाहिए थी तो वह कृष्ण के पास भी चला गया। अपनी पुत्री के माध्यम से कृष्ण को, उसके पुत्रों और भाइयों से पृथक् कर दिया। जिस कृष्ण से उसे नारायणी सेना मिली थी, उसको हस्तिनापुर आने पर बंदी करने का प्रयत्न किया, क्योंकि अब उसे कृष्ण से कोई लाभ होने वाला नहीं था। राजनीति में कृतज्ञता का पालन करता तो वह अपने सहायकों का दास हो जाता, उनका राजा कैसे रह सकता था।''' कृष्ण और युधिष्ठिर राजधर्म की बात करते हैं। करते रहें। दुर्योधन राजनीतिज्ञ है और वही रहना चाहता है।''' राजसूय यज्ञ में उसे युधिष्ठिर ने महत्त्व दिया तो क्या वह उसको शक्तिशाली बनाए जाने में सहायक होता ताकि युधिष्ठिर अधिक से अधिक महान् सम्राट् बनता जाए ? उसने यह भी देख लिया

था कि पांडव बहुत शक्तिशाली हो चुके थे। वह उनसे लड़ नहीं सकता था। तो क्या वह उनका धन और राज्य छीनने का प्रयत्न ही न करता। वे शक्तिशाली थे, इसलिए वे उसके लिए और भी भयंकर थे। उनका नाश तो उसे करना ही था। लड़ नहीं सकता था, इसलिए उन्हें द्यूत के लिए बुलाया।''' उनका राज्य छीनना था, इसलिए छीन लिया। उस समय धर्म और अधर्म के वितंडावाद में पड़ने का क्या अर्थ ? मनुष्य का एकमात्र धर्म है अपना सुख, अपना स्वार्थ। यदि धन से सुख मिलता है तो धन प्राप्त करे। स्त्री से सुख मिलता है तो स्त्री को हस्तगत करे। सत्ता से सुख मिलता है तो सत्ता छीन ले। अहंकार से सुखी होता है तो अहंकार को स्फीत करे। शत्रु को पीड़ित कर सुख मिलता है तो शत्रु को तड़पाए। इसलिए जब कर्ण ने द्रौपदी को निर्वस्त्र कर देने के लिए कहा तो उन्माद हो गया था दुर्योधन को। उसने तो इस सुख की कल्पना ही नहीं की थी। वह तो केवल इतना भर ही सोच पाया था कि वह द्रौपदी को अपनी दासी के रूप में अपमानित करे और पांडवों का तड़पना देखे। कैसा आह्लाद का क्षण था। कर्ण ने द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रस्ताव किया था। जिस द्रौपदी को पाने की आकांक्षा उसके मन में मर कर भी नहीं मरी थी, उसका इस प्रकार सार्वजनिक निर्वस्त्र दर्शन''' संसार की कोई सुरा इतना मद नहीं दे सकती थी। उसमें काम की उत्तेजना भी थी, अहंकार का उद्दाम मद भी, अपने शत्रुओं को पीड़ित और अपमानित देखने का सुख भी। धर्म-धर्म चिल्लाने वाले कुलवृद्धों को नतमस्तक देखने में कैसा अलौकिक सुख था।''' द्रौपदी चीत्कार करती थी कि बताओ धर्म क्या है तो उस चीत्कार की असहायता को देखकर दुर्योधन को एक पूरे भांड का मद चढ़ जाता था। वैसी क्षीवता का उसने अपने जीवन में फिर कभी अनुभव नहीं किया। वह तो दुःशासन ही न जाने क्यों कृष्ण के नाम से भयभीत होकर गिर पड़ा, अन्यथा''' ।

पिता धृतराष्ट्र ने भयभीत होकर पांडवों को दासता से मुक्त कर दिया, नहीं तो दुर्योधन की योजना तो कुछ और ही थी। धृतराष्ट्र पांडवों को अपना पुत्र समझते थे अथवा कहते मात्र थे। मन से मानते नहीं थे, पर कहते तो थे। यह कैसे संभव था कि पुत्र पिता के दास रहते ?''' पर उससे क्या ? दुर्योधन तो उनको अपने भाई नहीं मानता था।''' उसने किसी समय कहा भी था कि पांडव कुरुओं की संतान थे ही नहीं। उनको कुरुवंश से निष्कासित किया जा सकता, तो वह क्यों न करता। वह तो उनकी हत्या करना चाहता था, चरित्रहनन तो बात ही क्या थी। यदि उनको कुरुवंश से निष्कासित करने से उसे हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ का साम्राज्य मिल जाता तो वह उनका तो क्या कुंती का भी चरित्रहनन कर सकता था।''' पर वह डर गया था इस तर्क से कि उस स्थिति में वह भी कुरुवंशी नहीं था। शांतनु की औरस संतान के रूप में तो भीष्म, चित्रांगद और विचित्रवीर्य ही जीवित बचे थे। भीष्म और चित्रांगद का तो विवाह ही नहीं हुआ और विचित्रवीर्य की संतान नहीं हुई। धृतराष्ट्र और पांडु भी तो नियोग से ही उत्पन्न हुए थे।''' दुर्योधन का वह तर्क भी नहीं चल पाया था। चल जाता तो उसे

पांडवों से कोई संकट नहीं रहता। तब कदाचित् उसे उनके जीवित रहने में भी कोई आपत्ति न होती। उसे राज्य चाहिए था। जो कोई उसकी सत्ता के मार्ग में आ रहा था, उसका रक्त भी चाहिए था।···

पांडवों को बारह वर्षों का वनवास दिया था, क्योंकि उससे बड़ी अवधि के लिए उन्हें वन भेजना संभव नहीं था। उसने मान लिया था कि उन बारह वर्षों में वे कहीं मर-खप जाएँगे। पर साथ ही एक वर्ष का समाज के मध्य अज्ञातवास भी था। इसीलिए था वह कि वे अज्ञातवास में पहचान लिए जाएँ और फिर से बारह वर्ष के लिए वन चले जाएँ।··· दुर्योधन तब भी जानता था कि उसे पांडवों का राज्य नहीं लौटाना है और अपने निर्णय पर वह अडिग रहा।··· यह पांडवों का ही भाग्य था कि वे सफलतापूर्वक वनवास कर आए और उनका अज्ञातवास भी पूरा हो गया।··· दुर्योधन को आश्चर्य इस बात का नहीं था। उसे तो आश्चर्य इस बात का था कि पांडव यह विश्वास कैसे कर रहे थे कि उनका राज्य उनको लौटा दिया जाएगा। वे वचन की बात कर रहे थे। नियम की चर्चा कर रहे थे।··· राजनीति नहीं समझते थे मूर्ख। नहीं जानते थे कि राजनीति में वचन और आश्वासन देते समय भी यह सबको ज्ञात होता है कि उनका पालन नहीं किया जाएगा। उन्होंने दुर्योधन अथवा धृतराष्ट्र के वचन का विश्वास किया तो यह उनका धर्म नहीं राजनीति की अनभिज्ञता अथवा मूर्खता थी।··· वे राजनीति में धर्म की बात ही क्यों करते हैं—यह दुर्योधन आज तक नहीं समझ सका था।··· कोई राजा इसलिए इतना बड़ा साम्राज्य किसी को सौंप देगा, क्योंकि वे कुछ शर्तें पूरी कर आए थे ? नियमतः राज्य उनको मिलना चाहिए था। वे शास्त्र की बात कर रहे थे, विधान और संविधान की बात कर रहे थे। व्यावहारिक राजनीति का उनको ध्यान ही नहीं था।··· दुर्योधन ने तो आरंभ से ही सोच रखा था कि वह यही कहेगा कि वे अज्ञातवास में ही पहचान लिए गए थे। गणना में हेरफेर करने में क्या लगता है, जब कि सत्ता उसके हाथ में थी। गणक उसके थे।··· पर कुरुवृद्ध भीष्म ने उसकी योजना नष्ट कर दी थी। दुर्योधन जानता था कि भीष्म और विदुर जैसे लोगों को अपनी राजसभा में रखना उसकी राजनीतिक भूल थी। पर वह क्या कर सकता था। यह उसकी राजनीतिक बाध्यता भी थी।··· अब तो यही संभव था कि वह सिवाय अपनी इच्छा के शेष किसी भी विधान को मानना अस्वीकार कर देता।··· धृतराष्ट्र ने कहा कि राज्य पांडवों का है, किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। भीष्म ने समझाया, पिता ने समझाया, विदुर ने समझाया, द्रोणाचार्य कहते रहे, माता गांधारी को बुला लिया गया। कृष्ण कहते रहे··· पर क्या किसी के कहने से दुर्योधन अपना राज्य पांडवों को दे देता। मातुल ने ठीक कहा था, राज्य उसका नहीं था, जिस पर किसी विधान से उसका अधिकार बनता था; राज्य उसका था, जिसका उस पर आधिपत्य था। इस समय दुर्योधन कुरु साम्राज्य का अधिपति था। यदि उसके पिता सचमुच ही स्वयं को राजा मानते तो वे स्वयं ही पांडवों को राज्य दे देते, तो फिर वे क्यों दुर्योधन को समझाते रहे कि पांडवों से संधि कर ले।··· इसका अर्थ एक ही

था कि या तो वे मानते थे कि राज्य पर दुर्योधन का आधिपत्य था, अथवा वे भी पांडवों को राज्य देना नहीं चाहते थे किंतु वे खुल कर कह नहीं सकते थे कि वे राज्य नहीं देंगे। दुर्योधन कह सकता था कि वह राज्य किसी को भी नहीं देगा। राज्य उसको चाहिए। राज्य पर अपना आधिपत्य जमाए रखने के लिए वह कोई भी तर्क देगा, कोई भी उपाय करेगा, कोई भी हथकंडा अपनाएगा।''' उसने राज्य पाने के लिए पांडवों की हत्या के अनेक प्रयास किए थे। अब पांडवों को राज्य चाहिए तो वे उसका वध करें'''

वध के लिए वल चाहिए। दुर्योधन पहले दिन से ज़ानता था कि पांडवों के पास इतना बल नहीं है कि वे हस्तिनापुर की सेना और योद्धाओं का वध कर सकें। यदि बल, कौशल और सामर्थ्य था भी तो उनके पास संकल्पशक्ति नहीं थी कि वे कुरुवंशियों का वध कर सकते। मूर्ख, इतना भी नहीं जानते कि जो वध नहीं कर सकता, वह राजनीति भी नहीं कर सकता।'''

वे दुर्योधन को अन्यायी और अधर्मी घोषित करते रहे, पर वे लोग इस बात से भी अवगत नहीं थे कि राजनीति का सारा न्याय और धर्म केवल बल में है। जिसके पास बल है, वह किसी नियम को नहीं मानता, किसी संधि को नहीं मानता। वह मानता है कि नियम हों अथवा संधियाँ—सब उसके अप्ने स्वार्थ की रक्षा के लिए ही हैं।

3

दूत चला गया और एक सर्वव्यापी मौन छा गया।

अंततः द्रौपदी ने ही कहा, "हम सब जानती हैं कि पितामह के भूमिपात से किसी को भी प्रसन्नता नहीं होगी। वे जैसे भी थे, पांडवों को प्रिय थे। किंतु हम यह भी जानती हैं कि हमारी विजय के लिए पितामह का पतन आवश्यक था।''' युद्ध की दृष्टि से यह समाचार हमारे लिए सुखद है।"

"आप ठीक कह रही हैं।" देविका ने सबसे पहले उसका समर्थन किया, "पितामह के पतन के बिना पांडवों की जय हो ही नहीं सकती थी।"

"यह तो ठीक है किंतु इस सारी सूचना में मुझे पांडवों का गौरव कहीं दिखाई नहीं देता।" बलंधरा ने द्रौपदी की ओर देखा, "एक वृद्ध को उसके प्रेमपाश में बाँध कर स्वयं उससे यह रहस्य प्राप्त करना कि उसका वध कैसे किया जा सकता है; और फिर आर्य शिखंडी को सम्मुख खड़ा कर, पितामह को निहत्था कर, उन्हें बाणों से बींध देना। यह तो कोई वीरता नहीं है जीजी !"

द्रौपदी ने ही नहीं, देविका और करेणुमती ने भी बलंधरा की ओर इस प्रकार देखा, जैसे कह रही हों कि उन्हें पहले से ही आशंका थी कि वह ऐसी ही कोई बात कहेगी।

"बलंधरा ! अब तुम इस पूर्वश्रुत कथा को इस प्रकार सुनो।" द्रौपदी ने कहा,

"पांडव पहले दिन से जानते थे कि पितामह ने दो प्रतिज्ञाओं के साथ दुर्योधन का सेनापतित्व स्वीकार किया था। पहली यह कि पांडव उनके लिए अवध्य होंगे और दूसरी यह कि किसी स्त्री पर, अथवा उस पुरुष पर जो पहले कभी स्त्री रह चुका है, वे शस्त्र नहीं उठाएँगे।"

"तो ?" बलंधरा के स्वर में न केवल असहमति थी, वरन् स्पष्ट चुनौती भी थी।

"पांडवों ने यह जानते हुए भी कि पितामह को इस विधि से थोड़े ही समय में धराशायी किया जा सकता है, उसका उपयोग नहीं किया। क्यों ? क्यों पहले ही दिन उस विधि से पितामह का वध नहीं किया और विराट के दोनों पुत्रों को बचा लिया ? क्योंकि पांडव वीर हैं और पितामह से प्रेम करते हैं। शिखंडी ने जब कभी भीष्म पितामह पर आक्रमण किया, कौरवों के कितने-कितने महारथी और अतिरथी उन पर टूट पड़े और धनंजय ने शिखंडी को वह सुरक्षा प्रदान नहीं की, जो वे कर सकते थे। शिखंडी हर बार असफल होकर लौट आए और पितामह पांडवों की सेना को काटते रहे।" द्रौपदी ने कहा, "तुमने कभी ध्यान नहीं दिया बलंधरा ! कि धर्मराज ने श्रीकृष्ण को कई बार उपालंभ दिया कि अपनी सेना को कटती देखकर भी धनंजय पितामह का वध नहीं करते।"

"हाँ ! उपालंभ दिया तो था।" बलंधरा ने कहा, "पर उससे क्या सिद्ध होता है ?"

"श्रीकृष्ण भी दो-दो बार रथ से कूद कर पितामह को मारने के लिए युद्धक्षेत्र में उनकी ओर दौड़े थे ?"

"हाँ !"

"क्यों ?" द्रौपदी ने पूछा, "क्या इसलिए कि धनंजय पितामह का वध कर नहीं सकते थे अथवा वे करना नहीं चाहते थे ?"

बलंधरा ने कुछ नहीं कहा।

"यदि धनंजय असमर्थ होते तो श्रीकृष्ण स्वयं रथ से कूद कर उन्हें उत्तेजित क्यों करते ? धर्मराज रुष्ट क्यों होते ?" देविका ने उसकी ओर देखा।

बलंधरा इस बार भी कुछ नहीं बोली।

"स्पष्ट है कि सव्यसाची पितामह का वध करने में समर्थ होते हुए भी उनका वध नहीं करना चाहते थे।" सुभद्रा ने कहा, "वे उनसे प्रेम करते थे। उन्हें अपनी सेना का कटना स्वीकार्य था, किंतु वे पितामह का वध करना नहीं चाहते थे।"

"तो फिर वध किया क्यों ?" बलंधरा बोली।

सुभद्रा का वर्ण कुछ तप्त हुआ। लगा कि वह बलंधरा को कोई कठोर बात ही न कह दे।

"वध तो होना ही था बलंधरा ! समरभूमि में शत्रुपक्ष से लड़ने वाले योद्धा का वध नहीं किया जाएगा तो पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी।" देविका ने बात सँभाल ली, "तुम इसे इस प्रकार देखो। पांडव पहले ही दिन आर्य शिखंडी को सम्मुख खड़ा कर

पितामह का वध कर सकते थे, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। दूसरी ओर पितामह लड़ भी रहे थे और दुर्योधन को संधि कर लेने के लिए समझा भी रहे थे। शायद पांडव भी ऐसी ही किसी संधि की प्रतीक्षा कर रहे हों। पर अपनी सेना को कटते देख धर्मराज की भी तीव्र इच्छा होने लगी थी कि पितामह का वध हो जाना चाहिए। श्रीकृष्ण ने पहले दिन से ही स्पष्ट कर दिया था कि वे पितामह का वध शीघ्रातिशीघ्र चाहते हैं। उधर दुर्योधन भी पितामह से रुष्ट हो रहा था कि उनके सेनापतित्व में पांडवों का वध नहीं हो रहा है। अतः वह भी पितामह की मृत्यु की कामना कर रहा था ताकि वह कर्ण को सेनापति के रूप में समरभूमि में ला सके। तीसरी ओर पितामह देख रहे थे कि संधि की कोई संभावना नहीं थी और सेना प्रतिदिन कट रही थी। जिन कौरवों की वे रक्षा करना चाहते थे, उनके दोनों पक्ष उनकी मृत्यु की कामना कर रहे थे। हार कर उन्होंने पांडवों से कह ही दिया कि वे शिखंडी के हाथों मरना नहीं चाहते। उन्हें अर्जुन के हाथों मरने का यश मिले। यह तो एक हताश व्यक्ति की गौरवपूर्ण आत्महत्या है।''

''तो पांडव उनके शिविर में क्या पूछने गए थे ?'' बलंधरा अपनी बात से टलने को तैयार नहीं थी।

''अनुमति लेने गए थे कि अब वे पितामह का वध कर ही दें।'' सुभद्रा ने कहा।

बलंधरा जोर से हँस पड़ी, ''अपने वध्य से भी कोई उसके वध की अनुमति लेता है ?''

''पांडव लेते हैं।'' द्रौपदी ने जैसे दृढ़तापूर्वक किसी सिद्धांत का प्रतिपादन किया, ''युद्धारंभ के समय भी धर्मराज अपना कवच उतारकर, अपने विरुद्ध लड़ने वाले अपने गुरुओं और कुलवृद्धों से अनुमति लेने गए थे।''

''विचित्र हैं ये पांडव भी।'' बलंधरा ने जैसे अपने आपसे कहा।

''तभी तो वे असाधारण हैं।'' देविका बोली।

''एक बात मेरे मन में भी है जीजी !'' करेणुमती बोली, ''पूछूँ ?''

''किससे पूछना है ?'' सुभद्रा की आँखों में असाधारण चंचलता थी, और वह बलंधरा की ओर देख रही थी।

द्रौपदी को जाने क्यों सुभद्रा की उस चंचल मुस्कान में से कृष्ण झाँकते दिखाई दिए : है तो यह उनकी बहन ही।

''नहीं ! मैं बलंधरा जीजी से नहीं पूछ रही।'' करेणुमती बोली, ''मैं तो आप सब के सम्मुख अपनी एक जिज्ञासा रखना चाहती हूँ—उत्तर जिस किसी के भी पास हो।''

''जिज्ञासा क्या है ?'' देविका ने पूछा।

''आप किसी भी प्रकार काल-गणना कर लें, पितामह की अवस्था इतनी कम नहीं हो सकती कि वे इस प्रकार का युद्ध कर सकें। और वे युद्ध ही नहीं कर रहे थे, प्रलय मचा रहे थे। तरुणों की तरुणाई भी उनकी सक्रियता और स्फूर्ति के सम्मुख लज्जित हो रही थी।''

"तुम कितनी अवस्था आँकती हो उनकी ?" देविका ने पूछा।

"किसी भी गणित से उनकी अवस्था कम से कम सवा सौ से डेढ़ सौ वर्षों के बीच होनी चाहिए।" करेणुमती बोली।

"हाँ ! इतनी तो होनी ही चाहिए।" देविका ने कहा और सुभद्रा की ओर देखा।

सुभद्रा ने भी सहमति में सिर हिला दिया।

"तो फिर जहाँ हम मनुष्य मात्र की अधिकतम आयु एक सौ वर्ष मानते हैं, वहाँ एक व्यक्ति न केवल डेढ़ सौ वर्ष तक जीवित हो, वरन् युवाओं के समान युद्ध कर रहा हो इसे कोई कैसे स्वीकार कर सकता है ?"

"पर यह सत्य है। हमारे सामने है।" बलंधरा बोली, "इसे झुठलाया नहीं जा सकता।"

"सत्य है, इसीलिए तो मेरे मन में यह जिज्ञासा है। कैसे संभव है यह ? पितामह ने इसे कैसे संभव किया ? क्या यह मात्र ब्रह्मचर्य के कारण है, अथवा उनके पास कोई सिद्धि है ?" करेणुमती ने बारी-बारी उन सबकी ओर देखा।

"वैसे तो आचार्य द्रोण की अवस्था भी कम नहीं है।" सुभद्रा ने कहा, "और कृपाचार्य ही कौन से छोटे हैं।"

"मानने को मान लो कि आचार्य भी कम तपस्वी नहीं हैं।" देविका ने कहा, "किंतु पितामह के विषय में तो यह भी कहा जाता है कि उन्हें अपने पिता से इच्छामृत्यु का वरदान मिला है।''' क्या यह सब इसके कारण है ?"

"नहीं ! मैं इससे सहमत नहीं हूँ।" द्रौपदी ने कुछ आवेश में कहा, "मैं तो वैसे ही शाप और वरदान पर बहुत विश्वास नहीं करती, पर महाराज शांतनु के विषय में तो यह एकदम सत्य नहीं हो सकता। उन्होंने कौन-सी तपस्या की थी कि उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त होती, जिससे वे किसी को वरदान दे सकते। वे तो साधारण भोगी पुरुष थे। पहले गंगा के प्रेम में डूबे रहे और फिर सत्यवती के मोह में निमज्जित हो गए। यदि वैसे पुरुष को भी वरदान देने की शक्ति मिल सकती है तो फिर हम तुम क्यों किसी को वर नहीं दे सकतीं ?"

"वरदान न सही। मुझे तो शाप की शक्ति मिल जाए तो मैं अभी इसी क्षण दुर्योधन को भस्म कर दूँ।" बलंधरा बोली।

"बस ! बस !! बात तो पितामह की अवस्था और उनकी क्षमता की थी।" देविका ने कहा, "और फिर उनकी इच्छामुत्यु की। क्या है इन सबका कारण ?"

सबकी दृष्टि द्रौपदी पर आ टिकी थी।

"तुम लोग मुझसे इसका उत्तर माँग रही हो ?" उसने कुछ विस्मित स्वर में पूछा।

"हाँ !" करेणुमती बोली, "तो और कौन उत्तर देगा ?"

"इसका उत्तर तो तुम लोगों को श्रीकृष्ण से ही माँगना चाहिए। वे ही जानते हैं जन्म-मृत्यु के रहस्यों को।"

"अब श्रीकृष्ण यहाँ उपस्थित नहीं हैं तो उनकी सखी ही उत्तर दे।" सुभद्रा ने हँस कर कहा।

"क्यों ? उनकी वहन क्यों न दे ?" द्रौपदी भी हँसी।

"क्योंकि उनकी वहन न उनकी सखी के समान विदुषी है, न उतना बुद्धिमती, न ही उसे जीवन का इतना अनुभव है।" सुभद्रा गंभीर हो गई थी।

"मैं तुम्हारी अपेक्षाओं पर पूरी उतरूँगी कि नहीं, कह नहीं सकती, किंतु प्रयत्न करती हूँ।" द्रौपदी की मुद्रा भी चिंतनशील हो गई, "मेरे मन में एक ही वात आती है। उपनिषद् कहते हैं :

पृथ्वी अप् तेजः अनिल खे समुत्थिते, पंचात्मके योग गुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगः न जरा न मृत्युः, प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।

यदि पितामह ने भी पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतों का सम्यक् प्रकार से उत्थान होने पर तथा इनसे संबंध रखने वाले पाँच प्रकार के योग संबंधी गुणों की सिद्धि हो जाने पर, योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लिया है, तो उनको न तो रोग सताएगा, न बुढ़ापा आएगा और न ही उनकी मृत्यु होगी, अर्थात् उनकी मृत्यु उनकी अपनी इच्छा के अधीन होगी।"

"क्या यह सब संभव है जीजी !" करेणुमती के स्वर में अविश्वास था।

"मैं कह नहीं सकती करेणु !" द्रौपदी ने कहा, "मुझे स्वयं इसका कोई अनुभव नहीं है; किंतु शास्त्र कह रहा है और हमारे सामने पितामह का उदाहरण है। मानना न मानना तो अब श्रद्धा-अश्रद्धा का प्रश्न है।"

"यदि यह संभव है तो कुछ और योगी भी तो होने चाहिए। एक अकेले पितामह ही क्यों ?" वलंधरा बोली, "पर हमें तो और कोई दिखाई नहीं पड़ता।"

"होने को तो कृष्ण द्वैपायन व्यास भी हैं।''' और देख सको तो देखो, श्रीकृष्ण और धनंजय की अवस्था पर भी क्या काल का कोई प्रभाव दिखाई पड़ता है ? क्या वे भी चिरयुवा नहीं लगते ?" द्रौपदी ने हँसकर कहा, "और यदि इस प्रकार के योगी होते हैं तो उन सबका हमारे आसपास होना भी आवश्यक नहीं है। फिर भी मैं आग्रह नहीं कर सकती कि तुम लोग इस स्पष्टीकरण को स्वीकार कर ही लो।"

"विचित्र बात है।" बलंधरा जैसे अपने आपसे बोली, "मानो तो समस्या, न मानो तो समस्या। यह गोरखधंधा तो मेरी समझ से एकदम ही बाहर है।"

"मुझे तो उससे भी विचित्र वे सूचनाएँ लगती हैं, जो पितामह के धराशायी हो जाने के बाद की हैं।" सुभद्रा ने कहा।

"पार्थ द्वारा उन्हें बाण का तकिया देने की ? बाण द्वारा धरती से जल प्रकट करने की ?" द्रौपदी ने पूछा।

"हाँ ! और यह भी कि पितामह के शरीर में बाण आर-पार धँसे हैं और वे उन पर ही सोए हैं।"

कुछ क्षणों तक द्रौपदी ने कुछ नहीं कहा। फिर अकस्मात् ही बोली, "द्वंद्व मेरे मन में भी है। या तो उपनिषद् की उक्ति के प्रकाश में पितामह के योगाग्निमय शरीर को स्वीकार कर लें। उससे यह माना जा सकता है कि पितामह को बाणों के इस प्रकार आर-पार हो जाने पर भी कोई कष्ट नहीं हो रहा है। या फिर कष्ट तो हो रहा है; किंतु उनकी मृत्यु नहीं हो सकती, क्योंकि वह उनकी इच्छा के अधीन है।"

"संभव तो यह भी है, किंतु यह भी तो हो सकता है कि पितामह के शरीर में कुछ ऐसे बाण धँस गए हों, जिन्हें निकालना न तो विशल्यकारी औषधियों के लिए संभव है और न ही शल्यचिकित्सकों के लिए।" देविका ने कहा।

"क्यों ? शल्यचिकित्सकों के लिए क्यों संभव नहीं है ?" सुभद्रा ने पूछा।

"बाणों को निकालने की शल्यक्रिया उनके प्राण भी ले सकती है।" देविका ने उत्तर दिया, "ऐसे में वे अपने पर्यंक पर लेटे हों, तो भी बाण-शैया पर सोए ही माने जाएँगे। वे उन बाणों की चुभन, उनकी पीड़ा से तो मुक्त नहीं हो सकते।"

"वैसे योगशास्त्र का यह भी कहना है कि साधक यदि अपना स्वरूप पहचान कर स्वयं को आत्मा के रूप में देखता है और इस शरीर से पृथक् अनुभव करने लगता है, तो उसे इस शरीर का कोई कष्ट पीड़ित नहीं करता।" द्रौपदी ने कहा, "वह बिना किसी पीड़ा का अनुभव किए, अपने हाथों से अपने शरीर के अंगों को काट सकता है।"

"हमारी कठिनाई यह है कि हमारा सत्य केवल वह है, जिसको स्वयं हमने अनुभव किया है।" सहदेव की पत्नी विजया ने पहली बार मुँह खोला, "जो हमारे अनुभव क्षेत्र से बाहर है, उसका विश्वास हम कैसे कर लें।" किंतु पितामह का उदाहरण हमें बहुत कुछ सोचने को बाध्य करेगा।"

"और वह बाण का तकिया और बाण से धरती में से जल निकाल कर पिलाना ?" बलंधरा ने जैसे उन्हें स्मरण कराया।

"यह तो मुझे किसी कवि की अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना ही लगती है।" देविका ने कहा, "बाकी तुम लोगों की इच्छा।"

"क्यों ? क्या धनंजय एक ऐसा बाण नहीं मार सकते थे, जो पितामह के सिर को नीचे से सहारा तो दे किंतु उनको आहत न करे ?" सुभद्रा ने कहा, "एकलव्य ने भी तो कुत्ते का मुँह बाणों से भर दिया था, किंतु उसे आहत नहीं किया था ?"

"बात तो ठीक है।" द्रौपदी ने समर्थन किया।

"बात तो ठीक ही है।" देविका बोली, "किंतु मैं सोचती हूँ कि धनंजय और शिखंडी ने युद्ध में पितामह को इतने बाण मारे थे कि उनके शरीर का कोई भाग बाणशून्य नहीं था। शरीर पर कवच भी रहा होगा। उस कवच को भी भेदा गया। तो क्या उनके कंठ और माथे पर कोई बाण नहीं मारा होगा ? शिरस्त्राण के बाद भी कंधों से ऊपर बहुत सारा भाग अनावृत होता है। मारा ही होगा। ऐसे में तकिया देने के लिए और बाण

क्या मारना।" देविका ने रुककर सुभद्रा को देखा, "वैसे तुम्हारी इच्छा भई। नहीं तो धनंजय के लौटने पर उनसे पूछ लेना।"

"मानना न मानना तो अपने अनुभव, अपनी बुद्धि और अपनी श्रद्धा पर निर्भर करता है," द्रौपदी ने कहा, "पर इतना तो कहना ही होगा कि जो भी हुआ, बहुत अद्‌भुत हुआ।"

सुभद्रा हँसी, "जीजी ने तो चर्चा के समापन की ही घोषणा कर दी।"

4

दुर्योधन ने अपने हाथों, शास्त्रीय विधि से आचार्य द्रोण का प्रधान सेनापति के रूप में अभिषेक किया। बहुत आडंबर और समारोह के साथ अपनी प्रसन्नता जताई। वाद्यों के घोष और शंखों की ध्वनि से आकाश फटने लगा। पुण्याहवाचन हुआ, स्वस्तिवाचन हुआ। सूत, मागध तथा वंदीजनों ने स्तोत्र तथा गीत गाए। दुर्योधन और आचार्य द्रोण, दोनों के वंशों की विरुदावलियाँ गाई गईं। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने जयजयकार किया। भीष्म के सेनापति के रूप में अभिषेक के अवसर पर जो नहीं हुआ था, वह भी हुआ। नर्तकियों ने अत्यंत मादक नृत्य किया।... उस समय वह युद्ध का शिविर नहीं किसी अत्यंत विलासी राजा की समृद्ध सभा का उत्सव लग रहा था।

द्रोण बहुत ध्यान से दुर्योधन की ओर देख रहे थे। वह जैसे भूमि पर नहीं आकाश पर चल रहा था। उसके चेहरे का दर्प देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि इसने कल ही भीष्म जैसा अपना सेनापति खोया है। जिस पितामह के प्रति वह अपना इतना प्रेम जताता था, वे युद्ध से हटे भर हैं। अभी तो उनकी मृत्यु भी नहीं हुई थी। वे उसी प्रकार वैद्यों और शल्य चिकित्सकों में घिरे हुए स्वास्थ्य और मृत्यु के दोराहे पर खड़े थे, जाने वे किस मार्ग पर अग्रसर होंगे। उनके क्षत भर भी सकते हैं और वैद्य असफल भी हो सकते हैं।... किंतु शायद दुर्योधन ने उनके जीवन की आशा एकदम छोड़ दी थी। वह निश्चिंत था कि वे लौट कर नहीं आएँगे।... आ भी सकते होंगे तो दुर्योधन के व्यवहार को देखकर आ नहीं सकेंगे।...

द्रोण को जैसे कोई मद चढ़ने लगा था।... दुर्योधन को भीष्म से भी अधिक उन पर भरोसा था। भीष्म को तो कदाचित् उसने अपनी बाध्यता में ही प्रधान सेनापति स्वीकार किया था। वे उसके पितामह थे। उनकी उपेक्षा वह कर नहीं सकता था। पर द्रोण को तो उसने स्वयं चुना था, नहीं तो उसकी सेना में महीपों का कोई अभाव नहीं था। आज इन शूरवीर क्षत्रियों की पोल खुल गई थी। कितने पानी में थे वे। शस्त्र पकड़ना तो सबको आता है, किंतु उस पर नियंत्रण भी तो होना चाहिए।... द्रोण को आज द्रुपद याद आ रहे थे। द्रुपद ने कहा था कि मित्रता तो समानता के आधार पर होती है।...

आज देखे द्रुपद कि उन दोनों में क्या समानता है। द्रोण कदाचित् संसार के सबसे समृद्ध राजा के प्रधान सेनापति हैं और द्रुपद युधिष्ठिर की सेना में एक साधारण महारथी है। उसके वर्तमान रहते, पांडवों ने उसके पुत्र को प्रधान सेनापति बना रखा है। और पांडवों की स्थिति क्या है ? उनके पास अपने राज्य के नाम पर एक ग्राम भी नहीं है। बेचारे विराट की भूमि पर अपना डेरा डाल कर युद्ध करने आए हैं।

आज द्रोण को अनुभव हो रहा था कि राजकीय पद का क्या अर्थ होता है। पहले वे राजकुमारों के गुरु थे। सेना के मार्गदर्शक थे। सुविधाएँ तो उनको तब भी थीं। एक प्रकार से अधिकार भी थे, किंतु यह तो युद्ध की स्थिति में प्रधान सेनापति बन कर ही समझ में आता है कि अधिकार क्या होता है। यह सारी सेना उनकी थी। अपनी-अपनी सेनाओं के साथ आए महीप गण भी उनकी सेना के मात्र महारथी थे। उन सबको द्रोण की आज्ञाएँ माननी होंगी। उनके किरीट अब द्रोण की आज्ञाओं के सम्मुख नतमस्तक थे। द्रोण जिसे चाहेंगे, बचा लेंगे और जिसे चाहेंगे, मृत्यु के मुख में धकेल देंगे।...

"राजन् !" सहसा द्रोण ने कहा, "तुमने मुझे आज प्रधान सेनापति बनाया है। समारोह भी बहुत है। तुमने मुझे बहुत कुछ दिया है। मेरी इच्छा है कि आज मैं भी तुम्हें कुछ दूँ। इस अवसर पर आज तुम मुझसे एक वर माँग लो।"

दुर्योधन ने आचार्य की ओर देखा। 'चढ़ गई बुड्ढे को। वर दे रहा है।'

वह जानता था कि आचार्य द्रोण को प्रधान सेनापति बनाकर जब वह राजकीय महत्त्व देगा तो यह कंगाल ब्राह्मण उस सुख को झेल नहीं पाएगा। वह उसकी उच्चतम भौतिक अपेक्षाओं से भी कुछ ऊपर ही होगा। उसके पग भूमि से ऊपर उठ ही जाएँगे। हवा में लटकने लगेगा बुड्ढा ! तब दुर्योधन उसे जिस ओर चाहेगा, घुमाता रहेगा। ... दुर्योधन ने द्रोण को भी देखा था और अश्वत्थामा को भी। उनका अतीत अभावों भरा अवश्य था, किंतु वर्तमान में ऐसा कोई कष्ट उन्हें नहीं था। पर अतीत के उस भूत ने उनका पीछा कभी नहीं छोड़ा था। द्रोण सदा भविष्य के प्रति आशंकित रहे थे कि कहीं उनका अतीत पुनः लौट कर न आ जाए... और अश्वत्थामा का लोभ कभी तृप्ति की सीमा को छू नहीं सका। वह निरंतर बढ़ता ही गया था।...

"आपकी कृपा है आचार्य ! सोचता हूँ एक वर माँग ही लूँ। आप आज युधिष्ठिर को बंदी कर मुझे ला दीजिए जीवित।"

द्रोण जैसे आकाश से गिरे। उनके पगों को यथार्थ के कंकड़ चुभने लगे। वे दुर्योधन की सेना के प्रधान सेनापति थे। दुर्योधन की सेना में उनका महत्त्व सर्वोपरि था,... किंतु पांडवों की सेना पर तो उनका कोई नियंत्रण नहीं था। पांडव योद्धा तो उनकी आज्ञा के अधीन नहीं थे।... वहाँ अर्जुन था। वह क्या अपने भाई और राजा को जीवित बंदी करने देगा।... अपने राजा की रक्षा के लिए पांडव सेना अपना सारा बल लगा देगी।...

द्रोण ने दुर्योधन की ओर देखा : वह जानता भी है कि वह क्या माँग रहा है ? उसे नहीं मालूम कि वह असंभव माँग रहा है। वर देते हुए, वर देने वाले की क्षमता

का भी ध्यान रखना चाहिए। यह एक शिष्य अपने गुरु से वर माँग रहा था अथवा एक मदांध राजा बिना सोचे-समझे, अपने अधीनस्थ कर्मचारी को आदेश दे रहा था ?...

और सहसा द्रोण के भीतर का सेनापति जागा... ऐसे युद्ध कैसे हो सकता है। यदि राजा सेनापति के कार्यों में, उसके व्यूहों में, उसकी रणनीति में, इस प्रकार बिना सोचे-समझे हस्तक्षेप करता रहेगा, तो युद्ध के परिणाम का दायित्व सेनापति पर कैसे हो सकता है ?... पर दुर्योधन इस समय न तो क्षीव था, न मदोन्मत्त, न मदोद्धत। वह युद्ध की विधि से इतना अनभिज्ञ भी नहीं था कि इतनी-सी बात न समझता हो कि किसी का वध करने और उसे जीवित पकड़ने में कितना अंतर है। युधिष्ठिर का वध करने में क्या कठिनाई है। किसी भी उपयुक्त अवसर पर एक बाण से युधिष्ठिर धराशायी हो जाएगा। न तो वह अर्जुन के समान धनुर्धारी है कि वह शत्रुओं की बाण वर्षा का निराकरण कर लेगा; और न ही उसके पास दिव्यास्त्र और देवास्त्र ही हैं, जिनसे वह अपनी रक्षा कर लेगा।... किंतु उसको जीवित पकड़ने के लिए उसके निकट जाना होगा। युधिष्ठिर की रक्षा के लिए पांडवों का सारा बल लगा होगा। उस प्रयत्न में कितने कौरव सैनिक मारे जाएँगे क्या दुर्योधन यह समझता नहीं ?

इन क्षत्रिय राजाओं के साथ यही तो कठिनाई है : सामर्थ्य है नहीं और इच्छाएँ आकाश को छू रही हैं। यह दुर्योधन महाराज दुर्योधन अपने शैशव से ही अपने शत्रुओं के विरुद्ध एक भी युद्ध जीत नहीं पाया; और आदेश इस प्रकार देता है, जैसे ब्रह्मांड उसी के आदेश से परिचालित होता है। इधर इसकी इच्छा हुई और उधर सृष्टि ने अपना क्रम बदला। अपने उसी अहंकार में इस मूर्ख ने पांडवों को अपने रक्षकों को अपना शत्रु बना डाला।...

पर इस समय तो यह उसका अहंकार नहीं गुरु के वरदान का मद था।

"क्या यह इतना कठिन है आचार्य ?" दुर्योधन पूछ रहा था, "आप इतनी गहरी चिंता में डूब गए। क्या वर नहीं देंगे ?" उसने कहा नहीं, किंतु मन-ही-मन सोचा, 'बुड्ढा वर दे कर फँस गया है। मुँह से शब्द ही नहीं फूट रहा।'

"नहीं ! नहीं !! कठिनाई की बात नहीं है राजन् !" द्रोण बोले, "मैं सोच रहा था कि तुम्हारे वर के पीछे धर्म है अथवा राजनीति ?"

"धर्म की ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है आचार्य !" दुर्योधन बोला, "मैं सांसारिक मनुष्य हूँ। मैं धर्म के नाम पर वंचित नहीं किया जा सकता।"

आचार्य की इच्छा हुई कि हँस पड़ें। कैसे कह रहा है कि वह सांसारिक मनुष्य है, इसलिए धर्म की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं है। जैसे संसार में केवल अधर्म ही हो। नहीं जानता कि धर्म ही संसार को भी धारण करता है।... कैसे कुछ लोगों ने अपने स्वार्थ, लोभ और लिप्सा को उचित ठहराने के लिए जीवन को अधर्म का पर्याय बना दिया है।... द्रोण का मन कुछ सँभला... बहुत असत्य भी नहीं कह रहा है दुर्योधन। संसार में तात्कालिक लाभ तो अधर्म से ही होता है। धर्म को जितना त्यागते जाओ, उतनी

ही सांसारिक सफलता पाते जाओ। पर सफलता के मद में यह समझ में नहीं आता कि यह सफलता ही क्षय का द्वार भी है।'''

द्रोण का मन जाने कैसे फिर बदल गया। संभव है कि दुर्योधन के मन में कोई और भाव हो।'''

"पांडवों ने गंधर्व चित्ररथ से तुम्हारे प्राणों और सम्मान की रक्षा की थी। क्या तुम उसका प्रतिदान करना चाहते हो ?" द्रोण बोले, "अथवा बंदी युधिष्ठिर को मुक्त कर उनसे भ्रातृत्व स्थापित करना चाहते हो ?"

"नहीं आचार्य !" दुर्योधन बोला, "युधिष्ठिर के वध के निषेध के मूल में न कृतज्ञता है, न दया, न धर्म। यह मेरी राजनीति है।"

आचार्य की मुखाकृति के भाव कुछ बदले, "राजन् ! युद्ध राजनीति के पीछे चलेगा, या राजनीति युद्ध के पीछे। तुम्हारी राजनीतिक चालों के कारण हम युद्ध में विजयी ही न हो सके तो तुम्हारी राजनीति क्या करेगी ? हमें पहले युद्ध जीत लेने दो, फिर तुम अपनी राजनीति खेल लेना।"

दुर्योधन हँसा, "आचार्य मुझसे अधिक ही समझते हैं; किंतु फिर भी शायद यह बात आपके ध्यान में नहीं आई कि यदि आप युधिष्ठिर का वध कर भी देंगे, तो युद्ध में हमारी विजय नहीं होगी और न पांडवों का राज्य मैं निष्कंटक भोग पाऊँगा। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तब भी जीवित रहेंगे।" दुर्योधन कुछ रुका, "आचार्य मुझे क्षमा करें, जैसा कि मैं देख रहा हूँ, हमारी सेनाओं और सेनापतियों के लिए उनसे निबटना भी सरल नहीं है। पितामह भीष्म जैसे सेनापति के होते हुए भी पिछले दस दिनों में एक भी पांडव या उनकी सेना का कोई प्रबल योद्धा नहीं मारा जा सका।"

द्रोण का मन कैसा तो कसैला हो गया। उन्हें पता ही नहीं चला कि कैसे उसी अनुपात में उनका स्वर भी कटु हो गया।

"राजन् को मेरी क्षमता में संदेह है या इच्छा में ?"

"दोनों में से किसी में भी नहीं।" दुर्योधन बोला, "मैं तो केवल यह कह रहा था कि पाँचों पांडवों का वध कर दिया जाए, तो भी कृष्ण, सात्यकि, अभिमन्यु, द्रौपदी के पुत्र, धृष्टद्युम्न और शिखंडी इत्यादि बच रहते हैं। इनमें से कोई न कोई मेरा वध कर ही देगा। मेरा वध न भी हुआ तो भी पांडवों का राज्य मैं निष्कंटक रूप से नहीं भोग पाऊँगा। यदि पांडवों से युद्ध में जीतने का विश्वास मुझे होता तो मैं उनके राजसूय यज्ञ से पहले उन पर आक्रमण न भी कर पाता तो राजसूय से लौट कर उन पर आक्रमण अवश्य करता।"

द्रोण ने उसकी ओर देखा, जैसे पूछ रहे हों क्यों नहीं किया आक्रमण ? पर कुछ बोले नहीं।

"उसी युद्ध को टालने के लिए मामा शकुनि ने युधिष्ठिर के साथ द्यूत खेला था।"

"युधिष्ठिर को फिर से द्यूत क्रीड़ा के लिए जीवित बचा लेना चाहते हो ?"

"हाँ आचार्य ! एक वार युधिष्ठिर जीवित मेरे हाथों में आ जाए, फिर देखिए।" वह मुस्कराया, "उसे फिर से पिताजी की ओर से द्यूत खेलने के लिए बुलाया जाएगा। वह पीछे नहीं हटेगा। पिता के आदेश का वह तिरस्कार नहीं कर सकता। वह फिर से अपना राज्य हार कर अपने भाइयों समेत वन में चला जाएगा। अर्जुन, कृष्ण, भीम... सव खड़े टापते रहे जाएँगे, पर न वे अपने भाई का साथ छोड़ेंगे और न उसकी आज्ञा का उल्लंघन करेंगे।" दुर्योधन का अट्टहास सारे मंडप को गुँजा गया।

द्रोण स्तब्ध रह गए : यह दुर्योधन की राजनीति थी। वह युधिष्ठिर को उसी के धर्म में वाँध कर वंदी वना रहा था। युद्ध जीतने का कितना सरल मार्ग था। और द्रोण के मन में अपना ही प्रश्न गूँजा : युद्ध राजनीति के पीछे चले या राजनीति युद्ध के पीछे ?

द्रोण की राजनीति में तो युद्ध प्रमुख था। युद्ध की जय-पराजय ही तो वाद की राजनीति को जन्म देती है। उन्होंने द्रुपद से युद्ध जीता तो अहिछत्र का राज्य उन्हें मिला। वे युद्ध में पराजित हो जाते तो पांचाल की राजनीति कुछ और होती।... पर दुर्योधन शायद उनसे भी कुशल राजनीतिज्ञ है। उसका अपना तो धर्म, नियम, आदर्श और सिद्धांत नहीं हैं। वह केवल अपना स्वार्थ समझता है—किसी भी मूल्य पर, किसी भी माध्यम से। शक्ति, धन, सत्ता, राज्य, भोग—सव कुछ चाहिए उसे, केवल अपने लिए। उसके पास सव कुछ हो और किसी अन्य के पास कुछ न हो।... इसीलिए वह युद्धों को जन्म देता है। युद्धों की स्थितियाँ पैदा करता है। जहाँ विजयी हो सकने की संभावना हो, वहाँ युद्ध करता ही है और जहाँ विजय की निश्चित संभावना न हो, वहाँ उसे टालता है और धूर्तता का आश्रय लेता है।... दुर्योधन क्षत्रिय तो है, पर वीर नहीं है। अपने समर्थ प्रतिद्वंद्वी से सम्मुख युद्ध करने का साहस वह कभी नहीं करता। उसमें धर्म और विवेक का अंश भी नहीं है कि उसकी राजनीति प्रजा के हित में कोई उदात्त कार्य करती।... क्यों रह गए द्रोण तुम इस हस्तिनापुर में, इस दुर्योधन के अन्न से पलने को ? क्यों अहिच्छत्र चले नहीं गए ? अपना स्वतंत्र राज्य लेकर क्यों तुमने प्रजा का पालन नहीं किया ? प्रजा का पालन ?... द्रोण ने जैसे अपने आपसे पूछा, वे ब्राह्मण हैं, मूलतः आचार्य हैं ज्ञान का दान करने वाले। उनका पालन क्षत्रिय राजा करते आए हैं। वे प्रजा का पालन कैसे करेंगे ? तो क्यों उन्होंने एक ब्राह्मण के समान, आचार्य के समान, कहीं आश्रम वनाकर अपने शिष्यों को ज्ञान का दान करने में जीवन व्यतीत नहीं किया ?...

प्रतिहिंसा !... ओह मेरी प्रतिहिंसा... किसी ने उनकी निर्धनता का उपहास किया तो उनमें प्रतिहिंसा जागी... वे धनी बनेंगे। धनी वनने के लिए उन्होंने वैश्य बनने की बात नहीं सोची। ब्राह्मण के रूप में ही धनी बनना चाहा।...अहिछत्र के राजा बने रहने के लिए उन्हें हस्तिनापुर का सामंत भी वने रहना पड़ा...और फिर सामंत से सेनापति चाहे वे प्रधान सेनापति ही क्यों न हों, पर इस कलुषित राजनीति वाले इस राजा दुर्योधन का आदेशवाहक कर्मचारी वनना पड़ा।...तो अब उसकी राजनीति से मतभेद कैसे हो

सकता है ? उन्हें उसकी इच्छा का अनुसरण करना होगा, उसकी कलुषित राजनीति की सहायता करनी पड़ेगी। युद्ध-धर्म को छोड़ना पड़ेगा।...और इस समय तो जाने किस मद में वे उसे वर ही दे बैठे हैं।...

"आचार्य ने कुछ बताया नहीं।" दुर्योधन ने उनका ध्यान अपनी ओर खींचा।

"जब तक अर्जुन, युधिष्ठिर की रक्षा के लिए युद्धभूमि में उपस्थित है, तब तक युधिष्ठिर को जीवित बंदी करना असंभव है राजन् !" द्रोण ने बहुत अनिच्छा से कहा, "अर्जुन को युधिष्ठिर से अलग कर, युद्धक्षेत्र में कहीं दूर अटका लो, मैं युधिष्ठिर को कल ही बंदी बनाकर तुम्हारे चरणों में डाल दूँगा।"

द्रोण के मन में सोया हुआ ब्राह्मण बहुत दिनों के बाद जागा था : एकलव्य का अँगूठा कटवा लिया था, तब भी वह ब्राह्मण बहुत रोया था। पर द्रोण की प्रतिहिंसा उनके बिना सिखाए ही एक-एकलव्य को कैसे जन्म लेने देती ? अपने पुत्र अश्वत्थामा और शिष्य अर्जुन से उत्कृष्ट धनुर्धर को इस पृथ्वी पर कैसे सहन कर लेती।... और आज फिर युधिष्ठिर को बंदी करने का षड्यंत्र रचते हुए, उनका वह ब्राह्मण, उसी प्रकार आत्मयातना से पीड़ित होकर कराह रहा था... आज भी द्रोण को ब्राह्मण के क्रंदन की ओर से बहरा हो जाना होगा।...

दुर्योधन ने कुछ आश्चर्य से द्रोण को देखा : यह वाग्मी ब्राह्मण क्या आज अपनी असमर्थता स्वीकार कर रहा है, "क्या आचार्य कह रहे हैं कि वे अर्जुन के सामने असमर्थ हैं ?"

द्रोण ने दुर्योधन की ओर देखा। उनकी आँखें दुर्योधन के द्वारा किए गए अपमान का स्पष्ट प्रतिरोध कर रही थीं; पर उनकी जिह्वा बहुत संयत ढंग से बोली, "आचार्य ने कुछ नहीं कहा। एक सेनापति अपने राजा को बता रहा है कि इस प्रकार के सम्मुख युद्ध में जहाँ सेना के ऐसे व्यूह रचे जाते हैं और दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों से संपन्न अर्जुन जैसा योद्धा होता है विरोधी पक्ष के राजा को जीवित बंदी करना, असंभव होता है। यदि ऐसा संभव हुआ होता तो पांडव कब से तुम्हें बंदी कर ले जा चुके होते।"

'बुड्ढा भड़का नहीं।' दुर्योधन ने सोचा, 'उल्टे मुझे फँसाने का प्रयत्न कर रहा है।'

"अर्जुन आपका ही शिष्य है आचार्य ! उसने जो कुछ भी सीखा है, आपसे ही सीखा है। उसे शिक्षा देते हुए, कुछ तो आपने अपने लिए भी बचा कर रखा ही होगा। क्या आप उसको पराजित नहीं कर सकते ? और वह भी तब, जब हम जानते हैं कि वह आपका वध कभी नहीं करेगा ?"

द्रोण को इस जिज्ञासा में अपना अपमान दिखाई दे रहा था, किंतु उन्होंने अपने अहंकार को आड़े आने नहीं दिया। जानते थे कि दुर्योधन क्या चाहता है। जितना वे तनते जाएँगे, उतना ही दुर्योधन के जाल में फँसते जाएँगे।

"शिक्षा तो मैंने ही दी है अर्जुन को किंतु अर्जुन मेरी अपेक्षा अभी पर्याप्त तरुण है। गुरुकुल से बाहर जा कर भी उसने जीवन के भोग नहीं भोगे। बहुत तपस्या की

है उसने। बहुत पुण्य अर्जित किया है। उसकी आत्मा और शरीर उन पुण्यों से मंडित हैं। वह इंद्र और रुद्र से अनेक प्रकार के दिव्यास्त्रों और सेनास्त्रों का शिक्षण प्राप्त कर चुका है।" द्रोण ने रुककर दुर्योधन को देखा, "और इस समय तुम्हारे प्रति उसका अमर्ष बहुत बढ़ा हुआ है। फिर मुझमें अर्जुन से लड़ने का उत्साह भी नहीं है।"

दुर्योधन स्तब्ध रह गया। क्यों उत्साह नहीं है अर्जुन से युद्ध करने में ? अभी तो वर दे रहे थे और अब कोई उत्साह ही नहीं रह गया।...जबकि अर्जुन से युद्ध करने में किसी प्रकार का कोई संकट ही नहीं है। सारी सेना जानती है कि अर्जुन के लिए द्रोण अवध्य हैं।

"क्या सेनापति कोई ऐसा व्यूह नहीं रच सकते, जिसके कारण अर्जुन कहीं और फँस जाए।" दुर्योधन के स्वर में आवृत चुनौती थी। इस बार उसने उन्हें आचार्य कह कर संबोधित नहीं किया था। उन्हें स्मरण करा दिया था कि वे सेनापति हैं और वह उनका राजा है।

"सेनापति का काम युद्ध के आदेश देना है राजन् ! षड्यंत्र रचना नहीं।"

दुर्योधन ने मुस्कराकर द्रोण को देखा : बुड्ढा भीतर से खौल रहा है।

"यह षड्यंत्र नहीं है आचार्य ! मैं इसे रणनीति कहता हूँ।" दुर्योधन ने आचार्य को गंभीर दृष्टि से देखा, "शत्रु की क्षमता को विभाजित कर उसके अलग-अलग खंडों पर आक्रमण कर उन्हें पराजित करना, क्या युद्ध कौशल नहीं है ?"

"शत्रु की शक्ति को विभाजित कर, उसे पराजित करना निश्चित रूप से युद्ध कौशल है दुर्योधन ! युद्ध शास्त्र में हम इसे भी व्यूह रचना ही कहते हैं। पर, शत्रु को द्यूत क्रीड़ा के लिए बाध्य करने के लिए, बंदी करना रणनीति नहीं राजनीति है। इसीलिए मैंने उसे षड्यंत्र कहा। षड्यंत्रों का क्षेत्र राजा का होता है, सेनापति का नहीं।"

बहुत बोल रहा है आज... दुर्योधन मन-ही-मन बोला... भूल गया कि द्रुपद के विरुद्ध षड्यंत्र रचने ही आया था हस्तिनापुर। जिस क्षण हस्तिनापुर की ओर इसका पहला पग उठा होगा, उससे पहले ही इसके मन में षड्यंत्र रचा जा चुका था—कौरव राजकुमारों को ज्ञानदान करना या आजीविका कमाना लक्ष्य नहीं था द्रोण का। वह तो भीष्म जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली क्षत्रिय के पौत्रों को अपना माध्यम बनाकर द्रुपद को वंचित करना था। उसके मन में कहीं कुरुओं और पांचालों की पारंपरिक शत्रुता भी रही होगी। उसने उस वैमनस्य का भी लाभ उठाया। तभी तो भीष्म ने द्रुपद पर आक्रमण का विरोध नहीं किया... और अपने इस षड्यंत्रकारी अभियान को कैसा पवित्र नाम दिया था आचार्य ने—गुरु दक्षिणा। आज सबके बीच खड़ा होकर कह रहा है कि षड्यंत्र राजा का क्षेत्र है।...

"यदि अर्जुन वहाँ न हुआ तो आप युधिष्ठिर को जीवित पकड़ लाएँगे ?" दुर्योधन ने पूछा।

"हाँ पकड़ लाऊँगा।" द्रोण का मन प्रसन्न नहीं था।

"प्रतिज्ञा करते हैं ?"

द्रोण ने तत्काल कुछ नहीं कहा। वे प्रतिज्ञा कैसे कर सकते हैं ? वे तो उसे वर दे रहे हैं, वह भी सशंक हो कर। पर अब वे उसे अस्वीकार कैसे करें।

"हाँ ! प्रतिज्ञा करता हूँ।" द्रोण ने कहा।

"ठीक है। आप आज के युद्ध की तैयारी करें।" दुर्योधन के स्वर में अनावृत उल्लास था।

द्रोण चले गए। पर जाते हुए न तो उनका मन उल्लसित था, न उनका सिर गर्व से उठा हुआ था। उनके चेहरे पर चिंता की रेखाएँ थीं।

द्रोण के पीछे-पीछे अन्य लोग भी चले गए, किंतु दुःशासन, कर्ण और शकुनि अब भी उसके निकट ही थे।

"दुःशासन !" दुर्योधन बोला, "सारी सेना में सूचना प्रसारित करवा दो कि कौरवों के प्रधान सेनापति आचार्य द्रोण ने अपने राजा के सम्मुख प्रतिज्ञा की है कि वे युधिष्ठिर को जीवित बंदी कर आज अपने राजा को सौंपेंगे।"

"पर राजन् !" कर्ण तत्काल बोला, "यह सूचना तो गोपनीय है। पांडवों तक यह सूचना पहुँच गई तो वे युधिष्ठिर की सुरक्षा का प्रबंध कर लेंगे।"

"और मैंने यह प्रतिज्ञा गुप्त रखी तो आचार्य द्रोण उसको भूल ही जाएँगे अथवा किसी न किसी व्याज से उसको टाल जाएँगे, जो मैं नहीं चाहता।"

"अर्थात् आचार्य को बाध्य करने के लिए इस प्रतिज्ञा का प्रचार आवश्यक है।" शकुनि ने कहा।

"एकदम।" दुर्योधन ने उत्तर दिया, "देखा नहीं, कैसे मरे हुए मन से उन्होंने प्रतिज्ञा की है। यह भी कह दिया है कि उनके मन में अर्जुन से लड़ने का उत्साह नहीं है।"

"आपको अपने आचार्य और प्रधान सेनापति पर विश्वास नहीं है ?" कर्ण ने पूछा।

"नहीं !" दुर्योधन के मन में कहीं कोई संकोच नहीं था, "पांडवों के संदर्भ में मैं उन पर विश्वास नहीं कर सकता। वैसे भी यह युद्ध न द्रोण का है, न पितामह का था। वे दोनों ही पांडवों के प्रति कोमल भाव रखते हैं। मैं उन पर तनिक भी विश्वास नहीं करता।"

"जिस पर विश्वास नहीं है, उसे प्रधान सेनापति बना दिया ?" दुःशासन चकित था।

"बाध्यता है।" दुर्योधन ने उत्तर दिया, "इसीलिए तो उन पर दृष्टि रखनी पड़ेगी। उनको घेरे रखना होगा ताकि वे युद्ध करते रहें और अपने मन की न कर पाएँ। हमें केवल उनका युद्ध कौशल चाहिए।" उनकी क्षमता हमारी दासी होनी चाहिए, और कुछ नहीं।"

कर्ण अपने मंडप की ओर चला तो उसका मन भी भारी था।

5

द्रोण स्वयं को अत्यधिक थका हुआ ही नहीं, स्वयं अपनेआप से रुष्ट भी अनुभव कर रहे थे। जैसे हर क्षण वे अपने आपसे ही लड़ रहे हों। लगता था शरीर में प्राण ही नहीं थे। न मन में उत्साह था, न आत्मा में किसी प्रकार का आनन्द।

आज दिन भर उन्होंने बहुत परिश्रम किया था। वह श्रम उनके मन को किसी प्रकार की विशदता प्रदान करने के स्थान पर, उनके पोर-पोर को पीड़ित कर रहा था। इच्छा होती थी कि स्वीकार कर लें कि अब वे वृद्ध हो गए हैं। वे युद्ध जैसे कठोर कर्म के योग्य नहीं रहे। अब उनको समरभूमि में नहीं उतरना चाहिए।''' किंतु वे भीष्म से तो अधिक वृद्ध नहीं थे। क्या भीष्म ने भी कभी इस प्रकार की क्लांति का अनुभव किया था ?''' किया ही होगा, नहीं तो वे आज इस प्रकार शरशैया पर क्यों सोए होते।

नहीं बात केवल युद्ध की नहीं थी।''' वे सोच रहे थे''' श्रम की क्लांति में जो एक प्रकार का सुख होता है, वे उसका अनुभव भी तो नहीं कर रहे थे। युद्ध में प्राप्त कोई विजय भी तो उनकी आत्मा को आनन्दित नहीं कर पाती थी, तो फिर युद्ध की पराजय उन्हें कैसे आनन्दित कर सकती थी।''' उन्हें चाहिए था अपना गुरुकुल, जिसमें वे साधना करते। नए-नए शस्त्रों का अध्ययन करते, उनका आविष्कार करते। अपने शिष्यों के बीच रहते, उनका विकास करते। ज्ञान का सुख पाते। युद्धक्षेत्र में इस प्रकार रक्त बहाना उन्हें कैसे आनन्दित कर सकता था। शत्रुता अपने आप में ही सुखदायी नहीं होती। और फिर पांडव तो उनके शत्रु भी नहीं थे। पर युद्ध तो उन्हें करना ही था।''' युद्ध ? किसके लिए ? आज तक वे मानते आए, वे अपनी इच्छा से अपना युद्ध लड़ रहे हैं; किंतु अब संध्या समय दुर्योधन के सम्मुख जाते हुए वे किसी प्रकार स्वयं को विश्वास नहीं दिला पा रहे थे कि यह उनका अपना युद्ध था और वे अपनी सेना के अधिपति थे।''' उनका मन स्पष्ट देख रहा था कि वे अपने शिष्य के आज्ञापालक एक सेनानायक मात्र थे।''' वे अपनी इच्छा के विरुद्ध युद्ध कर रहे थे। जिनसे प्रेम करते थे, उनके विरुद्ध लड़ रहे थे। वे जिसे आदेश देने के अधिकारी थे, उसकी आज्ञाओं का पालन कर रहे थे''' पता नहीं कि मनुष्य कैसे इतना मोहग्रस्त हो जाता है कि यह निर्णय भी नहीं कर पाता कि कौन-सा पक्ष उसका अपना है और कौन-सा कर्म उसका कर्तव्य है।'''

वे दुर्योधन के शिविर में आए।

दुर्योधन ने उनको राजा के समान नहीं, शिष्यवत् ही प्रणाम किया और बोला, "युद्ध का ग्यारहवाँ दिन भी बीत गया आचार्य ! किंतु हम वहीं खड़े हैं, जहाँ से चले थे।"

"राजन् !" द्रोण बोले, "योद्धा का काम तो युद्ध करना ही है, जय-पराजय तो विधाता के हाथ में है।"

दुर्योधन के मन में आया, चिल्लाकर कहे, 'तो हम युद्ध कर ही क्यों रहे हैं, हम

विधाता को ही युद्ध क्यों नहीं करने देते।' पर बोला, "तो न सेनापति के हाथ में कुछ है, न राजा के हाथ में ?"

द्रोण जानते थे कि दुर्योधन उनको दोषी ठहराएगा। पिछले दस दिनों में पांडवों की किसी भी सफलता के लिए जो अपने पितामह को दोषी ठहराता रहा, वह द्रोण को मुक्त कैसे छोड़ देगा।

"राजन्! तुमसे कुछ छिपा तो है नहीं। युद्ध में सबसे आगे तो तुम स्वयं ही थे। हमने उत्तम व्यूह रचा था। सब पक्षों तथा प्रपक्षों का ध्यान रखा था। दक्षिण पक्ष में जयद्रथ, कलिंगराज और विकर्ण थे। उनका प्रपक्ष शकुनि था। वाम पक्ष में कृपाचार्य, कृतवर्मा, चित्रसेन, विविंशति तथा दुःशासन थे। उनकी सहायता के लिए कंवोज, शक तथा यवन थे। उनके पीछे कर्ण था। कर्ण की रक्षा के लिए मद्र, त्रिगर्त, अंबुष्ट, प्रतीच्य, उदीच्य, मालव, शिवि, शूरसेन, मलद के श्रेष्ठ योद्धा थे।"

"तो फिर हमें अपने लक्ष्य में सफलता क्यों नहीं मिली ?"

"उसके लिए न मैं अपने व्यूह को दोषी ठहराता हूँ, न अपने प्रयत्न को।" द्रोण बोले, "क्या तुमने नहीं देखा कि हमारे योद्धा समरभूमि में पहुँच कर किस प्रकार व्यूह और संपूर्ण युद्ध के लक्ष्य तथा परिप्रेक्ष्य को भूल कर अपना व्यक्तिगत युद्ध लड़ने लगते हैं ?"

"क्या कहना चाहते हैं आप ?"

"सात्यकि को सामने देखकर कृतवर्मा स्वयं अपने ही वश में नहीं रहता। शकुनि, सहदेव से लड़ने लगता है, भूरिश्रवा शिखंडी से, शल्य नकुल से जूझने लगते हैं, भगदत्त द्रुपद से, अलंबुश घटोत्कच से⋯"

"उन्हें शत्रुओं से युद्ध नहीं करना चाहिए ?"

"युद्ध करने के लिए ही तो समरभूमि में आए हैं, किंतु युद्ध-विज्ञान को भूल कर अपने व्यक्तिगत शत्रु से जूझ पड़ने पर संपूर्ण सेना का व्यूह तो व्यर्थ हो ही जाता है।"

दुर्योधन की इच्छा हुई कि चिल्लाकर कहे कि वह जानता है यह सब; पर उससे क्या ? वे युद्ध तो नहीं जीत पाए। वह तो मानता था कि भीष्म के हटते ही द्रोण पांचालों को खा जाएँगे और कर्ण पांडवों को, किंतु यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ।⋯

"मैं समझ नहीं पाता कि आप लोगों से वह छोटा-सा छोकरा अभिमन्यु ही क्यों सँभाला नहीं जाता। आज उसने पौरवराज की जो दुर्दशा की है, देखा था आपने उसे। धनुष कट गया था, रथ बेकार हो गया था। सिंधुराज जयद्रथ जैसा समर्थ योद्धा उसके सामने था, तो भी उसने पौरव के रथ पर चढ़कर उसकी शिखा से पकड़ लात मार कर उसे रथ से नीचे गिरा दिया। कोई कुछ नहीं कर पाया। ऐसा क्या है उस सोलह वर्ष के छोकरे में कि उसके हाथों हमारे श्रेष्ठ योद्धाओं का सम्मान सुरक्षित नहीं है। उसका कोई उपचार आपको करना पड़ेगा।"

"उसका उपचार तो हो जाता।" द्रोण धीरे से बोले, "पर तुमने मुझसे युधिष्ठिर

को जीवित बंदी करने की जो प्रतिज्ञा करवा ली थी, मैं उसमें व्यस्त था। वैसे अभिमन्यु को छोकरा मात्र समझना भूल होगी। मैंने उसे युद्ध करते देखा है। पहली बात तो यह है कि उसके मन में भय जैसा कोई भाव ही नहीं है। वह बड़े से बड़े योद्धा से तनिक भी भयभीत नहीं होता। किसी से भी समान भाव से जूझ पड़ता है। फिर उसके पास अर्जुन और श्रीकृष्ण—दोनों की ही युद्ध विद्या की संपदा है। उसने वलराम और प्रद्युम्न से भी कुछ सीखा है। उसे तो तुम दूसरा अर्जुन ही समझो।"

दुर्योधन के मन में क्षोभ का ज्वार उठा : बुड्ढा उस छोकरे की प्रशंसा कर रहा है। इसे ध्यान नहीं है कि अभी मैं इसकी ऐसी प्रशंसा करूँगा कि कभी भूल नहीं पाएगा।

"वह सब ठीक है। पर आपने युधिष्ठिर को ही कहाँ बंदी किया ?" दुर्योधन के मुख पर उसके मन की कुटिलता प्रकट नहीं हुई, "आपको कदाचित् ध्यान नहीं है कि आपने मुझे वर दिया था।"

द्रोण तत्काल कुछ नहीं वोले, किंतु क्षण भर में ही सँभल गए, "मैंने वर दिया था और मैं युधिष्ठिर को बंदी नहीं कर सका हूँ ये दोनों ही बातें सत्य हैं; किंतु मेरी प्रतिज्ञा भंग नहीं हुई है।"

"जानता हूँ।" दुर्योधन ने द्रोण को आगे बोलने नहीं दिया, "आप युधिष्ठिर को प्रायः बंदी कर ही चुके थे कि अर्जुन आ गया और उसने हमारी सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया।''' अंतिम विजय उनकी ही हुई और हमारी सेना को वापस अपने शिविरों में जाना पड़ा।"

"राजन् का कहना सर्वथा सत्य है। यदि मुझे थोड़ा-सा भी समय और मिल जाता तो युधिष्ठिर बंदी हो ही गया था।" द्रोण ने रुककर एक गहरी दृष्टि दुर्योधन पर डाली, "यदि युधिष्ठिर को बंदी करना है तो कुछ ऐसा करना होगा कि अर्जुन उससे इतनी दूर चला जाए कि उसे या तो युधिष्ठिर के वंदी होने की सूचना ही न मिले, अथवा सूचना मिलने पर भी वह पर्याप्त समय तक युधिष्ठिर के निकट पहुँच न पाए।"

"सेनापति आप हैं।" दुर्योधन बोला, "कोई ऐसा व्यूह रचिए कि वे दोनों एक-दूसरे से योजनों दूर हो जाएँ।"

"हम व्यूह रच सकते हैं। उसके लिए हमें अपनी सेना को भी उतना ही फैलाना होगा, जितनी दूर हम उन्हें करना चाहते हैं। उससे तो हमारी अपनी पराजय का मार्ग भी प्रशस्त हो सकता है।"

"तो कोई षड्यंत्र कीजिए।"

द्रोण जैसे तड़प उठे। उन्हें पता ही नहीं चला कि उनका स्वर कब इस सीमा तक कटु हो गया, "वह सेना का नहीं राजनीतिज्ञों का काम है।"

पर दुर्योधन पर उनकी कटुता का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। उसने आत्मीयता भरी आँखों से आचार्य को देखा और मधुवेष्टित स्वर में बोला, "ठीक है। आचार्य की इच्छा पूरी होगी। षड्यंत्रों की रचना राजनीति ही करेगी। सेनापति को अनुकूल परिस्थितियाँ

मिलेंगी। कल के युद्ध में युधिष्ठिर और अर्जुन अलग-अलग स्थानों पर लड़ेंगे। कल अर्जुन को रोकने के दायित्व से महासेनापति मुक्त होंगे। तव युधिष्ठिर को जीवित बंदी कर लाएँगे अहिच्छत्राधिपति ?"

द्रोण चौंके, दुर्योधन उन्हें आचार्य न कहकर अहिच्छत्राधिपति कह रहा था, "दुर्योधन ! पांडवों की रणनीति तुम तय नहीं करते। तुम कैसे कह सकते हो कि कल युधिष्ठिर और अर्जुन एक स्थान पर नहीं होंगे।"

"यह दायित्व आचार्य मुझ पर छोड़ दें।" दुर्योधन की मुस्कान कुटिल हो उठी, "यदि युद्धक्षेत्र में युधिष्ठिर अकेला हुआ तो सेनापति उसे जीवित बंदी कर लाएँगे ?"

"कर लाऊँगा।" द्रोण के स्वर में उनका उल्लास सम्मिलित नहीं था।

"सेनापति वचन देते हैं ?"

"वचन देता हूँ।"

"ठीक है। कल रणभूमि में युधिष्ठिर अकेला ही होगा।" दुर्योधन का स्वर पूर्णतः आश्वस्त था, "अब आचार्य अपने शिविर में विश्राम करें।"

द्रोण अपने शिविर की ओर चले तो उनका मन बार-बार उनसे पूछ रहा था : दुर्योधन का षड्यंत्र युधिष्ठिर के विरुद्ध था अथवा स्वयं द्रोण के विरुद्ध ? संसार में कोई ऐसा भी राजा होगा, जो अपने प्रधान सेनापति के विरुद्ध षड्यंत्रों की रचना करे ? कल यदि द्रोण युधिष्ठिर को जीवित बंदी न कर सके, तो सेनापति के रूप में अपने राजा को दिए गए उनके वचन का क्या होगा ?…उन्हें लग रहा था कि वे वचन दे कर ही नहीं आए, वे वचन हार कर आए हैं।

दुर्योधन अपने शिविर में अकेला रह गया तो उसे लगा कि परामर्श के लिए अभी जितने लोग उसके पास आए थे, वे स्वयं तो चले गए हैं, किंतु अपनी चिंताएँ वहीं छोड़ गए हैं। अपने शिविर में वह ढेर सारी चिंताओं के साथ अकेला है। वे चिंताएँ उसके साथ सहयोग नहीं कर रहीं। वे जैसे उसकी शत्रु हैं। उसे वे नोच-नोच कर खा रही हैं। और फिर द्रोण को वचन में बाँधते-बाँधते, वह स्वयं नहीं बँध गया क्या ? उस ब्राह्मण ने ठीक ही कहा था कि पांडवों की रणनीति दुर्योधन तय नहीं करता। तो फिर उसने कैसे आचार्य से कह दिया कि कल युधिष्ठिर और अर्जुन युद्धक्षेत्र में अलग-अलग स्थानों पर लड़ेंगे…

सहसा उसके चेहरे पर मुस्कान उभर आई : कहीं ऐसा हो जाए तो ? यदि बुड्ढे ने अपना वचन पूरा कर दिया तो कल संध्या समय तक युधिष्ठिर के हाथ-पैर बँधे होंगे और वह उसके चरणों में पड़ा होगा… और यदि द्रोण से ऐसा न हो सका… यदि वह अपना वचन पूरा न कर सका… तो क्या उसे सेनापति पद से हटा कर कर्ण को सेनापति बनाया जा सकता है ? यदि ऐसा हुआ तो फिर दुर्योधन दोनों ही प्रकार से विजयी होगा—द्रोण की विजय में भी और उसकी पराजय में भी।

पर अब दुर्योधन की सफलता का सारा भार दुर्योधन के ही कंधों पर था। उसे

कुछ ऐसा करना था कि कल अर्जुन और युधिष्ठिर एक स्थान पर न हों। अर्जुन किसी और स्थान पर लड़े, युधिष्ठिर से कहीं बहुत दूर, जहाँ उसे युधिष्ठिर की आपत्ति, विपत्ति की सूचना ही न हो सके। मुख्य रणक्षेत्र की घटनाओं का उसे आभास तक न हो।... पर कौन बाँधेगा, ऐसा विचित्र व्यूह ? कौरवों के मुख्य योद्धाओं से पृथक् द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य... के बिना ? कौन अर्जुन को अपने अनुचर सरीखा दूर-दूर घुमाता रहेगा ? किसमें है इतना साहस और इतना कौशल ?

दुर्योधन ने ताली बजाई ।

द्वारपाल ने भीतर आकर प्रणाम किया।

"किसी को भेज कर, मातुल को हमारा प्रणाम कहो। उन्हें सूचना दो कि हम उनसे कुछ परामर्श करना चाहते हैं। उनसे निवेदन करो कि यदि वे अन्यत्र व्यस्त न हों तो शीघ्र दर्शन दें।"

द्वारपाल चला गया और दुर्योधन फिर से अपनी चिंता में डूब गया : शकुनि को प्रकृति से विचित्र सूझबूझ मिली है। घात लगाने की वैसी बुद्धि और किसी में नहीं है। उन्हें और कुछ सूझे या न सूझे, सम्मुख युद्ध से बच कर पीछे से वार करना खूब आता है... पर यदि मामा भी कुछ न सुझा सके...

शकुनि के आने तक दुर्योधन उद्विग्न-सा अपने शिविर में चक्कर लगाता रहा।

"मातुल !" शकुनि के प्रवेश करते ही दुर्योधन स्वागत के लिए आगे बढ़ा।

"भागिनेय !" शकुनि सदा के समान शांत था।

दुर्योधन को अपने मातुल से सदा ईर्ष्या होती थी : वह इतना शांत कैसे रह लेता है। मामा ने ऋषियों के समान कोई सिद्धि पा ली थी क्या, या यह केवल अधिक मदिरा का ही परिणाम है ? कितनी ही बड़ी विपत्ति हो या उपलब्धि, मामा की एकाग्रता भंग नहीं होती। उनका संतुलन तनिक भी नहीं डगमगाता। जितनी बड़ी विपत्ति हो मामा उतने ही शांत दिखाई देते हैं।... और एक वे हैं हमारे पिता !... दुर्योधन का चिंतन कुछ वक्र हुआ, हमारे पिता राजा धृतराष्ट्र ! चिड़िया भी चुहुक जाए तो उनका आसन डोल जाता है। यह तो अच्छा है कि भगवान ने उन्हें दृष्टि नहीं दी, नहीं तो दिन भर कुछ न कुछ देखते रहते और घबराते रहते।... चिड़िया का सा हृदय कहें या छिपकली की सी प्रवृत्ति ! सामने से कुछ आया नहीं कि अपने बचाव के लिए उन्होंने हाथ-पैर चलाए नहीं। शायद उनकी इस प्रवृत्ति को जान कर ही माँ ने मातुल को कभी गंधार लौटने नहीं दिया।...

"कहो भागिनेय !" शकुनि बोला, "कुछ चिंतित लगते हो।"

"चिंतित नहीं। उद्वेलित हूँ मातुल !"

"पिता की प्रवृत्ति पाई है तुमने दुर्योधन ! जो आँखें न होने पर भी सृष्टि की प्रत्येक क्रिया के लिए उत्कंठित रहते हैं। अपनी माँ को देखो, जिसने आँखें रहते हुए भी, कुछ भी देखना अस्वीकार कर दिया। धैर्य की सीमा है तुम्हारी माँ। तुममें धैर्य तनिक भी नहीं।"

"चरित्र विश्लेषण बाद में कीजिएगा आर्य मातुल !"

"आर्य मातुल !" दुर्योधन के शब्दों को दोहराकर शकुनि ऐसे मुस्कराया जैसे दुर्योधन को गाली दे रहा हो, "क्या बात है राजन्! आज आर्य मातुल कह रहे हो, मातुल पर्याप्त नहीं है क्या ?"

"परिहास का समय नहीं है मातुल !" दुर्योधन कुछ सहज होकर बोला, "युद्ध की घड़ी है; और खड्ग सिर पर लटक रहा है। प्रातः से पहले..."

"द्रोण को दिए अपने वचन की चिंता है पुत्र ?"

"हाँ मातुल !"

"मैं सोच ही रहा था कि तुमने यह वचन बिना सोचे-समझे दे दिया है।" शकुनि की मुद्रा गंभीर हो उठी।

"अब समस्या यह है मातुल ! कि वह कौन है जो अर्जुन को युद्धक्षेत्र से दूर ले जाए और उसे वहीं रोके रखे ?"

शकुनि ने अपनी आँखें बंद कर लीं, जैसे किसी असीम ज्ञान को पाने के लिए समाधि में चला गया हो, "पांडवों के परम मित्र कौन-कौन हैं दुर्योधन ?"

"कृष्ण।" दुर्योधन बोला।

"और ?"

"पांचाल।"

"और मत्स्य !"

"हुँ।" शकुनि कुछ क्षण मौन रहा और फिर बोला जैसे सारी समस्या का समाधान पा गया हो, "और पांडवों के इन परम मित्रों के परम शत्रु कौन-कौन हैं भागिनेय ?"

"मैं, मातुल मैं। मैं इन तीनों का परम शत्रु हूँ।"

"मैं तुम्हें नहीं ढूँढ रहा हूँ दुर्योधन !" शकुनि ने आँखें खोलीं तो उनमें दुर्योधन के लिए एक हल्का-सा तिरस्कार था, "मैं तुम्हारे मित्रों को खोज रहा हूँ।"

"ओह !" दुर्योधन की आँखों में समझ की चमक आई।

"कोई नई बात नहीं कह रहा, केवल तुम्हें स्मरण करा रहा हूँ," शकुनि बोला, "पांडवों के परम मित्रों के परम शत्रु ही तुम्हारे मित्र हैं।"

"कृष्ण का परम शत्रु जरासंध और शिशुपाल थे।"

"वे दोनों अपनी जीवन यात्रा पूरी कर चुके।"

"बलराम को कृष्ण के विरोध में खड़ा किया जा सकता है।" दुर्योधन के स्वर में उल्लास का उत्स फूट पड़ा।

"बलराम, कृष्ण का प्रतिद्वंद्वी हो सकता है, शत्रु नहीं। उसे कृष्ण के विपक्ष में खड़ा कर सकते हो, कृष्ण से लड़वा नहीं सकते। फिर बलराम और कृष्ण का करार युद्धारंभ से पहले ही हो चुका है। अब बलराम को तुम युद्ध में नहीं घसीट सकते।"

"तो ?"

"कोई और परमशत्रु ?"

"मेरे और आपके सिवाय और कोई नहीं मातुल !"

"कर्ण भी नहीं ?"

"नहीं।" दुर्योधन बोला, "कर्ण अर्जुन का शत्रु है, कृष्ण का नहीं। मैं जानता हूँ, उसके मन में कृष्ण के प्रति सम्मान है। क्यों है, यह कहना कठिन है।"

"तो कृष्ण को रहने दो।" शकुनि बोला, "पांचालों का परम शत्रु ?"

"कौरव।"

"कौरवों के अतिरिक्त ?"

"द्रोण।"

"हाँ द्रोण ठीक है; किंतु द्रोण को यदि अर्जुन से अलग से भिड़ाएँ तो तुम्हारा मुख्य युद्धक्षेत्र कौन सँभालेगा; और फिर युधिष्ठिर को बंदी करने का कार्य भी द्रोण के कंधों पर है। वैसे भी द्रोण की ललकार पर अर्जुन के स्थान पर धृष्टद्युम्न आगे आएगा। अर्जुन को युद्धक्षेत्र से हटाने के लक्ष्य से यदि हमने द्रोण को भी मुख्य व्यूह से हटा दिया तो हमें लेने के देने पड़ जाएँगे।"

"तो पीछे कर्ण तो है।" दुर्योधन कुछ आवेश में बोला।

शकुनि ने शब्दविहीन दृष्टि से दुर्योधन को देखा। कितनी शांत थीं वे आँखें—सर्वथा आवेगशून्य। और कितनी कठोर डाँट थी उनमें। उन आँखों के सम्मुख दुर्योधन सदा ही स्तंभित रह जाता था।

"तुम भूलते हो कि कर्ण ने पांडवों तथा उनके मित्रों के विरुद्ध एक भी युद्ध नहीं जीता। दिग्विजय के नाम पर उसने कुछ छोटे-मोटे राजाओं को अवश्य हराया है... वह भी पता नहीं कि वे हारे या उन्होंने हस्तिनापुर की शक्ति के आतंक के सामने अपने हथियार डाल दिए। कर्ण ने अधिकांश युद्धों में पलायन ही किया है।" शकुनि ने रुक कर दुर्योधन को देखा, "द्रोणाचार्य ने युद्धों से भागने के लिए प्रसिद्धि नहीं पाई है। उसने जगत्विजेता शिष्य उत्पन्न करने में नाम कमाया है।"

"आप भी पितामह के समान कर्ण के साथ अन्याय कर रहे हैं।" दुर्योधन बोला, "मत्स्यों के साथ युद्ध में द्रोण भी अर्जुन से हारे हैं।"

"ठीक है।" शकुनि का संतुलन खंडित नहीं हुआ, "द्रोण अर्जुन का गुरु है। उन दोनों का युद्ध कभी बहुत गंभीर नहीं हो सकता। कोई नहीं कह सकता कि कब गुरु का शिष्य-प्रेम जाग उठे और कब शिष्य के मन में गुरुभक्ति मूर्तिमान हो जाए। मेरा दृढ़ मत है कि युद्ध में न कभी द्रोण अर्जुन का वध करेगा, और न ही अर्जुन द्रोण के प्राण हरेगा।"

"जानता हूँ। प्रश्न है, ऐसी स्थिति में करना क्या है ?"

"मत्स्यों का परम शत्रु ?"

"त्रिगर्त !"

शकुनि कुछ देर तक आँखें बंद करके सोचता रहा। उसने आँखें खोलीं और बोला, "वे वीर हैं ?"

"मेरा विचार है कि वे वीर हैं।"

"पर्याप्त बल है उनके पास ?"

"उनका संख्या बल तो पर्याप्त है।"

"युद्धक्षेत्र में अर्जुन उनका अनवरत वध करता जाए, तो भी वे उसे संध्या तक रोके रख सकेंगे ?"

"मेरा अनुमान है कि वे उसे रोके रख सकेंगे।"

"धर्म में विश्वास है उनका ?"

"धर्म के पक्के हैं।"

"तो उन्हें उनके धर्म में बाँधो।" शकुनि बोला, "उनसे प्रतिज्ञा करवाओ। संशप्तक सैनिकों के रूप में भेजो, उन्हें युद्धक्षेत्र में।"

दुर्योधन के निर्जीव शरीर में जैसे जान पड़ गई। विह्वलता की उस स्थिति में उसकी इच्छा हुई कि भाग कर या तो मातुल के चरणों पर गिर पड़े या मातुल के गले लग जाए।''' किंतु सहसा उसे स्मरण हो आया कि वह हस्तिनापुर का युवराज है—राजा दुर्योधन; और यह राजप्रासाद नहीं युद्ध शिविर है।

"उचित समझो तो उनका संख्याबल बढ़ाने के लिए आधी नारायणी सेना को भी उनके साथ लगा दो। या तो वे कृष्ण को मारें या फिर कृष्ण ही उनको मारें।" शकुनि बहुत प्रखर ढंग से बोला, "और देखो। इस सारे प्रसंग की भनक तक कृष्ण के कानों में न पड़े।"

"वह आचार्य की प्रतिज्ञा के विषय में जानता है।" दुर्योधन बोला, "समझ ही जाएगा।"

"तुम्हें द्रोण की प्रतिज्ञा को प्रचारित नहीं करना चाहिए था।"

दुर्योधन कुछ उत्तर देता, उससे पहले ही शकुनि अपना उत्तरीय सँभालता हुआ, उसके शिविर से बाहर जा चुका था।

दुर्योधन को लगा, शकुनि के जाने के बाद, उसके सारे व्यक्तित्त्व में जैसे सन्नाटा छा गया। सहसा उस सन्नाटे में एक तीखी ध्वनि गूँजी, जैसे किसी निर्जन मरुभूमि में विरही मयूर चीखा हो, "देखो ! इस सारे प्रसंग की भनक तक कृष्ण के कानों में न पड़े।"

दुर्योधन जानता था कि राजनीति में वैसे ही कोई किसी पर विश्वास नहीं करता और यह तो युद्धकाल था। चारों ओर गुप्तचरों और गूढ़पुरुषों का जाल फैला हुआ था। कोई नहीं जानता था कि उसके आसपास किस रूप में शत्रुओं के चर टिके हुए हैं। इसलिए प्रायः सारी गतिविधि गोपनीय रखने का ही प्रयत्न किया जाता था। और इस प्रसंग में तो स्वयं मातुल कह गए हैं कि कृष्ण के कानों में भनक तक न पड़े।'''

दुर्योधन का ध्यान पहले इस ओर नहीं गया था, पर जाना चाहिए था। यदि कहीं कृष्ण को पता लग गया तो··· वह सागरतट की लहरों को देख सागर के गर्भ का भेद जानने वाला व्यक्ति था। जाने कैसे वह व्यक्ति शत्रुओं के मन की तह तक डुबकी लगा आता था। वह पहले से जानता था कि विरोधी पक्ष कौन-सी चाल चलने जा रहा है। यदि उसे कहीं भनक मिल गई कि सुशर्मा के संशप्तकों की चुनौती के पीछे दुर्योधन है तो वह तत्काल समझ जाएगा कि आघात कहाँ होगा और उसका परिणाम क्या होगा··· ऐसे में निश्चय ही अर्जुन सावधान हो जाएगा और दुर्योधन की इच्छा बंदरिया के मृत बच्चे के समान उसके वक्ष से चिपकी रह जाएगी।

6

त्रिगर्तराज सुशर्मा ने अपने मंडप में अकस्मात् आ गए दुर्योधन की आरती उतारी और मधुपर्क देकर उसको बहुत सम्मान से बैठाया।

"इस समय महाराज कैसे पधारे ?" वह साकार प्रश्न बना खड़ा था।

दुर्योधन ने मुस्कराकर पहले उसे देखा और फिर मंडप में चारों ओर दृष्टि घुमायी, "मित्रवर ! क्या हमें कुछ देर के लिए पूर्ण एकांत मिल सकता है ?"

सुशर्मा कुछ चकित हुआ। उसने आज तक नहीं सोचा था कि दुर्योधन उसे अपना इतना आत्मीय समझता है। युद्ध के इन ग्यारह दिनों में यह पहला ही अवसर था कि दुर्योधन उसके शिविर में आया था।

उसने अपने भाइयों की ओर देखा। उन्हें उसकी इच्छा समझने में क्षण भर भी नहीं लगा। वे उसके मंडप से बाहर चले गए।

सुशर्मा स्वयं द्वार पर आया। द्वारपाल को उसने आदेश दिया, "तुम लोग मंडप से सौ पगों की दूरी पर चले जाओ। ध्यान रहे, जब तक अगला आदेश न मिले, शिविर में पूर्ण एकांत और गोपनीयता का आदेश है। आज्ञा के उल्लंघन का दंड मृत्यु है। तुम्हारी चेतावनी की कोई अवज्ञा करे तो निःसंकोच उसको घातक बाण मार दो चाहे वह व्यक्ति राजपरिवार का सदस्य ही क्यों न हो।"

दुर्योधन को उसकी तत्परता देख प्रसन्नता हुई। यह व्यक्ति अवश्य ही उसकी इच्छा की पूर्ति करेगा।

"महाराज ! आदेश दें।" सुशर्मा हाथ जोड़े दुर्योधन के सम्मुख उपस्थित हुआ।

"ऐसे नहीं मित्र !" दुर्योधन ने खड़े होकर सुशर्मा के जुड़े हाथ खोल दिए, "हम मित्र हैं। मित्रों के समान ही बातें करेंगे। वस्तुतः मैं तुम्हारे पास एक अत्यंत आवश्यक और गोपनीय कार्य से आया हूँ।"

सुशर्मा कृतकृत्य हो गया, "आप एक बार कहें तो।"

"मैं कल की रणनीति तय करने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ।"

"रणनीति सेनापतियों के अधिवेशन में तय हो नहीं गई ?"

"रणनीति तो किसी भी क्षण बदल सकती है मित्र !" दुर्योधन मुस्कराया, "वस्तुतः गोपनीयता की दृष्टि से उसे निरंतर बदलते ही रहना चाहिए।"

"ओह !" सुशर्मा के चेहरे पर आश्चर्य के भाव प्रकट हुए।

दुर्योधन ने उसे अधिक सोचने का अवसर नहीं दिया, "मित्र ! युद्ध के इतने दिन व्यतीत हो गए हैं। दोनों ओर की सेना का नाश भी पर्याप्त संख्या में हुआ है, पर हम कोई भी असाधारण विजय प्राप्त नहीं कर पाए हैं। शत्रुओं का कोई प्रमुख योद्धा धराशायी नहीं हुआ है।"

सुशर्मा ने सहमति में सिर हिलाया।

"मैं चाहता हूँ कि अब हम और समय तथा सैनिक न खोएँ। हम महत्त्वपूर्ण योद्धाओं को ध्यान में रख कर निर्णायक युद्ध करें। महासेनापति आचार्य द्रोण भी मुझसे सहमत हैं।" वह रुककर सुशर्मा की ओर देखने लगा।

सुशर्मा ने कुछ कहा नहीं, किंतु वह सहमत ही प्रतीत हो रहा था।

"मैं चाहता हूँ कि तुम मुख्य सेना और व्यूह को भूल जाओ। तुम पांडव पक्ष में से अपना परम शत्रु चुन लो और अपनी सेना को साथ ले उसके साथ निर्णायक युद्ध करो।"

लगा, अकस्मात् ही सुशर्मा को दुर्योधन की बात समझ में आ गई।

"उचित निर्णय है।" वह बोला, "हम व्यर्थ ही इधर-उधर अपना समय, अपनी क्षमता और सैनिक नष्ट क्यों कर रहे हैं। हमें लक्ष्यबद्ध युद्ध करना चाहिए।"

"तुम तो मेरे मन में बसे हो मित्र ! एकदम मेरे मन की बात कह दी।" दुर्योधन बोला, "हम और समय खोना नहीं चाहते। कल से ही ऐसा युद्ध हो।"

"मैं सहमत हूँ।" सुशर्मा ने मुट्ठी बँधी अपनी भुजा उठाई।

"तुम अपना परम शत्रु चुन लो—कोई एक योद्धा।"

सुशर्मा के जबड़े भिंच गए, मुट्ठियाँ कस गईं, उसके शरीर की प्रत्येक मांसपेशी तन गई, उसकी आँखें आवेश से छलछला उठीं।

"निःसंदेह भीम। वह मोटा वृकोदर भीम। उसने विराटनगर में मेरी बहुत दुर्दशा की थी। बहुत अपमानित किया था उसने मुझे।" सुशर्मा जैसे अपने सम्मुख भीम को साक्षात् देख रहा था।

दुर्योधन को लगा, उसका बाण लक्ष्य तक नहीं पहुँचा। बोला, "भीम मोटा तो है, पर कोई विशेष योद्धा नहीं है। वह मल्ल है, सैनिक नहीं। उसके मरने जीने से युद्ध में कोई बहुत अंतर नहीं पड़ेगा। तुम उसे मार भी दोगे, और अर्जुन जीवित रहेगा, तो भी हम सुरक्षित नहीं रहेंगे। पांडवों का बल वस्तुतः अर्जुन है, भीम नहीं। वस्तुतः उसके गांडीव से सब डरते हैं।" दुर्योधन ने जैसे रुकते-रुकते कहा, "वैसे भी मैं भीम को

अपने गदायुद्ध के लिए सुरक्षित रखना चाहता हूँ। उसे तो मैं मारूँगा, पटक कर।"

इस बार सुशर्मा, दुर्योधन का मंतव्य समझ गया।

"अर्जुन ! हाँ गांडीवधारी अर्जुन। भीम का रक्षक तो वही है। भीम तो पास आकर मारता है। अर्जुन दूर से ही सर्वनाश कर देता है। गांडीवधारी अर्जुन ने सदा हमारा अपमान किया है। यद्यपि हम सदा निरपराध रहे हैं, तो भी उसके द्वारा सदा हमारा अपराध किया गया है। सारी प्रताड़ना तो उसी की है... ओह एक बार अर्जुन से सम्मुख युद्ध का अवसर मिल जाए तो मेरा जीवन पूर्णकाम हो उठे।"

"तो मित्र ! कल तुम अर्जुन से जी भर कर युद्ध करो। जी भर कर। ऐसा युद्ध जिसमें तुम हो और तुम्हारा अपराधी। न कोई तीसरा बीच में पड़े, न तुम दोनों में कोई युद्ध-विमुख हो, युद्ध भूमि छोड़े—मृत्युपर्यंत युद्ध। एक का वध करके ही दूसरा युद्धभूमि छोड़े।"

"ऐसा ही होगा कुरुराज ! ऐसा ही होगा।"

"संकल्प करते हो ?"

सुशर्मा में जैसे आवेश का ज्वालामुखी फूट पड़ा, "संकल्प नहीं, मैं शपथ ग्रहण करूँगा। मैं संशप्तक युद्ध करूँगा।"

दुर्योधन ने सायास अपनी प्रसन्नता को छिपाए रखा, "आपके भाई और सेनापति सहमत होंगे ?"

दुर्योधन के प्रश्न से सुशर्मा की उत्तेजना और भी बढ़ गई, जैसे वह प्रश्न न हो, आक्षेप हो।

"यदि आपको आपत्ति न हो तो सब कुछ आपके सामने ही निश्चित हो जाए।"

"मुझे प्रसन्नता होगी।"

सुशर्मा अपने स्थान से उठ कर द्वार तक आया। संकेत से उसने द्वारपाल को बुलाया। द्वारपाल के निकट आने पर वह बोला, "राजकुमारों और सेनापतियों को संदेश दो, युद्ध-मंत्रणा के लिए मैंने उन्हें तत्काल बुलाया है।"

द्वारपाल चला गया।

दुर्योधन ने बहुत मीठे ढंग से कहा, "एक बात का ध्यान रहे मित्र ! यह सारी योजना अत्यंत गोपनीय है। शत्रु हमारी रणनीति से अवगत हो गया तो बहुत संभव है कि वह इससे बच निकलने का उपाय करे। सारा कुछ इस सहजता और आकस्मिकता से हो कि शत्रुओं को हमारी रणनीति पर विचार कर अपना व्यूह रचने का अवकाश ही न मिले।"

"अर्जुन कायर नहीं है। वह चुनौती की उपेक्षा नहीं करेगा।"

"उसका सारथि कृष्ण अत्यंत धूर्त है। वह क्षत्रिय धर्म की कोई और व्याख्या कर अर्जुन को बहकाकर ले जाएगा।"

"आप ठीक कह रहे हैं।" सुशर्मा तत्काल सहमत हो गया।

सुशर्मा के भाई सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, संतोष और सत्यकर्मा आ जुटे। सेनापति भी उपस्थित हो गए।

सुशर्मा ने कहा, "कुरु सम्राट् हमें अपनी इच्छा से अपने परम शत्रु से कल प्रातः संशप्तक युद्ध करने का अवसर देने के लिए पधारे हैं। वे हमारी रणनीति, हमारे व्यूह, सैन्य संचालन—किसी में भी बाधा नहीं डालेंगे। इस युद्ध के लिए हम प्रधान सेनापति द्रोणाचार्य के आदेश के भी अधीन नहीं होंगे। यह हमारा स्वतंत्र युद्ध होगा, अपने परम शत्रु अर्जुन के साथ। आप सहमत हैं ?"

उनमें से किसी को भी आपत्ति नहीं थी। उन्हें जैसे अभ्युदय का अवसर मिला था। उनके मुख पर प्रसन्नता और आवेश आ विराजे।

सुशर्मा ने निमिष मात्र भी समय नहीं खोया। तत्काल पुरोहित को बुलाया। अपने भाइयों और सेनापतियों के साथ स्नान किया। शुद्ध होकर, कुश ले, वस्त्र पहन अग्निदेव का पूजन किया। नई मुंजमेखला धारण की। ब्राह्मणों को दक्षिणा दी और केसरिया वस्त्र धारण कर रणव्रत का संकल्प लिया, "यदि हम अर्जुन को मारे बिना लौटें, अथवा अर्जुन द्वारा प्रताड़ित होकर युद्धभूमि से भागें तो हमें अपने किसी पुण्य का फल न मिले। हम रौरव नरक में पड़ें। हमारा युद्ध तब तक चलेगा, जब तक या तो अर्जुन का वध न हो, या हम ही वीरगति को प्राप्त न हों। अपना वचन भंग करने पर हम स्वेच्छा से स्वयं को अग्निसात् करेंगे।"

दुर्योधन को लगा, उसने पांडवों को पूर्णतः पराजित कर दिया है।

युधिष्ठिर के मंडप में पांडव पक्ष के सारे योद्धा एकत्रित थे। सेना के प्रयाण और व्यूह संबंधी चर्चा चल रही थी कि द्वारपाल ने प्रवेश किया, "महाराज ! त्रिगर्त नरेश सुशर्मा का दूत महाराज के दर्शनों की प्रतीक्षा में बाहर खड़ा है।"

"त्रिगर्त नरेश सुशर्मा का दूत ?" कृष्ण ने कुछ विस्मय प्रकट किया, "अब दुर्योधन के पक्ष के राजा पांडवों के पास अपने-अपने स्वतंत्र दूत भेजने लगे हैं क्या ?"

"मेरी भी समझ में नहीं आ रहा।" युधिष्ठिर बोले।

"उसका संदेश सुन लीजिए, समझ में आ जाएगा।" धृष्टद्युम्न बोला, "संभव है, वह दुर्योधन का पक्ष छोड़कर हमारे साथ आना चाहता हो।"

"उसकी संभावना बहुत कम है, पर चलिए संदेश सुनने में क्या हानि है।" भीम ने कहा।

"बुलाओ।" युधिष्ठिर ने द्वारपाल से कहा।

दूत ने प्रवेश कर प्रणाम किया।

"कहो दूत ! क्या संदेश लाए हो।"

"महाराज !" दूत बोला, "त्रिगर्तराज सुशर्मा वीरवर अर्जुन से मृत्युपर्यंत संशप्तक युद्ध करना चाहते हैं। उन्होंने कल रात्रि अपने भाइयों के साथ केसरिया वस्त्र तथा नई

मुंजमेखला धारण की है। वे नहीं चाहते कि उनके और गांडीवधारी अर्जुन के युद्ध में किसी प्रकार का कोई विघ्न आए। इसलिए वे मुख्य युद्ध से कहीं दूर किरीटधारी अर्जुन से सम्मुख युद्ध चाहते हैं। यदि वे, उनके भाई अथवा उनके सेनानायक जीवित युद्धक्षेत्र छोड़ देंगे तो वे स्वेच्छा से स्वयं को अग्निसात् करेंगे। उन्होंने धनंजय को चुनौती भेजी है। यदि धनंजय सच्चे क्षत्रिय हैं तो उनकी चुनौती स्वीकार करें।''

अर्जुन का रक्त उफना और युधिष्ठिर के माथे पर चिंता की रेखाएँ खिंच आईं।

''तुम वाहर प्रतीक्षा करो दूत ! हम तुम्हें पुनः बुलाकर उत्तर देंगे।'' युधिष्ठिर वोले, ''द्वारपाल ! दूत का असत्कार न हो।''

दूत बाहर चला गया तो सवकी दृष्टि अर्जुन पर जा ठहरी।

''मैं जाऊँगा। नीच सुशर्मा जहाँ लड़ना चाहेगा, वहीं लड़ूँगा।'' अर्जुन ने युधिष्ठिर की ओर देखा।

''तो फिर आज का व्यूह परिवर्तित करना होगा। यह व्यूह तो धनंजय की उपस्थिति के बिना संभव नहीं है।'' धृष्टद्युम्न ने कहा।

कृष्ण सहज भाव से मौन थे और उनका ध्यान अर्जुन और युधिष्ठिर से अधिक भीम पर केन्द्रित था।

''आज ये त्रिगर्त संशप्तक युद्ध के लिए इतने अधीर क्यों हैं। युद्ध के पिछले ग्यारह दिनों में तो इन्होंने कोई असाधारण वीरता नहीं दिखाई।'' सहसा कृष्ण बोले।

''और फिर ये अर्जुन से ही क्यों लड़ना चाहते हैं ?'' भीम हँसा, ''कभी मुझे भी तो कोई चुनौती दे।''

''आप लड़ना चाहेंगे मध्यम ?'' कृष्ण ने भीम से पूछा, किंतु उनका ध्यान कहीं और था।

''क्यों नहीं।'' भीम का स्वर उत्साह से भरा हुआ था, ''किंतु यह संशप्तक युद्ध है, इसमें तीसरे व्यक्ति को बीच में पड़ने की अनुमति नहीं है।''

''दो व्यक्तियों के बीच तीसरे को नहीं पड़ना है,'' कृष्ण वोले, ''पर एक तीसरा व्यक्ति आकर दो में से एक को बुला ले जाए तो एक व्यक्ति अकेला रह जाता है।''

''कृष्ण ! तुम कोई उलटबांसी रच रहे हो क्या ?'' अर्जुन मुस्कराया, ''या यह दो और तीन संख्याओं को लेकर गणित की कोई समस्या है ?''

''श्रीकृष्ण उलटवांसी नहीं रच रहे, वे दुर्योधन के व्यूह का वर्णन कर रहे हैं।'' युधिष्ठिर बोले, ''युद्धशास्त्र के विद्वान् होकर भी तुम देख नहीं रहे कि तुम त्रिगर्तों के साथ लड़ने के लिए मुख्य युद्धभूमि से दूर हटाए जा रहे हो और मेरे गुप्तचर यह सूचना दे रहे हैं कि आचार्य द्रोण ने आज मुझे जीवित वंदी कर दुर्योधन को सौंप देने का वचन दिया है।''

''धर्मराज की सूचना ठीक है। वैसे वह सूचना बहुत गोपनीय भी नहीं है। दुर्योधन ने उसे स्वयं ही प्रचारित भी करवाया है।'' कृष्ण और भी गंभीर हो गए थे, ''इस संशप्तक

युद्ध और धर्मराज के बंदी बनाए जाने की योजना में कोई न कोई संबंध अवश्य है।"

"धर्मराज को वंदी बनाना इतना सरल है क्या ?" भीम ने प्रतिवाद किया, "एक अर्जुन नहीं होगा। हम सब मिल कर भी उसके स्थानापन्न नहीं हो सकते ?"

युधिष्ठिर की इच्छा हुई कि कह दें 'हाँ ! अर्जुन के अभाव को शेष चारों पांडव, ही नहीं, सारे पांचाल और मत्स्य मिल कर भी पूरा नहीं कर सकते।' पर इस समय ऐसा कहना उचित नहीं था। वीरों का अहं पीड़ित होगा। उनका आत्मबल आहत होगा। भीम रुष्ट भी हो सकता था।

"इस स्थिति को इस प्रकार देखिए।" कृष्ण बोले, "गजसेना के आक्रमण को रोकने और रथों, गजों तथा पैदल सेना के त्वरित विनाश का जो काम आप कर सकते हैं मध्यम ! वह और कोई नहीं कर सकता। उसी प्रकार शत्रुओं के कूट व्यूहों और षड्यंत्रों से सेना की रक्षा करने का जो काम अर्जुन कर सकता है, वह आप नहीं कर सकते। आचार्य द्रोण का तोड़ आपके पास नहीं है।"

"आचार्य द्रोण की तो आप चिंता ही न करें।" धृष्टद्युम्न ने कहा, "मेरे जीवित रहते द्रोण कुछ नहीं कर सकते; और आप विश्वास करें, युद्धक्षेत्र में द्रोण मेरा वध नहीं कर सकते।"

"तुम्हारी वीरता में मुझे कोई संदेह नहीं है महासेनापति !" कृष्ण मुस्कराए, "किंतु प्रधान सेनापति महाराज युधिष्ठिर की व्यक्तिगत सुरक्षा में लग जाएँगे तो शेष सेना को कौन देखेगा ?"

"मुझे अपने बंदी होने या मरने का भय नहीं है।" युधिष्ठिर बोले, "किंतु मुझे बंदी कर वे तुम लोगों से कोई अपमानजनक संधि करना चाहेंगे तो तुम लोगों को भारी मूल्य चुकाना होगा।" धर्मराज का स्वर धीमा हो गया, "पहले भी एक वार तुम लोग मेरे कारण अपना राज्य वैभव खो चुके हो।"

"आप उसकी चिंता न करें भैया," अर्जुन इस वार निर्णायक स्वर में बोला, "आपके कारण हमने क्या खोया और क्या पाया, इस विवाद में न पड़ें। महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ पराक्रम सम्राट हैं और पांडव पक्ष के प्रधान हैं। उनकी रक्षा होनी ही चाहिए। प्रधान के वंदी होने का अर्थ उस पक्ष की हार ही होती है। हम सवको अपने सम्मान की रक्षा के लिए आपकी रक्षा करनी ही है।"

"पर तुम्हारा इस चुनौती को स्वीकार करना क्यों आवश्यक है ?" कृष्ण वोले, "सुशर्मा तुमसे एकाकी लड़ना चाहता, तो भी कोई बात थी। उसके साथ उसके भाई होंगे, उसके सेनापति होंगे। उसके सैनिक होंगे। यह न तो कोई चुनौती है और न न्याय। उन्होंने युद्ध की शपथ ले ली, इसलिए तुम अपने भाइयों, अपनी सेना, अपनी योजना सब कुछ छोड़ दोगे, यह बुद्धिमत्ता तो नहीं।"

"यह क्षत्रिय धर्म है।" अर्जुन वोला।

"और मैं उसका पालन नहीं करता।" कृष्ण मुस्कराए, "भविष्य में दुर्योधन का

कोई मांडलिक यह शपथ ग्रहण करे कि वह अर्जुन से शूल युद्ध करेगा, तो तुम अपना गांडीव त्याग कर उससे लड़ने पहुँच जाओगे ? अथवा जयद्रथ यह शपथ ग्रहण कर ले कि वह तुमसे सिंधु के तट पर लड़ेगा तो तुम सिंधु के तट पर चले जाओगे ? तुम देख नहीं रहे हो कि यह तुम्हें युद्धक्षेत्र से हटाने का षड्यंत्र मात्र है ? तुम इसे क्षत्रिय धर्म कहते हो, किंतु मैं इसे अन्याय मानता हूँ। दुर्योधन की सेना पहले दिन से ही धर्म को तिलांजलि दे कर युद्ध कर रही है, तुम इसको पहचान नहीं रहे ?"

"किंतु कोई क्षत्रिय इस प्रकार दी गई युद्ध की चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता।" अर्जुन बोला, "यदि मैं इस चुनौती को स्वीकार नहीं करता तो उसका यह अर्थ होगा कि मैं अकेला एक वाहिनी से भी लड़ने का साहस नहीं कर सकता और यदि मेरे भाई मुझे जाने नहीं देंगे तो उसका अर्थ होगा कि वे सब मिल कर भी अकेले अर्जुन के समान नहीं हैं। इस प्रकार का अपमानजनक प्रस्ताव हम कैसे कर सकते हैं, जबकि महावीर भीम और अतिरथी धृष्टद्युम्न यहाँ बैठे हैं। मुझे अपने लिए नहीं तो अपने भाइयों के लिए इस चुनौती को स्वीकार करना पड़ेगा।...."

कृष्ण मुस्कराए, "तुम क्रोध में हो। क्रोध से मोह उत्पन्न होता है और मोह से स्मृति विभ्रम हो जाता है। स्मृति के अभाव से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि नष्ट होने पर सर्वनाश हो जाता है।"

"मेरा विचार है कृष्ण ! तुम अर्जुन की उपस्थिति को कुछ अतिरिक्त महत्त्व दे रहे हो।" भीम ने कहा, "क्या हम सब इतने गए बीते हैं कि अर्जुन की अनुपस्थिति में एक दिन का युद्ध भी नहीं लड़ सकते और अपने राजा की रक्षा एक दिन के लिए भी नहीं कर सकते ?"

कृष्ण ने भीम के स्वर में निहित क्षोभ को पहचाना। उनके प्रस्ताव से भीम स्वयं को आहत अनुभव कर रहा था। संशप्तकों की चुनौती तो केवल अर्जुन के लिए थी, किंतु अर्जुन को जाने देना अथवा न जाने देना सारे योद्धाओं के लिए चुनौती बन गया था।

"मैं अर्जुन के जाने के पक्ष में नहीं हूँ।" युधिष्ठिर ने कुछ दृढ़ स्वर में कहा, "आप लोग चाहे मुझे कायर कह लें; किंतु मैं धनंजय की अनुपस्थिति में स्वयं को सुरक्षित नहीं समझता। कल संध्या समय भी इसी योजना के अंतर्गत आचार्य मुझे बंदी करने का प्रयत्न कर चुके हैं। यदि ठीक अवसर पर धनंजय ने आकर उनकी सेना को ध्वस्त न कर दिया होता तो वे मुझे बंदी कर चुके होते। हम देख चुके हैं कि उन्हें न तो हमारा कोई व्यूह रोक पाया न कोई योद्धा।"

धृष्टद्युम्न के मुख का स्वाद जैसे कसैला हो गया, "आप धनंजय को संशप्तक युद्ध के लिए भेजना चाहें, न भेजना चाहें, वह एक पृथक् बात है; किंतु मैं यह मानने को प्रस्तुत नहीं हूँ कि हम सब मिल कर भी युद्ध में द्रोण की गति रोकने में समर्थ नहीं हैं।" और वह सात्यकि की ओर मुड़ा, "क्या विचार है सात्यकि ?"

सात्यकि के लिए कदाचित् यह प्रश्न अनपेक्षित था। प्रयत्नपूर्वक बोला, "मैं समझता हूँ कि यदि धनंजय चुनौती को स्वीकार करने के इच्छुक हैं तो हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे उस सुशर्मा के काल सिद्ध होंगे।"जहाँ तक धर्मराज की सुरक्षा का प्रश्न है, यदि आप लोगों को आपत्ति न हो तो मैं इस दायित्व को लेने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

कृष्ण देख रहे थे कि इस विषय में उनके आग्रह के कारण अधिक से अधिक योद्धाओं का स्वाभिमान आहत हो रहा था। उन सबके अहंकार ने कैसा मोह जाल फैला दिया था कि सत्य कहीं दिखाई ही नहीं पड़ रहा था।

"आप जिसे चाहें, उसे सम्राट् की रक्षा के लिए नियुक्त कर जाएँ।" धृष्टद्युम्न अर्जुन से बोला, "वैसे भी हम सैन्य संचालन इस प्रकार करें कि सम्राट् सुरक्षित रहें।"

"मुझे तुम पर पूरा भरोसा है धृष्टद्युम्न ! इस समय संयोग ही कुछ ऐसा है कि हमें मुख्य युद्धभूमि से हट कर यह नया व्यूह रचना पड़ रहा है। मैं न त्रिगर्तों की ललकार को अनसुना कर सकता हूँ, न उनके इस संशप्तक युद्ध की चुनौती को अस्वीकार कर सकता हूँ।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

कृष्ण मुस्कराए, "मैं एक बात कहूँ ?"

"अवश्य। आप मौन रहेंगे तो अनिष्ट ही हो जाएगा।" युधिष्ठिर ने कहा।

"अर्जुन ! आज तुम द्रोणाचार्य का वध कर दो। संशप्तक युद्ध के लिए कल चले जाना।" कृष्ण बोले, "द्रोणाचार्य नहीं होंगे तो तुम धर्मराज को अकेला छोड़ सकोगे।"

अर्जुन के चेहरे पर बहुत कठोर भाव उभरे, "न मैं आचार्य का वध कर सकता हूँ और न धर्मराज का त्याग कर सकता हूँ।"

"नहीं ! आप जाएँ।" धृष्टद्युम्न बोला, "आपकी कीर्ति को निष्कलंक रखने का प्रयत्न करना प्रत्येक वीर का धर्म है।"

"भैया की सुरक्षा के लिए महावीर सत्यजित को नियुक्त कर दो। और तुम लोग निश्चिंत होकर अपना युद्ध करो।" अर्जुन युधिष्ठिर की ओर मुड़ा, "भैया ! जब तक वीर सत्यजित जीवित हैं, आप निश्चिंत होकर युद्ध करें; आचार्य द्रोण कभी अपने मन की नहीं कर पाएँगे। और हाँ !…" वह रुका और फिर प्रत्येक शब्द चबा-चबा कर बोला, "यदि सत्यजित वीरगति पा जाएँ, तो चाहे हमारे पक्ष के सारे योद्धा आपको घेर कर खड़े हों, आप युद्धक्षेत्र से हट जाएँ।"

"पर सत्यजित ही क्यों ?" सात्यकि चकित था, "उनका कोई अद्भुत कृत्य तो मैंने सुना ही नहीं।"

"पांडवों में से कोई आचार्य के प्रति उतना कठोर नहीं हो सकता, जितना पांचाल हो सकते हैं।" अर्जुन बोला, "उनमें महाराज द्रुपद अपने वार्द्धक्य के कारण आचार्य का तेज सँभाल नहीं पाएँगे। धृष्टद्युम्न प्रधान सेनापति हैं। उनके पास सेना के अनेक दायित्व हैं। शिखंडी परसों पितामह से बहुत जूझे हैं। उनके घाव उनको किसी भयंकर

युद्ध की अनुमति नहीं देंगे। एक आर्य सत्यजित ही यह दायित्व सँभाल पाएँगे। मैंने उन्हें कांपिल्य में युद्ध करते देखा है। मैं उनके शौर्य और कौशल से परिचित हूँ। मैं समझता हूँ कि वे इस दायित्व को सँभाल पाएँगे। आचार्य उन्हें देखेंगे तो धर्मराज के निकट भी नहीं आएँगे।" वह धर्मराज की ओर मुड़ा, "आप संतुष्ट हैं भैया ?"

धर्मराज मुस्कराए तो उनकी आँखों में अश्रु आ गए, "मैं जानता हूँ कि बड़े भाई अथवा राजा के रूप में यदि मैं तुम्हें न जाने का आदेश दूँ तो तुम नहीं जाओगे; किंतु मैं तुम्हारी तेजस्विता को नष्ट करना नहीं चाहता। जाओ। प्रभु तुम्हारा कल्याण करें अर्जुन !"

7

अर्जुन को लगा कि त्रिगर्तों ने चुनौती तो दे दी है किंतु अब वे किसी स्थान पर रुक कर युद्ध करने के स्थान पर, युद्धक्षेत्र से दूर से दूर भागते जा रहे थे। संशप्तक युद्ध की स्थिति में उन्हें अधिकार था कि वे अपने युद्ध के लिए, मुख्य समरभूमि से पृथक् कोई स्थान चुन लें, जहाँ मुख्य युद्ध का कोई हस्तक्षेप न हो।... पर जिस प्रकार वे भागते जा रहे थे, उससे अर्जुन को संदेह होने लगा था कि उनका लक्ष्य युद्ध था भी अथवा यह अर्जुन को रणभूमि से दूर ले जाने मात्र का कोई अभियान था ?

समरभूमि पीछे छूट गई थी। वे लोग कुछ सरोवरों और सरिता तट के अनेक दूहों को पार कर आगे आ गए थे। मार्ग में कुछ उपवन और वन खंड भी दिखाई दिए थे। पर न तो सुशर्मा ही कहीं रुकता दिखाई दे रहा था और न कृष्ण ही कहीं ठहरना चाहते थे।

सहसा, त्रिगर्तों पर झपटते हुए रथ के वेग से अपनी दृष्टि हटाकर कृष्ण बोले, "पार्थ ! युद्ध में दो पक्ष होते हैं न !"

"हाँ ! क्यों ?"

"और दोनों एक-दूसरे के विरोधी होते हैं।"

"हाँ !"

"तो दक्ष सेनापति वह है जो अपनी इच्छा, सुविधा और क्षमता के अनुसार अपनी अनुकूल स्थितियों में लड़े; अथवा वह चतुर योद्धा है जो शत्रुओं के व्यूह में धँसता फिरे, उनकी इच्छा के अनुसार उनकी शर्तों पर लड़े और इस प्रकार अपनी पराजय में अपने शत्रुओं का सहायक हो ?"

"पर कोई क्षत्रिय संशप्तक युद्ध से मुँह नहीं चुरा सकता।" अर्जुन ने कृष्ण का अभिप्राय समझकर कहा।

"मैंने इन रूढ़ियों को कभी अपना धर्म नहीं माना। कल यदि कर्ण अपनी सेना

के साथ आकर अकेले धर्मराज को इसी प्रकार के संशप्तक युद्ध के लिए ललकारे तो धर्मराज को भी उसकी चुनौती स्वीकार कर उसके साथ युद्ध करने के लिए अकेले चले जाना चाहिए ?" कृष्ण ने पूछा।

अर्जुन ने कोई उत्तर नहीं दिया, किंतु स्पष्ट था कि वह धर्मराज द्वारा इस प्रकार की चुनौती स्वीकार करने का समर्थक नहीं था; किंतु अपने मुख से वह यह भी स्वीकार नहीं करना चाहता था कि वह युद्ध में स्वयं को धर्मराज से कहीं अधिक समर्थ मानता था। उसकी तुलना धर्मराज से नहीं की जानी चाहिए थी।

कृष्ण ही पुनः बोले, "जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मौलिक चिंतन होता है। युद्ध के क्षेत्र में भी हो सकता है। मैंने कालयवन की चुनौती स्वीकार नहीं की थी। मैं कभी जरासंध की इच्छा के अनुसार नहीं लड़ा था। मैं तुम्हें हतोत्साहित कर दुर्बल करना नहीं चाहता, किंतु न तो मैं जीवन को दूसरों के आदर्शों के अनुसार जीने का समर्थक हूँ और न ही युद्ध में दूसरों के रचे व्यूह में फँस कर लड़ने का। तुम्हें अपना व्यूह रचना है। संसार में लोग तुम्हें विभिन्न प्रकार की चुनौतियाँ देते रहेंगे, अलग-अलग व्यूहों से पुकारेंगे, तो तुम उनकी योजनाओं के अनुसार भागते रहोगे, अपना व्यूह कब रचोगे ? अपना युद्ध कब लड़ोगे ? जीवन को सफलतापूर्वक वही जी सकता है, जो अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि से जिए। विक्षेपों से तो ऊर्जा बिखरती ही है। वे सब लोग तुम्हारी ऊर्जा को बिखेरने में लगे हुए हैं। तुम्हें स्वयं को एकाग्र करना है।" कृष्ण रुके, "मैं जानता हूँ कि तुम सुशर्मा, उसके भाइयों और उसकी सेना से लड़ने में समर्थ हो; किंतु अपने सामर्थ्य का अहंकार भी तुम्हारा शत्रु हो सकता है। एक बार धर्मराज ने शत्रु की शर्तों पर द्यूत खेला था और आज तुम त्रिगर्तों की इच्छा से द्यूत खेलने जा रहे हो। मेरा मन आश्वस्त नहीं है मित्र !"

अर्जुन ने कृष्ण को देखा : वे चिंतित लग रहे थे। किंतु इस क्षण तो न चिंता का समय था, न चिंतन का—सामने त्रिगर्त संशप्तक अर्द्धचंद्राकार व्यूह रच कर युद्ध के लिए प्रस्तुत थे। उन्होंने अर्जुन को कुछ भी समझने का अवसर नहीं दिया। उनका आक्रमण आकस्मिक और बड़ा भयंकर था। युद्ध आरंभ होते ही सुबाहु ने अर्जुन के किरीट पर प्रहार कर दिया था।

अर्जुन को स्मरण हो आया, एक सुबाहु उसका मित्र भी है और एक यह सुबाहु है, जो शपथपूर्वक उससे युद्ध करने आया है। वस्तुतः इन त्रिगर्तों को अपने सैनिकों की संख्या का अभिमान है। वे समझ रहे हैं कि अर्जुन ने इस प्रकार अकेले युद्ध की चुनौती को स्वीकार कर मूर्खता की है। इसलिए वे इतने आश्वस्त होकर आक्रमण कर रहे हैं। इसका कहीं यह अर्थ भी है कि उन्हें अर्जुन की क्षमता और युद्धपद्धति का ज्ञान नहीं है। उन्हें बताना होगा कि अर्जुन कैसे युद्ध करता है।...

अर्जुन ने एक भल्ल मारा और सुबाहु के दस्ताने कट गए।

अर्जुन के इस आक्रमण ने संशप्तकों को और भी उत्तेजित कर दिया। सुशर्मा, सुरथ,

सुधन्वा और सुबाहु एक साथ ही अर्जुन पर चढ़ दौड़े। यह आक्रमण अर्जुन की अपेक्षा से अधिक घातक था, इसके लिए न तो वह तैयार था और न ही उसने कोई सावधानी बरती थी।...

उसने देखा, त्रिगर्तों का यह आक्रमण उसके शरीर पर कई क्षत छोड़ गया था। उनके इस दुस्साहस पर उसका मन क्रोध से फुफकार उठा।... अगले ही क्षण उसने सुधन्वा का धनुष काट दिया, उसके अश्व मार दिए और फिर शिरस्त्राण सहित उसका मस्तक काट दिया।

सुशर्मा ने देखा : अर्जुन के एक ही आघात ने उसके सैनिकों को भयभीत कर दिया था। वे सब शरण खोजते हुए, मुख्य समरभूमि में नियुक्त दुर्योधन की सेना की सुरक्षा में जाने का प्रयास कर रहे थे। ये सब वे लोग थे, जिन्होंने प्रण किया था कि यदि वे समरभूमि छोड़कर भागेंगे तो स्वयं को जीवित जला कर अपने प्राण दे देंगे।

सारी सेना भाग कर कहीं छिप गई थी और सुशर्मा को अपने पीछे अपने पृष्ठरक्षक भी दिखाई नहीं दे रहे थे। इस समय युद्ध करना अपने प्राण देने के समान था और वह अर्जुन के प्राण लेने आया था, प्राण देने नहीं।

अर्जुन ने उस सारे क्षेत्र का एक चक्कर लगाया। संशप्तक सेना कहीं आसपास ही होनी चाहिए। पर उनमें से कोई भी दिखाई नहीं दे रहा था। वे समरभूमि छोड़कर भागे नहीं थे, बस छिप गए थे। ऐसे में यहाँ रुके रहकर प्रतीक्षा करने से तो उत्तम था कि वे लोग लौट कर द्रोण द्वारा पीड़ित पांडव सेना की रक्षा करते।

"कृष्ण ! लौट चलें क्या ?"

"जो लोग संशप्तक युद्ध करने आए थे वे तो दिखाई पड़ नहीं रहे।" कृष्ण बोले, "किंतु वे नष्ट नहीं हुए हैं। यहीं कहीं छिपे होंगे। जो भाग कर दुर्योधन तक जा पहुँचे होंगे, वे उसकी ताड़ना के बाद फिर लौटेंगे।... पर समय नष्ट करने का क्या लाभ ?"

कृष्ण ने रथ मोड़ा ही था कि लगा संशप्तक फिर से प्रकट होने लगे हैं। स्पष्टतः उनकी अधिक रुचि अर्जुन को यहाँ रोके रखने में थी, युद्ध करने में नहीं।

"इस बार उनके साथ नारायणी सेना के गोप भी हैं।" कृष्ण बोले।

अर्जुन चकित रह गया।... नारायणी सेना को कहीं और न लड़वाकर दुर्योधन ने उसे कृष्ण और अर्जुन से ही लड़ने भेज दिया है।

"यह क्या ?"

"मुझे लगता है कि दुर्योधन मुझसे सेना ले तो गया, किंतु उसे कभी भी नारायणी सेना पर विश्वास नहीं हुआ।"

"तो फिर उस सेना पर इतना व्यय करने का क्या लाभ ?"

"नारायणी सेना उसकी ओर से लड़े न लड़े, पांडवों के पक्ष से तो नहीं लड़ेगी।" कृष्ण बोले, "इस समय हमसे युद्ध करने के लिए भेजने का तो अर्थ है कि वह इस सेना की अपने प्रति निष्ठा परखना चाहता है। उसे इस सेना को मरवाने में भी कोई

कष्ट नहीं होगा। नारायणी सेना मरे या उसके हाथों अर्जुन तथा कृष्ण नष्ट हो जाएँ, उसे दोनों में ही प्रसन्नता होगी।"

"पर यदि नारायणी सेना की निष्ठा संदिग्ध है तो वह हमसे भी तो मिल सकती है। और ऐसे में सुशर्मा तथा त्रिगर्तो की यह सेना जीवित नहीं बचेगी।"

"मुझे लगता है कि दुर्योधन को सुशर्मा की भी आवश्यकता नहीं है।" कृष्ण बोले, "यदि त्रिगर्तों को मरवाकर भी वह धर्मराज को पराभूत कर पाया तो वह इसे अपनी विजय ही मानेगा।"

इस वार प्रहार नारायणी सेना की ओर से हुआ। वह कृष्ण और बलराम द्वारा प्रशिक्षित सेना थी। उनका प्रहार उसी प्रशिक्षण के अनुकूल अत्यंत भयानक था। अर्जुन जानता था कि देवास्त्रों के अभाव में वह अकेला इस प्रकार कदाचित् टिक नहीं पाएगा। अब तक युद्ध का स्वरूप बदल गया था। उसे शीघ्र ही सक्रिय होना था। पर नारायणी सेना तो कृष्ण की सेना थी। उसका संहार ?··· जब कृष्ण को ही उनका कोई मोह नहीं था तो उनके लिए अर्जुन ही क्यों चिंतित है।··· और क्षण भर को अर्जुन के सम्मुख कृष्ण का वह विश्वरूप प्रकट हो गया। क्या देखा था अर्जुन ने—कृष्ण महाकाल का भयंकर रूप धारण किए खड़े थे और सेनाएँ की सेनाएँ उनकी दाढ़ों तले कुचली जा रही थीं।··· उन्होंने कहा था, 'अर्जुन ! ये सब लोग पहले ही मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं। तू तो निमित्त मात्र है।'··· ठीक ही तो कहा था कृष्ण ने। जीवन और मृत्यु तो महाकाल के दो चरण मात्र थे। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है, उसका जन्म अवश्यंभावी है।···तो फिर क्या सोच रहा है अर्जुन ! कैसा मोह इस नारायणी सेना का।

अर्जुन ने गांडीव पर त्वराष्ट्र अस्त्र चढ़ा लिया। अस्त्र चला और नारायणी सेना के गोपों के साथ-साथ ललित्थ, मालव, मावेल्लक, त्रिगर्त सैनिक मृत्यु के मुख में समाते चले गए। चारों ओर पीड़ा और चीत्कार का स्वर था। और तब जाने कैसे त्रिगर्तों की सारी सेना जैसे किसी एक धनुर्धारी में परिणत हो गई। वे सब एक ही समय में सक्रिय हुए और कृष्ण तथा अर्जुन उनके चलाए हुए सहस्रों बाणों से ढँक गए।

त्रिगर्तों में हर्ष की लहर दौड़ गई। सुशर्मा ने कुछ क्षणों तक अर्जुन के रथ की ओर देखा और चिल्लाया, "मारे गए। वे दोनों ही मारे गए। जाओ, कोई महाराज दुर्योधन को समाचार दो कि हमने उनके शत्रुओं को नष्ट कर दिया है।"

कृष्ण का शरीर स्वेद से नहा गया। इस अनपेक्षित बाण-वर्षा से वे खिन्न हो गए थे। लगता था कि यह वर्षा अर्जुन को पराभूत कर गई थी।

उन्होंने पीछे मुड़कर देखा। किसी प्रकार की सक्रियता दिखाई नहीं पड़ी तो बोले, "तुम कहाँ हो अर्जुन ? जीवित तो हो ?"

"हाँ केशव ! जीवित हूँ और सकुशल हूँ।" अर्जुन बोला, "कुछ घाव लगे हैं। और आप ?"

"मुझे भी कुछ छोटे-मोटे घाव ही लगे हैं।" कृष्ण वोले, "अव तुम विलंब मत करो। धर्मराज हमारे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे।"

अर्जुन ने वायवास्त्र चला दिया। त्रिगर्तों की वाण वर्षा बंद हो गई। लगा कि वायु सारे मेघों को जैसे उड़ा कर ही ले गई। ऐसे में वर्षा कहाँ से होती।

द्रोण निश्िंचत थे कि अर्जुन संशप्तकों से युद्ध करने के लिए वहुत दूर निकल गया था। उसके पास न तो सरलता से युद्ध का कोई समाचार भेजा जा सकता था और न ही संशप्तक उसे सुविधा से लौटने देंगे। वे उसके मार्ग में बिछ जाएँगे किंतु उसे लौटने नहीं देंगे।··· वह एक प्रहर भी वहाँ उलझा रहे तो द्रोण अपनी योजना में सफल हो जाएँगे।···

द्रोण ने गरुड़ व्यूह रचा और अपनी सेना को प्रयाण का आदेश दे दिया।

पांडव सेना ने मंडलार्द्ध व्यूह बनाया था। धृष्टद्युम्न पूर्णतः संतुष्ट था कि द्रोण अपनी इच्छानुसार कोई बड़ी सफलता प्राप्त नहीं कर पाएँगे। अपने मन के किसी कोने में वह एक आवृत-सी प्रसन्नता का भी अनुभव कर रहा था। आज अर्जुन और कृष्ण यहाँ उपस्थित नहीं थे, इसलिए धृष्टद्युम्न को भी खुल कर अपनी वीरता दिखाने का अवसर मिलेगा।···वह अपनी इच्छानुसार द्रोण के प्रति कठोर हो सकेगा। अर्जुन की उपस्थिति में उसके पूज्य गुरु के वध की योजना नहीं बनाई जा सकती थी। किसी न किसी बहाने से अर्जुन कुछ ऐसा कर ही देता था कि धृष्टद्युम्न के हाथ बँध जाते थे और उसके मन की मन में ही रह जाती थी। आज वैसा कुछ नहीं होने जा रहा।···

"धृष्टद्युम्न !" युधिष्ठिर ने कहा, "सेना का प्रबंध ऐसा हो कि द्रोण मेरे निकट न आ सकें।"

"आप निश्िंचत रहें महाराज !" धृष्टद्युम्न बोला और तत्काल ही उसका मन सोचने लगा : क्या कोई ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती कि युधिष्ठिर, द्रोण को धृष्टद्युम्न के जाल में फँसाने का चारा बन जाएँ ? द्रोण यह समझते रहें कि वे युधिष्ठिर के निकट पहुँचने में सफल हो रहे हैं, जिसका अर्थ है कि वे अपने लक्ष्य के निकट जा रहे हैं और अंततः वे पाएँ कि धृष्टद्युम्न का जाल उनके चारों ओर ऐसा बुना जा चुका है कि वे उससे किसी भी अवस्था में निकल नहीं सकते ? यह तो केवल आज ही हो सकता है और इसी समय हो सकता है। अर्जुन और कृष्ण लौट आए तो वे अपने राजा को इस प्रकार चारा नहीं बनने देंगे, चाहे उसके माध्यम से धृष्टद्युम्न कितनी ही बड़ी मछली फाँसने का प्रयत्न क्यों न कर रहा हो।···

धृष्टद्युम्न ने युधिष्ठिर की ओर बढ़ते हुए द्रोण को रोका।···द्रोण का मन धृष्टद्युम्न को देखते ही सहम-सा गया। वे जानते थे कि वे धृष्टद्युम्न के निकट सुरक्षित नहीं थे। वह उनके वध का कोई अवसर नहीं चूकेगा। पर अब युद्ध में तो किसी से भी लड़ना पड़ सकता है। यह द्रोण की पाठशाला नहीं है कि जिसे वे चाहें शिक्षा दें और जिसे चाहें, मना कर दें। युद्ध में चुनाव की स्वतंत्रता नहीं हो सकती। पर तभी दुर्मुख आगे

वढ़ आया और उसने धृष्टद्युम्न को रोका।

द्रोण के लिए यह स्वर्णिम अवसर था। जब तक धृष्टद्युम्न दुर्मुख से निबटे, उन्हें आगे वढ़कर अपने लक्ष्य के निकट पहुँच जाना चाहिए था।

वे झपाटे से युधिष्ठिर की ओर बढ़े और उन पर प्रहार किया। युधिष्ठिर ने उनको देखा। वे द्रोण का अभिप्राय भी समझते थे। उन्होंने धनुष उठा लिया। जब गुरु ने स्वयं ही युद्ध आरंभ कर दिया था तो उन्हें भी स्वतंत्रता थी कि वे अपना युद्ध कौशल दिखाएँ।

तभी सत्यजित बड़े वेग से वहाँ प्रकट हो गया। उसने क्षण भर का भी विलंब नहीं किया और द्रोण पर भयंकर आक्रमण किया। उसके आक्रमण का परिणाम स्पष्ट था। द्रोण घायल हो गए। उनका ध्वज कट गया, अश्व विंध गए और सारथि मूर्च्छित हो गया। सत्यजित ने द्रोण के दोनों पृष्ठरक्षकों को भी दस-दस वाण मार कर अपनी क्षमता का परिचय दे दिया था।

अर्जुन ने ठीक ही चुनाव किया था सत्यजित का''' युधिष्ठिर सोच रहे थे''' उन्होंने तो न कभी सत्यजित का यह वेग देखा था और न यह प्रखरता। कांपिल्य के जिस युद्ध में अर्जुन ने सत्यजित को लड़ते देखा था, युधिष्ठिर ने तो उसमें भाग ही नहीं लिया था। अर्जुन और भीम उन्हें नगर से वाहर ही खड़ा कर गए थे। ऐसा वेग और त्वरा तो कदाचित् धृष्टद्युम्न में भी नहीं थी।

पर सत्यजित के आक्रमण से द्रोण हतप्रभ नहीं हुए। वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपने उस कीलित रथ से ही सत्यजित का धनुप काट डाला और उसे आहत कर दिया। सत्यजित ने अपने घावों की चिंता न करते हुए, तत्काल दूसरा धनुष उठा लिया।

धृष्टद्युम्न ने सत्यजित का तेज भी देखा और उसकी असहायता भी, किंतु दुर्मुख उसके ऐसे आड़े आया था कि उसे हिलने ही नहीं दे रहा था। तव तक वृक सत्यजित की सहायता को आ गया था। वे दोनों मिल गए थे और द्रोण को पीड़ित कर रहे थे। किंतु द्रोण उनके वश के नहीं थे। द्रोण के धनुष से वाणों की जैसे एक झड़ी चली और सत्यजित तथा वृक के धनुष कट गए। अगले ही वाण में द्रोण ने वृक का वक्ष छेद डाला। वृक का वध सत्यजित के लिए चुनौती था। उसने तड़पकर द्रोण पर बाणों की वर्पा की। सत्यजित को इस प्रकार प्रचंड होते देखकर द्रोण ने अपने धनुप पर अर्द्धचंद्राकार बाण रखा और अगले ही क्षण सत्यजित का मस्तक कट कर भूमि पर गिर गया।

युधिष्ठिर को लगा कि द्रोण, उनके बहुत निकट आ चुके हैं। संभव है कि उनका अगला प्रयत्न युधिष्ठिर को वंदी करने का ही हो। वे नहीं जानते थे कि द्रोण उन्हें किस प्रकार वंदी करना चाहते थे। उधर सत्यजित का वध देखकर कौरव सेना के अनेक महारथी इसी ओर वढ़ रहे थे। धृष्टद्युम्न उनके निकट नहीं आ पा रहा था। कौरव महारथियों ने उसे पहले ही घेर लिया था। निश्चित रूप से यह उनकी योजना का ही अंग रहा होगा। आचार्य की रक्षा के लिए उन्हें धृष्टद्युम्न को रोकना ही होगा।''' अब युधिष्ठिर का यहाँ रुकना उचित नहीं था। अर्जुन ने कहा था कि सत्यजित न रहे तो उन्हें किसी

भी स्थिति में युद्धक्षेत्र से हट जाना चाहिए था।''' वे नहीं हटेंगे और बंदी हो जाएँगे तो वह एक प्रकार से सारे पांडवों का बंदी होना होगा। उन सबकी पराजय होगी।''' नहीं ! युधिष्ठिर ऐसा संकट आमंत्रित नहीं कर सकते।'''

उन्होंने सारथि को संकेत किया, "अपने मंडप की ओर चलो।"

द्रोण खड़े देख रहे थे कि युधिष्ठिर उनसे दूर होते जा रहे थे। उनका रथ ऐसा अड़ा था कि वे आगे बढ़ नहीं सकते थे। दूसरी ओर धृष्टद्युम्न अपनी सेना के साथ उन पर टूट पड़ा था। सत्यजित का वध उसके लिए असहनीय था। पांचालों के साथ केकय, मत्स्य, चेदि, कारूष, कोसल के योद्धा द्रोण के चारों ओर घिर आए थे। द्रोण वहाँ से हिल नहीं सकते थे और किसी प्रकार की सहायता कहीं से आ नहीं रही थी। उनके सम्मुख कोई विकल्प नहीं था।

विराट का छोटा भाई शतानीक द्रोण पर चढ़ आया था। एक क्षण का विलंब भी घातक हो सकता था। द्रोण ने शतानीक को युद्ध का अवसर ही नहीं दिया। इससे पहले कि वह उन पर वाण चलाता, उन्होंने शतानीक का सिर काट लिया।

वृक, सत्यजित और अब शतानीक को इस प्रकार मृत्यु के मुख में जाते देख पांचाल सैनिकों का साहस टिक नहीं पाया। उनके पाँव उखड़ गए। धृष्टद्युम्न की योजना तनिक भी सफल नहीं हो पाई थी।

युधिष्ठिर अपने मंडप की ओर चले तो गए थे, किंतु वे न तो युद्ध की ओर से असावधान रह सकते थे और न अपनी सेना की ओर से उदासीन। पांचाल सेना के पलायन का समाचार पाकर वे अपने मंडप में बैठे नहीं रह सकते थे। उन्हें युद्ध करना ही होगा, परिणाम चाहे जो भी हो।

उन्होंने धृष्टद्युम्न को संदेश भिजवा दिया कि वे द्रोण पर आक्रमण करने जा रहे हैं। द्रोण को अपनी मनमानी करने के लिए मुक्त नहीं छोड़ा जा सकता।

युधिष्ठिर को द्रोण की ओर बढ़ते देखकर शिखंडी, उसका पुत्र क्षत्रवर्मा, वसुदान, उत्तमौजा, सात्यकि, युधामन्यु, चेकितान, धृष्टद्युम्न सब ने ही द्रोण को घेरने का प्रयत्न किया। धृष्टद्युम्न चाहता था कि वे लोग द्रोण और युधिष्ठिर के बीच इस प्रकार प्राचीर वन जाएँ कि द्रोण न आगे बढ़ सकें और न युधिष्ठिर को सम्मुख खड़े देखकर वहाँ से हट सकें। उन्हें इस प्रकार कीलित कर, धृष्टद्युम्न उन्हें बंदी भी कर सकता था और उनका वध भी संभव था।

पर तब तक कौरव सेना ने अपने सेनापति के लिए नया रथ प्रस्तुत कर दिया था। द्रोण फिर से आत्मवल से भर उठे थे। उनके सम्मुख उनके शत्रु पांचाल खड़े थे। द्रोण का भयंकर रूप प्रकट हुआ। उनकी वाण-वर्षा अजस्र थी। वे सवको दवाकर फिर से युधिष्ठिर की ओर बढ़ रहे थे।'''

युधिष्ठिर को सूचना मिली कि भौमासुर के पुत्र प्राग्ज्योतिषपुर के अधिपति भगदत्त की गजसेना ने भीम को घेर लिया था। उसके गजों के सम्मुख असमर्थ होकर अथवा द्रोण को घेरने में अपने महारथियों की सहायता करने के लिए पांचाल सेना भीम को अकेला छोड़ गई थी। भीम अकेला ही उन युद्धक गजों से लड़ने का प्रयत्न कर रहा था। भगदत्त के हाथी ने भीम के रथ को चूर-चूर कर दिया था और भीम उस हाथी के नीचे छुप कर अंजलिकावेध से हाथी को प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रहा था। वह इस प्रतीक्षा में था कि पांडव सेना का कोई हाथी वहाँ आकर भगदत्त के गज से उसकी रक्षा करे।

दूसरे दूत ने युधिष्ठिर को बताया कि उसने देखा था कि "मध्यम पांडव हाथी के नीचे से निकल आए थे। वे उसके सम्मुख खड़े हो गए थे। हाथी ने उन्हें पैरों से कुचलने का प्रयत्न किया था।" उसके पश्चात् दूत समझ नहीं सका था कि किस युक्ति से भीम उससे बच गए थे किंतु उस गज ने उन्हें अपनी सूंड में जकड़ लिया था।

तीसरे दूत ने सूचना दी कि भीम को हाथी ने अपनी सूंड़ में लपेट तो लिया था किंतु वह उनकी हत्या नहीं कर पाया था। दूत ने स्वयं देखा था कि भीम उसकी सूंड़ से छूट कर अपनी रक्षा के लिए इधर-उधर दौड़ रहे थे, पर उनको अभी कोई सुरक्षित स्थान मिला नहीं था।"'

एक ओर युधिष्ठिर की अपनी सुरक्षा का प्रश्न था और दूसरी ओर भीमसेन जैसे भाई और योद्धा की सुरक्षा की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। द्रोण बहुत समर्थ थे तो भगदत्त भी दुर्बल नहीं था। केवल भगदत्त और भीम की बात होती तो शायद वे भीम को स्वयं ही निबट लेने देते, किंतु भगदत्त के पास पूरी सेना और अनेक युद्धक गज थे। भगदत्त स्वयं न लड़कर अपने हाथी को भीम से लड़वा रहा था। भीम एकदम अकेला पड़ गया था। सूचना भी बहुत स्पष्ट नहीं थी। संभव है कि अब तक भीम युद्ध में खेत ही रहा हो और संदेशवाहक ने सूचना की कठोरता कम करने के लिए उन्हें स्पष्ट न बताया हो।"'

युधिष्ठिर अब और नहीं रुक सकते थे। यदि भीम अभी जीवित है तो उसकी रक्षा करनी होगी और यदि वह वीरगति को प्राप्त हो गया है तो उसका प्रतिशोध लेना होगा।

पांचाल सेना को साथ लेकर युधिष्ठिर ने भगदत्त को घेर लिया। युयुत्सु उनके साथ था। पर युयुत्सु की वीरता और साहस के होते हुए भी वह भगदत्त का तोड़ नहीं था। भगदत्त ने पहले ही झपाटे में युयुत्सु के अश्वों और सारथि को मार डाला। युयुत्सु के उस संकट में अभिमन्यु निकट आ गया। युयुत्सु तत्काल अभिमन्यु के रथ पर चला गया।

भगदत्त का ध्यान भीम की ओर से हटकर युधिष्ठिर पर केंद्रित हो गया था। भीम भी उसके पंजे से निकलकर अभिमन्यु और युधिष्ठिर के निकट आ गया था; किंतु यह स्पष्ट था कि भगदत्त को रोकना उनके लिए सरल नहीं होगा।

एक दूत अर्जुन के पास भी आया। दूत को देखते ही अर्जुन का मन सशंक हो उठा। कहीं धर्मराज के साथ तो कोई अघटनीय नहीं घट गया।··· पर नहीं। दूत भगदत्त के माध्यम से भीम पर आए संकट की सूचना लाया था।

यह वैसा संकट नहीं था किंतु अर्जुन भगदत्त की भी उपेक्षा नहीं कर सकता था। उसका मन चंचल हो उठा।

"संशप्तक तो भाग गए हैं केशव ! हम भगदत्त के पास ही चलें।"

"चलो।" कृष्ण ने रथ मोड़ा।

किंतु अर्जुन को लौटते देखकर जाने कहाँ से संशप्तक प्रकट हो गए। वे शायद किसी गुप्त आक्रमण की योजना बना रहे थे। वह संभव नहीं हुआ तो उन्होंने प्रत्यक्ष आक्रमण कर दिया। इस बार का आक्रमण पिछले आक्रमण से भी अधिक भयंकर था। उसका प्रभाव कृष्ण पर भी हुआ था। उनका शरीर जैसे शिथिल हो गया था और उन पर मोह सा छा गया था। अर्जुन का धैर्य चुक गया। उसने गांडीव पर लघु ब्रह्मास्त्र रखा और संशप्तकों पर छोड़ दिया। सामान्यतः वह इस अस्त्र का प्रयोग नहीं ही करता, किंतु वह अकेला था और संशप्तक सहस्रों की संख्या में। उस पर वे केशव को पीड़ित कर रहे थे। अर्जुन इसकी अनुमति नहीं दे सकता था। लघु ब्रह्मास्त्र का वेग संशप्तक सेना नहीं झेल पाई। उनमें से कुछ गिरते और शेष भागते दिखाई दिए। कृष्ण पर छाया मोह भी छँट गया। उन्होंने प्रशंसापूर्ण भाव से अर्जुन की ओर देखा, "धनंजय ! आज तो तुम्हारा कौशल इंद्र से भी बढ़ गया लगता है।"

"अब भगदत्त के पास चलिए।" अर्जुन ने कहा, "ऐसा न हो कि हमें विलंब हो जाए।"

रथ पुनः मुड़ा और सुशर्मा प्रकट हो गया। उसके साथ उसका भाई सत्यरथ भी था। उसने पीछे से बाण छोड़ा और बोला, "कायर के समान कहाँ भागा जा रहा है अर्जुन ! पहले मुझसे युद्ध कर।"

अर्जुन के मन में खीज जन्मी··· इस कायर को देखो। एक ओर तो संशप्तक युद्ध करने आया है और दूसरी ओर निमिष भर में युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग जाता है।··· उस पर अर्जुन को कायर कह रहा है।··· उधर युधिष्ठिर और भीम पुकार रहे थे और इधर यह दुष्ट उसे रोक रहा था। धर्मराज का विचार ठीक ही था, सुशर्मा उससे युद्ध करने नहीं आया था, वह तो केवल उसे मुख्य युद्धक्षेत्र से दूर रखना चाहता था, ताकि वहाँ द्रोण अपनी मनमानी कर सकें।···

कृष्ण ने रथ लौटाया। सुशर्मा के बाण बहुत प्रभावी नहीं थे। उसके बाणों के उत्तर में अर्जुन ने बाणों की एक झड़ी छोड़ी। सुशर्मा घायल हुआ उसका ध्वज और धनुष दोनों ही कट गए थे। उसके भाई पर अर्जुन ने सात बाण छोड़े। उसके सारथि और अश्वों को मार डाला और अंतिम बाण से बिंध कर सत्यरथ भी अपने रथ से नीचे आ गिरा।

सुशर्मा ने यह सब देखा और सर्प के आकार की एक शक्ति अर्जुन पर दे मारी। उसने कृष्ण पर तोमर से प्रहार किया। अर्जुन ने अपने बाणों से शक्ति और तोमर को रास्ते में ही काट दिया और अंतिम बाण सुशर्मा को मारा।

सुशर्मा का रथ फिर पीछे की ओर चला गया। संभवतः वह पीछे के वन में कहीं लुप्त हो गया था।

"चलिए केशव ! इस बार यह प्रकट होकर पुकारे भी तो नहीं रुकना है।" अर्जुन बोला, "यह योद्धा नहीं छलावा है। मुझे क्षत्रियों का धर्म सिखाता है और स्वयं केवल कपट युद्ध करता है।"

कृष्ण रथ को ऐसे चला रहे थे कि वह रथ न हो गरुड़ हो। कौरव सेना को रौंदते हुए वे दोनों भगदत्त के निकट आए। युद्ध अभी चल रहा था। युधिष्ठिर, भीम, अभिमन्यु तथा युयुत्सु सभी सुरक्षित थे और युद्ध कर रहे थे। अर्जुन ने जैसे पलक झपकते ही अपने बाणों की झड़ी से भगदत्त की सेना छिन्न-भिन्न कर दी थी। भगदत्त की सेना कदाचित् धनुष बाण के युद्ध में दक्ष नहीं थी। सेना भाग गई थी और भगदत्त अपने हाथी पर अकेला खड़ा था। फिर भी उसने अपने बाणों से अर्जुन और कृष्ण को आहत कर दिया था।

अर्जुन को अपने गांडीव पर बाण चढ़ाते देख भगदत्त मुस्कराया और उसने अपना हाथी आगे बढ़ाया। उसका हाथी सुप्रतीक उनके बहुत निकट आ गया था। कदाचित् वह बाणों का युद्ध नहीं चाहता था। तो ? और सहसा कृष्ण का ध्यान इस ओर गया कि वह अपने हाथी से उनका रथ कुचल देना चाहता था। हाथी इस कला में दक्ष प्रतीत होता था। उसने अपना पैर उठाया ही था कि कृष्ण ने रथ को दाहिने कर उससे दूर हटा लिया।

"अर्जुन ! यदि उसके हाथी का पैर हमारे रथ पर पड़ गया तो अश्वों सहित रथ बैठ जाएगा।" कृष्ण बोले, "अब तुम भगदत्त की क्रीड़ा समाप्त करो।"

अर्जुन ने भगदत्त की ओर देखा। उसने अपने लंबे केश एक सुनहरी पट्टी से बाँध रखे थे। अर्जुन ने एक बाण से उसकी वह सुनहरी पट्टी काट दी। भगदत्त के केश उसके मुख पर आ गिरे। उसकी आँखें बंद हो गईं थीं। अर्जुन का अगला बाण उसके वक्ष को चीर गया और भगदत्त अपने हाथी से नीचे आ गिरा।

पांडव सेना ने हर्ष का चीत्कार किया और युधिष्ठिर तथा भीम आतुरता से अर्जुन की ओर लपके। बड़ी देर के पश्चात् युधिष्ठिर के चेहरे पर निश्चिंतता की मुस्कान आई थी।

8

दुर्योधन भीतर ही भीतर क्रोध से उफन रहा था।

"आप स्पष्ट ही क्यों नहीं कह देते आचार्य ! कि आप हमारी गणना अपने शत्रुओं में करते हैं।" वह बोला, "आपका व्यवहार मेरे लिए अबूझ होता जा रहा है। आप मुझे वर तो देते हैं किंतु उसको पूरा नहीं करते। वर लौटा लेने का क्या अर्थ ? मैंने आपको वर देने को बाध्य तो नहीं किया था।..."

"मैंने वर लौटाया नहीं है।" द्रोण बोले, किंतु उनके स्वर में लज्जा का भाव स्पष्ट ही था, "तुमने स्वयं देखा होगा; और चाहो तो अपने मित्रों से भी पूछ सकते हो कि मैं अपने पूरे सामर्थ्य से प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"आप प्रयत्न कर रहे होते तो इतनी बड़ी कौरव सेना और इतने महारथियों के होते हुए एक युधिष्ठिर को न पकड़ पाते ? वह कोई ऐसा असाधारण योद्धा तो है नहीं। कौन विश्वास करेगा आपके इस प्रयत्न का ?"

"मुझे असमर्थ मान लो, किंतु मेरे प्रयत्न पर संदेह मत करो।" द्रोण बोले, "मैंने कल भी यही कहा था कि अर्जुन को युद्ध से दूर रखो आज भी वही कह रहा हूँ। तुमने वचन दिया था कि ऐसा ही होगा। तो फिर अर्जुन ठीक समय पर समरभूमि में उपस्थित कैसे हो जाता है ?"

दुर्योधन को लगा कि द्रोण का संकोच और उनकी वह लज्जा कहीं तिरोहित हो गई है। अपनी असफलता से अधिक वे सुशर्मा की दायित्वहीनता से क्रुद्ध थे।

दुर्योधन के मन में सुशर्मा के लिए अनेक अपशब्द थे।... बहुत वीर बनता था और संशप्तक युद्ध करने चला था। अच्छा संशप्तक है कि न स्वयं खेत रहा, न बंदी हुआ; और अर्जुन को मुक्त छोड़ दिया। अर्जुन युद्ध में लौट आया। उसने भगदत्त का वध कर दिया और भीम तथा युधिष्ठिर को सकुशल निकाल ले गया।... इस युद्ध में किसका विश्वास करे दुर्योधन !

आज के कर्ण के युद्ध से भी वह प्रसन्न नहीं था।... कर्ण का युद्ध में आना अंधकार में सूर्य के अवतरित होने के समान होना चाहिए था। पर वह तो इधर-उधर कुछ बाण फेंकता रहा। कुछ छोटे-मोटे सेनानायकों को मारता रहा। अपने पक्ष के कुछ छोटे-मोटे योद्धाओं की रक्षा करता रहा। न उसने अर्जुन का ढंग से सामना किया, न किसी और योद्धा का। अर्जुन के सामने पड़ा तो कोई बवंडर नहीं उठा और तब तक धृष्टद्युम्न, सात्यकि और भीम भी आ गए थे। कर्ण ने उनके धनुष तो काट दिए, पर उससे अधिक कुछ नहीं... उन तीनों ने शक्ति से उस पर प्रहार किया। कर्ण ने उनकी शक्तियों का निवारण कर अर्जुन को बाण मारे तो अर्जुन ने उसके देखते-देखते उसके छोटे भाई का वध कर, उन बाणों का उत्तर दे दिया। उसका प्रतिशोध लेने के लिए कर्ण के दो भाई शत्रुंजय और विपाट आए तो उनका भी वध कर दिया।... क्या हो गया है इस कर्ण

को ? उसकी आँखों के सम्मुख अर्जुन ने उसके तीन-तीन भाइयों का वध कर दिया और वह अपना धनुष पकड़े खड़ा रहा और इधर-उधर बाण फेंकता रहा। यदि द्रोण और जयद्रथ के साथ स्वयं दुर्योधन वहाँ न पहुँचा होता तो अर्जुन की सहायता से धृष्टद्युम्न, सात्यकि, और भीम ने कर्ण को मार ही डाला होता।''' इस कर्ण से तो वह वृद्ध भीष्म ही अधिक प्रभावशाली था।'''

"अर्जुन संशप्तकों को छोड़कर युद्ध में कैसे आ गया, उसको भी देखूँगा मैं।" दुर्योधन बोला, "किंतु हमारी सारी योजनाएँ शत्रुओं की गतिविधि पर ही निर्भर नहीं होनी चाहिए, कुछ अपने बल पर भी होनी चाहिए। यदि शत्रु हमारी अपनी इच्छा के अनुसार काम नहीं करता तो क्या हम अपना कोई लक्ष्य प्राप्त ही नहीं कर पाएँगे ?"

द्रोण सिर झुकाए बैठे रहे और कुछ सोचते रहे।

यह बुड्ढा अब यहाँ सिर झुकाकर ऐसे बैठा रहेगा, जैसे कोई महान् चिंतन कर रहा है।''' नहीं ! शोक की मुद्रा में है। युद्ध में वीरगति प्राप्त मृतकों का शोक कर रहा है। नहीं ! उससे तो चिंतन वाली बात ही अधिक रोचक है।''' दुर्योधन की इच्छा हुई कि पुकारकर सबको बुला ले और कहे,''' देखो अभी यहाँ एक नए वेद का सृजन होने वाला है। आचार्य चिंतन कर रहे हैं।'''

सहसा द्रोण ने सिर उठाया, "दुर्योधन !"

"हाँ गुरुदेव !" दुर्योधन ने हाथ जोड़ दिए, किंतु कोई भी समझ सकता था कि वह द्रोण का उपहास कर रहा था।

"यदि तुम्हारे संशप्तक अपने प्राण दे कर भी कल अर्जुन को युद्धभूमि से दूर रख सकें तो कल कुछ न कुछ तुम्हारी इच्छानुकूल अवश्य होगा।"

"क्या होगा ?"

"कल मैं चक्रव्यूह की रचना करूँगा।" द्रोण बोले।

"तो उससे क्या हो जाएगा ?" दुर्योधन का स्वर अब भी बहुत कड़वा था।

द्रोण का मन विक्षिप्त-सा हो उठा : द्रुपद के व्यवहार से पीड़ित होकर वे इसलिए तो हस्तिनापुर नहीं आए थे कि यहाँ उनको अपने शिष्य के हाथों वही व्यवहार मिले। पर युद्ध की स्थिति थी और वे अपने उन्माद में दुर्योधन को वर दे कर स्वयं ही इस जाल में फँस गए थे। अब धैर्य तो रखना ही पड़ेगा।

"मेरी सूचना के अनुसार पांडव सेना में चक्रव्यूह का वेधन केवल अर्जुन और कृष्ण कर सकते हैं। यदि वे दोनों अनुपस्थित हों तो उनकी सेना में चक्रव्यूह का वेधन करने वाला कोई नहीं है।" द्रोण बोले।

"पहले तो केवल अर्जुन के अनुपस्थित होने की बात थी, अब कृष्ण भी ?"

"वे दोनों जहाँ भी होंगे, साथ ही होंगे।" द्रोण बोले।

"नहीं भी हो सकते।" दुर्योधन खीज कर बोला, "कल अर्जुन किसी और सारथि को अपने साथ ले ले अथवा कृष्ण ही उसका रथ न हाँके तो हम क्या कर लेंगे ?

क्या हम कृष्ण को बाध्य कर सकते हैं कि वह अर्जुन का रथ हाँके ही ?''

''नहीं ! ऐसा कुछ नहीं है।'' द्रोण बोले, ''पर सामान्यतः वे दोनों जहाँ भी होंगे, एक साथ ही होंगे।''

''ठीक है।'' दुर्योधन बोला, ''वे दोनों नहीं होंगे तो कोई चक्रव्यूह का वेधन नहीं कर पाएगा। तो उससे क्या ? चक्रव्यूह बना खड़ा रहेगा। वह भंग नहीं होगा, उसका वेधन नहीं होगा। पर उससे हमें क्या मिलेगा।''

''तुम तनिक धैर्य से सुनो राजन् !'' द्रोण का तेज जागा··· यह दुर्योधन तो सारी मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहा है। सत्ता के मद में उन्मत्त बैठा है। भूल गया है कि युद्धकाल में सारी सेना सेनापति की आज्ञा के अधीन होती है।

''चक्रव्यूह एक यंत्र के समान आगे बढ़ेगा। अपने ही स्थान पर खड़ा नहीं रहेगा। यदि कोई उसका वेधन नहीं करेगा तो चक्रव्यूह उनका वेधन कर जाएगा। पांडव सेना समरभूमि छोड़कर भाग जाए तो बात और है, अन्यथा उन्हें अपने सैनिकों की रक्षा के लिए चक्रव्यूह से जूझना ही पड़ेगा। नहीं जूझेंगे तो वह चक्र के समान उन्हें कुचलता जाएगा। ऐसे में युधिष्ठिर न आए, भीम आएगा, नकुल आएगा, सहदेव आएगा, धृष्टद्युम्न आएगा, शिखंडी आएगा। कोई तो आएगा ही। तुम्हें अपने शत्रुओं में से किसी महत्त्वपूर्ण योद्धा के धराशायी होने का समाचार अवश्य मिलेगा।''

''आप वचन देते हैं ?'' दुर्योधन का मन कुछ-कुछ स्वस्थ होने लगा था।

''प्रत्येक बात पर वचन माँगते हो, प्रतिज्ञा करवाते हो।'' द्रोण भी कुछ वक्र होकर बोले, ''पर भूल जाते हो कि अपना वचन तुम पूरा नहीं कर रहे हो।''

''नहीं ! आज मैं सुशर्मा को भी उसका कर्तव्य अच्छी तरह स्मरण करा दूँगा।'' दुर्योधन बोला, ''आप अपना वचन पूरा करें।''

''जब खुल कर इतनी बात हो ही रही है तो मैं यह भी कह दूं कि तुम्हारे योद्धाओं से अर्जुन तो क्या भीम भी नहीं सँभलता। और तो और वह बालक अभिमन्यु भी जहाँ आ जाता है, तुम्हारे शूरवीर वहाँ से भी पलायन आरंभ कर देते हैं।'' द्रोण के स्वर में भी कड़वाहट उतर आई थी, ''कर्ण ने दिन भर में क्या किया ? विकर्ण ने क्या किया ? कृतवर्मा कहाँ था ? शल्य और जयद्रथ क्या करते रहे ? भगदत्त अपने हाथियों को लड़वाता रहा। स्वयं लड़ने का अवसर आया तो आँखों पर पट्टी बाँध कर सो गया।'' द्रोण ने एक भरपूर दृष्टि दुर्योधन पर डाली, ''सारा कुछ सेनापति के किए ही नहीं होता; और लोगों को भी युद्ध करना पड़ता है। मुझे लगता है कि कर्ण अब इस प्रतीक्षा में है कि मैं भी वीरगति पा लूँ तो वह प्रधान सेनापति बने और युद्ध करे। सैनिकों और सेनापतियों की मैं कुछ नहीं कहता, किंतु राजा तो तभी जीतता है, जब अपने-अपने स्थान पर प्रत्येक सैनिक लड़ता है। सैनिकों को तो जाने दो, सारथि और अश्व भी अपना कर्तव्य न करें तो राजा को पराजय का मुँह देखना पड़ता है।'' द्रोण निर्णायक स्वर में बोले, ''मैंने अपनी असफलता के लिए तुम्हारा क्रोध बहुत झेला है, किंतु तुम्हें ज्ञात होना

चाहिए कि केवल द्रोण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य के युद्ध से ही तुम्हें विजय नहीं मिलेगी। कल यदि अर्जुन फिर युद्धभूमि में उपस्थित हो गया तो मुझे अपनी नीति बदलनी पड़ेगी···। अपमान सहने की भी एक सीमा होती है।''

द्रोण उठकर जाने लगे, पर सहसा रुककर बोले, ''चाहो तो यह सूचना भी पांडवों तक पहुँचा दो कि मैं कल चक्रव्यूह की रचना करने वाला हूँ, ताकि वे लोग अर्जुन को संशप्तक युद्ध के लिए जाने से रोक लें और वह चक्रव्यूह का वेधन करने के लिए उपस्थित रहे।''

वे मंडप से बाहर चले गए।

दुर्योधन द्रोण को जाते हुए चुपचाप देखता रहा। जाने क्यों इस समय उसे द्रोण का क्रोध बुरा नहीं लगा था।··· बुड्ढा बुरा मान गया है।··· वह सोच रहा था··· पर कुछ न कहो तो ये लोग आवेश में ही नहीं आते। पितामह को भी जब वह कुछ कहता था तो पितामह रुष्ट होकर और भी भयंकर युद्ध करते थे। वही बात आचार्य के साथ भी है। इनकी बूढ़ी हड्डियों को सेंकते रहना पड़ता है। कुछ न कहता तो ये चक्रव्यूह भी न रचते। अब कह दिया तो रुष्ट होकर उन्हें स्मरण हो आया कि चक्रव्यूह भी रचा जा सकता है।··· पर यह सुशर्मा···

''द्वारपाल !'' दुर्योधन ने पुकारा।

''महाराज !'' द्वारपाल प्रकट हुआ।

''किसी को भेजो, जाकर त्रिगर्तराज सुशर्मा को बुला लाए।''

द्वारपाल चला गया। सुशर्मा ने आने में अधिक विलंब नहीं किया।

दुर्योधन ने उसे देखा : वह अब भी संशप्तक योद्धा के ही वेश में था।

''क्यों तुम्हारी शपथ पूरी हो गई ?''

''नहीं महाराज !'' सुशर्मा बोला, ''अर्जुन युद्ध छोड़कर भाग आया।''

''और तुमने उसे रोकना उचित नहीं समझा ?'' दुर्योधन की वाणी वक्र हो गई, ''सोचा होगा, एक कायर युद्ध छोड़कर भाग रहा है, उसे रोकने से तुम्हारी वीरता कलंकित होगी।''

''नहीं मित्र ! ऐसी बात तो नहीं है।''

''तो क्या बात है ?''

''उसने लघु ब्रह्मास्त्र चला दिया। उसके सम्मुख हमारे योद्धा टिक नहीं पाए। कुछ मारे गए और कुछ भाग गए।'' सुशर्मा बोला, ''मुझे भी पीछे हट जाना पड़ा।''

''यह नहीं कहते कि तुम अर्जुन से भयभीत होकर युद्ध से पलायन कर वन में कहीं छिप गए। जब अंधकार हो गया और तुम्हें विश्वास हो गया कि अर्जुन लौट गया होगा, आज का युद्ध समाप्त हो गया होगा तो तुम चुपके से अपने शिविर में आकर बैठ गए। ऐसे ही होते हैं वीर संशप्तक योद्धा और यही है तुम्हारी शपथ ?'' दुर्योधन का स्वर कठोर हो गया था, ''जो-जो सुविधाएँ तुमने मुझसे माँगीं मैंने तुम्हें दीं। नारायणी

सेना के इतने सैनिक भी तुम्हें दिए।''' और तुम हो कि न तुम अर्जुन को मार सके और न अपने प्राण ही दे सके ?''

सुशर्मा हतप्रभ खड़ा रह गया। वह दुर्योधन से इस प्रकार के संवाद की अपेक्षा नहीं कर रहा था। वह अपनी स्तब्धावस्था से उबरा तो उसका क्षोभ भी भड़क उठा, ''हमने दो बार तो उन दोनों को लगभग मूर्च्छित ही कर दिया था; पर अर्जुन के पास देवास्त्र हैं। हम उसके सामने क्या कर सकते थे।''

''उसके पास देवास्त्र न होते तो वह अकेला तुम्हारे सहस्रों योद्धाओं से युद्ध करने क्यों चल देता ? वह विक्षिप्त है या उन्मत्त है ? तुम चाहते हो कि वह साधारण धनुष-बाण लेकर तुमसे लड़ने के लिए अकेला आए और तुम चौदह सहस्र सैनिक लेकर उसे मार डालो ? क्यों ? तब उसके भाई नहीं आएँगे ? उसके साथ सेना नहीं होगी ? वे सब आएँगे तो तुम रोक लोगे उनको ?''

''पर यह तो कोई युद्ध न हुआ।'' सुशर्मा का स्वर रुदन के निकट पहुँच चुका था।

''तो और युद्ध क्या होता है,-अकेले निहत्थे व्यक्ति का चौदह सहस्र योद्धाओं से युद्ध ?'' दुर्योधन ने उसे घूरकर देखा, ''इतनी ही समझ है तुम्हें युद्ध की और युद्ध की शपथ की ? यदि अकेले ही लड़ना है, बिना अस्त्रों के लड़ना है तो जाओ, उस मोटे भीम को पुकार लो। वह बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के आएगा और तुम्हारी ग्रीवा मरोड़कर तुम्हारी हथेली पर धर कर चला जाएगा।''

''तो आप चाहते हैं कि हम व्यर्थ में ही अपने प्राण दे दें ?''

''जो योद्धा कभी कीचक से भी न जीत पाया हो, वह जब अर्जुन को चुनौती दे तो उसे कुछ सोच-विचार भी लेना चाहिए। यह तुम्हें सोचना था कि तुम्हें प्राण देने हैं या नहीं। देने हैं तो व्यर्थ में देने हैं या उसका मूल्य वसूलना है।'' दुर्योधन ने उसे देखा, ''तुम क्या समझ रहे थे कि तुम राजा विराट से युद्ध करने जा रहे थे कि गए और उसे घसीट लाए।''

सुशर्मा के सम्मुख दुर्योधन का यह रूप पहले कभी नहीं आया था। वह अवाक् खड़ा उसे देखता रहा। फिर बोला, ''हाँ ! मुझे यह पहले ही सोचना चाहिए था कि मैं अपना युद्ध नहीं लड़ रहा। मैं हस्तिनापुर के राजा दुर्योधन का युद्ध लड़ रहा हूँ। मुझे ज्ञात होना चाहिए था कि मेरे स्वामी की मुझसे क्या अपेक्षा है।''

''इन सब उपालंभों का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।'' दुर्योधन बोला, ''यह तो समरभूमि है। यहाँ केवल वीरता का मोल है। शपथ लेकर भी युद्ध करने गई सेना इस प्रकार भाग जाए और शत्रु को सुरक्षित लौट आने दे, यह लज्जाजनक प्रसंग है। उसके लिए किसी का सम्मान नहीं होता।''

''तो अब क्या चाहते हैं आप ?''

''एक तो अपने ये तेवर छोड़ो।'' दुर्योधन ने उसी प्रकार कटु स्वर में कहा, ''इतने

वीर सिद्ध नहीं हुए तुम कि कोई राजा तुम्हारा बहुत अधिक मोल आँके।"

सुशर्मा ने कुछ नहीं कहा। वह चुपचाप सिर झुकाए बैठा रहा।

"अब कल के लिए अपना कर्तव्य सुनो।" दुर्योधन ने कहा, "सैनिक चाहे और अधिक ले जाना। जो मर गए सो मर गए। अर्जुन तुम्हारे सैनिक गिनने नहीं आएगा कि कौन मर गया था और कौन जीवित था। अर्जुन को जितनी दूर ले जा सको, ले जाओ। चाहो तो सरस्वती के भी पार ले जाओ। उस पर इतना बड़ा आक्रमण मत करो कि उसे देवास्त्रों का प्रयोग करना पड़े। छोटे-छोटे आक्रमण करो। स्पष्ट है कि तुम उसका वध नहीं कर सकते, इसलिए उसे उलझाए रहो। मन में स्पष्ट कर लो कि तुम उसकी हत्या करने नहीं, उसे मुख्य रणक्षेत्र से दूर रोके रखने के लिए लगाए गए हो। छोटे आक्रमण करो, किंतु दिन भर आक्रमण करो। निरंतर आक्रमण करो। कोई न कोई टोली हर समय उसके सम्मुख होनी चाहिए। सौ दो सौ सैनिकों के लिए वह देवास्त्रों का प्रयोग नहीं करेगा। वह संध्या तक वहाँ से हिल नहीं पाए।"

"ऐसा ही होगा।"

"एक बात और।" दुर्योधन पुनः बोला, "उसे इतनी दूर ले जाओ कि पांडवों का कोई संदेशवाहक वहाँ तक न पहुँचे और इस बात के लिए सावधान रहो कि यदि कोई संदेशवाहक वहाँ तक पहुँचता है तो उसका वध होना चाहिए।" दुर्योधन ने उसे घूरकर देखा, "यह मत कहना कि यह युद्ध के नियमों के विरुद्ध है। युद्ध जीतना हो तो उसके लिए अपने अनुकूल नियम बनाए जाते हैं। पांडवों का कोई संदेशवाहक अर्जुन तक नहीं पहुँचना चाहिए। उसे मुख्य युद्धक्षेत्र में घटित किसी घटना का समाचार नहीं मिलना चाहिए। यदि कल सूर्यास्त से पूर्व अर्जुन समरभूमि में लौट आया तो फिर तुम्हारे लिए मुझसे बुरा कोई नहीं होगा।"

सुशर्मा ने दुर्योधन की ओर देखा भर। कहा कुछ भी नहीं। उसके मन में एक चित्र उभर रहा था।...

वन में एक मेमना अकेला, स्वच्छंद घूम रहा था। एक व्याध ने उसे देखा और कहा, "तुम वन में इस प्रकार स्वच्छंद घूम रहे हो। अभी कोई वृक अथवा व्याघ्र आ जाएगा तो तुम्हें चीर-फाड़कर खा जाएगा। तुम अपनी सुरक्षा के लिए चिंतित नहीं हो ?"

"मैं क्या कर सकता हूँ। मैं व्याघ्रों और वृकों से लड़ तो नहीं सकता। उनको देखकर भाग ही तो सकता हूँ। वही करता हूँ और वही करूँगा।"

"तुम मेरे साथ आ जाओ।" व्याध ने कहा, "देखो, मेरे पास एक सुरक्षित भवन है। व्याघ्र और वृक उसमें प्रवेश नहीं कर सकते। मेरे पास धनुष-बाण है। मैं एक बाण में व्याघ्र के प्राण ले सकता हूँ। तुम मेरे साथ आ जाओ। मैं तुम्हारा पालन-पोषण करूँगा।"

मेमना उसके साथ चला आया। व्याध ने उसके गले में रस्सी बाँध दी।

"यह क्या कर रहे हो ?" मेमने ने पूछा, "इससे तो मेरी स्वच्छंदता ही समाप्त हो जाएगी। मैं अपनी रक्षा के लिए भाग भी नहीं सकूँगा।"

"उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।" व्याध ने कहा, "तुम्हारे गले में बँधी रस्सी को देखकर व्याघ्र स्वयं समझ जाएगा कि तुम मेरे हो। मेरे पालतू हो। मेरी रक्षा में हो।"

मेमना मान गया। उसके मन में यह बात आई ही नहीं कि यदि वह नहीं भी मानेगा तो अब व्याध उसके गले से रस्सी खोल कर उसे स्वतंत्र करने से तो रहा।

व्याध ने व्याघ्र के आखेट की तैयारी की। वह स्वयं अपने धनुष-बाण के साथ ऊपर मचान पर चढ़ गया और मेमने को नीचे वृक्ष के तने के साथ बाँध दिया।

"मुझे भी अपने साथ ऊपर मचान पर बैठा लो।" मेमने ने कहा, "मैं भी व्याघ्र को मरते हुए देखना चाहता हूँ।"

"तुम नीचे बँधे हुए दिखाई नहीं दोगे तो व्याघ्र मेरे निकट आएगा ही क्यों ? और व्याघ्र आएगा नहीं तो मैं मारूँगा किसे ?" व्याध ने हँसकर कहा।

... मेमने ने देखा, व्याध का चेहरा व्याघ्र से भी अधिक भयानक लग रहा था।

न जाने क्यों सुशर्मा को उस मेमने के चेहरे में अपना ही प्रतिरूप दिखाई पड़ रहा था।...

प्रातः अभी युद्ध के लिए सेनाएँ सज्जित ही हो रही थीं कि द्वारपाल ने अर्जुन को सूचना दी कि त्रिगर्तराज सुशर्मा बाहर खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

अर्जुन को आश्चर्य हुआ : सुशर्मा ? इस समय ? पांडवों के शिविर में, उसके मंडप के बाहर ? क्या वह कोई छद्म आघात करना चाहता है ? क्या वह कोई षड्यंत्र रच रहा है ? यह भी कोई शकुनि है क्या ?... पर नहीं । वैसा कुछ होता तो वह इस प्रकार सूचना क्यों भेजता ? खुले रूप में इस प्रकार पांडवों के शिविर में क्यों आता ?... तो क्या वह दुर्योधन से रूठकर उनके पक्ष में आ गया है ?... पर नहीं ! ऐसा कुछ होता तो वह भी युयुत्सु के ही समान युद्ध से पहले उनकी ओर आ जाता। किंतु सुशर्मा, युयुत्सु नहीं है। बहुत अंतर है दोनों में...

अर्जुन के मन में द्वंद्व था—सुशर्मा को अपने द्वार पर आया अतिथि मान कर, बाहर निकल अर्जुन को उसका स्वागत करना चाहिए ? अथवा उसे अपने मंडप में प्रवेश की अनुमति भर देनी चाहिए और प्रतीक्षा करनी चाहिए ?

"राजकुमार !" द्वारपाल ने कहा, "त्रिगर्तराज ने कहा है कि वे शत्रु के शिविर में तो आ गए हैं; किंतु उसके मंडप में प्रवेश नहीं करेंगे। वे तो केवल आपको युद्ध के लिए ललकारने आए हैं।"

अर्जुन के मन में बहुत सारी बातें स्पष्ट हो गईं। वह बाहर निकल आया।

"क्यों ? कल युद्ध से भाग क्यों आए ?" सुशर्मा ने कहा, "मुझे मरा हुआ समझ लिया था ? मैं बताने आया हूँ कि मैं अभी जीवित हूँ और अपनी शपथ पर स्थिर हूँ। तुममें साहस हो तो हमारे साथ युद्ध करने के लिए आओ।"

अर्जुन की इच्छा हुई कि सुशर्मा के इस नाटक पर उच्च स्वर में हँसे।

"भाग मैं आया था या तुम कहीं विलुप्त हो गए थे ? मुझे तो लगता है कि तुम

किसी अन्य मार्ग से भाग कर अपने शिविर में जा छिपे थे।" अर्जुन बोला, "वीर तो तुम नहीं ही हो; आज तुम्हें बता दूँ कि तुम निर्लज्ज और मिथ्याभाषी भी हो।"

"तुम्हारे शिविर में खड़ा हूँ, इसलिए जो कहना है कह लो।" सुशर्मा बोला, "पर तुम्हें यह भी जानना चाहिए कि मैं विलुप्त नहीं हो गया था। न ही अपने शिविर में जा छिपा था।" सुशर्मा बोला, "मैं शिथिल होकर वहीं वन में पड़ा था। तुम्हें ढूँढ़ना चाहिए था कि मैं कहाँ हूँ। चाहे उसके वाद मेरा वध ही कर देते। पर युद्धक्षेत्र से इस प्रकार भाग जाने का क्या अर्थ ?"

"तुम पांडवों के शिविर में मेरे मंडप के सामने खड़े हो, इसलिए यह सब कह कर भी अभी जीवित हो। हम घर आए व्यक्ति का वध नहीं करते।" अर्जुन बोला, "किंतु आज भी यदि तुम समरभूमि से विलुप्त नहीं हो गए तो तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा। तुम शिथिल ही नहीं, मूर्च्छित होकर गिर भी गए तो तुम्हें ढूँढ़ कर तुम्हारा मस्तक काटूँगा, ताकि तुम्हारी यह जिह्वा फिर किसी को इस प्रकार अपमानित न कर सके।"

"तुम पहले युद्धक्षेत्र में तो आओ।" सुशर्मा वोला, "फिर देखते हैं कि कौन किसका मस्तक काटता है।"

उसने अपना अश्व मोड़ा और बोला, "हम समरभूमि के दक्षिण भाग में होंगे। आओगे तो संग्राम के लिए स्थान का निर्णय कर लेंगे। यह मत कहना कि कुरुक्षेत्र छोड़कर अन्यत्र नहीं जाऊँगा, क्योंकि मेरे भाई यहाँ हैं। अपनी कायरता को छिपाने के कई बहाने वनाए जा सकते हैं।"

सुशर्मा जाने के लिए मुड़ ही रहा था कि कृष्ण आ गए।

"यह क्या करने आया था ?"

"संशप्तक युद्ध के लिए बुलाने आया था।" अर्जुन ने बताया।

"आज फिर ?"

"हाँ ! आज फिर।" अर्जुन ने कहा, "पर आज अंतिम दिन है। यदि आज यह भाग गया तो फिर इसकी चुनौती का कोई अर्थ नहीं होगा।"

"पर आज भी क्यों ?" कृष्ण बोले, "तुमने देखा कि कल भी इसने चतुराई की थी। यह केवल तुम्हें धर्मराज से दूर रखने का एक वहाना मात्र है। संभव है, वे आज भी धर्मराज को वंदी करने का प्रयत्न करें। तुम्हें सावधान रहना चाहिए धनंजय !"

"तुम जानते हो केशव ! कि मैं युद्ध के लिए वुलाए जाने पर पीछे नहीं हट सकता। ऐसा संकल्प है मेरा।"

"संकल्प तो ठीक है किंतु हमारा कोई आदर्श हमारी वंचना का कारण नहीं वनना चाहिए।" कृष्ण वोले, "तुम भूलते हो कि इन छोटे-मोटे बहानों से वे तुम्हें इधर-उधर भटकाते रहेंगे और तुम पांडव सेना के किसी काम के नहीं रहोगे।" और यह स्मरण कराने की आवश्यकता तो नहीं है न कि धर्मराज ने तुम्हारे भरोसे पर ही यह युद्ध स्वीकार किया था।"

"आपने बहुत ठीक प्रश्न किया है देवि !" दूत बोला, "जो कुछ उच्च स्वर में कहा जाता है, वह तो बहुत सारे लोग सुन ही लेते हैं; किंतु कुछ बातें आसपास खड़े सैनिकों से ज्ञात होती हैं। युद्ध की स्थिति में दोनों ओर से अनेक गुप्तचर यह पता लगाने का प्रयत्न कर रहे होते हैं कि शत्रुओं में से किसके मुख में क्या है और किसके मन में क्या है। ऐसे में अनेक गोपनीय बातें भी गोपनीय नहीं रह पातीं। और फिर थोड़ा-बहुत अनुमान और कल्पना का भी सहारा होता है देवि। आवश्यक नहीं कि जो कुछ मैं कहूँ, ठीक वे ही शब्द उन्होंने भी कहे हों; किंतु तात्पर्य तो हम समझ ही सकते हैं।"

"ठीक है। आगे बोलो।" द्रौपदी ने कहा।

"कौरवों की सेना आगे बढ़ रही थी।" दूत बोला, "पांडवों के पास यह विकल्प नहीं था कि वे आगे बढ़ें अथवा न बढ़ें। न ही उनके पास यह विकल्प था कि वे किस ओर से आगे बढ़ें। स्थिति तो यह थी कि या तो कौरव सेना से टकराओ अथवा उसके द्वारा लील लिए जाओ। वह तो जैसे विराट ग्राह के समान लहरों पर तैरती हुई आगे बढ़ रही थी। मुँह खोले हुए। सर्वग्रासी। जो कुछ सामने आएगा उसके उदर में समा जाएगा। न तो उसके सम्मुख स्थिर रहा जा सकता था और न उसके उदर में समाया जा सकता था। उन दोनों का ही अर्थ था : मृत्यु ! एक-एक कर पांडव योद्धा गजसेना की मार न सह सकने के कारण लौट आए।··· सात्यकि, चेकितान, धृष्टद्युम्न, कुंतिभोज, द्रुपद, क्षत्रधर्मा, बृहत्क्षेत्र, युधामन्यु, शिखंडी, उत्तमौजा, विराट, धृष्टकेतु और पाँचों द्रौपदेय गए और जैसे व्यूह से टकराकर लौट आए। मध्यम पांडव भीमसेन ने प्रबल आक्रमण किया किंतु कौरवों के व्यूह में एक खरोंच भी नहीं पड़ी।···

"महाराज युधिष्ठिर बहुत चिंतित थे कि क्या करें ? अभी उनके पक्ष के अनेक योद्धा और थे, किंतु वे जानते थे कि वे भी इसी प्रकार असफल ही लौटेंगे। न तो वे युद्ध का क्षेत्र छोड़ सकते थे और न ही उस बढ़ते हुए लौह यंत्र से टकरा सकते थे। धनंजय किसी अज्ञात स्थान पर संशप्तकों से युद्ध करने चले गए थे। उन तक सूचना भी नहीं पहुँचाई जा सकती थी। और यदि सूचना पहुँच भी जाए तो वे संशप्तक युद्ध छोड़कर नहीं लौटेंगे।··· और आचार्य थे कि निरंतर अपनी सेना को युधिष्ठिर की ओर बढ़ा रहे थे। आज वे धर्मराज को बंदी कर दुर्योधन को सौंप ही देंगे···"

"जब धनंजय जानते थे कि कल आर्य सत्यजित अपने प्राण दे कर भी धर्मराज की रक्षा नहीं कर पाए; सारी सेना मिलकर भी आचार्य का सामना नहीं कर पाई; तो फिर आज धर्मराज और सेना की रक्षा की समुचित व्यवस्था किए बिना वे संशप्तकों से युद्ध करने कैसे चले गए ? उन्हें किसी ने रोका नहीं ?" सुभद्रा ने तड़पकर पूछा।

"सेना की नीतियों और अतिरथियों की इच्छाओं के विषय में यह दूत कुछ नहीं कह सकता महारानी !"

"दूत ठीक कह रहा है सुभद्रा !" द्रौपदी ने धीरे से कहा, "दूत तो धनंजय से

नहीं पूछ सकता न कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं।"

"दूत तो ठीक कह रहा है दीदी ! पर मैं भी ठीक कह रही हूँ कि उन्हें अपना यश बहुत प्यारा है। अन्य किसी के प्राणों का भी कोई मूल्य नहीं है उनके लिए।" सुभद्रा का स्वर अब भी आक्रोश से भरा हुआ था, "सेना और युद्धों के विषय में जानने वाला कोई व्यक्ति ऐसा निर्णय कर ही कैसे सकता है ? यह भी कैसी वीरता है, जिसका कोई तर्क नहीं।"

"वीरों का तर्क तो हम नहीं समझ सकतीं।" द्रौपदी ने सुभद्रा को शांत करने के लिए कहा, "जब मध्यम पांडव अपना रथ त्याग कर अकेले ही कौरवों की सेना में उतर गए थे, और धृष्टद्युम्न ने उन्हें मृत ही मान लिया था तो उसके पीछे भी कोई तर्क नहीं था। जो व्यक्ति अपने सामर्थ्य को जानता है, वह कभी-कभी ऐसे निर्णय कर लेता है, जो दूसरों की समझ में नहीं आते। यही मान कर मन को थोड़ा शांत रखो।"

सुभद्रा का स्वर कुछ धीमा तो हुआ किंतु वह मौन नहीं रही। बोली, "उनके साथ तो भैया भी हैं। जाने वे उन्हें क्यों नहीं समझाते।"

"हाँ ! फिर क्या हुआ दूत ?" द्रौपदी ने हँसकर वातावरण में कुछ उल्लास बिखेरने का प्रयत्न किया।

"पांडव सेना में हताशा की लहर दौड़ गई। किसी को कोई समाधान नहीं सूझ रहा था। उस चिंता के क्षण में राजकुमार अभिमन्यु ने धर्मराज को सांत्वना दी, 'आप इस व्यूह से चिंतित हैं महाराज ! मैं इसमें प्रवेश कर सकता हूँ।' "

सुभद्रा चौंक उठी। अनायास ही उसके मुख से निकल गया, "पर अभिमन्यु तो चक्रव्यूह में केवल प्रवेश कर सकता है। उससे निकलने की विधि का तो उसे ज्ञान ही नहीं है।"

"यही कहा राजकुमार ने।" दूत बोला, "उन्होंने बताया कि वे चक्रव्यूह का भेदन कर उसमें प्रवेश तो कर सकते हैं; किंतु वे उससे बाहर निकलने की विधि नहीं जानते। किन्हीं कारणों से पिताजी को उन्हें वह सिखाने का समय ही नहीं मिला था।"

"तो क्या महाराज ने अभिमन्यु को चक्रव्यूह वेधन के लिए भेज दिया ?" सुभद्रा का स्वर चिंतित था।

"राजकुमार ने कहा कि वे चक्रव्यूह में प्रवेश कर सकते हैं। भीतर जाकर वे अकेले ही सारे कौरव योद्धाओं का वध कर देंगे तो उन्हें निकलने से रोकेगा कौन। पर यदि किसी कारण से उन्हें लौटना ही पड़ा तो बाहर निकलने के लिए उन्हें सहायता की आवश्यकता होगी।"

"फिर ?" देविका के प्राण जैसे उसके कंठ में आ गए थे।

"धर्मराज निर्णय नहीं कर पा रहे थे किंतु मध्यम पांडव, राजकुमार की इस बात से बहुत उत्साहित हो चुके थे। उन्होंने प्रसन्न होकर राजकुमार के कंधे पर हाथ मार कर कहा कि वे उन लोगों को भी प्रवेश की विधि सिखा दें। पांडव एक बार व्यूह में

प्रविष्ट हो गए तो जैसा कि राजकुमार ने कहा है, कौरवों का वध करने से उन्हें कौन रोक लेगा।"

"तो क्या अभिमन्यु ने उन्हें वह सिखाया ?" सुभद्रा ने पूछा।

"नहीं महारानी !" दूत बोला, "राजकुमार ने बताया कि उसका सिखाना इस प्रकार संभव नहीं है। उसके लिए समय भी लगेगा और अभ्यास भी करना होगा। इस प्रकार सीखना संभव होता तो उन्होंने अब तक उसमें से निकलने की विधि भी सीख ली होती।"

"तो क्या किया पांडवों ने ?" द्रौपदी ने पूछा।

"धर्मराज ने कहा कि यदि राजकुमार चक्रव्यूह में उन लोगों के लिए द्वार बना देंगे तो वे लोग उनके रथ के अंग के समान ही उस द्वार में प्रवेश कर जाएँगे।" दूत बोला, "मध्यम पांडव ने कहा कि राजकुमार संकेत भर कर दें तो वे उनके साथ-साथ भीतर चले जाएँगे। छाया के समान उनके साथ लगे रहेंगे। जिस मार्ग से राजकुमार भीतर जाएँगे, उसी से मध्यम पांडव भी सेना लेकर उनके पीछे चलेंगे। वे एक बार भीतर घुस जाएँ तो सीधे दुर्योधन के पास पहुँचेंगे। फिर देखेंगे कि कौन-सा व्यूह उन्हें राजा दुर्योधन की जंघा तोड़ने से रोकता है।"

"तो राजकुमार ने चक्रव्यूह में प्रवेश किया ?" बलंधरा ने पहली वार प्रश्न किया।

"हाँ देवि !"

बलंधरा ताली बजाकर हँसी, "मैं जानती थी कि अंततः हम लोग सफल होंगे।"

पर सुभद्रा देख रही थी कि दूत के मुख पर प्रसन्नता का कोई चिह्न नहीं था। उसका मन अपनी आशंकाओं से निरंतर जूझ रहा था।

"राजकुमार अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश किया और कौरव सेना में विकट विनाश मचाया। उन्होंने गजारोही, अश्वारोही तथा पैदल सेना को मार भगाया। कौरव सेना में भगदड़ मच गई। द्रोण भी चिंतित हो उठे। उन्होंने तत्काल अपने महारथियों को आदेश दिया कि वे कौरव नरेश की रक्षा करें। वे सब राजकुमार अभिमन्यु की ओर बढ़े; किंतु राजकुमार ने उन सबको अपने बाणों की नोक पर रोक दिया..."

"यह कथा कहानी बाद में सुनाना।" सुभद्रा ने तीखे स्वर में दूत को टोका, "पहले बताओ कि अभिमन्यु के पीछे कोई और योद्धा व्यूह के भीतर घुसने में सफल हुआ या नहीं ?"

दूत ने सुभद्रा की ओर देखा। वह इसी क्षण के लिए भयभीत था। अब कहे या न कहे ? अंततः तो सब कुछ बताना ही था। वह आया ही इसी प्रयोजन से था।...

"नहीं महारानी ! पांडवों का अनुमान भ्रमित प्रमाणित हुआ।" दूत ने कहा, "राजकुमार ने चक्रव्यूह पर आक्रमण किया और अपने लिए एक द्वार वनाकर उसमें से प्रवेश कर गए। किंतु जिस समय मध्यम पांडव उसमें से प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे, उसी समय वह द्वाररक्षक सिंधुपति जयद्रथ द्वारा वंद कर दिया गया। मध्यम पांडव ही नहीं, महाराज युधिष्ठिर, चतुर्थ और पंचम पांडव राजकुमार नकुल एवं सहदेव भी

कुछ नहीं कर सके। वे व्यूह में प्रवेश करने का प्रयत्न करते रहे और राजकुमार अभिमन्यु उस व्यूह में गहरे से गहरे उतरते गए। वे उसमें धँसते ही चले गए।...''

सुभद्रा ने अपना सिर पकड़ लिया। उसका मन हो रहा था कि वह पूछे कि क्या अभिमन्यु चक्रव्यूह से जीवित बच कर निकल आया ? क्या दूत के कुरुक्षेत्र से चलने तक अभिमन्यु युद्ध कर रहा था ?... पर उसका अपना मन ही इन प्रश्नों से इतना भयभीत था कि उसका साहस ही नहीं हो रहा था कि वह दूत को टोके।

''राजा दुर्योधन की रक्षा के लिए कौरव योद्धाओं ने राजकुमार अभिमन्यु को घेर लिया। उनमें द्रोण, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, दुःसह, दुःशासन, विविंशति, कृतवर्मा, शल्य, शकुनि, बृहद्‌बल, भूरिश्रवा तथा स्वयं राजा दुर्योधन थे।'' दूत बोला, ''उसी समय अश्मकपुत्र ने अपने रथ पर आकर राजकुमार पर बाण वर्षा आरंभ की। राजकुमार देख रहे थे कि उनके पीछे उनका कोई सहायक चक्रव्यूह में प्रवेश नहीं कर पाया है, इसलिए युद्ध उन्हें स्वयं ही करना है। उन्होंने अश्मकपुत्र को तनिक भी समय नहीं दिया और अपने बाण से उसका मस्तक काट दिया। अश्मकपुत्र को इस प्रकार मरते देख कर्ण से सहन नहीं हुआ और उसने राजकुमार पर आक्रमण कर दिया। राजकुमार ने उसका उचित उत्तर दिया और कर्ण को घायल कर पीछे धकेल दिया। दीर्घलोचन, कुंडलभेदी और सुषेण को भी घायल कर दिया। अश्वत्थामा और कृतवर्मा को गहरी चोट पहुँचाई। राजकुमार को भी अनेक बाण लगे थे किंतु वे तनिक भी शिथिल नहीं हुए और उन्होंने मद्रराज शल्य को इतने बाण मारे कि वे मूर्च्छित होकर रथ की बैठक में गिर पड़े। शल्य के छोटे भाई मद्रराज की सहायता के लिए आए तो राजकुमार ने अपने बाणों से पहले उनके हाथ-पैर काट डाले और फिर उनका मस्तक धड़ से पृथक् कर दिया। अकेले राजकुमार के विरुद्ध लड़ने वाली कौरव सेना की रक्षा के लिए स्वयं प्रधान सेनापति आचार्य द्रोण को आना पड़ा। राजकुमार ने न केवल आचार्य द्रोण को आहत किया वरन् उन्होंने कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा, बृहद्‌बल, कर्ण इत्यादि को भी क्षत-विक्षत कर दिया। द्रोण यह देखकर चकित रह गए और उन्होंने राजकुमार की प्रशंसा करते हुए कहा कि यह चाहे बालक ही हो; किंतु उसमें अपने पिता और मातुल दोनों का सम्मिलित बल और कौशल प्रकट हो रहा है।...''

''आचार्य द्रोण ने मेरे पुत्र की प्रशंसा की ?'' द्रौपदी ने गद्‌गद कंठ से पूछा।

''हाँ महारानी ! उन्होंने ऐसी प्रशंसा की कि राजा दुर्योधन उसे सहन नहीं कर पाए। वे युद्ध में ही बिफर गए और बोले, 'हमारे प्रधान सेनापति अपने प्रिय शिष्य के पुत्र को मारना नहीं चाहते, नहीं तो चक्रव्यूह में अकेला घुस आया यह छोकरा अभी तक इस प्रकार खुला घूम कर हमारे योद्धाओं को पीड़ित नहीं कर रहा होता। ये अर्जुनपुत्र की रक्षा कर रहे हैं और वह इनसे रक्षित होकर हमारा काल बना हुआ है।' ''

''यही होना था।'' द्रौपदी ने कहा, ''दुर्योधन में इतनी उदारता होती कि वह अपने शत्रुओं के गुणों को भी स्वीकृति दे सकता तो इस युद्ध का अवसर ही न आता।''

पुत्र की प्रशंसा सुनकर भी सुभद्रा के चेहरे पर मुस्कान की एक रेखा तक नहीं आई थी। वह जैसे दोनों हाथों से अपने हृदय को थाम कर बैठी थी।

"फिर क्या हुआ दूत ?" उसने पूछा।

"दुर्योधन की वात सुनकर दुःशासन आगे बढ़ आया महारानी ! उसने कहा कि वह अभी राजकुमार अभिमन्यु का वध कर देगा। उनकी मृत्यु के शोक से तृतीय पांडव स्वयं ही मर जाएँगे अथवा आत्मघात कर लेंगे। उनके प्राण अपने प्रिय पुत्र में ही वसते हैं। जब तृतीय पांडव की ही मृत्यु हो जाएगी तो सारे पांडव स्वयं ही आत्मदाह कर लेंगे। वे वीरवर सव्यसाची के विना जीवित नहीं रह सकेंगे।''' दुःशासन की बात सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ; किंतु उससे राजकुमार अभिमन्यु और भी क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने दुःशासन को छव्वीस बाण मारे। उन दोनों का द्वैरथ युद्ध आरंभ हो गया। दोनों योद्धा अपने रथों द्वारा दाएँ-बाएँ विचित्र मंडलाकार गति से विचरते हुए युद्ध करने लगे। योद्धाओं का उत्साह बढ़ाने के लिए वहाँ ढोल, मृदंग, दुंदुभि, भेरी, झांझ इत्यादि का भयंकर संगीतमय शव्द हो रहा था। उसी में दोनों ओर के योद्धाओं के सिंहनाद और शंखनाद भी सम्मिलित हो जाते थे।

"तभी राजकुमार अभिमन्यु ने कहा, 'अरे मूर्ख ! द्यूत क्रीड़ा में विजय पाने के उन्माद में अपने शव्दों से तूने धर्मराज को कुपित किया और वीरवर भीमसेन के प्रति अनर्गल और अपमानजनक वातें कहीं। मेरे उग्र धनुर्धर पितरों के राज्य का अपहरण किया। इन सभी बुराइयों के फलस्वरूप उन महात्मा पांडवों के क्रोध से आज तेरा यह दुर्दिन आया है। कुरुकुल कलंक ! आज मैं अपनी रोपमयी माता कृष्णा और पिता भीमसेन का अभीष्ट पूर्ण कर इस युद्ध के ऋण से उऋण हो जाऊँगा।' राजकुमार की वात सुन कर अपने अहंकार में उन्मत्त दुःशासन ने अपने रथ के दंडों की ओट से निकल राजकुमार को चुनौती दी। उस क्षण राजकुमार ने उसे पच्चीस बाण मारे। उनकी पीड़ा से व्यथित होकर दुःशासन रथ की बैठक में बैठ गया। उसे मूर्च्छा आ गई थी। सारथि ने देखा कि द्वैरथ युद्ध क्या, दुःशासन तो युद्ध करने की ही स्थिति में नहीं था। वह उसे तत्काल युद्धक्षेत्र से दूर ले गया।"

"और किसी ने कुछ नहीं किया।" द्रौपदी ने प्रसन्नता से कहा, "पर आज मेरे वीर पुत्र ने मेरे अपमान का प्रतिशोध ले लिया। आज भी मैं उस दुष्ट दुःशासन के रक्त से अपने केश नहीं धो पाई हूँ। पर वह भी होगा। मैं निश्चिंत हूँ। तभी कहते हैं कि पुत्र समर्थ हो जाए तो माता की शक्ति सौगुना वढ़ जाती है।"

सुभद्रा ने भी क्षण भर को मुस्कराकर गर्व से दमकते हुए द्रौपदी के चेहरे को देखा और फिर गंभीर होकर पूछा, "तब भी पांडवों ने कुछ नहीं किया ?"

"महारानी ! चारों पांडवों तथा पाँचों द्रौपदेयों ने हर्पनाद किया और पांचालों तथा कैकेयों की सहायता से द्रोण के व्यूह का भेदन करने के लिए उस पर टूट पड़े। व्यूहद्वार पर तो जयद्रथ था और वह पांडवों को किसी भी प्रकार आगे वढ़ने नहीं दे रहा था;

किंतु उस पर भी दुर्योधन भयभीत स्वर में कर्ण को फटकारता हुआ बोला, 'दुःशासन सूर्य के समान शत्रुओं को संतप्त करता हुआ, युद्ध में उनका भयंकर विनाश कर रहा था, उसी अवस्था में वह अभिमन्यु के चंगुल में फँस गया।''' उधर पांडव अभिमन्यु की सहायता के लिए प्रचंड बलशाली सिंहों के समान हमारे व्यूह को तोड़ने के लिए धावा कर चुके हैं। वे किसी भी समय व्यूह तोड़कर भीतर आ सकते हैं। और तुम क्या कर रहे हो ? व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हो। तुम अभिमन्यु को रोक नहीं सकते ?' "

"यह दुर्योधन अपने ही मित्रों से कैसे बात करता है।" देविका ने कहा, "न द्रोण का सम्मान करता है, न कर्ण का।"

"उसे भय नहीं है कि वह उनका इस प्रकार अपमान करेगा तो वे उसे छोड़कर जा भी सकते हैं।" बलंधरा बोली।

"वह जानता है कि वे लोग उसे छोड़कर जा नहीं सकते। उन्होंने अपने जीवन में कोई वैकल्पिक द्वार खुला नहीं रखा है।" सुभद्रा ने कहा।

"नहीं बात यह नहीं है।" करेणुमती बोली, "मुझे लगता है कि वे लोग इस बात से भी डरते होंगे कि वे लोग उसका पक्ष छोड़ेंगे तो वह उनका वध कर देगा।"

"दुर्योधन वध कर देगा द्रोण का ?" बलंधरा हँसी, "द्रोण उसकी सारी सेना का वध कर सकते हैं।"

"नहीं ! मेरा विचार है कि करेणु ठीक कहती है।" द्रौपदी ने कहा, "अपना पक्ष त्याग कर जाने वाले को दुर्योधन ऐसे ही तो छोड़ नहीं देगा। वह द्रोण को सम्मुख युद्ध में पराजित नहीं कर सकता तो क्या। जब वे सोए होंगे तो उनके मंडप को आग तो लगा सकता है। उन्हें भोजन में विष तो दे सकता है।"

"हाँ तो दूत ! फिर क्या हुआ ?" सुभद्रा ने पूछा।

"महारानी ! दुर्योधन की फटकार कर्ण को वैसे ही लगी जैसे अश्व को कशा लगता है या फिर गज को अंकुश लगता है। वह तड़पकर आगे बढ़ा और उसने राजकुमार पर अनेक बाण बरसाए। राजकुमार तब तक आचार्य द्रोण पर आक्रमण करने का मन बना चुके थे। वे आचार्य के सम्मुख पहुँचने को बहुत उतावले हो चुके थे। उन्होंने सामने से आकर बाण चलाते हुए कर्ण को घायल किया और आगे बढ़ गए। उनका मार्ग कोई रोक नहीं सका। पर कर्ण ने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। उसने पहले से अनेक बाण खाए हुए राजकुमार अभिमन्यु को अपने बाणों से बींध डाला। अपनी ओर से उसने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी । जितनी पीड़ा वह दे सकता था, उसने दी। राजकुमार उसकी ओर उपेक्षा न कर सके। उन्होंने अपने भल्लों द्वारा शत्रुओं के धनुष काट दिए। कर्ण का मुख मोड़ दिया। उसके अश्व घायल हो गए थे। उसका सारथि भी क्षतविक्षत हो गया था और स्वयं कर्ण के शरीर पर भी अनेक घाव लगे थे। कर्ण की दशा इतनी दीन हो गई कि उसका छोटा भाई उसे बचाने के लिए दौड़ा आया।''''

"यह कर्ण का छोटा भाई क्या होता है दूत ?" द्रौपदी ने कहा, "तुम उसका नाम

नहीं बता सकते ? क्या वह शोण था ? ऐसे तो बहुत भ्रम हो सकता है, कर्ण के अनेक छोटे भाई हैं।"

"आप ठीक कहती हैं महारानी !" दूत बोला, "संभव है कि वह शोण ही रहा हो। युद्धकाल में सबका ठीक-ठीक परिचय नहीं भी मिलता। एक नया योद्धा आता है और युद्ध आरंभ करते ही दिवंगत हो जाता है। ऐसे में किसी से पूछ भी लिया जाए कि वह कौन था तो अधिकांशतः उत्तर मिलता है कि कोई नया व्यक्ति था। कभी-कभी कोई बता देता है कि वह कर्ण का भाई था अथवा शल्य का भाई था या...। संभव है बाद में उनका ठीक नाम पता मिल भी जाए, किंतु इस समय तो मैं इतना ही बता सकता हूँ देवि ! कि कर्ण की रक्षा के लिए आने वाला योद्धा कर्ण का भाई था।"

"फिर ?" देविका ने पूछा।

"पांडव सेनाओं को लग रहा था कि राजकुमार अभिमन्यु कौरवों में घिर गए हैं। यद्यपि वे उन पर भारी पड़ रहे हैं और उनके सारे महारथियों के लिए आतंक बने हुए हैं, फिर भी उनका शरीर बहुत आहत हो चुका था। उनकी रक्षा के लिए सहायता पहुँचनी ही चाहिए।..."

"वही तो।" सुभद्रा ने कहा।

दूत ने सुभद्रा की ओर देखा और अपनी कथा आगे बढ़ा ले गया, "व्यूह के बाहर पांडवों का भयंकर कोलाहल था किंतु वे लोग अब तक व्यूह का भेदन नहीं कर पाए थे कि राजकुमार की कोई सहायता कर पाते। इधर राजकुमार अभिमन्यु ने कर्ण की सहायता को आए उनके भाई का मस्तक काट कर भूमि पर लुढ़का दिया। कर्ण पीड़ा से चीत्कार कर उठा। पर राजकुमार वहीं तक रुकने वाले नहीं थे। उन्होंने कर्ण पर न केवल अपना दबाव बढ़ा दिया, वरन् उसे ही अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया। परिणाम यह हुआ कि अपने शरीर से बहते रक्त को देखता हुआ कर्ण युद्धभूमि से बाहर हो गया। तब राजकुमार ने अन्य योद्धाओं की ओर ध्यान दिया।

"महाराज युधिष्ठिर, मध्यम पांडव भीमसेन, महावीर सात्यकि, प्रधान सेनापति धृष्टद्युम्न, अप्रतिहत शिखंडी, महाराज द्रुपद और विराट, पाँचों द्रौपदेय और कैकेय राजकुमार मिल कर चक्रव्यूह में अपने प्रवेश के लिए द्वार बनाने का विकट प्रयत्न कर रहे थे; किंतु भयंकर और महान् धनुष धारण करने वाले सिंधुराज जयद्रथ ने अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर उन सबकी प्रगति रोक दी थी। यह अविश्वसनीय था किंतु सत्य था। धृष्टद्युम्न ने जयद्रथ का धनुष काट दिया, पर जयद्रथ ने तत्काल दूसरा धनुष उठा लिया। भीमसेन ने तीन-तीन बाण मार कर जयद्रथ का धनुष, ध्वज और छत्र काट दिए, किंतु जयद्रथ ने तीसरा धनुष उठा ही नहीं लिया, उन्होंने महावीर भीमसेन का रथ भी नष्ट कर दिया। मध्यम पांडव अपनी रक्षा के लिए सात्यकि के रथ में चले गए। सिंधुराज का यह पराक्रम अनपेक्षित और अविश्वसनीय था। राजकुमार अभिमन्यु ने द्वाररक्षक गजों को मार कर, पांडवों के व्यूह में प्रवेश के लिए जो मार्ग बनाया था, जयद्रथ

ने उसे भी वंद कर दिया था। मत्स्य, पांचाल, कैकेय और पांडव बार-बार प्रयत्न कर रहे थे; किंतु जयद्रथ ने उन्हें हर वार पीछे धकेल दिया।"

"जीजी के अपहरणकर्ता को मुक्त कर देने का यह दंड मिला पांडवों को।" सुभद्रा जैसे अपने आपसे वोली, "उन्हें उसे वन में मार देना चाहिए था। अधिक उदारता भी कल्याणकारी नहीं होती।"

"कौरवों ने अपने रथसमूह से राजकुमार को सव ओर से घेर लिया था। जाने उनमें वृपसेन कैसे सवसे आगे हो गया था।..."

"वृषसेन कौन ?" देविका ने पूछा।

"कर्णपुत्र वृपसेन महारानी !" दूत ने कहा, "वह आगे था। राजकुमार ने उसके सारथि को घायल किया और उसका धनुष काट दिया। वृषसेन ने दूसरा धनुष उठा लिया और राजकुमार के अश्वों को बींधने लगा। तव तक वसातीय आगे बढ़ आया और ललकारकर बोला, 'तू इस युद्ध से जीवित नहीं बच पाएगा।' उसने राजकुमार को साठ बाण मारे। किंतु राजकुमार उससे तनिक भी चिंतित नहीं हुए। उन्होंने लौह कवच धारण करने वाले उस वसातीय को, दूर तक के लक्ष्य को मार गिराने वाले बाण द्वारा वक्ष में चोट पहुँचाई। कवच ने बाण की नोक को तो उसके वक्ष तक नहीं पहुँचने दिया किंतु उस वाण के आघात से कवच से दबकर उसका वक्ष पिचक गया और वह मरकर रथ से नीचे गिर पड़ा।"

"यह वसातीय कौन था ?" बलंधरा ने पूछा, "मैंने इसका नाम कभी नहीं सुना।"

"वह एक कौरव योद्धा था। इससे अधिक उसके विषय में कोई सूचना नहीं मिलती।" दूत बोला, "इसी प्रकार का एक और योद्धा सत्यश्रवा भी है। राजकुमार ने उसका भी वध कर दिया। कौरवों में घिरे होने पर भी राजकुमार उनके लिए काल बने हुए थे। अपनी सेना को विचलित देखकर शल्यपुत्र रुक्मरथ आवेश में आगे आया। उसने अपने सैनिकों को सांत्वना दी, 'तुम्हारे भयभीत होने का कोई कारण नहीं है। मेरे जीवित रहते यह छोकरा अभिमन्यु तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मैं अभी इसे जीवित पकड़ लेता हूँ।' उसने अपना रथ राजकुमार की ओर दौड़ा दिया। उसने राजकुमार के वक्ष में तीन वाण मारे और सिंहनाद किया। उसके पश्चात् उसने राजकुमार की भुजाओं पर बाण मारे। तव तक राजकुमार ने उसका धनुप काट दिया। उसके पश्चात् भल्ल वाणों से उसकी दोनों भुजाएँ काट दीं। वे उसे जीवित भी छोड़ सकते थे। वह युद्ध के सर्वथा अयोग्य हो चुका था। बिना भुजाओं के उसका जीवन भी उसके लिए बोझ हो जाता। राजकुमार ने उसे जीवन की पीड़ा से मुक्त करने के लिए, सुंदर नेत्रों और भौंहों से सुशोभित उसका मस्तक भी काट डाला।

"चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। रुक्मरथ के मित्र राजकुमारों ने आकर वीर अभिमन्यु को घेर लिया। दुर्योधन प्रसन्न हो उठा।..."

"दुर्योधन के प्रसन्न होने का तो कोई कारण नहीं दीखता मुझे।" करेणुमती बोली।

"उसके प्रसन्न होने का प्रकट कारण तो यह था महारानी ! कि उन राजकुमारों के आक्रमण के पश्चात् सारथि, अश्वों और ध्वजा के सहित राजकुमार अभिमन्यु बाणों में छिप गए थे। वे कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे थे। दुर्योधन ने मान लिया होगा कि राजकुमार उस बाण जाल में सदा के लिए बँध गए हैं और उससे बाहर नहीं निकल पाएँगे।" दूत बोला, "किंतु एक अनुमान यह भी है कि यद्यपि शल्य उसकी ओर से युद्ध कर रहे थे किंतु दुर्योधन उनकी ओर से पूर्णतः आश्वस्त नहीं था। वे पांडवों के मातुल हैं और उन्हीं की सहायता के लिए वे अपने घर से चले भी थे। यह तो बीच मार्ग में से दुर्योधन उनका अपहरण कर लाया था। किसी भी क्षण शल्य के मन में पुनः अपने भागिनेयों का प्रेम जाग सकता था और वे दुर्योधन का त्याग कर सकते थे। अब जब उनके पुत्र का वध राजकुमार अभिमन्यु के हाथों हो गया था, वे पांडवों के पक्षधर नहीं हो सकते थे। वे अपने पुत्र का वध करने वाली सेना का अंग कैसे हो सकते थे।..."

"हाँ ! यह कारण एक बड़ा कारण हो सकता है।" देविका ने कहा।

"पर यह भी तो हो सकता है कि शल्य के मन में आए कि यदि वे पांडव पक्ष से लड़ रहे होते तो उनके पुत्र की मृत्यु ही न होती ?" बलंधरा बोली, "इस दृष्टि से उनके पुत्र का हत्यारा दुर्योधन ही ठहरता है।"

"हो तो यह भी सकता है।" द्रौपदी ने कहा।

दूत रानियों के वैचारिक ऊहापोह में नहीं फँसा। उसने अपनी बात आगे बढ़ाई, "पर दुर्योधन की प्रसन्नता बहुत देर तक टिकी नहीं महारानी ! राजकुमार ने अपनी रथमाया प्रकट की और गांधर्वास्त्र का प्रयोग कर उस सारे बाण जाल को काट कर परे फेंक दिया। वे अस्त्र-संचालन का कौशल दिखाते हुए अलातचक्र की भाँति घूम रहे थे। वस्तुतः वे एक नहीं सहस्रों रूपों में दिखाई पड़ रहे थे। अभी यहाँ थे, अगले क्षण कहीं और थे। ऐसा लगता था कि वे युद्धक्षेत्र में सब स्थानों पर हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं था, जहाँ वे नहीं थे।... उन्होंने अपने घेरने वाले रुक्मरथ के मित्र राजकुमारों के शरीरों के टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे।

"अब दुर्योधन के भयभीत होने की बारी थी। वह जो समझ रहा था कि आचार्य द्रोण ने एक ऐसे व्यूह की रचना कर दी है, जिसमें राजकुमार अभिमन्यु घिर गए हैं और पांडव सेना से उन्हें कोई सहायता नहीं मिल सकती—वह सब उसका भ्रम था। ऐसा लगता है कि राजकुमार अभिमन्यु के संदर्भ में दुर्योधन को अब किसी पर भी विश्वास नहीं रह गया था। उसे सब ओर अपने विरुद्ध षड्यंत्र दिखाई दिए होंगे। आचार्य द्रोण और कर्ण से तो वह पहले ही झगड़ चुका था। अब और किससे कहता। परिणामस्वरूप वह स्वयं ही अपनी सेना के साथ राजकुमार पर चढ़ दौड़ा। पर विचित्र बात यह हुई कि राजकुमार से उसका युद्ध जैसा युद्ध हुआ ही नहीं। एक आधी-अधूरी क्षणिक-सी झड़प हुई और दुर्योधन अनेक बाणों से घायल होकर युद्ध छोड़कर भाग गया।

"अपने राजा को भागते देख कौरव सेना में भी भगदड़ मच गई। इस अपमानजनक पराजय से बचने के लिए द्रोण, अश्वत्थामा, बृहद्बल, कृपाचार्य, कर्ण, कृतवर्मा, शकुनि—सब मिलकर राजकुमार अभिमन्यु पर टूट पड़े; पर राजकुमार का तेज उस समय ऐसा था कि ये सारे महारथी और अतिरथी मिलकर भी उनके सम्मुख टिक नहीं पा रहे थे। ऐसे में चाहे अपने अभिमान के कारण अथवा अपने अज्ञान के कारण दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण, राजकुमार के सम्मुख डट गया। अपने पुत्र को इस प्रकार संकटपूर्ण कार्य करते देखकर, उसकी रक्षा के विचार से दुर्योधन लौट आया। अपने राजा की रक्षा के लिए अन्य महारथी भी लौटे। राजकुमार अभिमन्यु उनसे भयभीत नहीं थे और न ही वे इस अवसर को छोड़ना चाहते थे। उन्होंने लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया। एक ही भल्ल से उन्होंने लक्ष्मण का सुंदर, सुघड़ नासिका, मनोहर भौंह, सुंदर केशांत और रुचिर कुंडल से युक्त मस्तक धड़ से पृथक् कर दिया।···"

"दुर्योधन के पुत्र को मार दिया !" बलंधरा का मुख जैसे आश्चर्य में खुल गया था।

"चारों ओर हाहाकार मच गया।" दूत बोला, "जिसे बचाने के लिए अपने प्राणों को पुनः संकट में डाल कर दुर्योधन लौट आया था, वह लक्ष्मण उसकी आँखों के सम्मुख मारा गया था। वह पूरी शक्ति से चीत्कार कर उठा, 'इस अभिमन्यु को मार डालो।' और तत्काल राजकुमार को घेर लिया गया। इस बार उनको घेरने वालों में आचार्य द्रोण भी थे। उनके साथ कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा थे। राजकुमार उनसे जूझते रहे। सहसा वे पलटे और उन्होंने चक्रव्यूह के मुख्य प्रवेश-द्वार की रक्षा करने वाली सिंधुराज की गजसेना पर आक्रमण कर दिया।···"

"क्या वे छह कम थे कि वह सातवें को आमंत्रित करने चल दिया।" सुभद्रा को अभिमन्यु का यह कृत्य अच्छा नहीं लगा था। यही तो बचपना होता है।

"इसका वास्तविक कारण तो राजकुमार स्वयं ही जानते हैं," दूत बोला, "किंतु हमारी सेना में यह माना जा रहा है कि या तो वे व्यूह के बाहर खड़े और भीतर आने का प्रयत्न करते पांडव योद्धाओं की, प्रवेश के लिए मार्ग बनाने में सहायता करना चाहते थे, या फिर उन्हें लगा होगा कि वे और अधिक देर तक व्यूह में कौरवों से घिरे न रहें। बाहर से सहायता न आ सके तो वे बाहर निकल जाएँ। यह भी संभव है कि उन्होंने सोचा हो कि पांडव सेना बाहर से प्रयत्न करे और वे भीतर से उनकी सहायता करें तो संभव है कि चक्रव्यूह ध्वस्त हो जाए और कौरव सेना को दबोचा जा सके।"

"फिर क्या हुआ दूत ?" सुभद्रा ने पूछा।

"प्रवेश-द्वार की रक्षा के लिए जयद्रथ के सहायक कलिंग सैनिक, निषादगण और क्राथपुत्र थे।" दूत ने रुककर द्रौपदी की ओर देखा, "क्राथ कौरवपक्ष के प्रसिद्ध राजा हैं। उनका पुत्र अपने नाम से नहीं क्राथपुत्र के नाम से ही प्रसिद्ध है। उसने स्वयं और उसकी गजसेना ने लौह कवच धारण कर रखे थे। उस गजसेना ने ही राजकुमार का

मार्ग रोक लिया। उसी समय जब राजकुमार अभी अपनी नीति निश्चित कर रहे होंगे, क्राथ ने स्वयं भी उन पर आक्रमण कर दिया। राजकुमार अभिमन्यु को संकट में देखकर द्रोण भी लौट आए थे। वे और उनके महारथी पुनः राजकुमार को घेर लेना चाहते थे। पर इसी बीच राजकुमार ने क्राथपुत्र को उसके गज से मार गिराया। राजकुमार जयद्रथ की ओर बढ़ ही रहे थे कि कौरव सेना ने अपने छह महारथियों के नेतृत्व में राजकुमार को घेर लिया। वे लोग नहीं चाहते थे कि राजकुमार सिंधुपति तक पहुँचें। कहीं वे जयद्रथ को भी विचलित कर दें अथवा उसका वध कर दें तो फिर पांडवों को भीतर घुसने से कोई नहीं रोक सकता था।

"राजकुमार उनकी नीति समझ गए थे। उन्होंने जयद्रथ की ओर बढ़ने से पहले वृन्दारक को मार गिराया।"

"धृतराष्ट्रपुत्र वृन्दारक ?" द्रौपदी ने पूछा।

"नहीं महारानी ! धृतराष्ट्रपुत्र वृन्दारक अभी जीवित है। यह एक अन्य कौरव योद्धा था, जिसे राजकुमार अभिमन्यु ने मार गिराया।" दूत बोला, "उन्होंने अश्वत्थामा को भी घायल कर दिया। अपने पुत्र पर संकट देखकर द्रोण जैसे पगला गए। उन्होंने राजकुमार पर एक सौ बाण चला दिए। अश्वत्थामा को लगा कि उनकी रक्षा करते हुए, द्रोण स्वयं संकट में फँसते जा रहे हैं। अश्वत्थामा ने अपने पिता की रक्षा के लिए राजकुमार पर साठ बाण झोंक दिए। उसी समय बृहद्बल को भी अपनी वीरता प्रमाणित करने की सूझी। राजकुमार ने उसका मस्तक ही काट गिराया। उन्होंने कर्ण के कान में एक बाण मारा। कर्ण किसी प्रकार के असमंजस में उनके सम्मुख खड़ा हो गया। राजकुमार ने उसके छह मंत्रियों को उनके अश्वों और सारथियों सहित मार डाला। उसी समय उनके हाथों मगधराज का पुत्र तरुण अश्वकेतु भी मारा गया। मार्तिकावतक नरेश भोज भी अपने प्राणों से हाथ धो बैठा। तभी अपने दाँत पीसता हुआ दुःशासनपुत्र अपना रथ वहाँ ले आया। आते ही उसने चार बाण मार कर सारथि और अश्वों सहित राजकुमार को घायल कर दिया। राजकुमार अभिमन्यु ने हँसकर कहा, 'तेरा पिता तो कायर के समान भाग गया। प्रसन्नता की बात है कि तू युद्ध करना जानता है।' राजकुमार ने पलटकर उसे कई बाण मारे किंतु अश्वत्थामा ने वे बीच में ही काट दिए। राजकुमार ने अश्वत्थामा की ध्वजा काट दी और उसकी सहायता के लिए आने वाले शल्य को नौ बाण मारे। उसकी ध्वजा काट कर उसके दोनों पार्श्वरक्षकों को मार डाला। शल्य भाग कर दूसरे रथ पर चले गए। अब राजकुमार ने अपना धनुष शकुनि की ओर मोड़ दिया। घायल शकुनि ने दुर्योधन से कहा, 'राजन् ! वह हममें से एक-एक कर युद्ध कर हम सबको मार डाले, उससे पहले ही हम सबको मिलकर अभिमन्यु को मार डालना चाहिए।' कर्ण ने भी आचार्य द्रोण से कहा, 'आचार्य ! इससे पहले कि यह हमें मार डाले, हमें इसे मारने की विधि बताइए। इसका वध कैसे होगा ?' आचार्य कौरव सेना पर आए संकट को समझ रहे थे और वे कर्ण की पीड़ा को भी देख रहे थे किंतु वे

राजकुमार अभिमन्यु की वीरता पर मुग्ध थे। बोले, 'पिता और पुत्र में कोई अंतर नहीं है। इसका युद्धकौशल और इसकी वीरता किसी भी योद्धा का मन प्रसन्न कर देगी।' कर्ण क्रुद्ध होकर बोला, 'आप उस पर मुग्ध ही होते रहेंगे या कुछ करेंगे भी। मैं उसके बाणों से आहत और पीड़ित होकर केवल इसलिए समरभूमि में खड़ा हूँ क्योंकि समरभूमि से पलायन क्षत्रियकर्म नहीं है।' आचार्य मुस्कराए, 'अन्यथा तुम भाग जाते ?' "

"और वह करता ही क्या है।" द्रौपदी ने कहा, "प्रत्येक युद्ध में सबसे पहले भागने वाला योद्धा कर्ण ही तो होता है।"

"हाँ महारानी ! यही कहा आचार्य ने भी।" दूत ने कहा, "पर उससे कर्ण लज्जित नहीं हुआ। और भी क्रुद्ध होकर बोला, 'आपका क्या बिगड़ा है इस युद्ध में । मेरे भाई मारे गए हैं। मेरे पुत्रों ने वीरगति पाई है। मेरा भी अपना कोई न मरता तो मैं अभिमन्यु की वीरता पर मुग्ध होता रहता।' आचार्य ने इस झगड़े को आगे नहीं बढ़ाया। बोले, 'अभिमन्यु का कवच अभेद्य है। उसको कोई भेद नहीं सकता। हाँ ! मनोयोगपूर्वक चलाए गए बाणों से इसके धनुष और प्रत्यंचा को काटा जा सकता है। इसे परास्त करना चाहते हो तो सारे महारथी एकत्रित हो जाओ। पहले उसके रथ को नष्ट करो ताकि वह एक ही स्थान पर कीलित हो जाए और फिर उसका धनुष काट दो, ताकि वह दूर से युद्ध न कर पाए। जब वह हम सब के बीच अकेला घिर जाएगा और निकट से सम्मुख युद्ध करने को बाध्य होगा तो उसके पास केवल एक शस्त्र होगा और हम सब विविध शस्त्रों से युक्त होंगे। उस समय हम उसका वध कर सकते हैं।' "

"दुष्ट कहीं के।" सुभद्रा ने कहा, "अकेले बालक को घेर कर उसे बाध्य कर, उसके हाथ-पैर बाँध कर उससे युद्ध करने को क्षत्रिय कर्म कहते हैं।"

दूत कुछ सावधान हो गया। उसे ज्ञात था कि अब सबसे कठिन क्षण आ रहा है। बोला, "ठीक कहती हैं महारानी ! उन्होंने युद्ध नहीं किया आखेट किया। पांडवों को व्यूह से बाहर रखा और स्वयं सब के सब राजकुमार के निकट घिर आए। सबसे पहले कर्ण ने राजकुमार का धनुष काट दिया। कृतवर्मा ने उनके रथ के अश्व मार डाले। कृपाचार्य ने उनके पार्श्वरक्षक मार डाले। निःशस्त्र राजकुमार अकेले उस अचल रथ में खड़े थे और छह-छह महारथी अपनी पूर्ण दक्षता से उन पर बाणों की बौछार कर रहे थे। उनका शरीर पहले ही बहुत विंध चुका था। सारे अंगों से रक्त प्रवाहित हो रहा था। समझ गए कि यदि वे खड़े रहे तो वहीं ढेर हो जाएँगे। राजकुमार ने ढाल और खड्ग उठा लिए और उछलकर जैसे आकाश मार्ग से अपने शत्रुओं पर इंद्र के वज्र के समान गिरे। आचार्य द्रोण ने क्षुरप्र से उनके खड्ग को उसकी मूठ से काट डाला और कर्ण ने उनकी ढाल को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। राजकुमार ने चक्र उठा लिया। उस रूप में उनको देखकर बहुत लोगों को चक्रधारी श्रीकृष्ण का स्मरण हो आया। दुर्योधन के तो जैसे प्राण ही निकल गए। जाने यह लड़का चक्र से क्या कर डालेगा। छह के छह महारथी जैसे भयपरिचालित होकर अपना धैर्य खो बैठे। उन सबने मिलकर चक्र

के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। और तब राजकुमार ने गदा उठा ली। सबसे निकट अश्वत्थामा था। उन्होंने उस पर ही प्रहार किया। वह अपने रथ की बैठक से तीन पग पीछे हट गया। पर राजकुमार ने उसके अश्वों और उसके पार्श्वरक्षकों के प्राण ले ही लिए। राजकुमार के शरीर में इतने बाण धँसे थे कि वे साही के समान प्रतीत हो रहे थे या फिर जैसे पितामह भीष्म ही शरशैया पर लेटने के स्थान पर सीधे खड़े हो गए थे। वे आगे बढ़े और शकुनि के भाई कालिकेय को मार डाला। उसके साथ के सत्तर गांधार मार दिए। अपना मार्ग रोकने वाले दस वसातीय रथियों को मार डाला। दुःशासनपुत्र के अश्वों और रथ को चूर-चूर कर डाला। दुःशासनपुत्र अपनी गदा लेकर राजकुमार की ओर दौड़ा। दोनों में गदायुद्ध होने लगा। सारे महारथी उन दोनों के चारों ओर वृत्त बनाकर शस्त्रों सहित सन्नद्ध खड़े थे। वे दुःशासनपुत्र को बचा कर बाण चला रहे थे। दुःशासनपुत्र तनिक भी क्लांत नहीं था। उसकी स्फूर्ति स्पष्ट थी। फिर उस पर और कोई आघात भी नहीं कर रहा था। सहसा ही दोनों योद्धाओं ने अपनी-अपनी गदा के अग्रभाग से विरोधी पर प्रहार किया। दोनों को ही गहरी चोट लगी और वे दोनों ही भूमि पर गिर पड़े।...''

"अभिमन्यु को उठने ही नहीं दिया होगा उन्होंने ।" सुभद्रा के स्वर में क्रोध भी था और पीड़ा भी।

"हाँ महारानी !" दूत बोला, "दुःशासनपुत्र पहले उठ खड़ा हुआ और उसने उठते हुए लड़खड़ाते राजकुमार अभिमन्यु के मस्तक पर गदा दे मारी। राजकुमार अचेत होकर पृथ्वी पर गिर गए।... कौरव सेना ने हर्ष का चीत्कार किया।..." दूत की वाणी जैसे उसके मुख में ही जम गई।

सुभद्रा अचेत होकर द्रौपदी की गोद में ही गिर गई थी।

10

सूर्यास्त हुआ और आज का युद्ध समाप्त हो गया।

अर्जुन का रथ शिविर की ओर लौट रहा था। कृष्ण सदा के समान प्रसन्न थे और उनका ध्यान अर्जुन से भी अधिक अपने अश्वों की ओर लगा हुआ था।

अर्जुन स्वयं को बहुत थका हुआ अनुभव कर रहा था। उसका शरीर उतना क्लांत नहीं था, जितना कि मन अवसाद में डूबा हुआ था। आज का दिन तो व्यर्थ ही गया। संशप्तक सेना प्रायः नष्ट हो गई थी; किंतु सुशर्मा आज भी न तो मारा गया और न बंदी ही हुआ। आज वह अर्जुन के सम्मुख प्रायः नहीं आया था। थोड़ी देर के लिए सामने आता भी था तो फिर कहीं विलुप्त हो जाता था। छोटी-छोटी टुकड़ियों के साथ लौकिक शस्त्रों से साधारण युद्ध करते ही सारा दिन बीत गया। दिन भर उसे अपने

भाइयों और सेना का कोई समाचार नहीं मिला। आज ऐसा क्या हो गया कि पूरे दिन में एक भी संदेशवाहक उसके पास नहीं पहुँचा।''' कृष्ण ने ठीक ही कहा था कि यह मात्र षड्यंत्र था, युद्ध नहीं। पर उस समय अर्जुन जाने क्यों उसे स्वीकार नहीं कर पाया था।

मार्ग में कहीं कोई लौटती हुई वाहिनी नहीं मिली। कहीं कोई कोलाहल नहीं था। लगता था कि आज युद्ध कुछ जल्दी ही सिमट गया था। किसी प्रकार की कोई गतिविधि अव शेप नहीं थी। पांडवों के शिविर के मुख्य द्वार पर सैनिकों ने अर्जुन का अभिवादन तो किया; किंतु अन्य दिनों के समान प्रसन्न मुद्रा में आज के युद्ध का कोई समाचार नहीं दिया।''' वहाँ प्रतिदिन के समान निश्चिंतता की चहल-पहल भी नहीं थी।

अपने मंडप के निकट उसे कुछ अधिक ही निर्जनता लगी।

"क्या तुम्हें भी लग रहा है कृष्ण ! कि आज हमारे शिविर में रणवाद्य नहीं बज रहे ?"

"हाँ ! कुछ ऐसा ही है।" कृष्ण बोले, "कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं घट गई।"

"आज अभिमन्यु ने भी मंडप से निकलकर हमारा स्वागत नहीं किया।"

कृष्ण ने कोई उत्तर नहीं दिया।

रथ के रुकते ही मंडप से युधिष्ठिर बाहर निकल आए। वे बिना कुछ वोले, अर्जुन के सम्मुख खड़े हो गए। उनके हाथ जुड़े हुए थे और उनकी आँखों में अश्रु थे। चेहरे पर लज्जा का भाव था और कंठ जैसे अवरुद्ध हो रहा था। उनकी इतनी कातर अवस्था अर्जुन ने तब भी नहीं देखी थी, जब वे द्यूत में हारे थे और भरी सभा में कौरवों ने पांचाली का अपमान किया था।

"मैं तुम्हारा अपराधी हूँ धनंजय !"

अर्जुन कुछ नहीं बोला, वह धर्मराज की अश्रुपूरित आँखों को देखता रहा।

"तुम छोटे भाई होकर भी मेरी रक्षा करते हो, और मैं बड़ा होकर, परिवार का मुखिया होकर भी अभिमन्यु की रक्षा नहीं कर पाया। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ।"

"क्या हुआ अभिमन्यु को ?" अर्जुन का आशंकित मन निमिष भर में सहस्रों दुष्कल्पनाएँ कर गया।

"तुम्हें सूचना नहीं मिली ?"

"नहीं तो।"

"धावक तुम तक नहीं पहुँचा ?"

"नहीं !"

धर्मराज ने संक्षेप में सारी घटना सुना दी।

इसी दिन से डरता था अर्जुन। उसने युद्ध के आरंभ में ही कहा था कृष्ण से कि जिनके लिए उन्हें राज्य, सुख और संपत्ति चाहिए, वे ही इस युद्ध में मारे जाएँगे तो क्या करेंगे वे राज्य का, धन का, संपत्ति का ? कृष्ण ने उसे उसका मोह कहा था।

क्लैव्य कहा था।… कहाँ सीमा की रेखा खींचे वह पुत्र के प्रति अपने प्रेम और इस पापी मोह में ? पुत्र की मृत्यु का समाचार पाकर क्या उसे शोक नहीं होना चाहिए ? क्या प्रतिशोध के लिए उसका रक्त नहीं उफनना चाहिए ?… पर कृष्ण क्षत्रिय कर्म का तो निषेध नहीं करते।… अधर्मी शत्रु का वध करने से तो वे उसे नहीं रोकते।… वे तो कह ही रहे थे कि अधर्मियों को दंडित करना उसका कर्तव्य है। वही था, जो युद्ध से भाग रहा था। उसे ही धार्तराष्ट्र अपने लग रहे थे। गुरु के प्रति बहुत भक्ति थी उसके मन में…

"युद्ध में क्षत्रिय योद्धा वीरगति पाएँगे ही। जो बचेंगे वे अपने पक्ष की रक्षा और शत्रु के नाश के लिए लड़ेंगे। कोई किसी के लिए अपराधी कैसे है ?" अर्जुन की आँखों में अश्रुओं का वेग बढ़ा और उसका गला रुँध गया; किंतु वह तत्काल सँभला, "मैं संशप्तकों की चुनौती को सहन नहीं कर सका और उनके साथ लड़ने चला गया—आप की रक्षा का भार दूसरों पर छोड़ कर। नहीं समझ पाया कि यह सब षड्यंत्र मात्र था, आपको बंदी करने के लिए, हमारी सेना की अप्रतिकार्य क्षति के लिए। यदि मेरे पीछे आपको कुछ हो जाता, तो मैं किसका अपराधी होता। आप यह ही समझिए कि अभिमन्यु ने मेरा दायित्व निभाया। उसने मेरे स्थान पर आपकी रक्षा की…।"

"तुम कहते हो उसने तुम्हारे स्थान पर मेरी रक्षा की," धर्मराज का शोक किसी भी प्रकार कम नहीं हो रहा था, "और मैं कह रहा हूँ कि उसने मेरे स्थान पर अपने प्राण दिए।… मैं कैसा पुत्रभक्षी पिता हूँ।… अपने बच्चे के लिए प्राण दे नहीं सकता था, तो अपनी रक्षा के लिए उसके प्राण लेने का मुझे क्या अधिकार था।"

"भगवान न करे कि इस परिवार में कभी कोई दुर्योधन पैदा हो, जो अपने पितामह से कहे कि हमारी रक्षा के लिए युद्ध कीजिए और अपने प्राण दीजिए। अभिमन्यु वीर क्षत्रिय था, इसलिए उसने अपने पिता और अपने राजा के लिए अपने प्राण दिए।" अर्जुन समझ नहीं पा रहा था कि वह किसे सांत्वना दे रहा था—धर्मराज को, अथवा स्वयं अपने आपको ?

"मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा…" युधिष्ठिर उसी प्रकार विह्वल थे, "मैं पांचाली को, सुभद्रा को, उत्तरा को… क्या मुँह दिखाऊँगा।"

"उन्हें सूचना भिजवा दी गई क्या ?" अर्जुन ने पूछा।

"सूचना तो तुम्हें भी भेजी थी किंतु वह धावक ही जाने कहाँ खो गया। संभव है कि किसी योद्धा का बाण उसे भी आ लगा हो।" युधिष्ठिर ने कहा, "सुभद्रा और उत्तरा तो उपप्लव्य से यहाँ आ भी गई हैं।"

कृष्ण ने आगे बढ़ युधिष्ठिर की बाँह थाम ली, "अभिमन्यु आपका भी पुत्र था धर्मराज ! वह सुभद्रा और उत्तरा की ही तो थाती नहीं था। उसने वीरगति पाई है, असाधारण वीरता दिखाई है। उस वीर क्षत्रिय ने अपने मातृ और पितृकुल—दोनों का ही मुख उज्ज्वल किया है। उससे सुभद्रा और उत्तरा के चेहरे गर्व से गौरवान्वित होंगे…

आप उनका साक्षात्कार करने में संकोच न करें। उन्हें धैर्य बँधाएँ। छत्र बनकर बड़ों के समान उनका रक्षण और पालन करें, उनकी दया या घृणा की बात न सोचें।"

"और अभिमन्यु की क्षतिपूर्ति..."

"क्षतिपूर्ति तो नहीं हो सकती भैया !" अर्जुन के स्वर में ओज लौट आया था, "पर कौरवों को इसका मूल्य चुकाना होगा। उन्हें मैं बताऊँगा कि किसी निःशस्त्र वीर बालक को घेर कर, छह-छह महारथियों द्वारा उसका वध, कितना महँगा पड़ता है।" उसने रुककर भीम की ओर देखा, "पर एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही।"

"क्या ?" भीम ने पूछा।

"आप लोग चक्रव्यूह का वेधन नहीं कर सकते थे, किंतु अभिमन्यु के प्रवेश के पश्चात् उसके पीछे तो जा ही सकते थे। उसका प्रयत्न क्यों नहीं किया गया ? उसे शत्रुओं के सैन्य सिंधु में अकेला और असहाय क्यों छोड़ा गया ?"

"हमारी तो रणनीति यही थी कि वह व्यूह वेधन करेगा। हमारे लिए एक द्वार बना देगा और हम उसके पीछे-पीछे उसी मार्ग पर चलते जाएँगे। यह किसने सोचा था कि वह व्यूह वेध कर उनकी सेना में प्रवेश कर जाएगा और हम उसके पीछे जा ही नहीं पाएँगे।"

"पर क्यों ?" अर्जुन बोला, "क्यों नहीं किया प्रवेश आपने ?"

"हम प्रवेश कर नहीं पाए।" युधिष्ठिर बोले, "अभिमन्यु ने व्यूह में द्वार बनाया; किंतु हममें से जिसने भी उसमें प्रवेश का प्रयत्न किया वह रोक दिया गया।"

"कौन था द्वार पर, जो अपने बल से भीमकर्मा वृकोदर को आगे बढ़ने से रोक सकता है ?" अर्जुन ने पूछा।

"द्वार पर जयद्रथ था।" भीम का सिर जैसे लज्जा से झुक गया, "जिस जयद्रथ को मैं किसी भी समय अपनी गदा के एक वार से धराशायी कर सकता था, कल उसके सामने मैं एकदम असहाय हो गया। मैं बार-बार जैसे किसी प्राचीर से टकराकर लौट आता था। उसने धर्मराज को अभिमन्यु के पीछे नहीं जाने दिया। वीर धृष्टद्युम्न और शिखंडी उसे अपने मार्ग से नहीं हटा पाए। युयुधान सात्यकि उससे पराभूत होकर रह गया।"

"जयद्रथ ने किया यह सब ? जयद्रथ ऐसा योद्धा तो नहीं है।" अर्जुन जैसे विश्वास ही नहीं कर पा रहा था, "इसका अर्थ तो यह हुआ कि अकेला जयद्रथ हमारी सारी सेना पर भारी पड़ा। ऐसा तो पितामह और आचार्य भी कभी नहीं कर पाए।"

"जयद्रथ की इस सफलता से दुर्योधन के योद्धा भी चकित हैं।" सहदेव ने कहा, "उनकी सेना में एक कथा सुनाई जा रही है कि वन में पांचाली के अपहरण के प्रयत्न के पश्चात् आप दोनों से अपमानित होकर जयद्रथ ने महादेव शिव से वरदान प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की थी। महादेव ने प्रसन्न होकर उसे एक वरदान माँगने को कहा था। उसने कहा कि महादेव उसे ऐसा सामर्थ्य दें कि वह पाँचों पांडवों को

युद्ध में पराजित कर सके। इस पर महादेव ने कहा कि यह संभव नहीं है; किंतु उसकी तपस्या निष्फल भी नहीं जाएगी। अर्जुन को तो वह कभी पराजित नहीं कर पाएगा, किंतु उस वर के प्रभाव से केवल एक दिन के लिए वह शेष चार पांडवों की गति रोक पाने में समर्थ होगा। उसी वर के प्रभाव से आज उसने अभिमन्यु के पीछे जाने वाले प्रत्येक योद्धा को रोकने में सफलता पाई थी।"

अर्जुन ने कुछ नहीं कहा। वह मन-ही-मन कुछ सोचता रहा।

"यह कथा मैंने भी सुनी है किंतु मेरा मन इस पर विश्वास नहीं करता।" नकुल बोला, "न तो जयद्रथ तपस्या कर सकता है और न महादेव उसे ऐसा वर दे सकते हैं। फिर उसने वर केवल चार पांडवों के विरुद्ध पाया और आज उसने धृष्टद्युम्न, शिखंडी और सात्यकि को भी आगे बढ़ने से रोक दिया।"

"तो फिर यह चमत्कार कैसे हो गया ?" भीम जैसे अपने आपसे पूछ रहा था।

"वैसे तो कुछ साधक तामसी तपस्या से तामसी वर भी प्राप्त कर लेते हैं किंतु जयद्रथ के विषय में यह सत्य प्रतीत नहीं होता।" कृष्ण धीरे से बोले।

"तो फिर यह सब क्या है ?" अर्जुन के स्वर में जैसे चीत्कार था।

कृष्ण उसकी विह्वलता को चिंतित दृष्टि से देखते रहे और फिर धीरे से बोले, "यदि किसी द्वार पर कोई दृढ़ सबल ताला लगा हो और तुम्हारे पास उसकी कुंजिका न हो, तो तुम उसे खोलने के लिए क्या करोगे ?"

"जब कुंजिका न हो तो उसको तोड़ा ही जा सकता है।" अर्जुन ने कहा।

"तोड़ने और खोलने के यंत्र तुम्हारे पास नहीं हैं। तो ?" कृष्ण ने पूछा।

"तो वह ताला नहीं खुलेगा।" अर्जुन ने कहा।

"तो ऐसे में यदि उस कपाट के पीछे कोई बालक भी बैठा होगा तो वह तुम्हें उसमें प्रवेश करने नहीं देगा।" कृष्ण ने नकुल की ओर देखा, "मेरी बात समझ रहे हो न ? रोक तो तुम्हें ताला रहा है, वह बालक नहीं, किंतु रोकने का श्रेय उस बालक को दिया जा सकता है।"

"मैं समझ गया।" अर्जुन ने कहा, "चक्रव्यूह को वेधने की युक्ति केवल अभिमन्यु को ज्ञात थी, इसका अर्थ है कि उसके पास कुंजिका थी। अतः वह ताला खोल कर भीतर प्रवेश कर गया और शेष जो भी योद्धा वहाँ गया, उसे चक्रव्यूह में प्रवेश करने की विधि ज्ञात नहीं थी, इसलिए कोई प्रवेश नहीं कर पाया और उस वीरता का श्रेय जयद्रथ को दिया गया। यह बात अद्भुत थी और जयद्रथ की क्षमता से बाहर थी, इसलिए उसके साथ वर की कथा जुड़ गई।"

"ठीक बात है।" कृष्ण बोले, "होता केवल यह है कि जब किसी असमर्थ व्यक्ति को तनिक-सा भी सामर्थ्य मिल जाता है, तो उसका अहंकार आकाश को छूने लगता है। जयद्रथ को चारों पांडवों को रोकने का यश मिल गया तो उसका अहंकार तो स्फीत होना ही था। उसी अहंकार में उसने पांडवों के साथ दुर्व्यवहार किया। स्वयं को असाधारण

वीर माना और अभिमन्यु के वध का श्रेय स्वयं लिया।''

''जो भी हो।'' अर्जुन ने कहा, ''उसने अभिमन्यु के वध का यश लिया है तो उसका दंड भी वही पाएगा। मैं उसे इस यश का किरीट पहनने नहीं दूँगा।''

''इसका श्रेय कर्ण भी लेना चाहता था किंतु जयद्रथ ने उससे कहा कि यदि वह पांडवों को द्वार पर ही न रोक लेता तो कर्ण अभिमन्यु को कभी घेर न पाता।'' सहदेव ने कहा।

''जयद्रथ तो कल संध्या तक ही धरती पर पड़ा होगा; और कर्ण भी अपने पुत्रशोक से वैसे ही रोएगा, जैसे आज मैं रो रहा हूँ।'' अर्जुन की आँखों से अश्रु फूट वहे।

कृष्ण ने अर्जुन के कंधे पर हाथ रखा, ''पार्थ !''

''सब लोग सुनें।'' अर्जुन जैसे आपे से बाहर हो गया था, ''मैं अपने गांडीव की सौगंध खाकर प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि कल सूर्यास्त तक यदि मैंने जयद्रथ का वध न किया तो चितारोहण कर अपने प्राण दे दूँगा।''

अर्जुन असाध्य आवेश में था। उसने गांडीव को अपने दाएँ और बाएँ दोनों हाथों से टंकारा। देवदत्त को हाथ में लेकर जोर से फूँका, जैसे वह अपनी प्रतिज्ञा की घोषणा सारे युद्धक्षेत्र में कर रहा हो।

कृष्ण की आँखों में चिंता का धुँधलका उतरा, ''यह तुमने क्या किया सव्यसाची ! किसी से परामर्श तो कर लिया होता।''

''क्यों ? क्या मैंने अपने सामर्थ्य से अधिक की प्रतिज्ञा कर ली है ?'' अर्जुन ने कृष्ण की ओर देखा।

''नहीं ! ऐसा तो मैं नहीं कहूँगा किंतु यह जयद्रथ से तुम्हारा द्वंद्वयुद्ध नहीं है।''

''यह वही जयद्रथ है कृष्ण ! जिसे मैंने वनवास काल में सेना सहित योजनों आगे दौड़ते हुए भी अपने बाणों से वींध दिया था।''

''ठीक कहते हो, किंतु न तो उस समय तुम्हारे सम्मुख समय की सीमा थी और न दुर्योधन वहाँ उपस्थित था।'' कृष्ण की चिंता कम नहीं हुई थी, ''आज की तुम्हारी प्रतिज्ञा का समाचार शीघ्रातिशीघ्र दुर्योधन तक पहुँच जाएगा। वे लोग जयद्रथ को कल प्रातः से सूर्यास्त तक कहीं छुपा लेंगे अथवा सारी सेना और सारे महारथी मिलकर उसकी रक्षा करेंगे। केवल एक दिन की ही तो बात है। अकेला सुशर्मा, केवल अपने दम पर दो दिनों से तुमसे बचता फिर रहा है, तो क्या दुर्योधन अपने सारे सामर्थ्य के होते हुए, एक दिन के लिए जयद्रथ को छिपा नहीं सकता ? यदि वे उसमें सफल हो जाते हैं तो तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा में बँध कर संध्या समय चितारोहण करना पड़ेगा। दुर्योधन के लिए, तुमसे छुटकारा पाने का इससे सरल उपाय और क्या हो सकता है। तुमने स्वयं ही एक प्रकार से उसकी विजय के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है।''

''मुझे इसका भय नहीं है।'' अर्जुन बोला, ''छिपा लें उसे, कहाँ छिपाएँगे—आकाश में, पाताल में, अंतरिक्ष में। मैं उसे कहीं से भी खोज लाऊँगा। अभिमन्यु का वध कर

वह इस प्रकार जीवित नहीं रह सकता। और यदि मैं उसे दंडित नहीं कर सकता तो फिर मेरे इस जीवन का लाभ ही क्या है। ऐसे में मुझे मर ही जाना चाहिए।"

कृष्ण कुछ नहीं बोले। वे प्रसन्न थे कि अभिमन्यु की मृत्यु पर अर्जुन का रजोगुण जागा था, तमोगुण नहीं। यदि कहीं उसकी मानसिकता युद्धारंभ काल के समान होती तो इस समय वह इस प्रकार की प्रतिज्ञा नहीं करता।''' पर यह प्रतिज्ञा पूरी कैसे होगी ?

कृष्ण ने अर्जुन के मंडप में प्रवेश किया। भीतर सूचना भिजवा दी कि वे आए हैं।

भीतरी भाग से सुभद्रा निकलकर आई। कृष्ण ने उसकी ओर देखा : वह बहुत उदास थी। उदास तो उसको होना ही था। उसकी आँखों से झर-झर अश्रु बह रहे थे, किंतु वह सँभल-सँभलकर अपने पगों पर चल रही थी। यदि कहीं शोक के कारण उसके पाँव डगमगा रहे होते और उसे चलने के लिए भी दासियों के सहारे की आवश्यकता पड़ती—तो भी कृष्ण को आश्चर्य नहीं होता।

कृष्ण ने अपने हाथ आगे बढ़ाए। सुभद्रा उनकी कंधे से आ लगी, "यह क्या हो गया भैया। मुझे तो जीवन के आरंभ में ही मृत्यु आ मिली।"

कृष्ण उसकी पीठ थपथपाते रहे। सुभद्रा को लगा कि उसके अश्रु तो नहीं रुक रहे हैं किंतु उसके मन की जलन जैसे कुछ शांत हो रही है। शरीर की तपन कुछ कम हो गई थी। मन का झंझावात जैसे कुछ संतुलित हो रहा था।''' यह भाई का स्नेह था अथवा कृष्ण का वह तांत्रिक रूप, जिसकी प्रायः लोग चर्चा करते हैं''' या फिर यह कृष्ण का देवत्व था ? उसकी समझ में कुछ नहीं आया किंतु इतना तो निश्चित था कि उसकी शारीरिक और मानसिक पीड़ा जैसे वाष्प बनकर विलुप्त हो गई थी।

कृष्ण अलग हुए। उन्होंने सुभद्रा को उसके कंधों से पकड़कर पृथक् किया और उसकी ओर देखा।

"यह क्या हुआ भैया ?" सुभद्रा ने पुनः कहा, "आप और धनंजय मिलकर भी उसकी रक्षा नहीं कर सके।"

"हाँ ! हम दोनों भी उसकी रक्षा नहीं कर सके।" कृष्ण ने सुभद्रा को एक आसन पर बैठाया, "हम दोनों ही यहाँ नहीं थे। उसका लाभ उठाया इन कौरवों ने। अकेले निहत्थे बालक को चक्रव्यूह में बंदी कर छह-छह महारथियों ने घेर कर उसका वध कर दिया। पर तुम चिंता मत करो बहन ! धनंजय ने कल संध्या तक उसका प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा की है। उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। कल सूर्यास्त तक जयद्रथ का प्राणांत हो जाएगा। जिन्होंने अभिमन्यु का इस प्रकार वध किया है, वे सब इसका फल पाएँगे। उन्हें भी अपने अथवा अपनों के रक्त से इस अन्याय का मूल्य चुकाना होगा।"

सुभद्रा की आँखें उनकी ओर उठीं, "जयद्रथ तो मारा जाएगा, किंतु अभिमन्यु''' वह तो लौट कर नहीं आएगा।"

"मैं समझता हूँ तुम्हारी पीड़ा को।" कृष्ण बोले, "जानता हूँ कि अभिमन्यु बहुत

जल्दी चला गया। पर सोचो, वह इतनी कम अवस्था में ही वह सब कुछ कर गया, जो कोई वीर क्षत्रिय अपने दीर्घ जीवन में करने की इच्छा रखता है। वीरता और पराक्रम का यशोस्तंभ स्थापित कर गया अभिमन्यु।"

"वह तो ठीक है भैया ! मेरा दुःख यह नहीं है कि उसको जो करना चाहिए था, वह कर नहीं गया, या कर नहीं सका।" सुभद्रा बोली, "किंतु उसने जीवन का कौन-सा सुख देखा ? क्या सुख भोगा ? अभी उसने जीवन में देखा ही क्या था ?"

कृष्ण के चेहरे से चिंता और पीड़ा के भाव तिरोहित हो गए। वे सहज आनन्द की स्थिति में बोले, "सुभद्रे ! पुण्यात्मा संसार में सुख भोगने के लिए नहीं, कर्म करने आता है। जिसने कर्तव्य किया, वह मुक्त हुआ और जिसने सुख भोगा, वह कर्म बंधन का बंदी हुआ। जीवन और मृत्यु के चक्र का बंदी। बंदी तो बार-बार इस मर्त्यलोक में आएगा। स्मरण है तुम्हें उपनिषद् का वह श्लोक, हमने साथ-साथ पढ़ा था।"

"कौन-सा श्लोक भैया ?"

"सदा साथ रहने वाले दो सखा सुपर्ण एक ही वृक्ष पर आश्रय किए हुए हैं। उनमें से एक उसके स्वादिष्ट फलों को आसक्तिपूर्वक भोगता है और दूसरा उस भोग से उदासीन, तटस्थ भाव से देखता रहता है।" कृष्ण बोले, "सुख तो शरीर का भोग ही है न ! तुम समझती हो कि अभिमन्यु अपने दिव्य लोकों और दिव्य शरीर को छोड़कर इस पृथ्वी पर इस मर्त्य शरीर के भोग भोगने आया था ? जो कर्म करने आते हैं, वे कम समय में ही अपना कर्म कर अपने लोक को लौट जाते हैं। उसने अपने दिव्य कर्मों से इस पृथ्वी पर यश का दिव्य शरीर पाया है, और दिव्य लोकों में अपने लिए अक्षय स्थान बनाया है। अभिमन्यु की मृत्यु पर शोक करना उचित नहीं है।"

"परंतु मेरा तो एक ही पुत्र था न भैया !"

"पगली है तू।" कृष्ण हल्के से मुस्कराए, "तेरा और मेरा क्या होता है ? कौन किसका है ? तेरा होता तो तू रोक न लेती उसे। जिसे वह पीछे छोड़ गया, वह उसका नहीं था। उसका होता तो साथ न ले जाता। अपनों को ही खोज रही है तो पांडवों के अन्य पुत्र तेरे नहीं हैं क्या ? द्वारका में तूने बस अभिमन्यु को ही पाला था तेरह वर्ष ? द्रौपदी के पुत्र तेरे पास नहीं थे ? वे तेरे पुत्र नहीं हैं ? इस काया के संबंध को ही संबंध मानती है तू ? जिसे तूने जन्म दिया, वही तेरा है ? पर यह काया ही तेरी नहीं है सुभद्रा ! हम यह काया नहीं हैं।"

"जानती हूँ भैया !"

"पर मानती नहीं है ?"

"मानती भी हूँ, पर आपके समान योगी नहीं हो पाती।" उसने कृष्ण की ओर देखा, "कहाँ से लाऊँ इतना संयम ? कहाँ से लाऊँ इतना धैर्य।"

"यह संयम और धैर्य तो तू अपने आपसे ही पाएगी। हम स्वयं ही अपना उद्धार करते हैं बावली ! और स्वयं ही अपना पतन।" कृष्ण बोले, "हम स्वयं ही अपने मित्र

हैं और स्वयं ही अपने शत्रु। स्वयं को सँभाल, क्योंकि तुझे उत्तरा को भी सँभालना है। उत्तरा की भावी संतान भी तेरी ही संतान है। तेरे पास सांसारिक दायित्व के नाम पर अब केवल उत्तरा है। उसकी देखभाल कर। उसका दुख कम नहीं है तुझसे और उसकी अवस्था और अनुभव तुझसे बहुत कम हैं। तेरे पास संसार को देखने की जो दृष्टि है, संभव है उसके पास वह भी न हो।"

"नहीं ! वह पांडवों के अज्ञातवास की अवधि में धनंजय की शिक्षा में रही है। बहुत अज्ञानी भी नहीं है।"

"अच्छा है कि वह रानी सुदेष्णा के पग-चिह्नों पर नहीं चल रही।" कृष्ण बोले, "जाओ उसे सँभालो।"

सुभद्रा अपने स्थान पर बैठी रही।

"क्या बात है ?" कृष्ण की वाणी स्नेह से ओतप्रोत थी, "कुछ और पूछना है ?"

"हाँ भैया !"

"पूछ।"

"धनंजय तो देख नहीं पाए कि संशप्तकों के युद्ध के पीछे क्या है। पर क्या आपका विवेक भी नहीं समझ पाया कि उन्हें इस युद्ध की स्थिति में अपने परिवार और अपनी सेना को शत्रुओं की कृपा पर छोड़कर नहीं जाना चाहिए था ?" सुभद्रा ने सीधे कृष्ण की ओर देखा, "क्या आप भी उन्हें समझाने में समर्थ नहीं थे कि उनका इस प्रकार जाना विनाशकारी हो सकता है ?"

कृष्ण तत्काल कुछ नहीं बोले। वे सुभद्रा की ओर देखते रहे।

"क्यों भैया ?" सुभद्रा ने पुनः पूछा।

"मनुष्य का अहंकार बहुत बलवान होता है। उसके उदय से बुद्धि कार्य नहीं करती। विवेक नष्ट हो जाता है।"

"जानती हूँ।"

"सुशर्मा की चुनौती से अर्जुन का अहंकार जाग उठा था। उसके अहंकार से लड़ना मेरे लिए भी क़ठिन था।" कृष्ण बोले, "फिर भी जब मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया तो पाया कि अहंकार तो सब में था और पर्याप्त जाग्रत अवस्था में था। मैंने कहा कि अर्जुन वहाँ नहीं होगा तो धर्मराज की रक्षा नहीं हो पाएगी। यह बात न भीम को अच्छी लगी, न धृष्टद्युम्न को। मैं इस बात पर अधिक बल देता तो इससे भी बड़ा अनर्थ हो सकता था, जितना अर्जुन की अनुपस्थिति के कारण हुआ है।"

"अन्य लोग भी चाहते थे कि वे मुख्य युद्धक्षेत्र से अनुपस्थित हो जाएँ ?"

"नहीं ! ऐसा तो नहीं है।" कृष्ण बोले, "किंतु यह कोई नहीं सुनना चाहता था कि अर्जुन की अनुपस्थिति में वे लोग आचार्य द्रोण को रोकने में असमर्थ रहेंगे।"

"ओह !" सुभद्रा मौन हो गई किंतु उठकर गई नहीं।

कृष्ण उसे देखते रहे : शायद वह कुछ कहे। पर सुभद्रा थी कि न कुछ कह रही

थी और न ही सिर उठाकर उनकी ओर देख रही थी।

"क्या बात है सुभद्रा ? किसी संशय से पीड़ित हो ?"

इस बार सुभद्रा ने सिर उठाकर सीधे कृष्ण की आँखों में देखा, "आप कहते हैं भैया ! कि हमें अपने कर्मों का फल मिलता है।"

"हाँ ! मिलता है।" कृष्ण मुस्कराए, "कर्म फल के विषय में फिर कोई शंका जागी है तुम्हारे मन में ?"

"पुण्य कर्मो से सुख मिलता है और दुष्कर्मो से व्यक्ति दुख पाता है।" सुभद्रा वोली, "इसका कहीं यह अर्थ भी है कि जो व्यक्ति सुखी दिखाई पड़ता है, वह अपने सत्कर्मों का सुख भोग रहा है और जो मनुष्य दुखी है, वह अपने पापों का दंड पा रहा है।"

"यह तो बहुत स्थूल व्याख्या है कर्म सिद्धांत की।"

"क्यों ? इसमें स्थूल क्या है और सूक्ष्म क्या है ?" सुभद्रा के स्वर में कुछ आवेश झलका, "बात को सरल ढंग से कहा गया है।"

"कहा तो सरल ढंग से ही गया है सुभद्रे ! किंतु कई बार सरलीकरण के अतिरेक से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।" कृष्ण कुछ मुस्कराए, "पर तुम पहले कह लो, क्या कहना चाहती हो।"

"मेरे मन में बार-बार आ रहा है कि मेरे किन पापों के कारण मेरा किशोर पुत्र अकाल मृत्यु को प्राप्त हुआ ? उसे पूर्णायु क्यों नहीं मिली ?" सुभद्रा बोली, "अभिमन्यु पूर्वजन्मों के अपने किन पापों के कारण इस अल्पायु में संसार छोड़कर चला गया ?"

"तुम कहना चाहती हो कि अभिमन्यु की इस वीरगति का अर्थ है कि यह उसे, तुम्हें तथा धनंजय–तीनों को ही तुम लोगों के पापों का दंड मिला है।"

"हाँ भैया !"

"कौन है ऐसा व्यक्ति, जो पुत्र की इस प्रकार की मृत्यु के क्षण में माँ को सांत्वना देने के लिए कह सकता है कि वह, उसका पुत्र और उसका पति–तीनों ही पापी हैं; और अपने पापों का दंड पा रहे हैं ?" कृष्ण कुछ असहज हो आए, "यह उचित नहीं है।"

"पर भैया सांत्वना देने के नाम पर असत्य भी तो नहीं बोलना चाहिए।"

"नहीं ! असत्य बोलने की आवश्यकता नहीं है।" कृष्ण बोले, "दुखों का अंत तो सत्य को जान कर, उसे स्वीकार कर ही होता है।"

"तो फिर…" सुभद्रा ने उनकी ओर देखा, "मैं इसे अपने कर्मो का फल क्यों न मानूँ ?"

कृष्ण अपने स्थान से उठकर उसके निकट आए। उन्होंने अपना हाथ उसके सिर पर रखा और स्नेह से थपथपाया, "तेरा मन इस समय स्थिर नहीं है। हिल्लोलित स्थिति है तेरे मन की। फिर भी इस वात को समझ मेरी बहना ! तेरा तो एक पुत्र गया है

और वह भी युद्ध में वीर क्षत्रियों के समान लड़ते हुए। हमारे माता-पिता के छह पुत्रों को उनके जन्म के तत्काल पश्चात् ही मार दिया गया था। सातवें हैं, बलराम भैया और आठवाँ हूँ मैं।"

"जानती हूँ।"

"तो क्या हमारे माता-पिता इतने पापी हैं कि उनको छह-छह नवजात पुत्रों की मृत्यु का कष्ट सहना पड़ा। उन्होंने जो कष्ट पाया, वह कंस के अत्याचार के कारण नहीं, अपने पाप के कारण था ?" कृष्ण ने उसकी ओर देखा।

सुभद्रा तत्काल कुछ नहीं बोली। मौन बैठी सोचती रही। अंत में सिर उठाकर बोली, "यह मानने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि उनकी वृत्तियाँ अत्यंत सात्विक हैं। फिर उन्होंने आप जैसे पुत्र को जन्म दिया है। आपकी माँ पापात्मा नहीं हो सकती।''' पर फिर कर्म के फलों की व्याख्या कैसे होगी ?"

कृष्ण कुछ क्षणों तक सोचते रहे। फिर धीरे से बोले, "हम अपनी बात आदि से ही आरंभ करें सुभद्रे ! ब्रह्म अपनी त्रिगुणात्मक प्रकृति के माध्यम से यह सृष्टि रचता है और आगे का सारा प्रपंच उस प्रकृति के तीनों गुणों का ही है। इस दृष्टि से कर्ता या तो ब्रह्म है अथवा उसकी प्रकृति। विद्या माया भी उसी की है और अविद्या माया भी। परा शक्ति भी उसकी है और अपरा शक्ति भी। वस्तुतः प्रकृति के गुण ही सारे जीवों से सब कुछ करवा रहे हैं। किंतु उस अविद्या माया के वशीभूत होकर आत्मा देह के साथ अपना तादात्म्य कर लेती है और अपने अहंकारवश स्वयं को कर्ता मान लेती है। जो मनुष्य स्वयं को कर्मों का कर्ता मान लेता है, वह कर्म बंधनों में बँधता है। जो उसे निष्काम रूप से करता है और यही जानता है कि कर्ता वह नहीं कर्तार है, वह उन कर्म बंधनों में नहीं बँधता। ठीक है ?"

"ठीक है भैया !"

"तो अपने कर्मों का फल तो उसी को मिलेगा, जो अपने अज्ञान और अपनी आसक्ति के कारण स्वयं को कर्ता मानेगा।" कृष्ण बोले, "जो जीव अपना सारा कर्तृत्व ईश्वर को समर्पित कर देता है और स्वयं को कर्ता नहीं मानता, उस पर कर्म का नियम—संसार का कार्य-कारण का नियम—लागू नहीं होता। वह ईश्वर का उपकरण मात्र है।''' जो कर्ता का अहंकार पालता है, वह प्रकृति के नियमों के अनुसार अपने कर्मो का फल अवश्य पाता है। समझ रही हो न ?"

"समझ रही हूँ भैया !"

"अब कर्म फल को केवल दो भागों—सुख और दुख या दंड और पुरस्कार—में मत बाँटो।" कृष्ण बोले, "कर्म का फल तो क्रिया की प्रतिक्रिया है। उसका रूप कुछ भी हो सकता है। यहाँ, एक और बात पर भी ध्यान दो बहना !"

"क्या भैया ?"

"यह माया की सृष्टि है। यहाँ जो सत्य है, वह दिखाई नहीं देता; और जो सत्य

नहीं है, वह दिखाई पड़ता है।"

"इसका क्या अर्थ हुआ ?" सुभद्रा चौंक उठी।

"इसका अर्थ है कि जिसको मनुष्य सुख मान बैठता है, आवश्यक नहीं कि वह सुख ही हो।" कृष्ण बोले, "जिसे हम दुख मानते हैं, वह अनिवार्यतः दुख नहीं होता।"

"ऐसा कैसे संभव है ?"

"पांडवों का जन्म हस्तिनापुर से दूर पर्वतों पर स्थित ऋषिकुल में हुआ। दुर्योधन तथा उसके भाई हस्तिनापुर में कुरुओं के राजप्रासाद में जन्मे। कोई भी यह मानेगा कि दुर्योधन का शैशव सुखमय था और पांडवों का दुखों और कठिनाइयों से भरा।" कृष्ण ने सुभद्रा की ओर देखा, "सहमत हो ?"

"ठीक है भैया !"

"किंतु पांडवों का वह दुख उनके लिए हितकर था। उसी के कारण उन्हें धर्म की शिक्षा मिली और वे धर्मात्मा हुए। क्या तुम चाहोगी कि पांडवों का जन्म हस्तिनापुर में होता, चाहे वे दुर्योधन के समान पापी ही बनते ?"

"नहीं ! मैं यह नहीं चाहती।" सुभद्रा बोली, "किंतु क्या दुखों को सौभाग्य माना जाए ? आप मुझसे कहेंगे कि अभिमन्यु का वध मेरे लिए सौभाग्य का प्रतीक है ?"

"नहीं ! ऐसा नहीं कहूँगा।" कृष्ण बोले, "केवल इतना ही कहूँगा कि संसार में जिसे सुख और दुख कहा जाता है, उन दोनों में ही सम रहने का प्रयत्न करो। यदि दुख में यह कहकर सांत्वना दी जाती है कि इसे ईश्वर की इच्छा मान कर स्वीकार करो और इतने विह्वल मत होओ तो यह भी कहा जाना चाहिए कि सुख को भी ईश्वर की इच्छा मान कर सहज रूप से स्वीकार करो। उससे इतना उत्फुल्ल होना भी श्रेयस्कर नहीं है।"

कृष्ण उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा करते रहे किंतु वह कुछ नहीं बोली। अंततः कृष्ण ही बोले, "दूसरी बात यह है सुभद्रे ! कि जिसे हम अपना मान बैठते हैं, वह हमारा होता नहीं है। हमारा होता तो हमें छोड़कर न जाता। उपनिषद् की उक्ति स्मरण रखो—'इदम न मम'। जब वह मेरा है ही नहीं, तो मुझसे छिना क्या ?"

"जब वह मेरा था ही नहीं तो उसके चले जाने पर मेरा मन दुखी क्यों है ?" सुभद्रा बोली, "जहाँ दुख है, वहाँ कुछ दोष भी है ही।"

"ठीक कह रही हो। जहाँ दुख है, वहाँ दोष भी है।" कृष्ण बोले, "पर वह दोष तुम्हारे पूर्व जन्मों के पाप नहीं हैं, अपने पुत्र में तुम्हारी आसक्ति है। यह आसक्ति ही कष्ट देती है। यही दुख का कारण है।"

"आप प्रेम को आसक्ति कहते हैं ?"

"नहीं ! प्रेम को आसक्ति नहीं कहता। मैं आसक्ति को ही आसक्ति कहता हूँ।" कृष्ण सहज स्वर में बोले, "प्रेम, मोह और आसक्ति में अंतर करना सीखो सुभद्रे !"

"क्या अंतर है भैया उनमें ?"

"द्वारका में अभिमन्यु और द्रौपदेयों के पालन-पोषण के लिए जो कष्ट तुमने सहा, और उस कष्ट में जो सुख पाया, वह तुम्हारा प्रेम है।" कृष्ण बोले, "उन पर तुम जितना अधिकार जताओगी, उन्हें अपने साथ बाँध कर रखने का जितना प्रयत्न करोगी; और उनके विकास के मार्ग में जितनी बाधा तुम बनोगी, वह तुम्हारा मोह होगा।"

"और आसक्ति ?"

"अपना जीना स्थगित कर, उनके माध्यम से जीने का प्रयत्न और इस प्रक्रिया में स्वयं पाया गया कष्ट तथा उनको दिया गया क्लेश तुम्हारी आसक्ति होगी।" कृष्ण बोले, "मोह और आसक्ति के कारण दुख होता है, प्रेम के कारण नहीं। प्रेम सब को मुक्त करता है। वह न स्वयं बँधता है, न औरों को बाँधता है। अधिक से अधिक संख्या में जीवों से प्रेम करो सुभद्रे ! किंतु किसी के प्रति मोह मत पालो और आसक्ति तो ईश्वर के सिवाय और किसी में होनी ही नहीं चाहिए।"

सुभद्रा ने उनकी ओर देखा और जैसे उसके मन का क्षोभ एक बार ही फूट पड़ा, "यह ईश्वर का कैसा न्याय है कि धर्मराज युधिष्ठिर जैसा सात्विक और पवित्र जीवन जीने वालों को कष्ट दिया जाए और धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन जैसे पापियों को राजपाट का सुख ? ऐसे में किसे उसके न्याय में विश्वास रह जाएगा ?"

"कहा न कि यह माया की सृष्टि है। ईश्वर जिनसे रुष्ट होता है, उन्हें इतना सुख देता है कि वे उसे भूल जाएँ और भूले ही रहें; और जिनसे प्यार करता है, उन्हें तिल-तिल जलाकर उनका मल निकाल देता है।" कृष्ण मुस्कराए, "तुम्हें नहीं लगता कि पांडवों ने जो कष्ट सहा, वह उनकी तपस्या थी, उनकी परीक्षा थी ? उस तपस्या ने उन्हें जो बना दिया है, वह तुम अभी नहीं जानती हो। उनका स्थान देवताओं से भी ऊँचा है। उनकी उपलब्धि मानव इतिहास में अद्वितीय होगी। सहस्राब्दियों तक उनकी पूजा होगी।" वे रुके और पुनः बोले, "धृतराष्ट्र की सारी उपलब्धियाँ शरीर के सुख तक सीमित हैं। शरीर असमर्थ होता जाएगा और उन सुखों का भी अंत हो जाएगा। विषय तो रहेंगे, किंतु उसकी इंद्रियाँ उनका भोग नहीं कर पाएँगी। इसमें अन्याय कहाँ है सुभद्रे !"

सुभद्रा को कोई तर्क नहीं सूझ रहा था। कृष्ण कह तो ठीक ही रहे थे किंतु उसका मन अभी भी विद्रोह किए हुए था, "एक ओर हम अपने किए हुए कर्मों का फल पाते हैं; और दूसरी ओर ईश्वर रुष्ट होकर मनुष्य को सुख देता है, तथा प्रसन्न होकर कष्ट देता है। दोनों बातें कैसे संभव हैं ?"

"संभव तो हैं किंतु हम उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं पाते, क्योंकि माया ने हमें मोहित कर रखा है।" कृष्ण बोले, "जिसे हम सुख मानते हैं, वह सुख नहीं है; जिसे हम दुख मानते हैं, वह दुख नहीं है। यह तो बुद्धि का फेर है। पलंग पर बैठ गरिष्ठ भोजन करता हुआ व्यक्ति स्वयं को परम सुखी मान रहा है; जबकि वह सीधे-सीधे रोग के राज्य में प्रवेश कर रहा है। अखाड़े, खेल के मैदान अथवा खेत-खलिहान में श्रम कर पसीना बहाते व्यक्ति को, वह कष्ट सहन करता हुआ दुखी व्यक्ति मान रहा है, जबकि वह निःरुग्णता

और पुष्टता की ओर अग्रसर हो रहा है। अपने संचित कर्मों के परिणामस्वरूप, व्यक्ति ईश्वर द्वारा उन कर्मो की ओर प्रेरित होता है, जो उसके वास्तविक सुख-दुख के दाता हैं। यह दूसरी बात है कि मनुष्य की सीमित दृष्टि उस सुख-दुख को न देख सके। कर्म सिद्धांत और ईश्वर की माया में कहीं कोई विरोध नहीं है सुभद्रे !''

''पर अच्छे लोगों को इस प्रकार दुखी करना क्यों आवश्यक है ?''

''पुरस्कार परीक्षा के बाद ही मिलता है बहना ! और परीक्षा उसी की होती है, जो परीक्षा देने को प्रस्तुत हो।'' कृष्ण बोले, ''जो परीक्षा देना नहीं चाहता, वह न तो स्वयं को तपस्या की भट्ठी में तपाता है और न ही पुरस्कार पाता है। किसी भी बड़ी उपलब्धि के लिए परीक्षा तो देनी ही होगी। ईश्वर को पाने के लिए सात्विकता तो अर्जित करनी ही होगी; और स्वयं को तपाए बिना कोई निर्मल कैसे हो सकता है।''

सुभद्रा उठ खड़ी हुई, ''मैं नहीं जानती कि वह मायावी इस संसार को कैसे चलाता है, किंतु इतना समझ पाई हूँ कि उससे रुष्ट होने के स्थान पर उसे समझने का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है।''

सुभद्रा उठकर खड़ी तो हो गई थी, उसने जाने का संकल्प भी कर लिया था; किंतु उसके पग उठ नहीं रहे थे।

''अभी तुम्हारा पूरा समाधान नहीं हुआ सुभद्रे !'' कृष्ण के स्वर में वेणु का सा माधुर्य था।

''हाँ भैया !'' वह बोली, ''मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि अभिमन्यु कहाँ होगा, किस रूप में होगा, किस स्थिति में होगा ?''

''सुभद्रे !'' कृष्ण का स्वर अत्यंत गंभीर था, ''आत्मा एक ऐसा वृत्त है, जिसका केन्द्र इस शरीर में अवस्थित है; किंतु उसकी परिधि कहीं नहीं है। जब वह केन्द्र एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित हो जाता है, तो पहले शरीर की तथाकथित मृत्यु हो जाती है। मृत्यु का अर्थ है उस केन्द्र का एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानांतरित भर हो जाना। आत्मा जड़ की उपाधियों से बद्ध नहीं है। वह स्वरूपतः नित्य, शुद्ध, बुद्ध तथा मुक्त स्वभाव है।''

''तो फिर वह चैतन्य आत्मा स्वयं को जड़ से बँधी हुई क्यों पाती है ? वह स्वयं को जड़ क्यों समझती है ? यह विशुद्ध, पूर्ण तथा विमुक्त आत्मा इस जड़ का दासत्व क्यों करती है ? स्वतःपूर्ण होते हुए भी इस आत्मा को अपूर्णता का भ्रम क्यों हो जाता है ?'' सुभद्रा के स्वर में जिज्ञासा कम और आरोप का भाव अधिक था।

''श्वेताश्वतर उपनिषद् में ऋषि ने कहा है :

'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवरणं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेअयनाय।।' ''

''इसका मेरे प्रश्न से क्या संबंध ?''

''संबंध है।'' कृष्ण बोले, ''ऋषि का कहना है कि मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष

को प्राप्त कर लिया है। सूर्य के समान कांतिमान, अंधकार और अज्ञान से परे उस महान् पुरुष को मैं जानता हूँ। केवल उस पुरुप को जान कर ही मनुष्य मृत्यु को लाँघ जाता है, मृत्यु से परे जा सकता है, मृत्यु के चक्र से छूट सकता है।'' कृष्ण ने रुक कर सुभद्रा को देखा, ''क्या अर्थ है इसका ? इसका अर्थ है कि इस वंधन में बँधने का, मृत्यु के चक्र में पड़ने का, अंधकार और अज्ञान में डूबने का एक ही कारण है कि हम उस पुरातन पुरुष को भूल गए हैं। भूलने से पहले हम उसे जानते भी रहे हो सकते हैं। उसे भूल कर ही आत्मा जड़ को सत्य मानने और उसकी दासता करने लगी है।''

''ऋषि ठीक ही कह रहे हैं।'' सुभद्रा ने जैसे अपने आपसे कहा, ''मैं ही क्यों यह भूल गई।''

11

द्रोण अपने शिविर की ओर लौटे तो वे स्वयं ही नहीं समझ पा रहे थे कि वे प्रसन्न हैं अथवा अवसन्न ! वे सफल हैं अथवा असफल ! उन्होंने युधिष्ठिर को बंदी कर दुर्योधन को सौंपने का वचन दिया था। वह तो हो नहीं सका। द्रोण का वचन झूठा हो गया।''' तो क्या हुआ ? क्या इस असफलता के लिए दुर्योधन उन्हें सेनापतित्व से वंचित कर देगा ? क्या वह उन्हें दंडित करेगा ? क्या उनकी किसी प्रकार की क्षति होगी ? उन्हें किसी प्रकार की हानि होगी ?''' शायद नहीं ! इनमें से कुछ नहीं होगा। उन्हें कोई भौतिक हानि भी नहीं होगी। यह तो बस उनके आशंकित मन की लीला है।''' पर भौतिक हानि ही तो सब कुछ नहीं है। द्रोण अपना वचन हार गए, क्या यह चोट कम है। उनके वचन का अब क्या मूल्य रह जाएगा क्षत्रियों के इस समाज में ? द्रोण का नाम लबाड़ियों की सूची में नहीं लिख दिया जाएगा ?''' केवल एक छोटे से उस लड़के अभिमन्यु के कारण ? क्या समझें द्रोण ''' उनका चक्रव्यूह भी असफल रह गया। छह-छह महारथियों ने मर्यादा भंग कर उस अकेले निहत्थे बालक को मारा।

क्या द्रोण दुर्योधन को कह सकते हैं कि उन्होंने युधिष्ठिर को तो बंदी नहीं किया, किंतु अर्जुन के प्राण हर लिए हैं। अभिमन्यु का वध क्या अर्जुन को तोड़ नहीं देगा ? क्या अर्जुन अब भी पहले की सी आस्था से लड़ सकेगा ?''' स्वयं द्रोण के पुत्र को कुछ हो जाए तो उनके लिए संसार में क्या रह जाएगा ?

पर अगले ही क्षण द्रोण के मन में एक दूसरा ही स्वर गूँजा।''' यदि वे समझते हैं कि अभिमन्यु के वध से अर्जुन टूट जाएगा—तो उन्होंने अर्जुन को नहीं जाना। अभिमन्यु के वध का समाचार पाकर अर्जुन के हृदय का उग्रदेव जागेगा।''' वह पहले से भी अधिक प्रचंड होकर लड़ेगा। द्रोण ने पांडव पक्ष को एक अधिरथी से वंचित किया है, किंतु

उन्होंने उनके युद्ध के आवेश में जो वृद्धि की है, वह क्या कम घातक है ?··· अब तक वे लोग कौरव सभा में हुए द्रौपदी के अपमान और अपने वनवास के कष्टों को ही नहीं भूले; ऊपर से उन्हें यह घाव और दे दिया गया। पर कौन जाने, आज के युद्ध का विश्लेषण दुर्योधन किस रूप में करता है। वह तो युद्ध-गणितज्ञ है, जाने किसके मरने और किसके जीने को कहाँ जोड़ता है और कहाँ घटाता है···

दुर्योधन अपने शिविर में बंदी सिंह के समान चक्कर लगा रहा था। संध्या समय जब वह दिन भर के युद्ध के लाभ-हानि का गणित मिलाने बैठा, तो वह समझ नहीं पा रहा था कि उसने क्या पाया और खोया था। दिन भर के युद्ध में सहस्रों सैनिक खोकर वे लोग केवल अभिमन्यु का वध कर पाए थे। इस युद्ध से पहले दुर्योधन ने अभिमन्यु को कभी कुछ नहीं गिना था; किंतु आज के युद्ध में उसने जो प्रखर वीरता दिखाई थी, उससे उसने अपने पिता और मातुल—दोनों के गुण प्रकट कर दिए थे। वह और जीवित रहता तो कौरवों के लिए और बड़ा संकट प्रमाणित होता। उसका मारा जाना तो ठीक रहा। यदि कहीं पितामह ही युद्ध क्षेत्र में महासेनापति के रूप में खड़े रहते तो साधारण सैनिकों का चाहे कितना संहार करते, पर वे अभिमन्यु का वध नहीं होने देते। वे कौरवों और पांडवों को एक ही परिवार मानते हैं—वे अपने वंश की अगली पीढ़ी का वध कैसे होने देते।··· यह तो द्रोण का ही सेनापतित्व था कि उन्होंने चक्रव्यूह की रचना कर अभिमन्यु को फाँस लिया और सारे नियमों और मर्यादाओं को एक किनारे रख, अभिमन्यु का वध करवा दिया··· द्रोण को पांडवों से सचमुच कोई मोह नहीं रह गया है क्या ?··· पर त्रिगर्तो ने युधिष्ठिर को जीवित बंदी बनाने का जो दो दिनों का अवसर दिया था, उसे तो खो दिया द्रोण ने ! क्या सचमुच अभिमन्यु ने ऐसा ही युद्ध किया था कि द्रोण असहाय हो गए थे। या फिर उनके मन में पांडवों की ममता जाग उठी थी···

दुर्योधन का मन हुआ, अपनी इस असहायता में तो वह अपना सिर किसी शिला पर दे मारे या जाकर कहीं जल में कूदकर प्राण दे दे।··· जिन लोगों पर उसका रत्ती भर भी विश्वास नहीं है, उन्हें अपना प्रधान सेनापति नियुक्त करने को बाध्य है वह··· क्या भीष्म, क्या द्रोण ··· क्या करे दुर्योधन ? न तो वह उन्हें अपना पाता है और न दुत्कार ही सकता है। आज वह द्रोण को अप्रसन्न कर दे, तो आज ही वह बुड्ढा युधिष्ठिर को आशीर्वाद देने पहुँच जाएगा। और ये पांडव भी इतने जड़मति हैं कि उन्हें कभी यह स्मरण ही नहीं रहता कि द्रोण उनके शत्रुओं का सहयोगी है। पता नहीं किस मिट्टी के बने हैं पांडव—उन्हें पिछला विरोध कभी याद ही नहीं रहता। हर समय हर किसी को गले से लगाने को तैयार बैठे हैं। भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा तो एक ओर, यदि स्वयं दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण भी चले जाएँगे तो युधिष्ठिर उनका भी स्वागत करेगा।··· उनके द्वार हर समय खुले हैं, इसलिए दुर्योधन अपना द्वार किसी के लिए बंद नहीं कर सकता··· द्रोण को कुछ कहने की देर है कि कौरवों की ओर का एक योद्धा कम हुआ

और पांडवों की ओर जुड़ गया। और यदि द्रोण दुर्योधन से रुष्ट होकर पांडवों की ओर गया तो वह बहुत भयंकर युद्ध करेगा। यह बूढ़ा ब्राह्मण अत्यंत द्वेषी है। उसकी नस-नस में विष भरा है। द्रुपद की एक जरा-सी न्यायसंगत बात को वह आज तक नहीं भुला पाया और उसके सारे वंश का शत्रु हो गया। क्षमा तो उसमें क्या होगी, उसमें तनिक-सी विस्मृति भी नहीं है।''' वह क्यों नहीं समझ सका कि दूसरा व्यक्ति भी न्यायसंगत बात कह सकता है। अश्वत्थामा और कर्ण को दुर्योधन अपनी जिह्वा से सहस्र बार मित्र कहकर संबोधित करे, किंतु वे जानते हैं कि दुर्योधन उनका आश्रयदाता है। उनका धर्म है कि वे दुर्योधन को प्रसन्न रखें, उसके काम आएँ।''' और यह द्रोण विचित्र व्यक्ति है''' दंभी, द्वेषी और अहंकारी'''

द्वारपाल ने आकर सूचना दी, "प्रधान सेनापति आचार्य द्रोण पधारे हैं।"

"आ गया बुड्ढा अपना स्पष्टीकरण देने," उसके मन ने कहा, पर जिह्वा से उच्चरित हुआ, "आने दो।"

द्रोण ने आकर आशीर्वाद दिया और कहा, "राजन् ! कल की रणनीति के विषय में कुछ चर्चा करना चाहता हूँ।"

"आज की सफलता से आह्लादित होकर कल भी चक्रव्यूह रचना चाहते हैं क्या ?"

द्रोण ने जिज्ञासु दृष्टि से दुर्योधन की ओर देखा : उनका यह शिष्य राजा उन्हें प्रोत्साहित कर रहा है या उनका अपमान कर रहा है ?'''

"क्या आज हम सफल रहे हैं ?" उत्तर देने से बचने के लिए द्रोण ने प्रश्न किया।

"क्यों ? आप छह महारथियों ने एक बच्चे को मारा नहीं ?"

द्रोण ने अनुमान लगाया कि अभिमन्यु के वध से दुर्योधन प्रसन्न अवश्य है; किंतु खुल कर उसका श्रेय द्रोण को देना नहीं चाहता''' वैसे दुर्योधन के मन और जिह्वा में कोई संबंध नहीं है, इसे द्रोण बहुत पहले ही समझ गए थे''' दुर्योधन की वाणी और मुखाकृति उसके चिंतन और भावनाओं के कवच नहीं हैं, वे उससे असंबंधित हैं'''

"राजन् ! तुम क्या युद्ध संबंधी धर्म और मर्यादा की चर्चा करना चाहते हो ? यदि ऐसा है तो मेरी उसमें कोई रुचि नहीं है। मैं उसकी चर्चा करने नहीं आया।"

"उसमें मेरी भी कोई रुचि नहीं है।" दुर्योधन बोला, "मेरी रुचि तो युधिष्ठिर को बंदी करने में है। आज आपके चक्रव्यूह में छोटी मछली फँसी थी, वह भी जीवित नहीं रही। युधिष्ठिर भी बच गया। अभिमन्यु या किसी और के मरने-जीने का महत्त्व भी तभी तक है, जब तक आप युधिष्ठिर को बाँध कर मेरे सामने नहीं डाल देते। एक बार युधिष्ठिर बंदी हो गया तो फिर मेरी रुचि किसी के वध में नहीं है।" दुर्योधन ने सहज भाव से टहलते हुए द्रोण की ओर पीठ कर ली और फिर उसका चेहरा जब द्रोण की ओर पलटा तो पहले से अधिक भयानक हो चुका था, "मर कर व्यक्ति पीड़ा मुक्त हो जाता है; और मैं पांडवों को यातना में तड़पते हुए देखना चाहता हूँ।"

"तो राजन् क्या चाहते हैं ?"

"कल फिर जाल बँधे।"

"चक्रव्यूह ?"

"हाँ !"

"पर कल अर्जुन युद्धक्षेत्र में विद्यमान होगा। वह अभिमन्यु नहीं है। उसे रोकना किसी के लिए भी संभव नहीं होगा। बड़ी मछली के साथ-साथ सैकड़ों छोटी मछलियाँ भीतर घुस आएँगी। न केवल जाल छिन्न-भिन्न हो जाएगा, वरन् मछुवारों के प्राण भी संकट में पड़ जाएँगे।"

"तो आपकी प्रतिज्ञा का क्या होगा ?" दुर्योधन का चेहरा एकदम अभद्र हो उठा, "लोग कहेंगे आचार्य द्रोण की प्रतिज्ञा, बालक को बहलाने वाले झूठी माँ के आश्वासन मात्र हैं।"

"मैंने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया है।"

"प्रतिज्ञा प्रयत्न की नहीं, फल प्राप्ति की होती है आचार्य ! जो कुछ आप कर नहीं सकते, उसकी प्रतिज्ञा क्यों करते हैं ?"

द्रोण की समझ में नहीं आया कि क्या कहें··· सच कहते तो यही कहते कि एक दंभी और अहंकारी राजा की दुराशाओं को साकार करने का बोझ उनके कंधों पर है, जो कदाचित् उनकी क्षमता से वाहर है।··· पर ऐसा सच बोलने का लाभ ?···

धीरे से बोले, "अभिमन्यु की क्षमताओं का, हममें से किसी को भी ठीक ज्ञान नहीं था··· और सत्यजित ! हममें से किसी ने सत्यजित के युद्ध कौशल और दृढ़ प्रतिज्ञा को याद नहीं रखा···।" द्रोण रुके। फिर बोले तो उनका स्वर बहुत धीमा हो चुका था, "और शायद मैं यह भूल गया था कि मैं वृद्ध हो गया हूँ।··· तुम चाहो तो दुर्योधन ! मैं अपने पद का त्याग कर सकता हूँ।"

'फिर वही···' दुर्योधन के मन की पवन चक्की चलने लगी··· 'मैं जानता हूँ कि तुम मुझे छोड़कर भाग जाने को बहुत व्याकुल हो। कोई बहाना खोज रहे हो। पर मैं तुम्हें ऐसा कोई अवसर नहीं दूँगा।··· बहुत चतुर समझते हो स्वयं को। जब सब ओर सुख शांति थी, विश्राम और विलास था, प्रासाद और दासियाँ थीं, तब तक तो आचार्य द्रोण हस्तिनापुर की राजसभा की सेवा में थे और अब जब चारों ओर वाण बरस रहे हैं, लहू की नदियाँ बह रही हैं और कंधों पर से मस्तक कट-कट कर गिर रहे हैं··· तब आचार्य द्रोण कह रहे हैं कि यदि तुम चाहो तो मैं सेनापति का पद त्याग सकता हूँ··· सैनिकों को शांति काल में इसलिए नहीं पाला जाता कि युद्ध काल में वे पद त्याग करें या संधि और समझौतों की बात करें··· '

"मैंने यह नहीं चाहा है आचार्य !" दुर्योधन बोला, "मैंने तो युधिष्ठिर को बंदी के रूप में देखना चाहा है।"

"कल अर्जुन रणभूमि में वर्तमान होगा।" द्रोण बोले, "त्रिगर्त संशप्तक समाप्त हो चुके हैं और मुझे और कोई वाहिनी संशप्तक युद्ध के लिए तैयार दिखाई नहीं देती; और

मैं तो समझता हूँ··· ।"

"क्या समझते हैं आप ?"

"कि अभिमन्यु के वध के वाद, अव यदि कोई संशप्तक सेना अर्जुन को ललकारेगी भी तो कदाचित् अर्जुन मुख्य क्षेत्र छोड़कर नहीं जाएगा।"

"यह आपका अनुमान है या आपको कहीं से सूचना मिली है ?"

"मेरा अनुमान है।"

"वह क्षत्रिय धर्म की मर्यादा तोड़ देगा ?"

"आज हमने अभिमन्यु के वध में जितनी मर्यादाएँ तोड़ी हैं, उसके बाद न कोई क्षत्रिय धर्म रह जाता है, न युद्ध मर्यादा···। मेरी अपेक्षा है कि कल वह उग्रदेव के समान युद्ध क्षेत्र में अवतरित होगा।"

द्वारपाल ने पुनः प्रवेश किया, "महाराज ! सिंधुराज जयद्रथ उपस्थित होना चाहते हैं।"

"हम प्रधान सेनापति से बात कर रहे हैं।"

"उन्हें बताया गया है; किंतु उनका धैर्य चुक गया है। वे बलात् भीतर घुसना चाहते हैं।"

दुर्योधन की भृकुटि चढ़ी और क्षण भर में ही वह पुनः सहज हो गया, "उन्हें आने दो।"

जयद्रथ आँधी के समान शिविर में घुसा। पर उसे देखकर लगा कि उस पर से कई आँधियाँ पहले से ही बीत चुकी हैं। दुर्योधन ने उसे इतना अस्तव्यस्त और घबराया हुआ पहले कभी नहीं देखा था।

"क्या बात है सिंधुराज !"

जयद्रथ ने एक उचटती हुई दृष्टि द्रोण पर डाली और फिर कटे हुए पेड़ के समान टूट कर दुर्योधन के चरणों में गिरा, "महाराज ! मुझे बचा लीजिए।"

"क्या हुआ सिंधुराज ?"

"महाराज ! मेरी रक्षा कीजिए।" लगा जैसे जयद्रथ किसी की बात सुनने या समझने की स्थिति में नहीं है। विक्षिप्तावस्था में वह केवल अपनी बात कह ही सकता था, "या फिर मुझे अनुमति दीजिए कि मैं अपनी सेना लेकर अपने राज्य में लौट जाऊँ।"

"हुआ क्या है वीर जयद्रथ ?" दुर्योधन ने उसे दोनों भुजाओं से पकड़कर खड़ा किया और फिर बलात् धकेलकर एक आसन पर बैठाया। परिचारिका को जल लाने के लिए कहकर वह मुड़ा, "आज के युद्ध के महावीर ! इतने उद्विग्न क्यों हो ?"

"मुझे अपने राज्य में लौट जाने की अनुमति दें महाराज !"

"क्या सिंधुराज बताएँगे कि हमसे क्या अपराध हुआ है ?"

"आपसे कोई अपराध नहीं हुआ महाराज !" जयद्रथ फिर से उठ खड़ा हुआ। लगा वह फिर से दुर्योधन के चरणों में जा गिरेगा।

दुर्योधन ने आगे बढ़कर उसे वहीं रोका।

"अर्जुन ने कल संध्या तक मेरा वध करने की प्रतिज्ञा की है।"

दुर्योधन और द्रोण—दोनों ही स्तब्ध रह गए। दोनों के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला।

जयद्रथ अपने आसन के हत्थों को दृढ़तापूर्वक पकड़े हुए हाँफ रहा था। उसके होंठ सूख रहे थे। वह बार-बार अपनी जीभ से उन्हें गीला कर रहा था। उसे देखकर लगता था कि या तो वह एक लंबी दौड़ के बाद यहाँ आकर गिर गया है या वह ऐसा पक्षी शावक है, जिसे सामने भीड़ में अपने माता-पिता दिख रहे हैं और वह एक उड़ान में वहाँ तक पहुँच सकता है, किंतु उसके पंख जैसे जम गए हैं और वह हताश-सा इधर-उधर देख रहा है कि वह अपने स्थान से हिल क्यों नहीं सकता।

"तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ ?" दुर्योधन ने पूछा।

"मेरे गुप्तचरों ने मुझे सूचना दी है।"

"किसके सामने प्रतिज्ञा की है ?"

"अपने भाइयों, कृष्ण, पांचालों तथा मत्स्यों की उपस्थिति में।"

"अग्नि और पुरोहित के सम्मुख तो नहीं की न !"

"उससे क्या होता है," लगा जयद्रथ अभी रो पड़ेगा, "वह अर्जुन की प्रतिज्ञा है। शब्द मुख से निकले हैं तो वे कर्म में परिणत होंगे ही।"

"पर तुम्हें ही मारने की प्रतिज्ञा क्यों की है ?" दुर्योधन बोला, "अभिमन्यु का वध करने वाले तो तुम नहीं थे।"

"मैंने व्यूह के द्वार पर उन सबको रोक दिया था।" जयद्रथ बोला, "मैंने उसको मारने का श्रेय लेने की बात कही थी।"

उसने द्रोण से कुछ भी नहीं कहा, पर द्रोण मन-ही-मन संकुचित हो उठे थे।

सहसा जैसे जयद्रथ को दौरा पड़ा, "दुर्योधन ! मुझे अपने देश चले जाने दो। मैं अपनी सेना के साथ यहाँ से सुरक्षित निकल जाना चाहता हूँ।"

दुर्योधन का चेहरा कुछ सजीव हुआ, "तुम अपने देश जाकर सुरक्षित हो जाओगे ?"

"क्यों नहीं । अर्जुन वहाँ तक मेरा पीछा नहीं करेगा।"

"क्यों ? क्या अर्जुन ने कोई ऐसी प्रतिज्ञा की है कि वह कुरुक्षेत्र में ही तुम्हारा वध करेगा ?"

"नहीं ! पर वह युद्धक्षेत्र नहीं छोड़ सकता। और फिर वहाँ मेरा देश होगा, मेरा राज्य होगा, मेरी सेना होगी।"

दुर्योधन की कल्पना में एक बहुत मनोरम दृश्य उभरा : जयद्रथ अपनी सेना के साथ पड़ाव पर पड़ाव डालता हुआ सिंधु सौवीर की ओर भागता जा रहा है और उसके पीछे अर्जुन का रथ दौड़ रहा है। जैसे-जैसे अर्जुन के रथ की गति बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही वह कुरुक्षेत्र से दूर होता जा रहा है, युधिष्ठिर से दूर होता जा रहा है··· और पीछे

युधिष्ठिर खड़ा है अकेला और असहाय।''' क्रमशः उसे कौरव महारथी घेरते जा रहे हैं और वह असहाय-सा चीखता-चिल्लाता अभिमन्यु के समान ही धराशायी हो जाता है''' कौरव योद्धा उसे बाँध कर लाते हैं और दुर्योधन के चरणों में डाल देते हैं।''' जब तक जयद्रथ को मार कर अर्जुन लौटता है, तब तक युधिष्ठिर जुए में सब कुछ शकुनि से हार चुका है और वे पाँचों भाई द्रौपदी को लिये हुए, फिर से वनवास के लिए जा रहे हैं।'''

"महाराज ! मैं यहाँ रहा तो कल संध्या तक अर्जुन अवश्य ही मेरा वध कर देगा। मुझे अपने देश लौट जाने दें।" जयद्रथ ने जैसे गुहार की।

दुर्योधन की कल्पना में एक दूसरा चित्र उभरा : जयद्रथ अपनी सेना के साथ भागता जा रहा है। सात्यकि, भीम, धृष्टद्युम्न, और पांडव पुत्रों को युद्धक्षेत्र सौंप कर अर्जुन और कृष्ण जयद्रथ का पीछा कर रहे हैं। जयद्रथ को अकेला पाकर उसका सिर धड़ से अलग करने में अर्जुन को तनिक भी श्रम नहीं पड़ता। वह आधे प्रहर में ही जयद्रथ का वध कर उसकी सेना को तहस-नहस करके वापस कुरुक्षेत्र लौट आता है और फिर अपने भाइयों के साथ मिल कर कौरव सेनाओं का संहार करता है। द्रोणाचार्य असहाय से खड़े कहते हैं, 'अब इसे कौन रोके। आज तो सिंधुराज जयद्रथ भी नहीं है'''

'तो युधिष्ठिर को बंदी करो।' दुर्योधन आदेश देता है।

'कैसे बंदी करें ? अर्जुन उसकी रक्षा कर रहा है।'

'अर्जुन को कहीं और ले जाओ।'

'कौन ले जाए ? त्रिगर्त संशप्तक मारे जा चुके हैं।'''

क्षण भर में ही यह चित्र उसकी दृष्टि से ओझल हो गया। जयद्रथ उसे लगभग झंझोड़ रहा था, "दुर्योधन तुम कुछ कहते क्यों नहीं ?"

"सिंधुराज !" दुर्योधन बोला तो उसका स्वर पर्याप्त आश्वस्त था, "इतना घबराओ मत। हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

"कौन रक्षा करेगा मेरी ? मुझे किसी पर भी विश्वास नहीं है। मैं एक बार अर्जुन और भीम का क्रोध झेल चुका हूँ। अब और अपमानित नहीं होना चाहता।" जयद्रथ और भी घबरा गया, "मुझे अपने देश लौट जाने दो।"

"वीरवर जयद्रथ !" दुर्योधन कुछ और विश्वास के साथ बोला, "देश भाग जाने से न तुम्हारी कीर्ति की रक्षा हो पाएगी और न तुम्हारे प्राणों की।" उसकी आँखें जैसे जयद्रथ को भेद रहीं थीं, "उस दिन भी तुम्हारी सेना और तुम्हारे मित्र तुम्हारे साथ थे, जब तुमने द्रौपदी के अपहरण का प्रयत्न किया था। पांडवों ने तुम्हें न केवल पराजित किया था, तुम्हें बंदी भी किया था। तुम्हारे वक्ष पर अपना चरण रख कर भीम ने तुमसे कहलवाया था कि तुम युधिष्ठिर के दास हो।" दुर्योधन रुका, "तुमने द्रौपदी का अपमान किया था, उन्होंने तुम्हें अपमानित भर करके छोड़ दिया। अब उनके अनुसार तुमने अभिमन्यु के प्राण लिए हैं। वे तुम्हारा वध करने के लिए आएँगे तो तुम्हारी सेना तुम्हारी

रक्षा कर लेगी ?"

जयद्रथ आँखें फाड़े अवाक् खड़ा था। लगता था कि दुर्योधन के एक ही तर्क ने उससे वह सारी सुरक्षा की भावना भी छीन ली थी, जिसका अब तक उसे विश्वास था।

"यहाँ तुम्हारी सेना है।" दुर्योधन बोला, "तुम्हारे मित्र राजाओं की सेनाएँ हैं। आचार्य द्रोण हैं, कर्ण है, अश्वत्थामा है, कृतवर्मा है, कृपाचार्य हैं, मैं हूँ, दुःशासन है··· क्या अब भी तुम्हें लगता है कि तुम अपने देश में अधिक सुरक्षित रहोगे ?"

जयद्रथ को जैसे कोई उत्तर ही नहीं सूझा। कुछ देर तक किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रहा और जब स्वयं को सँभाल नहीं सका तो फूट पड़ा, "मेरी रक्षा करो दुर्योधन ! मेरी रक्षा करो।"

"तुम्हारी रक्षा करके ही हम स्वयं सुरक्षित रह सकते हैं सिंधुराज !" दुर्योधन बोला, "हम तुम्हारी रक्षा करेंगे।"

वह द्रोण की ओर मुड़ा, "क्यों आचार्य ! आप युधिष्ठिर को तो बंदी नहीं बना पाए, पर सिंधुराज की रक्षा तो कर पाएँगे न ? केवल कल संध्या तक के लिए ?"

द्रोण को लगा, दुर्योधन प्रश्न नहीं कर रहा, उनका अपमान कर रहा है : क्या द्रोण इतनी सारी सेना और इतने महारथियों की सहायता से एक दिन के लिए एक व्यक्ति की रक्षा नहीं कर सकते··· और साथ ही साथ, वह यह भी भूलने नहीं देता कि आज के युद्ध में अर्जुन से दूर लड़ते हुए अकेले युधिष्ठिर को बंदी नहीं बना पाए।

"कल किसी भी मूल्य पर जयद्रथ की रक्षा होनी ही चाहिए आचार्य !" दुर्योधन जैसे याचना कर रहा था, "आप कल किसी पांडव का वध न करें, किसी को बंदी न बनाएँ; किंतु जयद्रथ को कल तक के लिए जीवित बचा लें।"

"ठीक है। कल प्रत्येक मूल्य पर जयद्रथ की रक्षा की जाएगी।" आचार्य बोले।

"आप प्रतिज्ञा करते हैं आचार्य ?"

द्रोण की आँखों में क्रोध झलका : यह भी कोई बच्चों का खेल है कि छोटी-छोटी-सी बात पर प्रतिज्ञा ! अपने पुत्र के वध के कारण प्रतिशोध की ज्वाला में जल कर अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है तो द्रोण जयद्रथ की रक्षा की प्रतिज्ञा करें।

दुर्योधन का स्वर कुछ कोमल हुआ, "आप प्रतिज्ञा नहीं करना चाहते तो न करें; किंतु आश्वासन तो दें।"

द्रोण कुछ सहज हुए, "अर्जुन मेरा शिष्य है। उसे युद्ध में एक दिन के लिए रोके रखना कोई ऐसा असाधारण कार्य नहीं है, जो मेरी क्षमता से बाहर हो।"

"आपने वचन दिया है आचार्य ! अपने वचन की लाज रखिएगा।" दुर्योधन तत्काल बोला।

'बिच्छू डंक मारना नहीं छोड़ेगा··· ' द्रोण ने सोचा, 'यह दुर्योधन ऐसा ही रहेगा।'

द्रोण उठे, "अच्छा राजन् ! चलता हूँ।"

द्रोण शिविर से बाहर निकल गए। जयद्रथ भी उनके पीछे-पीछे चला गया।

उन्हें विदा कर दुर्योधन अपने आसन पर बैठा तो उसके चेहरे पर मुस्कान थी : देखें मछली चारा निगलती है, या जाल में फँसती है।

द्रोण अपने मंडप में लौटे तो उनकी मनःस्थिति विचित्र हो रही थी। जाने कहाँ से उनके मन में बालक अर्जुन आकर बैठ गया था।

"तुम कहाँ से आ गए ?" द्रोण ने पूछा।

"आना कहाँ से था। मैं तो सदा से आपके मन में ही था।" वह बोला।

"वह तो ठीक है किंतु अब तुम युवा हो चुके हो। मुझे प्रतिदिन समरभूमि में मिलते हो।" द्रोण बोले, "और आज तुम वैसे होकर आ गए हो, जैसे तुम मेरे गुरुकुल में आए थे।"

"आपके लिए तो मैं वही रहूँगा, जैसा पहले दिन आपके पास आया था। मेरा शरीर बढ़ गया है, पर आपका और संबंध तो वही है, जो पहले दिन निश्चित हुआ था। गुरु और शिष्य का। बालक का और वयस्क का। असमर्थ और समर्थ का।"

"तो आज क्या करने आए हो ?" द्रोण का मन स्थिर नहीं था। अर्जुन का यह रूप देखकर उन्हें विचित्र प्रकार की व्याकुलता का अनुभव हो रहा था।

"रोने आया हूँ आपके सम्मुख। महावीर अर्जुन तो रोता हुआ अच्छा नहीं लगेगा, पर आपका शिष्य बालक अर्जुन तो रो सकता है न !" वह बोला।

"पर तुम रोना क्यों चाहते हो ?" द्रोण और भी अटपटा गए थे।

"आप नहीं जानते ? जान कर अनजान बनते हैं।" अर्जुन बोला, "आपने घेर कर मेरे नन्हे से पुत्र को मार दिया। कोई न्याय है यह ? आपको मुझसे प्रेम नहीं तो कोई बात नहीं, किंतु न्याय और धर्म की मर्यादा से तो प्रेम होना चाहिए।"

"वह दुर्योधन की इच्छा थी मेरी नहीं।" द्रोण अपनी आँखें नहीं उठा सके।

"दुर्योधन की इच्छा तो संसार को आग लगा देने की है। उसमें तो आप उसके सहायक हो ही रहे हैं। अब धर्म को आग लगा देने के लिए तो उसके सहायक मत होइए।" अर्जुन बोला, "वैसे यह सब कहने नहीं आया था मैं। मैं तो केवल इतना कहने आया था कि पुत्र की मृत्यु से बहुत पीड़ित हूँ मैं। अपने पौत्र को मार कर आपको कैसा लग रहा है ?"

द्रोण तड़पकर उठ खड़े हुए। पर तब तक वह बालक अर्जुन अंपना संवाद बंद कर चुका था। वह उनके हृदय के एक कोने में बैठ गया था और बिना कुछ कहे, निरंतर रोता जा रहा था।··· द्रोण ने उसे पुकारा तो उसने अपना मस्तक ही नहीं उठाया। उन्होंने उसे झंझोड़ा तो उसने अपनी आँखें उठाईं; किंतु उन अश्रुपूरित आँखों में झाँकना द्रोण के वश का नहीं था ···

12

"पर जयद्रथ ही क्यों ?" देविका ने कुछ झल्लाकर कहा, "उससे कहीं बड़े-बड़े पापी वहाँ हैं। द्रोण का अगले दिन संध्या तक वध करने की प्रतिज्ञा क्यों नहीं की धनंजय ने, जिन्होंने चक्रव्यूह रचा ? दुर्योधन को मारने की प्रतिज्ञा क्यों नहीं की, जो इस सारे युद्ध का सूत्रधार है ?"

"ओह देविका !" द्रौपदी ने शांत स्वर में कहा, "इसमें इतना उत्तेजित होने की क्या बात है। विश्वास रखो, वे सब मारे जाएँगे, बारी-बारी। धनंजय नहीं भी मारेंगे तो धृष्टद्युम्न है वहाँ, महाराज द्रुपद हैं। कोई नहीं बचेगा उन कौरवों में से। अंतर इतना ही है कि कोई पहले जाएगा और कोई बाद में।"

"मरना तो सबको ही है जीजी ! हमें भी।" बलंधरा बोली, "पर वह जीवन का एक भिन्न पक्ष है। देविका जीजी की आपत्ति यह नहीं है। वे कह रही हैं...."

"वह जो कुछ कह रही है, वह मैं समझ रही हूँ।" द्रौपदी का स्वर कुछ दृढ़ हुआ, "वही कह रही हूँ मैं। उनमें से कोई नहीं बचेगा, पांडव और पांचाल उन सबको मारेंगे। उन सबकी पत्नियाँ उससे भी भयंकर चीत्कार करेंगी, जैसा मैंने द्यूत सभा में किया था या सुभद्रा ने अभिमन्यु के वध का समाचार सुन कर किया।... अंतर तो कुछ दिनों का ही है। कितने दिन चलेगा यह युद्ध ? दस दिन ? बीस दिन ? तीस दिन ? इससे अधिक नहीं। तो इन दस, बीस, तीस दिनों में इन सबको मर जाना है।"

"ठीक है।" पुनः देविका ही बोली, "मेरा प्रश्न तो इतना ही था कि अभिमन्यु के वध का समाचार सुनकर धनंजय को सबसे अधिक क्रोध जयद्रथ पर ही क्यों आया ? उन्होंने उसे ही क्यों अभिमन्यु के वध का प्रमुख अपराधी माना ?"

"उसने तो अभिमन्यु का वध किया भी नहीं है।" करेणुमती भी उनकी चर्चा में सम्मिलित हो गई, "उस बेचारे ने तो अभिमन्यु को मार्ग दे दिया था।"

"बड़े दोषी वे हैं, जिन्होंने युद्ध की मर्यादा भंग की और छह-छह लोगों ने मिलकर अकेले बालक को पहले रथ और शस्त्रों से वंचित किया और फिर घेर कर किसी पशु के समान उसका आखेट किया।" देविका ने कहा, "अथवा वह बड़ा दोषी है, जिस अकेले ने छह-छह योद्धाओं से युद्ध कर उन्हें व्यूह में प्रविष्ट नहीं होने दिया ?"

"तुम्हें जयद्रथ से बहुत सहानुभूति है क्या ?" द्रौपदी ने कटाक्ष किया, "उसका इतना पक्ष ले रही हो।"

"नहीं ! सहानुभूति नहीं है।" देविका ने उसी प्रकार उत्तेजित स्वर में कहा, "किंतु मन में यह प्रश्न उठा है। मैं जानने का प्रयत्न कर रही हूँ कि वहाँ युद्धक्षेत्र में उपस्थित लोगों का मस्तिष्क कैसे काम करता है। उनका तर्क क्या है ?"

"और मैं सोच रही हूँ कि इस बार धर्मराज ने धनंजय से यह क्यों नहीं कहा कि जयद्रथ, तुम्हारी बहन दुःशला का पति है। तुम उसका वध नहीं करोगे।" बलंधरा बोली।

"नहीं ! इस बार धर्मराज यह नहीं कह सकते।" द्रौपदी ने कहा, "अपने पुत्र का वध करने वाले को कोई इसलिए क्षमा नहीं कर सकता कि वह उनकी बहन का पति है।"

"जो अपनी पत्नी का अपहरण करने वाले को इस कारण से क्षमा कर सकता है, वह अपने पुत्र के हत्यारे को भी क्षमा कर दे तो आश्चर्य की क्या बात है।" विजया पहली बार वोली।

"तब से अब तक में परिस्थितियाँ बहुत वदल गई हैं। बात केवल पुत्र के वध की होती तो क्या पता है कि धर्मराज कह देते कि जयद्रथ के वध से अभिमन्यु वापस तो नहीं आ जाएगा। प्रतिशोध से क्षमा अधिक महान् कर्म है, इसलिए जयद्रथ को क्षमा कर दिया जाए।" करेणुमती बोली, "किंतु यह युद्धकाल है। जिस हत्यारे को क्षमा किया जाएगा वह और हत्याएँ करेगा। आज एक पुत्र का वध हुआ है, कल दूसरे का भी हो सकता है। मैं तो समझती हूँ कि धर्मराज को अपने प्राणों की भी चिंता होगी। न होती तो वीर सत्यजित के मारे जाने पर वे युद्धक्षेत्र से दूर क्यों चले जाते।"

"करेणु ! तुम धर्मराज का अपमान कर रही हो।" द्रौपदी बोली, "वे कायर नहीं हैं। उस अवस्था में भी, जब वे जानते थे कि उन्हें बंदी करने के लिए षड्यंत्र रचा गया है, वे मध्यम पांडव का संकट जान कर अपने प्राणों की चिंता क़िए बिना, अपने छोटे भाई की रक्षा करने गए।"

"नहीं ! मैं उन्हें कायर नहीं कह रही जीजी।" करेणुमती बोली, "क्षमा से बड़ी वीरता औऱ क्या हो सकती है और इस युद्ध ने तो उनके युद्धवीर रूप को भी अनेक बार प्रमाणित किया है।"

"तो फिर और क्या कह रही हो तुम ?"

"उन्हें युद्ध में मरने वाले अपने पक्ष के प्रत्येक सैनिक की चिंता होगी। युद्ध आरंभ होने के पश्चात् तो मैंने ऐसी कोई चर्चा नहीं सुनी कि धर्मराज ने कौरव पक्ष के किसी भी व्यक्ति को मारने का निषेध किया हो। वहाँ तो धनंजय ही हैं, कि जिन्हें कभी पितामह को मारने में संकोच होने लगता है। कभी उनकी गुरुभक्ति जाग उठती है और वे अपने पुत्र का वध करवा लेते हैं।"

"तुम्हें एक धनंजय ही मूर्ख दिखाई देते हैं क्या ?" द्रौपदी की आँखों में कुछ ताप दिखाई दिया।

"नहीं ! मेरा अभिप्राय वह नहीं था।" इस बार करेणुमती कुछ सहम गई, "ऐसी बात मैं सोच भी कैसे सकती हूँ, पर मुझे लगता है कि एक बार युद्ध आरंभ हो जाने पर धर्मराज ने क्षत्रिय राजा का मन बना लिया है। जब युद्धक्षेत्र में आमने-सामने खड़े हो ही गए हैं तो शत्रु से प्रेम का क्या अर्थ। वे धनंजय की पितामह के प्रति मृदुलता का निरंतर विरोध करते रहे हैं। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि पितामह का यथाशीघ्र वध हो, ताकि हमारी सेना की क्षति कम हो।" उसने रुककर द्रौपदी को देखा, "किंतु युद्धक्षेत्र

में अपने सम्मुख भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण को देखकर धनंजय ने यह नहीं माना कि वे शत्रु पक्ष में हैं तो उनका वध होना चाहिए। उन्होंने माना कि वे लोग विरोधी पक्ष से हैं तो वह पक्ष विरोधी ही नहीं है। वे उनके विरुद्ध होने के स्थान पर युद्ध के ही विरोधी हो गए। श्रीकृष्ण ने उन्हें इतना समझाया, पर अपने पितामह और गुरु के प्रति उनका मोह तो समाप्त नहीं ही हुआ। आप सोचिए, वह मोह कितना दृढ़बद्ध है कि तेरह दिनों का युद्ध हो जाने पर, इतने लोगों के वीरगति प्राप्त करने पर भी धनंजय ने अभी एक बार भी आचार्य द्रोण के वध का मन नहीं बनाया है।''

''क्या प्रमाण है तुम्हारे पास ?'' द्रौपदी ने पूछा।

''इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहिए कि अभिमन्यु के वध के पश्चात् भी उन्होंने द्रोण को नहीं, जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा की है।'' करेणुमती बोली, ''जयद्रथ मर भी गया तो क्या होगा ? द्रोण जीवित रहेंगे, कृपाचार्य जीवित रहेंगे, कर्ण, कृतवर्मा और वह दुःशासनपुत्र, जिसने अचेत अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया—वे सब जीवित होंगे; और हमारे भाइयों, पिताओं, पतियों और पुत्रों का वध करने का निरंतर प्रयत्न करेंगे। यदि कहीं धनंजय, आचार्य द्रोण के वध की प्रतिज्ञा करते तो कौरवों के आधे प्राण आज संध्या तक निकल जाते।''

''इसी से तो कह रही थी मैं कि हमें यह समझने का प्रयत्न करना चाहिए कि धनंजय की दृष्टि में प्रमुख अपराधी जयद्रथ ही क्यों है।'' देविका बोली, ''ज़यद्रथ ने कल कोई भयंकर अपराध किया है अथवा धनंजय के मन में पहले से ही जयद्रथ के लिए मृत्यु दंड वर्तमान था, जो किन्हीं कारणों से विस्मृति के गर्त में खो गया था और अब यह अवसर पाकर वह उबल पड़ा है ?''

''बहुत संभव है कि वन में मेरे अपहरण के समय से ही धनंजय के मन ने जयद्रथ के लिए मृत्युदंड घोषित कर रखा हो।'' द्रौपदी ने कहा, ''मध्यम पांडव को अपना आक्रोश प्रकट करने का पर्याप्त अवसर मिल गया था, किंतु धनंजय कुछ नहीं कर पाए थे। संभव है कि धर्मराज के प्रभाव में उन्हें लगा हो कि हमें नृशंस नहीं होना चाहिए। पांचाली का अपहरण हुआ था और पांचाली छुड़ा ली गई, तो अब जयद्रथ का मरना आवश्यक नहीं है; किंतु पुत्र का वध उस खुरंड लगे घाव को छील गया। जमा हुआ रक्त फिर से बहने लगा और धनंजय को लगा हो कि किसी अपराधी को दूसरी बार क्षमा नहीं किया जा सकता। परीक्षित की पुनः परीक्षा बुद्धिमत्ता नहीं है। यह तो वह अपराधी है जो क्षमा का दान पा पश्चात्ताप नहीं करता, पहले से भी अधिक भयंकर हो उठता है।''

''यह भी तो हो सकता है जीजी !'' देविका बोली, ''कि धनंजय का सारा आक्रोश इस बात के लिए हो कि जयद्रथ ने स्वयं को अभिमन्यु का हत्यारा कह कर स्वयं को गौरवान्वित किया है। जिन लोगों ने मिलकर अभिमन्यु को मारा है, वे मन में कितने भी प्रसन्न हों, किंतु उनमें से किसी ने भी स्वयं को अभिमन्यु का हत्यारा कहने का

साहस नहीं किया है।"

"मैं भी एक बात कहूँ ?" विजया ने पूछा।

"क्यों न कहो।" बलंधरा हँसी, "तुम हमारे सबसे बुद्धिमान देवर सहदेव की सहधर्मिणी हो।"

विजया ने बलंधरा के परिहास पर ध्यान नहीं दिया, "मुझे ऐसा लगता है कि जिन छह महारथियों ने घेर कर अभिमन्यु का वध किया, उनमें से कोई भी इस पर गर्व नहीं कर सकता। उनमें से किसी के लिए भी यह वीरता का कृत्य नहीं है। उस दुःशासनपुत्र के लिए भी नहीं, जिसने छह महारथियों में घिरे क्षत-विक्षत और अचेत अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया। उन्होंने कोई असाधारण शौर्य का कार्य नहीं किया। सत्य कहा जाए तो उन्होंने एक प्रकार से कायरता का काम किया।" विजया ने रुककर उन सबको देखा, "एक जयद्रथ का ही काम ऐसा था, जो असाधारण था। इतना असाधारण कि उसे महादेव के किसी वर से प्रमाणित करने का प्रयत्न करना पड़ा। ऐसे में वीरता का दंभ करने वाले, स्वयं को अभिमन्यु का हत्यारा घोषित करने वाले, जयद्रथ को ही पहले दंडित करना आवश्यक है जो अपने श्मश्रु उमेठ रहा होगा। शेष लोग तो सिर लटकाए अपने कृत्य पर ग्लानि का अनुभव कर रहे होंगे।"

"बात तो एकदम ठीक कह रही है विजया !" द्रौपदी के स्वर में प्रशंसा का भाव था, "इसने सचमुच स्वयं को सहदेव की योग्य पत्नी सिद्ध कर दिया है।"

13

कृष्ण अपने मंडप में आ तो गए; किंतु उनका मन वहीं अर्जुन के मंडप में उसके आसपास ही मँडरा रहा था।...

आज अभिमन्यु की मृत्यु हो गई; पर कल क्या होगा ?... अर्जुन ने बहुत संकटपूर्ण प्रतिज्ञा कर ली थी। उसके प्रति उसके मन में कोई पश्चात्ताप भी नहीं था। अपनी भूल उसके ध्यान में ही नहीं आ रही थी। इस समय अपने आवेश के कारण वह आत्मविश्वास से परिपूर्ण था और जयद्रथ के वध के लिए कृतसंकल्प था। पर क्या उसका ध्यान अपने मार्ग की कठिनाइयों पर नहीं गया ?... पता नहीं ऐसी प्रतिज्ञाएँ करने से पूर्व ये लोग कुछ सोचते क्यों नहीं हैं। अर्जुन के मन में ऐसा संकल्प जागा ही था तो उसे वह मन में ही रखता और कल संध्या तक जयद्रथ के वध का पूरा प्रयत्न करता। इस सार्वजनिक घोषणा की क्या आवश्यकता थी। मन का आवेग उससे रोका नहीं गया... घोषणा ही करनी थी तो कहता कि वह संध्या समय तक जयद्रथ का वध कर देगा।... चितारोहण से इस शपथ को जोड़ने का क्या औचित्य था ?... अर्जुन का नियंत्रण नहीं है स्वयं पर। पुत्र की मृत्यु ने उसके संयम के सारे बंधन तोड़ दिए

हैं। भूल गया वह कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होती। भूल गया वह कि ये दैहिक संबंध भ्रम मात्र हैं। कैसे स्मरण रहता उसे यह सब। अभी उसका अहंकार पूर्णतः विगलित नहीं हो पाया है। ओह ! क्षत्रियों का यह अहंकार ! कोई भी किसी भी दिन विचलित हो जाता है।"'

कृष्ण के मन में तनिक भी संशय नहीं था कि अर्जुन सरलता से जयद्रथ का वध कर सकता था। जयद्रथ उसके सम्मुख पड़े, तब न। या फिर उन दोनों का द्वैरथ युद्ध हो। जयद्रथ का मस्तक काटने में अर्जुन को विशेष श्रम नहीं करना पड़ेगा। किंतु जयद्रथ उसके सम्मुख आएगा ही क्यों ? सारी कौरव सेना और सारे कौरव महारथी उसे घेर कर बैठ जाएँगे।"' उनके लिए अर्जुन को यमलोक भेजने के लिए इससे अधिक अनुकूल अवसर और क्या हो सकता है।"' अर्जुन ने जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा की है, किंतु अपने ही प्राणों को संकट में डाल लिया है।"'

अर्जुन की रक्षा कैसे हो ? कैसे बचाया जा सकता है अर्जुन को ? अर्जुन की रक्षा के लिए जयद्रथ का मरना अनिवार्य है। कौन मारेगा जयद्रथ को—कल संध्या से पूर्व ? कौन पहुँचेगा जयद्रथ तक सारी कौरव सेना को रौंद कर ? आचार्य द्रोण व्यूह-द्वार की रक्षा करेंगे। वे अर्जुन को कभी उसमें प्रवेश नहीं करने देंगे और अर्जुन उनका वध नहीं करेगा।"' तो फिर ?

कृष्ण को नींद नहीं आ रही थी। वे उठ बैठे और मंडप से बाहर निकल आए।

द्वारपाल भागता हुआ आया, "क्या बात है गोविंद ? आपको कुछ चाहिए ?"

"दारुक को बुलाओ।"

कृष्ण मंडप के भीतर आ गए। दारुक ने आने में देर नहीं की।

"गोविंद !"

"दारुक ! कल प्रातः शास्त्र की विधि से मेरे रथ को सावधानी से सुसज्जित करके मेरे साथ रणभूमि में चलना है।"

दारुक ने आश्चर्य से देखा : क्या कह रहे हैं गोविंद ? अपना रथ क्यों ?

"कौमोदकी गदा, दिव्य शक्ति, सुदर्शन चक्र, धनुष बाण, अन्य आवश्यक सामग्री सब रथ में रख लेना। गरुड़ध्वज भी लहरा देना। रथ में बलाहक, मेघपुष्प, शैव्य और सुग्रीव को ही जोतना और उन पर दृढ़ अयस के जाल डाल देना। शत्रुओं के बाण उन तक नहीं पहुँचने चाहिए।" कृष्ण ने उसकी ओर देखा, "तुम सन्नद्ध रहना और जैसे ही पांचजन्य का घोष सुनो, मेरे पास आ जाना।"

"आपकी आज्ञा का पालन होगा गोविंद ! किंतु आप रथ का क्या करेंगे ?" दारुक मौन नहीं रह सका।

"मैं कल वह उद्योग करूँगा, जिससे कुंतिपुत्र अर्जुन, सूर्यास्त से पहले जयद्रथ को मार डाले।"

"पर आपने तो युद्ध में शस्त्र न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की थी।" दारुक बोला।

"जयद्रथ का वध तो अर्जुन ही करेगा।" कृष्ण बोले, "पर तुमने ठीक ही पूछा। मैं संध्या समय से ही सोच रहा हूँ कि मेरी प्रतिज्ञा महत्तर है अथवा धर्म ? मेरी आँखों के सम्मुख धर्म की हत्या होती रहे तो क्या मैं इसलिए शस्त्र ग्रहण नहीं करूँगा, क्योंकि उससे मेरी प्रतिज्ञा भंग होती है ? मैं अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा करता रहूँ, और धर्म की हत्या होते देखता रहूँ ? क्यों की थी मैंने प्रतिज्ञा ? इसीलिए तो कि उससे धर्म की रक्षा होती थी। अब मेरी प्रतिज्ञा से धर्म की रक्षा नहीं होगी। कल संध्या तक अर्जुन, जयद्रथ का वध न कर पाया तो वह चितारोहण कर अपने प्राण दे देगा। अर्जुन जीवित न रहा तो धर्म कैसे जीवित रहेगा। मुझे अर्जुन से अधिक प्रिय और कोई नहीं है। वह धर्म का रक्षक है। जो अर्जुन से द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। जो अर्जुन का अनुगामी है, वह मेरा अनुगामी है। अर्जुन तो मेरा आधा शरीर ही है।"

"वह तो ठीक है गोविंद ! किंतु आपकी प्रतिज्ञा ?"

कृष्ण क्षण भर को मौन रहे और फिर बोले, "कई बार सोचता हूँ कि यह प्रतिज्ञा भी एक प्रकार का अहंकार तो नहीं है ?"

दारुक ने चकित दृष्टि से उसकी ओर देखा, क्या कह रहे हैं कृष्ण ?

"प्रतिज्ञा तो साधना होती है," अंततः दारुक बोला, "आप उसे अहंकार कैसे कह रहे हैं ?"

"व्यक्ति के संदर्भ में वह साधना हो सकती है; किंतु विश्व के संदर्भ में वह धर्म की रक्षा करती है क्या ?" कृष्ण बोले, "यदि साधक स्वयं को प्रतिज्ञा के बंधन में बाँध लेता है और वह धर्म की रक्षा के लिए मुक्त नहीं रहता तो मैं उसे धर्म कैसे मान सकता हूँ ?"

"पर केशव··· ।"

"यह सुनना अच्छा नहीं लगा ?"

"नहीं !" दारुक ने कहा।

"मेरे पिता ने कंस को यह वचन दिया था कि वे जन्म लेते ही अपनी प्रत्येक संतान उसे सौंप देंगे। वचन दिया था या नहीं ?"

"दिया था।"

"वह भी तो प्रतिज्ञा ही थी ?"

"हाँ गोविंद ! वह प्रतिज्ञा ही थी।"

"तो उन्होंने मुझे और बलराम भैया को कंस को क्यों नहीं सौंपा ?"

दारुक चुप रह गया।

"उन्होंने न केवल हमें उसे सौंपा नहीं, उसे हमारे जन्म के विषय में ठीक सूचना ही नहीं दी।" कृष्ण ने उसकी ओर देखा, "क्या यह अनुचित था ? क्या यह प्रतिज्ञाभंग था ? क्या यह झूठ था ? क्या उन्हें हमारी रक्षा नहीं करनी चाहिए थी ?"

"यह कोई कैसे कह सकता है।" दारुक ने धीरे से कहा।

"धर्म को समझना बड़ा कठिन है दारुक !" कृष्ण बोले, "अनेक बार हम जिसे धर्म समझ रहे होते हैं, वह धर्म नहीं होता। धर्म तो वह है, जो सत्य को धारण करता है। एक व्यक्ति क्रोध न करने की साधना करे और अपना मान-अपमान न माने, यह तो ठीक है किंतु वह अपनी आँखों के सम्मुख असहाय बालक की हत्या और अबला स्त्री के साथ अत्याचार देखता रहे क्योंकि उसे क्रोध नहीं करना है तो यह धर्म कैसे हो सकता है।"

"पर धर्मराज ने तो द्यूतसभा में यही किया था।" दारुक जैसे सहमकर बोला।

"यही तो अंतर है मुझमें और धर्मराज में। उनके धर्म में और मेरे धर्म में।" कृष्ण बोले, "हमारा स्वधर्म पृथक् है। हमारी प्रकृति पृथक् है। मेरे रक्षणीय का युद्ध में शत्रु के हाथों अधर्मपूर्वक वध होता रहे और मैं शत्रु के बताए हुए युद्ध के नियमों की व्याख्या समझता रहूँ, यह मेरा धर्म नहीं है।"

दारुक मौन खड़ा रहा।

कृष्ण मुस्कराए, "तुम इस समय धर्म की मीमांसा में मत पड़ो। जो कहा है, वही करो। मैं धर्म की रक्षा में तत्पर हूँ, धर्म मेरी रक्षा कर लेगा। भीष्म का प्रतिकार करने के लिए भी मैं दो बार तत्पर हुआ था, किंतु उसकी आवश्यकता नहीं पड़ी थी। मैं प्रयत्न में हूँ कि इस बार भी अर्जुन को कहीं और से सहायता मिल जाए। मुझे स्वयं शस्त्र लेकर उसकी रक्षा न करनी पड़े। कौन जाने इस बार क्या हो, किंतु हमें प्रत्येक स्थिति के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"आपकी इच्छा पूरी हो गोविंद।"

अर्जुन न भयभीत था न आशंकित; किंतु चिंतित तो वह भी था। कृष्ण की प्रतिक्रिया और अपने भाइयों की मुद्राएँ देखकर वह समझ गया था कि उसने एक कठिन प्रतिज्ञा कर ली थी। यद्यपि वह अपने मन में आश्वस्त था; किंतु कृष्ण की चिंता अकारण तो नहीं थी। क्यों चिंतित थे कृष्ण ? क्या उन्हें भी लगता था कि वह कल संध्या तक जयद्रथ का वध नहीं कर पाएगा ? वे उसकी क्षमता को कम आँक रहे थे अथवा कौरवों की शक्ति को कुछ अधिक ही समझ बैठे थे ?...

बहुत देर तक अर्जुन को नींद नहीं आई। यह अनिद्रा की स्थिति उचित नहीं थी। यह तो चिंता का लक्षण था। यद्यपि उसे गुडाकेश कहा जाता था और एक रात्रि की अनिद्रा उसके लिए तनिक भी हानिकारक नहीं थी; फिर भी सत्य यही था कि रात भर की अच्छी नींद, योद्धा को अगले दिन युद्ध में स्फूर्ति प्रदान करती थी।... पर क्या करे वह ? वह संकल्पपूर्वक रात भर जाग तो सकता था, पर सो जाना उसके अपने नियंत्रण में नहीं था।...

वनवास काल में महर्षि व्यास ने उसे महादेव संबंधी एक मंत्र दिया था।... सहसा अर्जुन का ध्यान उस ओर चला गया। क्या था वह ? कोई अज्ञात प्रेरणा ? किसी

अज्ञेय शक्ति का कोई रहस्यमय संकेत ? अथवा स्वयं व्यास जी की इच्छा ? वह नहीं जानता''' पर यदि सहस्रों मंत्रों में से उसे इसी एक मंत्र का ध्यान आया था तो उसे उसका मनन करना चाहिए।

अर्जुन ने शैया पर लेट कर अपने शरीर को ढीला छोड़ा तो मन स्वतः ही मंत्र पर एकाग्र होने लगा। एक विचित्र प्रकार की तन्मयता का अनुभव हुआ। लगा, मंत्र के शब्द बोलने लगे हैं। वे अपना अर्थ स्पष्ट कर रहे हैं। शब्द क्या थे, वे तो सृष्टि का रहस्य थे। शांति का सागर थे। मंत्र का जाप जैसे उन्मुक्त आकाश के नीचे खुले समुद्र के ऊपर अनायास परिश्रमशून्य स्थिति में लहरों पर आरूढ़ होने का आनन्द था'''

और सहसा कहीं से कृष्ण आ गए। अर्जुन ने उनकी ओर देखा। पर कहाँ थे वे लोग ? यह युद्धशिविर तो नहीं था। न उसका अपना मंडप था न कृष्ण का। वे द्वारका अथवा उपप्लव्य में भी नहीं थे। जाने कौन-सा स्थान था। पर उससे क्या। वे कहीं भी हो सकते थे। अंतरिक्ष में भी।'''

"तुम चिंता मत करो अर्जुन !" कृष्ण बोले।

"मुझे कोई चिंता नहीं है।" अर्जुन ने कहा, "क्या तुम्हें लगता है कि मैं चिंतित हूँ ?"

"चिंतित तो हो।" कृष्ण हँसे, "तुम्हारी समग्र चेतना एकाग्र होकर कल के युद्ध के संभावित परिणाम के विषय में सोच रही है। यह चिंता का ही लक्षण है।"

"युद्ध करना है तो क्या उसके विषय में सोचूँ भी नहीं।"

कृष्ण हँसे, "चिंतन करो, चिंता नहीं। जो कार्य करना हो, उसे प्रयत्नपूर्वक करो धनंजय ! उद्योगहीन मनुष्य की चिंता उसके शोक का दूसरा नाम है। शोक उसका सबसे बड़ा शत्रु है। शोक मित्रों को दुर्बल करता है और शत्रुओं को बल देता है।"

"मैं शोक नहीं कर रहा और न ही मैं जयद्रथ से भयभीत हूँ।" अर्जुन ने कहा, "पर चिंतित तो मैं हूँ। कौरवों के सारे महारथी और उनके सारे जीवित सैनिक जयद्रथ को घेर लेंगे तो मैं उसे देख भी पाऊँगा ? आजकल सूर्यदेव भी शीघ्र ही अस्त हो जाते हैं।''' सोचता हूँ कि यह प्रतिज्ञा न ही की होती।"

कृष्ण ने उसकी बात का कोई उत्तर नहीं दिया। वे आचमन कर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गए और बोले, "पाशुपत नाम का एक सनातन और उत्तम अस्त्र है। महादेव ने उससे ही सारे दैत्यों का वध किया था। यदि तुम्हें उसका ज्ञान हो तो कल तुम अवश्य ही जयद्रथ का वध कर सकोगे। और यदि तुम्हें उसका ज्ञान न हो तो मन-ही-मन भगवान महादेव की शरण ग्रहण करो। उनका ध्यान करो। उनसे याचना करो। उनकी दया के प्रसाद से तुम उस महान अस्त्र को प्राप्त करोगे।"

अर्जुन ने और कुछ नहीं पूछा। आचमन किया और धरती पर बैठ कर एकाग्र मन से भगवान शिव का चिंतन करने लगा।

अर्जुन धरती पर बैठा था, पर उसे लगा कि वह कृष्ण के साथ आकाश पर उड़ता

हुआ कहीं दूर जा रहा है। वह जानता था कि ऐसे उड़ना मनुष्य के लिए संभव नहीं है, किंतु इस समय उसे अपने उड़ने पर तनिक भी आश्चर्य नहीं हो रहा था। इस समय वे लोग बहुत ऊँचाई पर थे। हिमालय से भी ऊपर। कृष्ण ने उसकी भुजा थाम रखी थी। वे सहज गति से चलने के समान उड़ते जा रहे थे। नीचे कुबेर के उद्यान में कमलों से सुशोभित सरोवर थे। परम पावनी गंगा थी। अनेक आश्रम थे। वे लोग ब्रह्मतुंग पर्वत पर आए। शतश्रृंग पर आए और फिर शर्यातिवन आ गया। वे महामंद्राचल को भी पार कर गए। वे और भी ऊपर उठे और विष्णुपद आकाश में उड़ने लगे।

सहसा अर्जुन ने अपने तेज में प्रज्वलित एक पर्वत देखा। विचित्र पर्वत था। चारों ओर केवल हिम का प्रसार था और पर्वत इस प्रकार प्रज्वलित था, जैसे सूर्य अपने संपूर्ण तेज में दिप रहा हो। अर्जुन पूछना ही चाहता था कि कृष्ण उसे कहाँ ले आए हैं कि उसने देखा कि उस पर्वत के एक शिखर पर स्वयं भगवान महादेव, जगदंबा पार्वती के साथ विद्यमान थे। उस स्थिति में भी उन्होंने अपने एक हाथ में धनुष धारण कर रखा था।

वे दोनों स्वतः ही महादेव के सम्मुख पहुँच गए। उसके लिए कोई आयास नहीं करना पड़ा। उन्होंने भगवान महादेव के सम्मुख भूमि पर माथा टेक कर प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे। अर्जुन समझ नहीं पा रहा था कि वे लोग कौन-से मंत्र पढ़ रहे हैं। कौन-सी स्तुति थी वह। पर उसके मन में जैसे शरणागति का भाव था। वह तो यही जानता था कि वह भगवान महादेव की शरण में आया था और कह रहा था कि वे उस पर कृपा करें।...

सहसा शिव मुस्कराए, "जानता हूँ कि तुम मेरी शरण में आए हो। मैं प्रसन्न हूँ तुमसे। वैसे भी जिस पर श्रीकृष्ण की कृपा है, मैं उसके प्रतिकूल कैसे हो सकता हूँ। जो माँगना है, माँग लो। आज तुम्हारा मनोरथ मैं पूर्ण कर दूँगा।"

अर्जुन ने कुछ नहीं कहा। कृष्ण कहेंगे ?... पर कृष्ण थे कि कुछ कह ही नहीं रहे थे। अर्जुन की जिह्वा थी कि तालू से चिपक गई थी और मन रटता जा रहा था, "प्रभो ! मैं आपसे दिव्य अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ।..."

महादेव के अधरों पर ऐसी स्मिति आई, जैसे संपूर्ण सृष्टि पर सहस्रों इंद्रधनुष उग आए हों। वे बोले, "तुम्हारा काम्य तुम्हें दे रहा हूँ। जाओ कृष्ण ! मेरा धनुष बाण ले आओ।"

महादेव के पार्षदों ने उनको घेर लिया और एक विशिष्ट मार्ग पर ले चले। वे लोग एक दिव्य सरोवर के तट पर आए, जिसमें अपनी ही आभा से ज्योतित सहस्रों नाग क्रीड़ा कर रहे थे। उनमें से एक जो सबसे बड़ा था वह सूर्यमंडल के समान प्रकाशित हो रहा था और दूसरा नाग मुख से अग्नि उगल रहा था।

आचमन कर और महादेव शिव को मन-ही-मन प्रणाम कर वे दोनों उन नागों के समीप चले गए और शतरुद्री मंत्रों का पाठ करने लगे।

सहसा ही पहला नाग एक विराट धनुष में और दूसरा एक बाण में परिणत हो गया। कृष्ण और अर्जुन ने उन्हें उठा लिया और वे लोग महादेव के पास लौट आए।

महादेव मुस्कराए तो उनके पार्श्व भाग से एक तेजस्वी ब्रह्मचारी प्रकट हो गया। उसके नेत्र पिंगल वर्ण के थे। उसका शरीर बलवान और नील लोहित वर्ण का था। उसने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया और उसकी प्रत्यंचा को विधिपूर्वक खींचा। अर्जुन ने उसका खड़ा होना, उसका अपनी मुट्ठी में धनुष पकड़ना, प्रत्यंचा को खींचना, सब कुछ पूरे ध्यान से देखा। भगवान महादेव द्वारा उच्चरित मंत्र को भी ध्यान से सुना और हृदयंगम किया।...

ब्रह्मचारी ने वे धनुष बाण भगवान महादेव की ओर बढ़ा दिए। ब्रह्मचारी विलुप्त हो गया और वहाँ सरोवर प्रकट हो गया। महादेव ने वे धनुष और बाण पुनः सरोवर में डाल दिए। अर्जुन को लगा, उन्होंने वे धनुष बाण सरोवर में नहीं डाले, उसके हृदय-सरोवर में तैरा दिए हैं।

उसने हाथ जोड़ दिए और उसकी आँखें मुँद गईं।

अर्जुन की आँखें खुलीं तो उषा के लक्षण प्रकट हो चुके थे। वह अपने मंडप में अपनी शैया पर लेटा था। न वहाँ कृष्ण थे, न महादेव, न वह पर्वत अथवा वह सरोवर।... तो क्या था वह ? उसने स्वप्न देखा था शायद। पर वह तो इतना जीवंत अनुभव था कि जीवन भी उतना सजीव नहीं होता।... तो क्या वह सत्य ही कृष्ण के साथ महादेव के पास गया था ? उनके स्थान पर ? क्या सत्य ही महादेव से उसे पुनः पाशुपतास्त्र की प्राप्ति हुई थी ?

अर्जुन हँसा।... वह सचमुच ही बहुत चिंतित है, जयद्रथ के वध को ले कर। उसे पाशुपतास्त्र का ज्ञान तो पहले भी था। जो उसके पास पहले से था, उसे पुनः प्राप्त कर क्या होगा ? उसकी चिंता कैसे-कैसे रूप बदलकर उसकी निद्रा में आई थी।... पर वह एक साधारण-सा स्वप्न ही तो नहीं था। स्वप्न ... स्वप्न का यह प्रभाव नहीं होता। स्वप्न तो समय के साथ अपने आप में ही धूमिल होता जाता है।... तो उसे क्यों लग रहा है कि उसका स्वप्न नहीं, चिंता कहीं तिरोहित हो गई है। उसे क्यों लग रहा है कि उसमें एक नई ऊर्जा और नए साहस का उदय हुआ है। उसे क्यों लग रहा है कि वह किसी परम पवित्र अनुभव की छाया में श्वास ले रहा है।... नहीं ! वह उसे एक स्वप्न मात्र ही नहीं मान सकता।... तो क्या यह कोई आध्यात्मिक अनुभव था ? कोई दिव्य दर्शन ? कोई रहस्यपूर्ण संकेत ? क्या उसके सूक्ष्म शरीर को कृष्ण भगवान महादेव के पास ले गए थे ?...

अर्जुन रहस्य के उस अनबूझ संसार में प्रवेश करना नहीं चाहता था। वह नहीं चाहता था कि रात भर की इस निद्रा से प्राप्त स्फूर्ति को वह उस उलझन को सुलझाने की प्रक्रिया में खो दे। वह जो कुछ भी था, उसके लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुआ था। उसकी चिंता दूर हो गई थी और उसका आत्मबल पहले से कहीं अधिक बढ़ गया था।...

14

बाहुक प्रतीक्षा करता रहा; किंतु न तो श्रीकृष्ण का कोई संदेश आया और न उनके पांचजन्य का घोष ही सुनाई दिया। तो क्या उन्हें रथ और शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता नहीं थी ? उन्होंने कहा था कि वे प्रयत्न करेंगे कि अर्जुन को कहीं और से सहायता मिल जाए।...तो क्या धनंजय को कोई और सहायता मिल गई थी ?...संभव है कि मिल गई हो।...सहायक तो संसार में असंख्य हैं, किंतु श्रीकृष्ण जैसा कहाँ !

उसने अपना सिर झटक दिया। उसे क्या लेना-देना था इस बात से कि धनंजय को कहाँ से सहायता मिलनी थी और कहाँ से मिली। वह यहाँ सैन्य संचालन और प्रबंधन का दायित्व नहीं सँभाल रहा था। उसे दूसरों के काम में टाँग अड़ाने की क्या आवश्यकता थी।.अपना कर्तव्य कर देना चाहिए और वह उसने कर दिया था।...यह तो अपने स्वामी की कुशलता की चिंता ही थी, जिसके कारण वह इतना सोच भी लेता था; अन्यथा उसे अपने रथ और अश्वों की ही चिंता करनी चाहिए थी।...

कृष्ण अपने मंडप से बाहर आए।

"तुमने रथ तैयार कर दिया बाहुक ?"

"हाँ गोविंद।" बाहुक बोला, "रथ प्रस्तुत है। अश्व जोतूँ ?"

"नहीं ! अब उसकी आवश्यकता नहीं है।" वे मुस्कराए, "काम के कारण रात भर सो नहीं पाए होगे।"

"हाँ ! सोने का पर्याप्त समय नहीं मिला।" बाहुक हँसा, "घर में एक बालक अस्वस्थ हो जाए तो सारी रात उसके सिरहाने कट जाती है। यह तो युद्ध काल का युद्ध शिविर है। यहाँ पूरी नींद कौन सो सकता है।"

"वह तो ठीक है बाहुक !" कृष्ण बोले, "पर व्यक्ति अपने काम की सार्थकता देखना चाहता है। तुमने सारी रात जाग कर रथ में शस्त्र सजाए होंगे और अब मैं वह रथ ले ही नहीं जा रहा। तुम्हें अच्छा तो नहीं लगेगा।"

बाहुक हँस पड़ा, "नहीं स्वामी ! ऐसी बात नहीं है। आप रथ ले जाते और युद्ध करते तो आपकी प्रतिज्ञा भंग होती। मैं कहाँ चाहता हूँ कि आप अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा न कर पाएँ।"

"तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा की ही चिंता है, धर्म की नहीं ?"

"मेरे लिए तो आपकी प्रतिज्ञा ही धर्म है। उसकी रक्षा हो रही है तो धर्म की ही रक्षा हो रही है।"

"दार्शनिकों की सी बातें कर रहे हो बाहुक !" कृष्ण हँस पड़े, "तुम्हें यह चिंता नहीं है कि मैंने शस्त्र धारण नहीं किया तो अर्जुन की प्रतिज्ञा की रक्षा नहीं हो पाएगी। प्रतिज्ञा पूरी न हुई तो अर्जुन अपने प्राण दे देगा। यदि ऐसा हुआ तो उसके बिना मैं कैसे जीवित रहूँगा।"

"मैं मानता हूँ कि आप शस्त्र ग्रहण नहीं कर रहे तो इसका अर्थ है कि आप आश्वस्त हैं कि धनंजय की प्रतिज्ञा पूरी होगी।" बाहुक बोला, "जिज्ञासा बस इतनी-सी है कि धनंजय को बल कहाँ से मिला ?"

"बहुत चतुर हो।" कृष्ण फिर हँसे, "समझ लो कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा अर्जुन की प्रतिज्ञा से जोड़ दी है। मेरी प्रतिज्ञा तब तक ही अभंग रह सकती है, जब तक अर्जुन धर्म की रक्षा में समर्थ है। धर्म ने अर्जुन की भुजा थाम ली है। शस्त्र उसका हो और नियंत्रण मेरा तो फिर मुझे शस्त्र थामने की क्या आवश्यकता है।" कृष्ण रुके, "जाओ, तुम विश्राम करो। सारी रात के जगे हो।"

"आप धनंजय के मंडप तक कैसे जाएँगे ?"

"मैं कोई अश्व ले जाऊँगा।"

"धर्मराज ! आचार्य द्रोण ने जयद्रथ से कहा है कि वह भूरिश्रवा, कर्ण, अश्वत्थामा, शल्य, वृषसेन, तथा कृपाचार्य के साथ, एक लाख अश्वारोही, साठ सहस्र रथ, चौदह सहस्र गज तथा इक्कीस सहस्र कवचधारी पदातिक सैनिकों को लेकर उनसे छह कोस की दूरी पर जा कर व्यूहबद्ध होकर सावधान रहे। वहाँ वह पूर्णतः सुरक्षित रहेगा।" सहदेव आज के युद्ध के लिए कौरव सेना की तैयारी की सूचनाएँ लाया था।

"और द्रोण स्वयं कहाँ रहेंगे ?" धृष्टद्युम्न ने पूछा।

"कल जयद्रथ व्यूह के द्वार पर था और आचार्य व्यूह के भीतर। आज वे द्वार पर रहेंगे और जयद्रथ व्यूह के गर्भ में छुप कर बैठेगा।" सहदेव बोला, "वे व्यूह के मुख पर रहेंगे। किसी को भीतर प्रवेश नहीं करने देंगे। धनंजय को भी नहीं। वे संध्या तक जयद्रथ को वैसे ही धनंजय की दृष्टि से ओझल रखेंगे, जैसे कुक्कुटी अपने शावक को अपने पंखों के नीचे छुपा कर रखती है।"

"जयद्रथ कहाँ है ?" अर्जुन ने पूछा।

"वह आश्वस्त होकर गांधार महारथियों से घिरा हुआ युद्ध के लिए उसी स्थान पर चला गया है, जहाँ जाने का निर्देश आचार्य ने किया है।"

"व्यूह के मुख पर और कौन-से प्रमुख योद्धा हैं ?" कृष्ण ने पूछा।

"डेढ़ सहस्र कवचधारी मतवाले गजों को लेकर दुर्मर्षण सेनाओं के आगे आकर खड़ा हो गया है। दुःशासन और विकर्ण भी अपनी सेनाओं के साथ व्यूह के अग्र भाग में खड़े हैं।"

"और आचार्य ने व्यूह कौन-सा रचा है ?" चेकितान ने पूछा।

"आचार्य ने चौबीस कोस लंबा और दस कोस चौड़ा चक्रगर्भ शकट व्यूह रचा है। उसके पिछले भाग में पद्म नामक एक गर्भ व्यूह बनाया गया है। पद्मव्यूह के मध्य भाग में सूची नामक एक और गूढ़ व्यूह बनाया गया है। सूचीमुख व्यूह के प्रमुख भाग में कृतवर्मा खड़ा किया गया। कृतवर्मा के पीछे कांबोजराज सुदक्षिण और जलसंध खड़े

हैं। उनके पीछे दुर्योधन और कर्ण एक लाख योद्धाओं के साथ शकट व्यूह के प्रमुख भाग की रक्षा के लिए खड़े हैं। उनके पीछे विशाल सेना के साथ स्वयं जयद्रथ, सूची व्यूह के पार्श्व में खड़ा है।"

अर्जुन ने सब कुछ चुपचाप सुना। थोड़ी देर मौन रहकर उसने कृष्ण की ओर देखा, "चलें ?"

कृष्ण मुस्कराए, "रथ और अश्व तो तैयार हैं। शस्त्रास्त्र रात को ही रखवा दिए थे। औषधियाँ और थोड़ा-सा अन्न और जल भी है। कुछ और चाहिए तो बोलो।"

अर्जुन हँसा, "इतनी तैयारी के साथ तो मैं कभी युद्ध करने नहीं गया।"

"ठीक कहते हो।" कृष्ण बोले, "पर आज का युद्ध सबसे भिन्न है। हमें चौवीस कोस लंबे व्यूह के अंतिम छोर तक संध्या से पहले पहुँचना है। एक-एक अंगुल भूमि पर युद्ध होगा। अश्व दौड़ेंगे अथवा रेंगेंगे, हम कह नहीं सकते। जयद्रथ तक पहुँचने के लिए प्रत्येक कौरव योद्धा से लोहा लेना होगा। लक्ष्य तक पहुँचने में कितना समय लगेगा, कौन जानता है।" कृष्ण ने उसकी ओर देखा, "एक बार हम उस व्यूह में प्रवेश कर गए तो नहीं जानते कि हमारे साथ कितने सहायक होंगे। कोई होगा भी या नहीं। कहीं से किसी प्रकार की सहायता आ भी पाएगी अथवा नहीं। ऐसे में अपने लिए, अपने अश्वों के लिए आत्मनिर्भर होना अच्छा होता है।"

धर्मराज सब कुछ देख और सुन रहे थे। उनकी चिंता बढ़ती जा रही थी।''' कल तो एक ही व्यूह था और पांडव सेनाएँ उसमें प्रवेश नहीं कर पाई थीं। परिणामतः उन्होंने अभिमन्यु खोया था। कहीं आज भी वे कल का ही इतिहास दुहराने तो नहीं जा रहे ? वे जानते थे कि जयद्रथ व्यूहों के गर्भ में बने व्यूह में छिपा बैठा था और अर्जुन को उस तक पहुँचना ही था। उस कार्य का संकट देखते हुए भी वे उसे रोक नहीं सकते थे। कैसे रोकते ? रोकने का अर्थ था, अर्जुन को चिता पर धकेलना। तो फिर क्या करें वे ?''' वे भी अपनी सारी सेना शकट व्यूह को ध्वस्त करने में लगा दें ? वहाँ द्वार पर द्रोण खड़े हैं और वे युधिष्ठिर को बंदी करना चाहते हैं।''' किंतु भयभीत रहकर तो युधिष्ठिर अर्जुन की सहायता नहीं कर पाएँगे।'''

अर्जुन अपने रथ पर बैठ गया।

धर्मराज देख रहे थे। अर्जुन ने व्यूह की कोई चर्चा नहीं की थी। रणनीति पर विचार-विमर्श नहीं किया था।

"तुम कहाँ जा रहे हो अर्जुन ?"

"मैं तो वहीं जाऊँगा महाराज ! जहाँ जयद्रथ है।"

"वह तो ठीक है। पर क्या तुम्हारा एक अकेला रथ संपूर्ण कौरव सेना के विरुद्ध लड़ेगा।" युधिष्ठिर ने कहा, "हम भी योजना बनाकर तुम्हारे साथ चलते हैं।"

"नहीं।" अर्जुन बोला, "आप लोग प्रतिदिन के समान युद्ध करें। मुझे अकेले ही जयद्रथ तक जाने की अनुमति दें। मैं शकट व्यूह में प्रवेश करूँगा। आप सारा दिन

उसके मुख पर इतना दबाव बनाए रखें कि आचार्य द्रोण क्षण भर को भी अपना स्थान न छोड़ सकें। वे अपने स्थान से हिल भी न पाएँ। उन्हें मेरा पीछा करने का अवकाश नहीं मिलना चाहिए। इतना हो जाए तो मैं जयद्रथ का वध कर संध्या समय आपके चरण स्पर्श करूँगा।"

युधिष्ठिर ने प्रश्नवाचक दृष्टि से धृष्टद्युम्न की ओर देखा : उसकी आँखों में पूर्ण आश्वस्ति थी। भीम ने भी मुस्कराकर अपनी सहमति दे दी थी।

"तो फिर सात्यकि अर्जुन के साथ जाएँ।" युधिष्ठिर बोले, "चेकितान और युधामन्यु उसके पृष्ठरक्षक होकर जाएँ।"

"ऐसा ही हो महाराज !" धृष्टद्युम्न ने आज्ञा दे दी।

कृष्ण रथ पर बैठे तो सात्यकि भी रथ में आ चढ़ा। अर्जुन ने उसकी ओर देखा भर, कहा कुछ भी नहीं।

कृष्ण ने रथ हाँक दिया।

अर्जुन ने सात्यकि की ओर देखा, "युयुधान ! मैं वहीं जाऊँगा, जहाँ जयद्रथ मरने के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। मेरे लिए आज जयद्रथ का वध परम कर्तव्य है। किंतु धर्मराज की रक्षा का महत्त्व उससे कम नहीं है। मेरे लिए उचित था कि मैं धर्मराज के निकट रहकर उनकी रक्षा करता। पर तुम जानते हो कि आज वह संभव नहीं है। इसलिए युयुधान ! आज तुम मेरे साथ जाने के स्थान पर सब ओर से धर्मराज की रक्षा करो। मैं मानता हूँ कि मेरे द्वारा उनकी जितनी रक्षा हो सकती है, उतने ही सुरक्षित वे तुम्हारे साथ भी हैं। संग्रामभूमि में तुम साक्षात् श्रीकृष्ण के समान हो। महाराज की रक्षा के लिए मैं, एक तुम पर और दूसरे, प्रद्युम्न पर विश्वास कर सकता हूँ। जयद्रथ का वध मैं अकेला ही कर सकता हूँ, किंतु धर्मराज की रक्षा के लिए मैं तुम्हारा आश्रित हूँ।"

"ठीक है।" सात्यकि बोला, "किंतु आप जहाँ जा रहे हैं, वहाँ भी तो कम संकट नहीं है। धर्मराज ने भी कुछ सोच-समझ कर ही तो मुझे आपके साथ भेजा है।"

"वह धर्मराज का मेरे प्रति स्नेह है।" अर्जुन बोला, "एक प्रकार का मोह है। वे अपनी रक्षा से अधिक मेरी रक्षा के लिए चिंतित हैं।" अर्जुन रुका, "मैं तो एक योद्धा मात्र हूँ। महाराज के प्राण मुझसे अधिक मूल्यवान हैं। राजा की रक्षा सबसे पहले होनी चाहिए।"

"किंतु···।"

"देखो, जहाँ श्रीकृष्ण हैं और मैं हूँ, वहाँ कोई हमारा कुछ नहीं विगाड़ सकता, किंतु पीछे बहुत बड़ी हानि हो सकती है।" अर्जुन ने कहा, "तुम लौट जाओ। मैं धर्मराज को तुम्हारे ही भरोसे छोड़कर जा रहा हूँ। तुम पीछे यहाँ रहकर भी मेरा ही युद्ध लड़ रहे हो।"

सात्यकि ने कृष्ण की ओर देखा। कृष्ण ने विना कुछ कहे, रथ रोक दिया। सात्यकि

उनका आदेश समझ गया। वह रथ से उतर आया। कृष्ण रथ को आगे बढ़ा ले गए।

समाचारवाहक ने आकर युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

"क्या समाचार लाए हो ?" युधिष्ठिर ने धीरे से कहा, "सब कुशल है न ?"

"सब कुशल है महाराज !" समाचारवाहक बोला, "राजकुमार धनंजय की पहली भिड़ंत धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मर्षण से हुई। उसके साथ एक सहस्र रथी सौ हाथी तीन सहस्र अश्वारोही और दस सहस्र पैदल सैनिक थे। वह व्यूह से बाहर निकलकर राजकुमार अर्जुन से डेढ़ हजार धनुष की दूरी पर खड़ा हो गया था। पता नहीं उसे द्रोण की सुरक्षा नहीं चाहिए थी अथवा वह स्वयं आचार्य की रक्षा करने का प्रयत्न कर रहा था। राजकुमार अर्जुन ने श्रीकृष्ण से दुर्मर्षण की ओर बढ़ने के लिए कहा। वे उसकी गजसेना को भेद कर कौरवों की सेना में प्रवेश करना चाहते थे।"

"पर अर्जुन से युद्ध करने के लिए दुर्मर्षण को भेजने का क्या अर्थ ?" युधिष्ठिर चकित थे, "वे लोग अर्जुन की वीरता को नहीं जानते अथवा दुर्मर्षण के विषय में उनको कोई भ्रम है। वे उसे अर्जुन के समकक्ष योद्धा मानते हैं ?"

"मैं कह नहीं सकता महाराज !" समाचारवाहक बोला, "उनको कोई भ्रम रहा होगा तो अब दूर हो गया होगा। वह तो राजकुमार के बाणों का पहला रेला ही नहीं झेल पाया। वह मारा गया और उसकी सेना भाग गई। दुःशासन ने अपने भाई को इस प्रकार भूमि पर गिरते और कौरव सेना को भागते देखा तो वह राजकुमार अर्जुन को रोकने के लिए सामने आया। उसने अपने गजों से राजकुमार अर्जुन को घेर लिया। किंतु राजकुमार अर्जुन ने उनके हाथी ऐसे मार गिराए जैसे वे मिट्टी के खिलौने रहे हों।"

"दुःशासन गज ले तो आया किंतु उसे उनका संचालन नहीं आता होगा।" युधिष्ठिर बोले।

"वह तो मैं नहीं जानता महाराज !" समाचारवाहक बोला, "परिणाम यह हुआ कि दुःशासन की सेना अपने नायक सहित भाग चली। अपनी रक्षा के लिए आचार्य द्रोण का संरक्षण पाने के लिए, वे शकट व्यूह के भीतर घुस गए।"

"तो अर्जुन को रोकने के लिए स्वयं आचार्य आए होंगे ?"

"हाँ महाराज ! राजकुमार अर्जुन ने आचार्य द्रोण के व्यूह पर आक्रमण किया। आचार्य को सम्मुख पाकर वे बोले, 'ब्रह्मण ! आप मेरा कल्याण चिंतन कीजिए। मुझे स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दीजिए। मैं आपकी कृपा से ही इस दुर्भेद्य सेना के भीतर प्रवेश करना चाहता हूँ। आप मेरे लिए पिता पांडु, धर्मराज तथा श्रीकृष्ण के ही समान श्रद्धेय हैं। जैसे अश्वत्थामा आपके लिए रक्षणीय है, उसी प्रकार मैं भी आपसे संरक्षण पाने का अधिकारी हूँ। मैं आपके प्रसाद से इस युद्ध में जयद्रथ को मारना चाहता हूँ। आप मेरी इस प्रतिज्ञा की रक्षा कीजिए।' किंतु आचार्य ने किसी प्रकार की कोई कोमलता नहीं दिखाई। बोले, 'अर्जुन ! मुझे पराजित किए बिना जयद्रथ को जीतना असंभव है।'

उसके पश्चात् आचार्य ने राजकुमार को तनिक भी समय नहीं दिया। उन्होंने राजकुमार पर भयंकर आक्रमण किया। राजकुमार अर्जुन ने युद्धारंभ के रूप में अपने नौ वाणों से उनके चरणों में आघात किया। आचार्य ने राजकुमार के बाण काटे और राजकुमार तथा श्रीकृष्ण—दोनों को ही आहत कर दिया। राजकुमार अभी संभवतः युद्ध संबंधी किसी निर्णय के विषय में सोच ही रहे थे कि आचार्य ने उनके धनुष की प्रत्यंचा काट डाली और राजकुमार के घोड़ों, ध्वज और भगवान श्रीकृष्ण को भी बींध डाला।"

"आचार्य ने गांडीव की प्रत्यंचा काट डाली ? वह साधारण प्रत्यंचा नहीं है।" ‍धिष्ठिर चकित थे, "पहली वार सुन रहा हूँ कि गांडीव की प्रत्यंचा किसी ने काट दी। पहले तो कभी किसी ने यह नहीं किया था।"

"संभव है कि ऐसा ही हो महाराज !" समाचारवाहक बोला, "पर उससे राजकुमार का उत्साह तनिक भी भंग नहीं हुआ। उन्होंने नई प्रत्यंचा चढ़ा ली और आचार्य से अधिक पराक्रम दिखाया। आचार्य ने अपने नाराचों से राजकुमार के वक्ष में गहरा घाव किया।…"

"मैं इसीलिए अर्जुन के आचार्य से लड़ने का विरोध करता हूँ।" युधिष्ठिर जैसे तड़पकर बोले, "वह अपने गुरु के प्रति कठोर हो नहीं सकता और वे अपनी क्रूरता नहीं छोड़ते। वह उनके चरणों को छूता है और आचार्य अपने नाराचों से उसके वक्ष पर घाव करते हैं। यह कोई युद्ध है।"

"आप चिंता न करें महाराज ! राजकुमार उससे तनिक भी शिथिल नहीं हुए।" समाचारवाहक बोला, "राजकुमार उस घाव से विह्वल अवश्य हो गए किंतु तत्काल ही उन्होंने आचार्य को भी घायल कर दिया।… इधर युद्ध हो रहा था और लगता है कि उधर श्रीकृष्ण मन-ही-मन अपने कर्तव्य का निश्चय कर रहे थे। उन्होंने राजकुमार से कहा, 'धनंजय ! आज समय बहुत मूल्यवान है। हमारी दौड़ सूर्यदेव के साथ है। हमारा अधिक समय यहाँ नहीं बीतना चाहिए। इन्हें छोड़ दो। इस समय महत्त्वपूर्ण यह है कि हम सबसे बचते हुए जयद्रथ के पास पहुँचें।' राजकुमार ने मुस्कराकर सहमति दे दी। श्रीकृष्ण ने रथ हाँका। उनके रथ ने आचार्य द्रोण की परिक्रमा की और वे वाणों की वर्षा कर आगे निकल गए। द्रोण चिल्लाते ही रह गए, 'अरे कहाँ जा रहे हो। तुम तो शत्रु को पराजित किए विना नहीं लौटते थे।' धनंजय भी हँसे और बोले, 'सत्य है कि मैं शत्रु को पराजित किए विना नहीं लौटता, किंतु आप मेरे गुरु हैं, शत्रु नहीं हैं। मैं आपका पुत्र सरीखा प्रिय शिष्य हूँ। इस जगत् में ऐसा कोई नहीं है जो आपको पराजित कर सके। और मुझे जयद्रथ तक पहुँचना ही है। मेरे पास कोई विकल्प नहीं है, आचार्य !' "

"अर्जुन के चक्ररक्षक उत्तमौजा और युधामन्यु भी साथ थे क्या ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"हाँ महाराज ! तव तक तो साथ ही थे। आचार्य ने उनकी ओर अधिक ध्यान

नहीं दिया था।" समाचारवाहक बोला, "जब राजकुमार आचार्य को पीछे छोड़ गए तो अपने स्थानों से आगे बढ़कर कृतवर्मा, कांबोजनरेश सुदक्षिण तथा श्रुतायु ने आगे आकर राजकुमार को रोका। आचार्य ने उनका पीछा करने का प्रयत्न किया। पर राजकुमार ने अपनी बाण वृष्टि से कृतवर्मा की सेना का त्वरित संहार किया। वे आचार्य को वहीं छोड़कर कृतवर्मा और सुदक्षिण के बीच में से होकर आगे निकल गए। कृतवर्मा ने उन्हें युद्ध में उलझाना चाहा तो श्रीकृष्ण ने तत्काल राजकुमार से कहा, 'हमारा अधिक समय यहीं व्यतीत न हो जाए। तुम कृतवर्मा पर दया मत करो अर्जुन ! वह मेरी पुत्री चारुमती का श्वसुर भी है और हमारा पुराना साथी भी। मथुरा में संघर्ष के दिनों में वह हमारे साथ था; किंतु अब वह अधर्म के पक्ष में खड़ा है। विलंब मत करो। इस समय संबंधी होने का विचार छोड़कर उसे मथ डालो।' राजकुमार ने कृतवर्मा का वध तो नहीं किया किंतु उन्हें मूर्च्छित अवश्य कर दिया। कृतवर्मा अधिक समय तक अचेत नहीं रहे। राजकुमार ने जब तक कांबोजों की सेना पर आक्रमण किया, तब तक कृतवर्मा की चेतना लौट आई थी। उसने राजकुमार के पृष्ठरक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा को रोक दिया।…"

"अर्जुन ने कृतवर्मा को जीवित छोड़ दिया ?"

"हाँ महाराज !" समाचारवाहक बोला, "लगता है कि वे श्रीकृष्ण के समधी को मार कर चारुमती के लिए कठिनाई उत्पन्न करना नहीं चाहते थे।"

"यह अर्जुन ने अच्छा नहीं किया।" युधिष्ठिर ने कहा।

दुर्योधन को लगा, उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया है। कहाँ वह सोचता था कि अर्जुन आचार्य द्रोण को ही पार नहीं कर पाएगा और कहाँ वह दुर्मर्षण, दुःशासन और कृतवर्मा को पछाड़ता और अनेक राजाओं का वध करता हुआ, व्यूह के भीतर दूर तक धँस गया था। द्रोण अभी व्यूह के प्रवेश-द्वार पर ही डटे खड़े थे। क्यों ? ताकि वे अन्य पांडवों का प्रवेश भी सुविधा से करवा सकें ? न तो वे अर्जुन के पीछे आए थे और न ही उन्होंने किसी और के माध्यम से अर्जुन को रोकने का कोई प्रयत्न किया था। ये तो वैसे ही द्वारपाल थे जो प्रत्येक व्यक्ति को द्वार में प्रवेश करने देता है और स्वयं द्वार पर खड़ा-खड़ा ही समझता है कि वह अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है। वे व्यूह के द्वार पर खड़े रहेंगे और भीतर अर्जुन जयद्रथ का वध कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा।… दुर्योधन को जयद्रथ की उतनी चिंता नहीं थी, जितनी अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी होने की। जयद्रथ को मरना है तो मरे। किसी के हाथों मर जाए, आत्महत्या कर ले, किंतु उसका वध अर्जुन के हाथों नहीं होना चाहिए। अर्जुन की प्रतिज्ञा किसी भी दशा में पूरी नहीं होनी चाहिए। उसे आज रात तक चितारोहण करना ही होगा, चाहे कुछ हो जाए। दुर्योधन ऐसा स्वर्ण अवसर नहीं खो सकता। यदि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा के हाथों नहीं मरा तो फिर उसको मारना कठिन होगा… यह बुड्ढा द्रोण जाने क्या करता रहता है।… इससे पीछा कब छूटेगा…

दुर्योधन अपनी व्यग्रता में बिना सहायकों और रक्षकों के अपना एकमात्र रथ दौड़ाता हुआ व्यूह के द्वार की ओर बढ़ा। उसने यह भी चिंता नहीं की कि उसकी इस दौड़ के कारण स्थान-स्थान पर विभिन्न वाहिनियों को व्यूह के नियमों के विरुद्ध इधर-उधर हट कर उसे मार्ग देना पड़ रहा है। उसका आचार्य के पास पहुँचना किसी भी व्यूह से अधिक महत्त्वपूर्ण था।

आचार्य पूरी निष्ठा से पांडवों की सेना को रोके हुए खड़े थे।··· दुर्योधन जैसे आपे में नहीं था। उसकी इच्छा हो रही थी कि अपने खड्ग से इस बुड्ढे ब्राह्मण का मस्तक काट ले अथवा अपनी गदा से इसकी छाती और पीठ को ठोंक कर एक कर दे। पर द्रोण व्यूह का द्वार रोके खड़े थे। उनको मारना किसी भी प्रकार दुर्योधन की समस्याओं को कम नहीं करता। अभी उसके सारे शत्रु जीवित और सक्रिय थे। अभी इस बुड्ढे की बहुत आवश्यकता थी उसको। इसको किसी भी प्रकार पीड़ित किया तो कृपाचार्य और अश्वत्थामा भी दुर्योधन के शत्रु हो जाएँगे।···

"गुरुदेव !" उसने स्वयं को बाँध कर, भक्ति दर्शाते हुए, अपना मस्तक द्रोण के सम्मुख झुका दिया, "अर्जुन हमारी इस विशाल सेना को मथ कर व्यूह के भीतर चला गया है। इसका अर्थ जानते हैं आप ?"

आचार्य द्रोण ने उसे देखा भर। कहा कुछ भी नहीं। उनके मन में पहले से ही यह आशंका थी कि अर्जुन के व्यूह में प्रवेश कर जाने के पश्चात् उसे रोकने अथवा उससे युद्ध करने के स्थान पर यह दुर्योधन तत्काल उनसे स्पष्टीकरण माँगने आ जाएगा।

"जयद्रथ मारा जाएगा उसके हाथों।" दुर्योधन चिल्लाकर व्यग्र स्वर में बोला, "अब अपनी बुद्धि से विचार कीजिए और बताइए कि अर्जुन के विनाश के लिए क्या करना चाहिए।"

द्रोण को दुर्योधन की यह भाव भंगिमा और उसका इस प्रकार चिल्लाना अच्छा नहीं लगा। एक वह अर्जुन है कि विरोधी पक्ष में होते हुए भी क्षण भर को नहीं भूलता कि वे उसके गुरु हैं और एक यह दुर्योधन है।··· पर यह कोई नई बात तो है नहीं। यह मूर्ख राजा युद्ध की सर्वाधिक संकटपूर्ण घड़ी में भी अपने सेनापति को उसके दोष बताने अथवा उसे धिक्कारने से नहीं चूकता। अपने सेनापति के गुण तो उसे दिखाई ही नहीं देते। कल अभिमन्यु का वध किया है, उसका श्रेय तो कोई देगा नहीं। आ गया यह बताने कि अर्जुन व्यूह में प्रवेश कर गया है।

"तुम्हें जयद्रथ को बचाना है या अर्जुन को मारना है ?"

दुर्योधन समझ गया कि द्रोण को उसका व्यवहार चुभ गया है। अपने स्वर को कुछ कोमल बनाता हुआ बोला, "इस भयंकर नरसंहार में जयद्रथ न मारा जाए, वैसा कोई उपाय कीजिए। आपका कल्याण हो। हमारा सबसे बड़ा सहारा आप ही हैं। जब से अर्जुन आप की सेना का व्यूह भेद कर आपको भी लाँघ कर आगे चला गया है, तब से जयद्रथ की रक्षा करने वाले योद्धा महान् संशय में पड़ गए हैं। अपनी यह इतनी

विराट और संगठित सेना मुझे व्याकुल और विनष्ट हुई सी प्रतीत हो रही है। यदि शत्रु इसी प्रकार हमारे व्यूहों को भेद कर सेना में घुसते रहे और उन्हें सब ओर सफलता मिलती रही तो मेरी इस सेना का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।"

द्रोण ने दुर्योधन की ओर देखा। उन्हें लगा वह विक्षिप्त हो गया है। अर्जुन के इस प्रकार व्यूह भंग कर सेना में प्रवेश कर आने से जितना जयद्रथ भयभीत हुआ होगा, यह तो उससे भी अधिक आतंकित लग रहा है। जयद्रथ को केवल अपने प्राणों की चिंता है, यह तो सारी सेना को ही मृत मान चुका है।

और सहसा जैसे दुर्योधन के संयम का बाँध टूट गया, "ज्ञात है मुझे कि आप सदा पांडवों का हित साधने में तत्पर रहते हैं। बहुत प्यारे हैं वे आपको। जिसका सेनापति ही उसके शत्रुओं से प्रेम करे, वह राजा अपने लक्ष्य को कैसे पा सकता है। इसीलिए अपने कार्य की गुरुता का विचार कर मैं व्याकुल हो रहा हूँ।…" उसने रुककर द्रोण को देखा और बहुत समय से मन में संचित विष अपनी वाणी में उँडेल दिया, "मैं यथाशक्ति आपके लिए सर्वोत्तम जीविका की व्यवस्था करता रहता हूँ। क्या नहीं दिया मैंने आपको। राजाओं के समान प्रासादों में रहते हैं आप। मणि-माणिक्य में खेलते हैं। सेवकों और दासियों का सुख भोगते हैं। शक्ति भर आपको प्रसन्न रखने की चेष्टा करता रहता हूँ, परंतु आपको कुछ स्मरण ही नहीं रहता।" उसका आवेश कुछ और प्रबल हो उठा, "हम आपके चरणों में सदा भक्ति रखते हैं किंतु तब भी आपके मन की मरुभूमि में हमारे लिए प्रेम का एक अंकुर भी नहीं फूटता। उसके विपरीत जो सदा हम लोगों का अप्रिय करने में तत्पर रहते हैं, हमारे शत्रु हैं, उन पांडवों को आप निरंतर प्रसन्न रखते हैं। जिस थाली में खाते हैं, उसी में छेद करते हैं। हमारा ही खाते हैं और हमारा ही अप्रिय करने में लगे रहते हैं। मैं नहीं जानता था कि आप मधुवेष्टित छुरे के समान हैं। आप पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए था।…"

"तुम्हारी चेतना कुछ दूषित हो रही है राजन् ! या प्रातः ही अधिक सुरापान कर लिया है कि मर्यादा लाँघ रहे हो।" द्रोण ने उसे घूर कर देखा, "ऐसा क्या किया है मैंने कि तुम्हारी जिह्वा विष उगलने लगी है ?"

द्रोण का निष्कंप स्वर दुर्योधन को बाण के समान लगा। उसका रहा-सहा नियंत्रण भी उसका साथ छोड़ गया, "यदि आप मुझे अर्जुन को रोके रखने का वर न देते तो मैं अपने राज्य में लौटने को आतुर सिंधुराज जयद्रथ को कभी यहाँ न रोकता। मैंने मूर्खता की। आपका संरक्षण पाने का भरोसा करके जयद्रथ को आग्रहपूर्वक यहीं रोक लिया और इस प्रकार मोहवश उसे मृत्यु के हाथों में सौंप दिया। यह विश्वासघात…"

सहसा दुर्योधन अपने आपे में आया। उसे स्मरण हो आया कि वह युद्धक्षेत्र में खड़ा है। वह एक कठिन घड़ी में द्रोण से सहायता माँगने आया था। यह सब कुछ उसके मन में था, किंतु यह सब कहना तो नहीं था। यह सब तो उसे तब कहना है, जब पांडव मारे जाएँगे। वह संसार विजेता होगा और इस बुड्ढे की उसे कोई आवश्यकता

नहीं रहेगी। जिस दिन वह इसे हिमालय के लिए विदा करेगा, उस दिन कहने की बातें हैं, ये सब। आज ही कैसे कह गया। इससे तो यह अभी उठकर जाएगा और अर्जुन के पक्ष से लड़ने लगेगा। यही तो चाहता है यह। इसे पलटने में क्या समय लगेगा। क्षण भर में कह सकता है कि इसे धर्म का भान हो गया है। वह अपनी भूल सुधारने लगेगा और दुर्योधन मारा जाएगा।

"आप समझ रहे हैं न आचार्य !" सहसा उसका स्वर बदल गया, "मैं अपने संकट को देखकर विक्षिप्त हो गया हूँ। बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हुई है कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि मैं क्या कह रहा हूँ। क्या कर रहा हूँ। आपको मुझ पर तनिक भी दया नहीं आती क्या ? कोई तो ऐसा प्रयत्न कीजिए, जिससे जयद्रथ की मृत्यु से रक्षा हो सके।" वह आचार्य के और भी निकट आ गया और हाथ जोड़कर बोला, "आप ही मेरी मानसिक स्थिति को समझ सकते हैं आचार्य ! आर्त होकर व्यक्ति क्या कह जाएगा, क्या कर जाएगा, उसे स्वयं ही पता नहीं होता। मैंने अभी जो प्रलाप किया है, उसके लिए क्रोध मत कीजिएगा। आप जानते ही हैं कि मैं क्रोध में कुछ भी बक जाता हूँ। उस समय जैसे मेरी चेतना ही लुप्त हो जाती है। वह सब मेरे उन्मत्त मस्तिष्क की ही उपज होती है, मेरे मन में वैसा कुछ नहीं होता।''' जैसे भी हो सिंधुराज की रक्षा कीजिए।"

इस दुर्योधन की भी नीचता की कोई सीमा नहीं है।''' द्रोण सोच रहे थे''' एक ओर धमकाता है, दूसरी ओर लोभ दिखाता है, तीसरी ओर हाथ जोड़कर दया की भिक्षा माँगता है। उसने उन्हें मधुवेष्टित छुरा कहा है और स्वयं अपने मन के कलुष को छिपाने के लिए अभी उनके पैरों पर गिर पड़ेगा और उनके पदत्राण चाटने लगेगा। जैसे ही स्वयं को समर्थ समझने लगेगा, उन्हें धिक्कार कर निष्कासित कर देगा। ये पिता-पुत्र स्वार्थ और अहंकार की साक्षात् मूर्ति हैं।

द्रोण बोले, "राजन् ! तुमने मुझे स्मरण दिलाया है कि तुम मेरे अन्नदाता हो। अच्छा ही किया, स्मरण दिला दिया। वैसे यह उसे स्मरण कराना चाहिए जो कृतघ्न हो। जिस मनुष्य में कृतज्ञता का लेश मात्र भी हो, वह इसे भूलता ही नहीं। मैं भी तुम्हें स्मरण करा दूँ कि गुरु को जो भी दिया जाता है, वह उसकी आजीविका नहीं होती। वह केवल गुरु दक्षिणा होती है।"

'हो गया बुड्ढा शुरू।'''' दुर्योधन ने मन-ही-मन कहा''' 'यहाँ युद्ध चल रहा है। प्रतिक्षण कोई न कोई मर रहा है और यह मुझे शास्त्र पढ़ाने बैठ गया। अभी यह भी पढ़ाएगा कि गुरु जिस समय शिक्षा देता है, तभी गुरु नहीं होता, वह आजीवन गुरु ही रहता है। माँ जब जन्म देती है, तभी माँ नहीं होती, वह आजीवन माँ ही रहती है। पढ़ा ले गुरु ! पढ़ा ले। मैं भी पढ़ाऊँगा, जब मेरा समय आएगा।'

"जो बातें तुमने कही हैं उनके लिए मैंने बुरा नहीं माना।" द्रोण बोले, "इसलिए नहीं कि तुम राजा हो अथवा तुम मेरे अन्नदाता हो। इसलिए भी नहीं कि तुम मेरे शिष्य हो। केवल इसलिए कि तुम मेरे पुत्र अश्वत्थामा के मित्र हो। मेरे लिए उसी के समान

हो। अपनी संतान की कटु से कटु बात सुन कर भी उसे क्षमा करना पड़ता है, क्योंकि उसे दंडित कर मनुष्य उस दंड को स्वयं ही भोगता है। अपनी पीड़ा से भी अधिक कष्टदायक पुत्र की पीड़ा होती है।" द्रोण रुके, "अब तुम सुनो कि अर्जुन हमारा व्यूह भंग कर कैसे सेना में प्रवेश कर गया। बताऊँ ?"

"बताइए।"

"अर्जुन के पास श्रीकृष्ण जैसा संसार का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट सारथि है। उनके अश्व भी इस समरभूमि के सर्वोत्तम अश्व हैं। उतने तीव्रगामी और ऊर्जायुक्त अश्व और किसी के पास नहीं हैं। युद्ध में उनकी रक्षा के लिए जो जाल उन पर बिछाया जाता है, वह संसार के सर्वोत्तम अयस का बना हुआ है। किसी अयसकार को कम शुल्क दे कर जैसे-तैसे बनवाया गया जाल नहीं। उनकी रक्षा और देखभाल भी सबसे अच्छी की जाती है। यह काम श्रीकृष्ण सेवकों पर न छोड़कर स्वयं करते हैं। उनके अश्व तीव्रगामी ही नहीं, असाधारण रूप से प्रशिक्षित भी हैं। थोड़ा-सा भी अवकाश बनाकर अर्जुन तत्काल सेना में घुस जाता है। क्या तुमने देखा नहीं कि मेरे चलाए हुए बाण समूह अर्जुन से एक कोस पीछे पड़े हैं।" द्रोण हँसे, "अब स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि मैं वृद्ध हो गया हूँ। अतः अब मैं उस त्वरित गति से रथ चलाने में असमर्थ हूँ, जिसकी आज के युद्ध में आवश्यकता है।"

"वह सब ठीक है।" दुर्योधन उनकी बातों से ऊब चुका था, "इस समय तो आप अर्जुन के पीछे जाइए और जा कर उसको किसी भी प्रकार रोकिए। जयद्रथ की रक्षा होनी ही चाहिए। मैंने उसे वचन दिया था कि हम उसकी रक्षा करेंगे।"

यद्यपि द्रोण कह चुके थे कि वे दुर्योधन की कटु से कटु बात सुन कर भी उसे क्षमा ही कर सकते हैं, किंतु उनको दुर्योधन का व्यवहार किसी भी प्रकार सहन नहीं हो रहा था। वे जानते थे कि जयद्रथ की रक्षा होनी चाहिए, पर उसका मूल्य क्या होगा ?... यदि द्रोण यहाँ से हट गए तो उनका व्यूह ध्वस्त हो जाएगा। अभी तो एक अर्जुन ही व्यूह में धँसा है, व्यूह ध्वस्त हो गया तो पांडव सेना का प्रत्येक महारथी उनके व्यूह के भीतर होगा और जयद्रथ के निकट पहुँचने की होड़ में लगा होगा।... तब क्या करेगा दुर्योधन ? उस पराजय का दायित्व वह स्वीकार कर लेगा ?... कभी नहीं।... वह फिर अपनी नीचता पर उतर आएगा। भूल जाएगा कि उसने अभी-अभी अपने व्यवहार के लिए आचार्य से क्षमा माँगी है।... वह फिर उन्हें आज की पराजय के लिए भी दोषी ठहराएगा। पांडवों के प्रति पक्षपात का आरोप लगाएगा। यह नीच ! धन के लोभ में अपने भाइयों की हत्या करवा रहा है इसलिए समझता है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति धन के लिए विश्वासघात कर सकता है।... अपनी अयोग्यता के लिए भी दूसरों को धिक्कारता रहता है...

"राजन् ! इस समय मेरी सेना के सामने कुंतीकुमारों की भारी सेना उपस्थित है। इसे छोड़कर जाऊँगा तो यह व्यूह ध्वस्त हुआ ही समझो।" वे मुस्कराए, "और महाबाहो !

मैंने सारे क्षत्रिय समाज के सम्मुख प्रतिज्ञा की है कि समस्त धनुर्धरों के देखते-देखते मैं युधिष्ठिर को बंदी बना लूँगा। इस समय अर्जुन यहाँ नहीं है। युधिष्ठिर अरक्षित है। वह मेरे सामने खड़ा है। ऐसी अवस्था में मैं व्यूह का द्वार छोड़कर अर्जुन से युद्ध करने नहीं जाऊँगा।''

''तो कौन रोकेगा उसे ?'' दुर्योधन झल्लाकर बोला।

द्रोण की इच्छा हुई कि उससे पूछें कि क्या उसने केवल उनके भरोसे ही अर्जुन से वैर साधा था। द्यूत सभा में पांडवों का अपमान किया था, उनकी पत्नी को अपमानित करने का प्रयत्न किया था··· उनकी शक्ति के ही विश्वास पर ?··· तब तो ये सारे ही भाई बहुत वीर वने हुए थे और अब इससे अकेला अर्जुन नहीं सँभल रहा। जब भीमसेन अपनी गदा के साथ इस पर टूटेगा तो क्या करेगा यह ? तव 'माँ ! माँ !' कहकर चिल्लाएगा अथवा तब भी आचार्य को बुलाएगा···

''इस समय अकेला है वह।'' द्रोण का स्वर भी कुछ ऊँचा हो गया, ''और तुम सहायकों से संपन्न हो।'' वे अपना स्वर सम पर ले आए, ''तुम इस संपूर्ण जगत् के स्वामी हो। अतः डरो मत। जाकर अर्जुन से युद्ध करो। तुमने ही पांडवों के साथ वैर बाँधा है, अतः जहाँ अर्जुन गया है, वहाँ उससे युद्ध करने के लिए स्वयं ही शीघ्रतापूर्वक जाओ।''

दुर्योधन का मन हुआ कि आचार्य की इस बुद्धि पर वह रो पड़े। बोला, ''जो अर्जुन आपको भी लाँघकर आगे वढ़ गया, वह मेरे द्वारा कैसे रोका जा सकता है। उस पर भी यदि आप इसे ही उचित मानते हैं तो मैं आपके एक दास के समान आपकी आज्ञा के अधीन हूँ। मर ही तो जाऊँगा। आप मेरी रक्षा नहीं करना चाहते तो फिर मुझे जीवित रहकर करना भी क्या है।''

द्रोण की इच्छा हुई कि हँस पड़ें इस दुर्योधन की मूर्खता पर। कभी तो यह राजा बन कर उनको स्मरण कराने लगता है कि वह उनका अन्नदाता है और कभी छोटे बच्चों के समान मचल-मचलकर भूमि पर एड़ियाँ रगड़ने लगता है। यह युद्धरत किसी राजा का व्यवहार है क्या ?

''राजन् ! रक्त बहाने से डरते हो ?'' वे हँसकर बोले, ''अपना रक्त बहाने से डरते हो ? वैसे अपना रक्त बहाए बिना तो दूसरों का रक्त नहीं बहाया जा सकता।''

दुर्योधन ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप खड़ा उनकी ओर देखता रहा।

''तुम्हारा रक्त नहीं बहेगा, मैं उसका प्रबंध कर देता हूँ।'' द्रोण धैर्यपूर्वक बोले, ''मैं यह कवच तुम्हारे शरीर पर इस प्रकार बाँध देता हूँ जिससे युद्ध में अस्त्र तुम्हें चोट नहीं पहुँचा सकेंगे। इस कवच के रहते कृष्ण, अर्जुन अथवा कोई अन्य योद्धा तुम्हारा रक्त नहीं बहा सकेगा।'' उन्होंने रुककर उसे देखा, ''वैसे यह तो तुम जानते ही हो, शिक्षा की अवधि में तुम्हें अनेक वार वताया गया होगा कि युद्ध शस्त्रों से नहीं साहस और वीरता से लड़ा जाता है।''

द्रोण ने दुर्योधन के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की और न दुर्योधन ने कोई उत्तर देने का प्रयत्न ही किया। द्रोण ने आचमन किया और मंत्रोच्चार के मध्य दुर्योधन के शरीर पर वह अद्‌भुत कवच बाँध दिया।

दुर्योधन ने कवच बँधवा लिया। वह मौन था किंतु उसका मन निरंतर द्रोण से विद्रोह कर रहा था। उसे द्रोण का अर्जुन से युद्ध करने के लिए जाना अस्वीकार करना तनिक भी अच्छा नहीं लगा था। एक राजा अपने शत्रु से भयभीत होकर काँपता हुआ सहायता के लिए अपने सेनापति के पास आए और सेनापति उसकी आज्ञा मानने से इंकार कर दे... क्या अर्थ है इसका ? अब वह दुर्योधन को एक कवच बाँध कर बहलाना चाहता था। दुर्योधन की इच्छा हुई कि कहे, 'आचार्य ! युद्ध यदि शस्त्रों से नहीं लड़े जाते तो मंत्रों और कवचों से भी नहीं लड़े जाते। मैंने अर्जुन को रोक लिया तो अपने बल और पराक्रम से ही रोकूँगा। तब आप इसका श्रेय लेने मत आ जाइएगा कि आपने मुझे कवच बाँध दिया और मैं अर्जुन को पराजित कर पाया।...' पर यह सब कहा नहीं उसने। ऐसा न हो कि बुड्ढा इस व्यूह को भी छोड़कर चल दे। एक स्थान पर पितामह लेटे हुए हैं, दूसरे किसी स्थान पर यह लेट जाए।... इससे अधिक छेड़छाड़ उचित नहीं है।...

दुर्योधन अपना रथ लौटा ले गया।

द्रोण कुछ निश्चिंत हुए। अब अर्जुन की चिंता उन्हें नहीं करनी थी। अब ज़ो करना हो दुर्योधन करे। एक प्रकार से अब उन्हें दुर्योधन की चिंता भी नहीं करनी थी। वे जहाँ थे, उन्हें वहीं बने रहना था। और उनके सम्मुख पांचालों, पांडवों तथा कैकेयों की सम्मिलित सेना खड़ी थी। उनका आक्रमण बड़े वेग से हुआ था और इतना तो आचार्य समझ ही रहे थे कि आक्रमणकारियों में से उनसे युद्ध करने के लिए रुकने का इच्छुक कोई नहीं था। वे उनको लाँघकर अर्जुन के पीछे जाने के इच्छुक थे। आज के युद्ध का केन्द्र बस जयद्रथ था। सारा कुछ उसी के जीवन और मृत्यु पर निर्भर था। पांडवों का एकमात्र लक्ष्य जयद्रथ का वध था और कौरवों की एकमात्र उपलब्धि उसे बचाना था।... जयद्रथ के मारे जाने से दुर्योधन के योद्धा समाप्त नहीं हो जाते, न ही युद्ध का निर्णय हो सकता था, किंतु उससे पांडवों का मनोबल बहुत बढ़ जाता और दुर्योधन तो टूट ही जाता।...

द्रोण ने आगे आकर उस आक्रमण को रोका। उनका ध्यान अधिकतर धृष्टद्युम्न पर ही था। एक वह ही था, जो कदाचित् उनको भी अपने युद्ध का लक्ष्य मान सकता था। प्रयत्न करके भी वे पांडवों के प्रति उतने कठोर नहीं हो सकते थे। और इस समय उन्हें यहाँ रोकने के लिए कोई दृढ़ आधार चाहिए था।... युधिष्ठिर को बंदी करने के लिए... युधिष्ठिर की रक्षा का दायित्व किसे दे गया है अर्जुन ? भीमसेन ? धृष्टद्युम्न ? सात्यकि ?...पहले धृष्टद्युम्न का कोई प्रबंध करना आवश्यक था।...

द्रोण ने पांचालों पर बाण-वर्षा आरंभ की। अन्य कौरवपक्षी योद्धाओं के लिए भी

पांचालों का विरोध ही अधिक सुविधाजनक था।"'

द्रोण को सामने देखकर धृष्टद्युम्न की आँखों में रक्त उतर आया।"' इस ब्राह्मण को मारे बिना उसके जीवन का कोई लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता था।"' धृष्टद्युम्न ने द्रोण पर प्रहार किया। लगा, द्रोण के चलाए हुए सारे बाण जैसे लौट रहे हों। कौरव सेना के लिए यह सर्वथा अप्रत्याशित था। द्रोण ने देखा, उनकी सेना के पैर जमने के स्थान पर उखड़ गए थे।"' उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि धृष्टद्युम्न के आक्रमण में ऐसा क्या था कि उनकी सेना में भगदड़ मच गई थी। उनकी सेना जैसे तीन भागों में बँट गई थी। सैनिकों का पहला दल पांडव योद्धाओं की मार खाकर कृतवर्मा की शरण में चला गया था। दूसरा दल जलसंध की ओर भागता हुआ दिखाई पड़ा; और जो बच गए वे द्रोण का अनुसरण करते रहे। विकर्ण, विविंशति, चित्रसेन इत्यादि ने भीम को घेरा। बाह्लीक ने द्रौपदेयों को रोका। दुःशासन सात्यकि से भिड़ गया, शल्य ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। संजय ने चेकितान को रोका, शकुनि ने नकुल को, विंद और अनुविंद ने विराट को।"' और फिर जैसे युद्ध कुछ उलट गया। शिखंडी ने बाह्लीक पर आक्रमण कर दिया। किसी अज्ञात दिशा से घटोत्कच प्रकट हो गया और वह अलायुध पर टूट पड़ा।"'

दुःशासन स्वयं को बहुत अपमानित पा रहा था। अर्जुन को रोकने का उसका प्रयत्न सर्वथा असफल हो गया था। अर्जुन तो रोका नहीं ही जा सका, दुःशासन को सेना सहित भागना पड़ गया था। जब वह लौट कर आया तो अर्जुन वहाँ से बहुत दूर जा चुका था।"' उसके पास जाने तक तो वैसे ही संध्या हो जाएगी। पांडव सेना कौरवों का नाश करती रहेगी और वह अपना रथ दौड़ाता हुआ अर्जुन को खोजता रहेगा। उससे अच्छा तो है कि वह इस समय सात्यकि से ही निबट ले। वह भी तो स्वयं को अर्जुन और कृष्ण के समान योद्धा मानता है और उन दोनों का प्रिय भी है।"'

दुःशासन ने सात्यकि पर आक्रमण किया। बाण सीधा जाकर सात्यकि के वक्ष में लगा और उसने उसका कवच भी फाड़ दिया। घाव इतना गहरा था कि सात्यकि को हल्की-सी मूर्च्छा आ गई। किंतु सात्यकि को सचेत होने में अधिक समय नहीं लगा। वह उठ खड़ा हुआ और उसने बाणों की झड़ी लगा दी। दुःशासन के सारे शरीर से रक्त बह रहा था और वह सात्यकि से अपनी रक्षा की विधि सोच रहा था। व्यर्थ ही छेड़ दिया उसने सात्यकि को। योद्धा तो और भी इतने थे। वह किसी और से भी तो भिड़ सकता था।

तभी भीम ने जलसंध पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर ने कृतवर्मा पर बाण चलाए। धृष्टद्युम्न ने अपना रथ द्रोण के रथ से लगभग सटा ही दिया। इतनी दूरी भी नहीं थी कि बाण मारा जा सके। तब धृष्टद्युम्न ढाल और तलवार ले रथ से कूदकर द्रोण के रथ पर जा चढ़ा। अपना एक पैर जूए के बीच में और दूसरा पैर घोड़े के पुट्ठे पर रखकर वह खड़ा हो गया। द्रोण के पास बचने अथवा सहायता पाने का कोई अवसर

नहीं था। उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि धृष्टद्युम्न कभी इस प्रकार का दुस्साहस भी करेगा। उसका रथ टूट गया होता, उसके अश्व मारे गए होते, उसका धनुष कट गया होता तो उसका खड्ग और ढाल लेकर शत्रु पर टूट पड़ना कुछ समझ भी आता था; किंतु हाथ में धनुष बाण रहते और रथ के अक्षुण्ण बने रहने पर भी कोई खड्ग लेकर शत्रु के रथ पर इस प्रकार कूदता है। वह अपने सबसे बड़े शत्रु के दौड़ते हुए रथ पर खड़ा था। घोड़े और जूए पर पैर रख कर। हाथ भी खाली नहीं थे। उन्हें ढाल और तलवार ने उलझा रखा था। ऐसे में वह एक झटके से नीचे गिर सकता था और किसी रथ के चक्र अथवा घोड़ों के खुरों के नीचे कुचला जा सकता था।··· जाने वह किस प्रकार अपने स्थान पर स्थिर खड़ा था। कदाचित् द्रोण के प्रति उसका आक्रोश ही उसे इतना दुस्साहसी बना रहा था।··· आक्रोश से उसका चेहरा कैसा विकृत-सा हो रहा था। साक्षात् मृत्यु जैसा··· द्रोण की रीढ़ की हड्डी में एक सिहरन-सी दौड़ गई··· क्या उनके लिए यमराज का निमंत्रण आ गया है ? पर कैसी क्रूर मृत्यु ! धृष्टद्युम्न क्या उनका मस्तक खड्ग के एक झटके से काट देगा और फिर उसे अपने पैरों से ठुकराएगा ?···

द्रोण ने निकट से मारे जाने वाले छोटे बाणों की अनवरत वर्षा आरंभ कर दी। वे अपने बाणों से उसे बींधने में सफल हो गए थे। धृष्टद्युम्न के पास अपनी रक्षा का कोई मार्ग नहीं था। या तो वे सीधा द्रोण पर कूद ही जाता और उनका धनुष बाण छीन लेता··· किंतु वह संभव नहीं था। उसके और द्रोण के मध्य, रथ के वे सारे अवरोध थे, जो रथी की रक्षा के लिए लगाए जाते थे। उसे अपना संतुलन भी बनाए रखना था। द्रोण के बाणों से स्वयं को बचाना भी था और फिर द्रोण पर आक्रमण करना था।···

सात्यकि ने देखा, धृष्टद्युम्न का साहसिक कार्य उसको बहुत महँगा पड़ रहा था। वह हवा में तलवार भांज रहा था और द्रोण उसे अपने बाणों से गोद रहे थे।··· सात्यकि ने द्रोण पर जैसे बाणों की वर्षा ही कर दी।··· द्रोण का ध्यान उधर से हटा और धृष्टद्युम्न उनके रथ से नीचे कूद गया। सात्यकि ने बाण मार कर धृष्टद्युम्न को द्रोण के चंगुल से बचा लिया था।

द्रोण को यह तनिक भी अच्छा नहीं लगा। अपनी मृत्यु को उन्होंने बहुत निकट से देखा था तो धृष्टद्युम्न भी काल के गाल में समा ही चुका था। उनकी मुट्ठी में आकर धृष्टद्युम्न सुरक्षित निकल गया था। दुर्योधन के लिए चाहे अर्जुन का मरना ही महत्त्वपूर्ण था; किंतु द्रोण तो धृष्टद्युम्न का वध करने को भी उतने ही व्याकुल थे। यदि कहीं वे धृष्टद्युम्न को रथ से गिरा पाते तो यह उनकी बहुत बड़ी उपलब्धि होती।

अब द्रोण का लक्ष्य सात्यकि ही था। इसी ने धृष्टद्युम्न को बचा लिया था। इसे न मारा तो यह हर बार धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर को बचा ले जाएगा। उन्होंने सात्यकि पर वेग से प्रहार किया। सात्यकि ने पलटकर द्रोण को छब्बीस बाण मारे। उसने द्रोण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी। द्रोण ने नया धनुष उठा लिया, पर सात्यकि ने उसकी

भी प्रत्यंचा काट दी। द्रोण नया धनुष उठाते थे और सात्यकि उसे काट देता था। द्रोण इतने क्षुब्ध हुए कि उन्होंने सात्यकि के वध के लिए दिव्यास्त्र प्रकट किया। सात्यकि हँसा··· द्रोण समझते हैं कि दिव्यास्त्र उनके ही पास हैं। उसने वारुण नामक दिव्यास्त्र धनुष पर चढ़ा ही नहीं लिया, तत्काल उसे द्रोण पर छोड़ भी दिया।···

दोनों ओर से दिव्यास्त्र चलने के कारण हाहाकार मच गया। दोनों पक्षों से अपने-अपने योद्धाओं की रक्षा का प्रयत्न किया गया। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और भीम तत्काल सात्यकि की रक्षा के लिए दौड़े। अब तक धृष्टद्युम्न भी स्वस्थ हो चुका था। उसने विराट और द्रुपद के साथ पुनः द्रोण पर आक्रमण किया।

द्रोण को संकट में देखकर, दुःशासन के नेतृत्व में कौरव पक्ष के असंख्य राजकुमार उनकी रक्षा के लिए आए और पांडव सेनाओं से भिड़ गए।

15

अर्जुन और कृष्ण आगे बढ़ते चले गए थे।

पीछे का कोई समाचार अर्जुन को नहीं मिल सकता था, किंतु इतना तो स्पष्ट ही था कि कौरव हों या पांडव, आज दोनों ही पक्षों की रुचि व्यूह के द्वार पर होने वाले युद्ध में नहीं, जयद्रथ के आसपास होने वाले युद्ध में थी। अर्जुन को आश्चर्य हुआ, आचार्य ने आज उसका पीछा नहीं किया था। यह अर्जुन के प्रति उनके सौहार्द के कारण था अथवा वे जयद्रथ की रक्षा करना नहीं चाहते थे ? क्या वे भी अर्जुन की पुत्र-पीड़ा को समझते थे और चाहते थे कि अन्याय से अभिमन्यु का वध करने वालों को उसका दंड मिले ?··· नहीं ! ऐसा कुछ होता तो वे चक्रव्यूह का निर्माण ही क्यों करते। और आज भी उन्होंने कोई साधारण व्यूह नहीं रचा था।··· तो वे क्यों रह गए पीछे ? क्या धर्मराज को जीवित बंदी कर लेने के लोभ में ?··· वस्तुतः मूर्खता तो दुर्योधन की ही थी, जिसने आचार्य के लिए एक आकर्षण द्वार पर रख छोड़ा था और दूसरा उससे चौबीस कोस दूर व्यूह के गर्भ में। उनके लिए अर्जुन की प्रतिज्ञा पूरी न होने देने से अधिक आकर्षण अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में था। तो वे अर्जुन के पीछे क्यों आते ? वे वहाँ धर्मराज को बंदी करने का प्रयत्न कर रहे होंगे ?

तो अर्जुन का यह निर्णय ठीक था क्या ? अब तक तो दुर्योधन ने षड्यंत्र रच कर संशप्तकों के माध्यम से उसे धर्मराज से दूर रखा था, किंतु आज तो अर्जुन अपनी इच्छा से धर्मराज को अकेला छोड़ आया था। कल अभिमन्यु के वध की सूचना पाने से पहले अर्जुन ने सोचा था कि अब संशप्तकों के द्वारा बुलाए जाने पर भी वह धर्मराज को अकेला छोड़कर नहीं जाएगा।··· पर तब अभिमन्यु के वध का समाचार मिला और उसने यह प्रतिज्ञा कर ली···

आज का अनुभव भी कुछ विचित्र ही अनुभव था। यह किसी व्यूह में प्रवेश करने जैसा नहीं था। यह तो शत्रु के स्कंधावार में प्रवेश करने जैसा था। जहाँ आपका एक अकेला रथ ही हो और चारों ओर शत्रु का शिविर। उसकी सेनाएँ। उसके महारथी। आपको कहीं यह सोचना ही नहीं है कि सामने किसकी वाहिनी है। यहाँ तो सारी वाहिनियाँ शत्रु की वाहिनियाँ थीं। सामने आए प्रत्येक सैनिक से युद्ध करना ही था। और कोई तो अर्जुन के पीछे अथवा उसके साथ नहीं ही आ पाया था, उसके पृष्ठरक्षकों को भी कृतवर्मा ने रोक लिया था।''' कौरवों के धावक सारे व्यूह में दौड़-दौड़कर समाचार पहुँचा रहे थे कि अर्जुन को रोकना है। ऐसे में अर्जुन यह अपेक्षा नहीं कर सकता था कि उसे कहीं अपने आप भी मार्ग मिल जाएगा। किसी को भी सामने देखकर बाणों से अपना मार्ग बनाना ही एकमात्र उपाय था। कृष्ण जानते थे कि उसी मार्ग में से उनको आगे बढ़ना था, वह चाहे कितना ही संकीर्ण क्यों न हो। वे रथ आगे बढ़ा लेते थे। उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकार के मंडल प्रकट कर अपनी दक्षता प्रमाणित कर रहे थे।

कृष्ण और अर्जुन दोनों ही समझ रहे थे कि उनके अश्व थक रहे थे और जयद्रथ अभी बहुत दूर था। इस समय बीच युद्ध के न तो अश्व बदले जा सकते थे और न ही उनको कुछ विश्राम दिया जा सकता था। परिणामतः उनकी गति मंथर होती जा रही थी। उसी का लाभ उठाया विंद और अनुविंद ने। थोड़े से अंतराल के पश्चात् उनके रथ अर्जुन को रोकने के लिए मार्ग के मध्य आ डटे।

"इन्हें बचाकर किसी कोने से निकल चलें कृष्ण ?"

"नहीं ! संभव नहीं होगा। इनसे तो निबट ही लो।"

अर्जुन समझ गया, कृष्ण उन्हें जीवित छोड़ना नहीं चाहते थे।

"मुझे दुर्योधन के प्रति इनकी निष्ठा कभी समझ में नहीं आई।" अर्जुन ने कहा, "मैं कभी समझ ही नहीं पाया कि ये हमारे इतने विकट शत्रु क्यों हैं।"

"ये न तुम्हारे शत्रु हैं, न दुर्योधन के मित्र हैं।" कृष्ण धीरे से बोले, "वस्तुतः इनकी निष्ठा जरासंध के प्रति थी और है। मैं जरासंध का शत्रु बना, इसलिए ये मेरे भी शत्रु हो गए। मेरे शत्रु तुम्हारे मित्र कैसे हो सकते थे ?"

"पर ये तुम्हारे शत्रु क्यों हैं ?" अर्जुन बोला, "तुमने इनका क्या बिगाड़ा है ? ये तुम्हारी बूआ के पुत्र हैं। तुम्हारी पत्नी के भाई हैं। फिर तुमसे स्नेह न कर तुम्हारे शत्रु क्यों हो गए हैं ?"

कृष्ण हँसे, "वैसे तो दुर्योधन भी तुम्हारे ताऊ का पुत्र है, उसे तुमसे स्नेह होना चाहिए।"

"उससे हमारा राज्य का झगड़ा है।" अर्जुन ने कहा, "तुम्हारा विंद और अनुविंद से वैसा कोई झगड़ा नहीं है।"

"ठीक कहते हो।" कृष्ण बोले, "कहने को कहा जा सकता है कि वे जरासंध

के पक्ष के थे और मैं जरासंध का विरोधी था। फिर वे अपनी वहन मित्रविंदा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते थे, पर मित्रविंदा ने जयमाला मेरे कंठ में डाल दी; और मैं उसका हरण कर लाया।''' विरोध तो प्रत्यक्ष ही है, पर मैं जानता हूँ कि मूलतः विरोध यह नहीं है।''

"विरोध यह नहीं है ?"

"नहीं।'' कृष्ण बोले, "यह कोई विरोध नहीं होता। विरोध का कारण जानने के लिए पूछना होगा कि वे मित्रविंदा का विवाह मुझसे होने देना क्यों नहीं चाहते थे ?"

"हाँ !'''"

"उसका कारण वही है, जो तुम लोगों के प्रति कर्ण के विरोध का कारण है।'' कृष्ण बोले, "कर्ण ने आँखें खोलीं तो धृतराष्ट्र और दुर्योधन को राजा और राजकुमार के रूप में देखा। उसके मन में उनके लिए भक्ति जागी। तुम लोगों को उसने निर्धन वनवासी और धृतराष्ट्र के निर्धन आश्रित संबंधियों के रूप में देखा। उसका मन तुम्हें आज भी वैसा ही दीनहीन और निर्धन देखना चाहता है। परिवर्तन अथवा विकास स्वीकार नहीं उसे। वह तुम्हारा वैभव का अधिकार मानने को तैयार नहीं है। वैसे ही विंद और अनुविंद के लिए मैं उनके निर्धन मातुल का पुत्र हूँ, जो निर्धन गोपों के घर पला। वह न मेरे पिता का महत्त्व मानने को तैयार हैं और न मेरा। वे हमें अपने राजसमाज का अंग मान ही नहीं पाए। मनुष्य जब पहली बार किसी से मिलता है तो उसके उस रूप और स्थिति को स्वीकार कर लेता है। उसके पश्चात् उसके विकास और परिवर्तित स्थिति को स्वीकार करना नहीं चाहता। जब ऐसे किसी व्यक्ति का महत्त्व स्वीकार करने का अवसर आता है तो उसे स्वीकार करने के स्थान पर वह उससे ईर्ष्या करने लगता है। यहाँ तक रहे तो भी ठीक। किंतु जब वह इसी कारण से किसी का शत्रु हो जाए और उसके प्राणों का हरण करना चाहे तो वह अधर्म और अपराध की ओर झुक जाता है; और तब उसका प्रतिरोध करना पड़ता है। इसलिए तुम विंद और अनुविंद को मेरी बूआ के पुत्र अथवा मेरे श्यालक के रूप में मत देखो। वे शत्रु हैं, अधर्मी तथा अपराधी हैं।''

विंद और अनुविंद के बाण आकर उनके रथ से टकराए। कृष्ण और अर्जुन दोनों को ही घाव लगे। पर बाणों का मुख्य लक्ष्य कृष्ण ही लगते थे।

'''ये अकारण शत्रु''' अर्जुन सोच रहा था''' अहंकार से उपजी अपनी इच्छा को दूसरों पर आरोपित नहीं कर पाए तो कृष्ण और अर्जुन के ही नहीं, धर्म के भी शत्रु हो गए। अव वे अर्जुन से भी पहले कृष्ण का वध करना चाहते हैं। ऐसे ही अभागों ने अपने मूर्ख व्यक्तिगत राग-द्वेष को इतने बड़े युद्धों का कारण बना दिया है और संसार के संहार के निमित्त बन गए हैं। इनको जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है।'''

अर्जुन ने बाणों की झड़ी लगा दी। दोनों के रथों के पृष्ठरक्षकों तथा चक्ररक्षकों को मार कर अश्वों के भी प्राण ले लिए। दोनों के सारथियों के वक्ष में वाण का प्रहार किया और अंततः अर्जुन ने विंद को एक क्षुरप्र से मार कर रथ से नीचे गिरा दिया।

अनुविंद ने देखा, उसका भाई मर कर भूमि पर जा गिरा था। उसके अपने अश्व मारे जा चुके थे और सारथि रथ हाँकने की स्थिति में नहीं थां। वह अपना अश्वहीन रथ त्याग कर, हाथ में गदा ले अर्जुन के रथ की ओर दौड़ा। अर्जुन समझने का प्रयत्न कर रहा था कि वह अर्जुन पर किस दिशा से प्रहार करना चाहता है कि उसने कृष्ण के ललाट पर अपनी गदा से प्रहार किया। अर्जुन को लगा प्रहार उसके वक्ष पर हुआ है।... कृष्ण अपने स्थान से जैसे कुछ पीछे धसक गए। उनके मस्तक ने ईषादंड का सहारा लिया, किंतु उन्होंने अश्वों की वल्गा नहीं छोड़ी।

अर्जुन के बाण ने पहले अनुविंद की वह भुजा काटी, जिसने कृष्ण पर प्रहार किया था। फिर वह भुजा काटी, जो मुष्टिका बाँध कर प्रहार की मुद्रा में थी। उसके तीसरे और चौथे बाणों से उसके उरु काट डाले, जिनके बल पर वह उनके रथ की ओर दौड़ रहा था। और अंत में उसका मस्तक काट कर उसके प्राणों को उसके शरीर से मुक्त कर दिया।

रथ दौड़ता रहा। उनके सामने कोई नई वाहिनी नहीं थी और पीछे कुछ दूरी पर विंद और अनुविंद के सैनिक उनका पीछा करने की औपचारिकता का निर्वाह कर रहे थे।

रथ एक सुंदर से छोटे प्राकृतिक सरोवर के तट से लगता हुआ आगे बढ़ रहा था। यहाँ प्रकृति बहुत मनोहर थी। वृक्ष पानी के ऊपर झुके हुए थे। अनेक वृक्षों पर सुंदर लताएँ झूल रही थीं। वृक्षों की हरीतिमा और उनके आसपास खिले हुए रंग-बिरंगे पुष्प आँखों और मन को अद्भुत उल्लास से भर देते थे।

"इतने दिन युद्ध करते हो गए, हम इधर तो कभी आए ही नहीं।" अर्जुन ने कहा, "आज लग ही नहीं रहा कि हम समरभूमि में खड़े हैं।"

"विंद और अनुविंद के सैनिकों का व्यवहार तुम्हें चकित नहीं कर रहा ?" कृष्ण ने पूछा।

"क्यों ?"

"विंद और अनुविंद के मारे जाने के पश्चात् थोड़ी देर तक उन्होंने हमारा उत्साहशून्य पीछा करने का नाटक किया था।"

"हाँ !"

"उसके पश्चात् उन्हें मार्ग में कहीं बिखर जाना चाहिए था किंतु अब अकस्मात् ही वे कुछ और उग्र हो गए हैं; और वस्तुतः हमारा पीछा कर रहे हैं।" कृष्ण बोले।

"हाँ ! कुछ परिवर्तन तो है।" अर्जुन ने कहा, "कुछ और कौरव वाहिनियाँ भी उनसे आ मिली हैं।... पर केशव ! यह सरोवर कितना मनोरम है।"

"वह पिछला सरोवर तो छोटा था। यह दूसरा उससे भी बड़ा है।" कृष्ण बोले, "मन होता है, कुछ देर इसके तट पर बैठ जाएँ, पर हमें जयद्रथ तक पहुँचना है।"

"केशव ! मेरे घोड़े बाणों से पीड़ित होकर थक गए हैं और जयद्रथ अभी दूर

है।" अर्जुन ने कहा।

"सोच तो मैं भी रहा था, फिर जाने संध्या तक अश्वों को विश्राम मिले न मिले।" कृष्ण बोले, "किंतु इन कौरव वाहिनियों ने हमें घेर रखा है।"

"घेर ही तो रखा है। कोई गंभीर युद्ध तो नहीं छेड़ रखा।" अर्जुन ने उत्तर दिया, "मुझे तो उनमें से कोई भी योद्धा बहुत आक्रामक और बहुत समर्थ प्रतीत नहीं होता। बस बाण चलाने का अभ्यास-सा कर रहे हैं या फिर अपने कर्तव्य की पूर्ति मात्र कर रहे हैं। तुम अश्वों को खोल लो केशव ! मैं इन लोगों को रोके रखूँगा।"

"मेरा विचार है कि वे भी तुम्हें रोके ही रखना चाहते हैं।" कृष्ण मुस्कराए, "एक तो जितना समय व्यतीत होता जाएगा, वह उनके लिए प्रसन्नता का विषय होगा और दूसरे उन लोगों ने दुर्योधन को सूचना भेज रखी होगी। वे और सेना और योद्धाओं के आगमन की प्रतीक्षा में होंगे।"

"ठीक है। उन्हें आने दो।" अर्जुन भी मुस्कराया, "वे मुझे घेरे रहेंगे और मैं उन्हें रोके रहूँगा।"

अर्जुन ने अपने कंधों पर तूणीर बाँध लिए और रथ से उतर आया।

कौरव सैनिकों की समझ में नहीं आया कि हुआ क्या है। अर्जुन के रथ के घोड़े जीवित और स्वस्थ थे। सारथि जीवित और समर्थ थे। तो वह रथ से उतर क्यों आया ? युद्ध में तो कोई रथ को इस प्रकार नहीं त्यागता।··· और तब उन्होंने देखा कि कृष्ण ने अश्वों को रथ से खोल लिया था। सबसे पहले उन्होंने अश्वों के शरीर में चुभे हुए बाण निकाले, घावों पर औषधि का लेप किया; और अपनी स्नेहमयी हथेलियों से उनके सारे शरीर में ऊर्जा का संचार किया। उसके पश्चात् वे उन्हें नहलाने के लिए सरोवर में उतर गए।

कौरव सैनिकों को लगा कि यह स्वर्ण अवसर था। अकेला अर्जुन भूमि पर खड़ा था। न तो वह रथ पर था कि वहाँ से सुरक्षित स्थान की ओर बढ़ जाएगा और न ही यहाँ उसका कोई सहायक था। वह कृष्ण को यहाँ असहाय छोड़कर भागेगा भी नहीं। उसे घेर कर बंदी भी बनाया जा सकता था और उसका वध भी किया जा सकता था।··· दूसरी ओर कृष्ण सर्वथा अकेले और निःशस्त्र थे। यदि उनके ही प्राण लिए जा सकें तो कौरवों की एक बड़ी उपलब्धि होगी।···

कौरव सेना आगे बढ़कर दोनों सरोवरों के मध्य में आ गई। एक सरोवर उनके आगे था और दूसरा उनके पीछे। उनकी ओर से बाणों की झड़ी लग गई।···

पर उनमें से आगे बढ़ने वाले सैनिकों को तत्काल पता लग गया कि जिस कृष्ण और अर्जुन को वे अपने सामने समझ रहे थे वे बाणों की एक प्राचीर के पीछे थे; और वह प्राचीर अलंघ्य थी। जिस किसी ने अपना पग उसके पार डालने का प्रयत्न किया, उसका रक्त सरोवर के जल में जा मिला।··· कृष्ण अपने अश्वों को नहला रहे थे और कौरव सैनिक कुछ नहीं कर सकते थे। कृष्ण अश्वों को दाना खिला रहे थे

और सैनिक कुछ नहीं कर सकते थे। न तो वे उनके निकट जा सकते थे और न उनके बाण ही उन तक पहुँच रहे थे।'''

और तब कृष्ण अश्वों को लेकर अर्जुन के समीप आए।

"धनंजय ! इस सरोवर का जल अब अश्वों के पीने योग्य नहीं रहा। उसमें सैनिकों का रक्त आ मिला है। इन्हें पीने के लिए स्वच्छ जल चाहिए।"

"अभी लो।" अर्जुन ने कहा और उसके बाणों की प्राचीर कौरव सैनिकों के और निकट पहुँचने लगी। सैनिकों के पास भागने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं था। वे अपने स्थान पर टिके रहते तो बाणों की प्राचीर में चिन दिए जाते।''' उनके रथ और घोड़े पीछे हटते गए और अर्जुन तथा कृष्ण अपने अश्वों के साथ छोटे और स्वच्छ सरोवर के निकट आते गए। अश्वों ने अपनी इच्छा भर जल पिया और कृष्ण उन्हें टहलाते हुए रथ के पास ले गए। उन्होंने उन्हें रथ में जोता और रथ को लेकर अर्जुन के पास आ गए।'''

अब अर्जुन और कृष्ण पुनः युद्ध के लिए तैयार थे। कौरव सैनिक खड़े देखते रह गए। न तो उनकी सहायता को कोई सेना आई थी और न ही कोई योद्धा। एक संदेशवाहक यह सूचना लेकर अवश्य आया था कि स्वयं राजा दुर्योधन अपनी विशिष्ट वाहिनियों के साथ अर्जुन के पीछे आ रहे हैं।'''

16

"विदुर ! युद्ध के पहले दिन से मेरे मन में एक प्रश्न कुलबुला रहा है।" कुंती ने कहा।

"तो भाभी ! फिर इतने दिनों से उसका भार क्यों ढो रही हैं आप।" विदुर हँस पड़े, "क्या आपको लगता है कि मेरे पास उसका कोई उत्तर नहीं होगा।"

"हाँ ! और भाभी नहीं चाहतीं कि आपको अपने अज्ञान के लिए उनके सम्मुख लज्जित होना पड़े।" पारंसवी ने जोड़ दिया।

"यह अच्छी कही पारंसवी तुमने।" कुंती भी मुस्कराईं, "मेरे मन में हो न हो तुम उसे सब पर आरोपित कर ही दोगी।"

"अच्छा यदि यह बात नहीं है तो फिर आपने इतने दिनों से पूछा क्यों नहीं ?" पारंसवी बोली, "न पूछने का भी तो कोई कारण होना चाहिए।"

"कारण तो यही था कि मैं निश्चय नहीं कर पा रही थी कि वह प्रश्न पूछे जाने योग्य है भी या नहीं।" कुंती ने कहा।

"तो चलिए अब पूछ लीजिए।" विदुर हँसे, "रहस्यवाद काफी हो चुका।"

कुंती थोड़ी देर मौन रहीं, जैसे बात का छोर खोज रही हों। फिर बोलीं, "युद्ध की चर्चा होती है तो रथों, अश्वों और साथ ही योद्धाओं के ध्वजों की भी चर्चा

होती है।"

विदुर और पारंसवी दोनों ही एकटक उनकी ओर देख रहे थे।

"अर्जुन को कपिध्वज कहा जाता है।"

"हाँ।"

"यह भी कहा जाता है कि उसके ध्वज पर कपि का जो चित्र वना हुआ है, वह अत्यंत जीवंत है और वह वानर बहुत भयंकर है।"

"हाँ भाभी !"

"चित्र भयंकर है अथवा वानर भयंकर है ?"

"वे दोनों पृथक्-पृथक् हैं क्या ?" पारंसवी हँस पड़ी।

"कहा तो कुछ इसी प्रकार जाता है।" कुंती ने कहा, "कोई-कोई तो यहाँ तक कह देता है कि युद्ध की अवधि में उस वानर ने अनेक बार अपना क्रोध प्रकट भी किया है। उसके उस क्रोध को देखकर शत्रुओं में भय का संचार भी हुआ।"

पारंसवी ने उसकी पुष्टि के लिए विदुर की ओर देखा।

विदुर ने सहमति में सिर हिला दिया।

"तो ऐसे में यह कैसे कहा जा सकता है कि वह एक भयंकर वानर का चित्र मात्र है ?" कुंती ने कहा, "कहा तो यह जाना चाहिए कि ध्वज़ा पर एक भयंकर वानर बैठा है।"

"पर कपड़े की फड़फड़ाती ध्वजा पर कोई वानर कैसे बैठ सकता है ?" पारंसवी ने कहा, "अथवा कहें कि ध्वजा किसी वानर का बोझ कैसे उठा सकती है ?"

विदुर मौन बैठे रहे।

"क्यों ? कोई उत्तर नहीं है न भाभी के प्रश्न का ?" पारंसवी ने छेड़ा।

"मैंने न कभी संसार के सारे प्रश्नों का उत्तर देने की योग्यता की घोषणा की है और न कभी इस प्रकार की चुनौती स्वीकार की है।" विदुर हँसे, "मैं तो यह सोच रहा था कि क्या भाभी ने कभी यह चर्चा नहीं सुनी कि वन में जब हनुमान भीमसेन को मिले थे तो उन्होंने पवनपुत्र होने के नाते अपने भाई को यह आश्वासन दिया था कि वे अर्जुन के ध्वज पर बैठे रहेंगे और अपनी गर्जना से उसके शत्रुओं को डराते रहेंगे।"

"सुनी है। यह चर्चा भी सुनी है।" कुंती ने कहा, "वस्तुतः यह सब कुछ उसी प्रश्न से जुड़ा हुआ है कि वहाँ सचमुच कोई वानर बैठा हुआ है क्या ?"

"सांसारिक दृष्टि से स्थूल भौतिक रूप में कोई वानर वायु में फड़फड़ाती किसी ध्वजा पर नहीं बैठ सकता।" विदुर ने कहा, "पर मेरा प्रश्न है कि इस दृष्टि से क्या किसी भी व्यक्ति का—चाहे वह व्यक्ति स्वयं हनुमान ही क्यों न हों—अपने उसी शरीर के साथ श्रीराम के समय से आज तक जीवित रहना संभव है ?"

"आपसे प्रश्न पूछने को नहीं, प्रश्न का उत्तर देने को कहा गया है।" पारंसवी

ने कहा, "जब कोई उत्तर नहीं सूझा तो प्रश्न पूछ कर हमें ही डराने लगे।"

"नहीं ! यह बात नहीं है पारंसवी।" विदुर बोले, "इन प्रश्नों का उत्तर मेरे प्रश्न में ही निहित है।"

"वाह ! क्या परिहास है कि उत्तर प्रश्न में निहित है।"

"ठहरो पारंसवी !" कुंती बोलीं, "तुम बहुत तंग करती हो मेरे देवर को।"

"लो, एक तो मैं उत्तर दिलवाऊँ फिर मैं ही दोषी कहलाऊँ।" पारंसवी बोली, "यह तो अच्छा न्याय है भाभी आपका। मैं व्यर्थ ही देवर भाभी के बीच पड़ी।"

कुंती ने पारंसवी के रूठने के नाटक की ओर ध्यान नहीं दिया और बोलीं, "यदि हम यह मान लें कि कोई मनुष्य श्रीराम के समय से आज तक अपना मानवीय शरीर धारण नहीं कर सकता तो हनुमान कैसे कर सकते हैं, तो हम कुछ बहुत मूल्यवान मान्यताओं के प्रति अश्रद्धावान नहीं हो रहे ?"

"नहीं !" विदुर बोले, "आप जानती हैं कि मेरे अपने व्यक्तित्व का निर्माण श्रद्धा तत्त्व से ही हुआ है। पर श्रद्धा को कुछ तर्क भी करना होगा। हम देखते हैं कि प्रत्येक प्राणी के जीवन की अवधि की एक मर्यादा है। उसे उसका अतिक्रमण नहीं करने दिया जाता। मनुष्य कितना भी दीर्घजीवी हो, उसे सहस्र वर्षों का जीवन नहीं मिलता।"

"पर हनुमान अमर हैं।" पारंसवी बोली, "उन्हें शाश्वत जीवन मिला है। अक्षर जीवन। अनश्वर जीवन।"

"हाँ ! हाँ !! मिला तो है। मैं कब उसे अस्वीकार कर रहा हूँ। हम यह मानें कि हनुमान को अक्षर जीवन मिला है और वे हमारे ही समान शरीर धारण करते है। ठीक है ?"

पारंसवी ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

"तो हमें यह भी मानना होगा कि वे किष्किंधा में किसी मुहल्ले के किसी भवन में अब भी रहते होंगे। वे कहीं से शाक क्रय करते होंगे। वे कुछ लोगों से मिलते होंगे। उनके शरीर की साधारण मनुष्यों के समान कुछ आवश्यकताएँ होंगी।··· वे उनकी पूर्ति के लिए भी प्रयत्न करते होंगे। अपनी आजीविका के लिए भी उन्हें कुछ कामों और कुछ लोगों पर निर्भर रहना होता होगा।··· पर है कोई ऐसा प्रमाण ? किसी ने उन्हें किष्किंधा की किसी वीथि में देखा है ? किसी हाट में किसी की उनसे भेंट हुई है.?"

"नहीं ! वे किष्किंधा में कहीं नहीं रहते। उनका वहाँ कोई भवन नहीं है। कोई रसोई नहीं है। वे किसी दुकान पर शाक और अन्न क्रय करने नहीं जाते।" पारंसवी ने कहा, "देवता इस प्रकार शरीर धारण नहीं करते।"

"ठीक यही बात मैं कह रहा हूँ।" विदुर मुस्कराए, "उनका जीवन हमारे समान स्थूल जीवन नहीं होगा। जो अमर होता है, वह ऐसे नश्वर शरीर में नहीं रहता। उनको एक प्रकार का दिव्य और सूक्ष्म जीवन मिला होगा, तभी तो वह अक्षर हो सकता है। ऐसी स्थिति में जो हनुमान वन में भीम को मिले, यदि वह भीम का स्वप्न अथवा कोई

दिव्य दर्शन नहीं था, तो वे सूक्ष्म शरीरधारी हनुमान ही होंगे। यदि हम उनकी कल्पना सूक्ष्म शरीर के रूप में करते हैं तो वे अपने उस शरीर से अर्जुन के रथ की ध्वजा पर भी बैठ सकते हैं। तब वह वानर का चित्र मात्र नहीं है। वे साक्षात् हनुमान हैं। वे अपना भाव भी प्रदर्शित करते होंगे। अपना हर्ष तथा क्रोध भी व्यक्त करते होंगे। यदि वे अपने स्थूल शरीर के साथ वहाँ होते तो अब तक समरभूमि में उतरकर दुर्योधन की सेना को नष्ट न कर चुके होते ?"

"तो आप यह मानते हैं कि हनुमान अपने सूक्ष्म शरीर में अर्जुन की ध्वजा पर वर्तमान हैं ?" पारंसवी ने पूछा।

"इसमें संदेह का कोई कारण नहीं है।" विदुर बोले, "सृष्टि में केवल स्थूल तत्त्व का ही तो अस्तित्व नहीं है। हाँ ! हमारे पास शरीर के रूप में जो यंत्र है, वह सूक्ष्म को बहुत कम पहचानता है, इसलिए वायुमंडल में कहूँ, अंतरिक्ष में कहूँ, सृष्टि में कहूँ, जो सूक्ष्म सत्य हैं, उनका साक्षात्कार बहुत कम लोग कर पाते हैं। हम अपने इस अपर्याप्त यंत्र को ही सर्वज्ञ मानते हैं, इसलिए सूक्ष्मता से न्याय नहीं कर पाते।"

"अच्छा विदुर ! मेरी दूसरी जिज्ञासा है कि यदि हनुमान अर्जुन के ध्वज पर वर्तमान हैं, अर्थात् वे अर्जुन के समर्थक हैं तो वे कौरवी सेना का नाश क्यों नहीं करते ? वे अर्जुन को ही नहीं कृष्ण को भी शत्रुओं के बाणों से आहत होते देख, कैसे चुप बैठे रहते हैं ?"

"संसार की गतिविधियों में हस्तक्षेप तो सूक्ष्म शक्तियाँ भी करती हैं भाभी ! किंतु उस प्रकार नहीं, जैसे स्थूल शक्तियाँ करती हैं।" विदुर बोले, "श्रीकृष्ण को देखो, वे तो मुझ और आप जैसा शरीर ही धारण करते हैं। फिर भी उनका हस्तक्षेप वैसा नहीं है, जैसा शेष योद्धाओं का है। अब कोई यह तो नहीं कह सकता कि इस युद्ध में उनका हस्तक्षेप नहीं है।"

"पर हनुमान को इस युद्ध में उपस्थित रहना ही था तो वे भीम के रथ के ध्वज पर क्यों विराजमान नहीं हुए, जो वायुपुत्र है।" पारंसवी ने कहा, "उनकी भेंट भी तो भीम से ही हुई थी।"

"मैं इसी बात को दूसरे कोण से पूछना चाहती हूँ।" कुंती ने कहा, "अर्जुन ने अपने ध्वज के लिए हनुमान को ही क्यों चुना ? वह विष्णु का गरुड़, शिव का नान्दी अथवा कार्त्तिकेय का मयूर भी तो चुन सकता था।"

"अब इन प्रश्नों के उत्तर तो या हनुमान दे सकते हैं या अर्जुन। मैं इस विषय में क्या कह सकता हूँ।" विदुर बोले।

"मैं बताऊँ ?" सहसा पारंसवी ने कहा।

"अच्छा तो प्रश्न भी तुम ही पूछोगी और उत्तर भी तुम ही दोगी।" विदुर हँसे।

"मैं समझती हूँ कि इसमें न तो अर्जुन की इच्छा काम कर रही है, न भीम और श्रीकृष्ण की।" उसने कहा।

"वह कैसे ?" कुंती ने पूछा।

"भीम से अपनी भेंट में हनुमान ने कहा कि वे अर्जुन की ध्वजा पर वर्तमान रहेंगे।" पारंसवी बोली, "यदि स्वयं भीम कहता तो वह यही कहता कि वे उसकी ध्वजा पर वर्तमान रहें। ठीक है।"

"बात तो ठीक ही लगती है।" विदुर बोले।

"ठीक उसी प्रकार अर्जुन ने तो हनुमान से नहीं कहा कि आप मेरी ध्वजा पर बैठें। वह ध्वजा तो उस रथ के एक अंग के रूप में ही थी।" पारंसवी ने कहा, "यह तो स्वयं हनुमान की ही इच्छा हो सकती है।"

"मैं समझी नहीं।" कुंती ने कहा।

"राम-रावण युद्ध में हनुमान ने अपने प्राण लगा दिए थे; तो जब राम, कृष्ण के रूप में निःशस्त्र होकर इस युद्ध के लिए आए तो हनुमान स्वयं को उनसे दूर कैसे रख सकते थे ?" पारंसवी ने कहा, "भक्त अपने भगवान को इस प्रकार संकट में जाते देखेगा तो क्या वह उनसे दूर रह सकेगा ? भक्त का शरीर सूक्ष्म हो अथवा स्थूल, उसकी सार्थकता तो भगवान की सेवा में ही है न !"

"भीम वेचारा तो यह समझता होगा कि उसके भाई होने के नाते हनुमान ने उसके दूसरे भाई की सहायता की, किंतु तुमने तो सारा चित्र ही बदलकर रख दिया।" कुंती ने कहा, "यहाँ तो सारा भक्तिशास्त्र ही आ गया।"

"हाँ ! बात तो भक्त के हृदय की है।" पारंसवी बोली।

"हम तो आज तक यही मानते आए कि भगवान अपने भक्त की रक्षा करते हैं और यहाँ भक्त अपने भगवान की रक्षा करने आ गया है।" कुंती हँसीं।

"रक्षा तो भगवान ही करते हैं भाभी !" विदुर बोले, "भक्त तो सेवा ही कर सकता है। शायद हनुमान वही कर रहे हैं। उनका सा भक्त और कहीं कोई है क्या ? वे जो कर रहे हैं, वह भक्ति का आदर्श ही होगा न !"

17

कौरव हताश हो चुके थे। तभी दुर्योधन अपना रथ दौड़ाता हुआ आया और अर्जुन को लाँघ कर उसके सामने जा खड़ा हुआ। वह तनिक भी हतोत्साहित अथवा निराश प्रतीत नहीं हो रहा था। उसका अदम्य आत्मविश्वास देखकर एक बार तो कृष्ण भी चकित रह गए। आज कौरवों में से किसी का भी आत्मविश्वास उन्हें सशंक कर देता था।

"पार्थ ! यदि तुम सचमुच पांडु के पुत्र हो तो आज मुझ पर अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग करके दिखाओ। तुममें और कृष्ण में जो बल और पराक्रम हो, उसे प्रकट करो।"

अर्जुन अपने मन में उपजे प्रश्न से जूझ ही रहा था कि दुर्योधन के इस असाधारण आत्मविश्वास का रहस्य क्या हो सकता है कि दुर्योधन ने बाण चलाकर कृष्ण का वक्ष छेद डाला और उनके हाथ के प्रतोद को काटकर भूमि पर गिरा दिया।

अब सोचने का समय नहीं था। अर्जुन के गांडीव से बाण छूटने लगे।''' पर वे वाण दुर्योधन के शरीर को आहत करने के स्थान पर उससे टकराने के पश्चात् फिसलकर ऐसे भूमि पर गिर रहे थे, जैसे वे किसी शिला से टकराकर अपनी निष्फलता सिद्ध कर रहे हों।

कृष्ण ने चकित होकर अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन ने न समझ पाने की मुद्रा में अपने कंधे उचका दिए और पुनः चौदह वाण मारे। उन वाणों की गति भी वही हुई। दुर्योधन इस प्रकार अटल खड़ा था, जैसे दिखा देना चाहता हो कि अर्जुन उसका कुछ भी नहीं विगाड़ सकता। अब वह बाण चलाने की जल्दी में भी नहीं लगता था। उसके अधरों पर विद्रूपमय मुस्कान थी, जैसे उसके सम्मुख अर्जुन न हो कोई मदांध मूपक हो।

"क्या हो गया है तुम्हें अर्जुन ? तुम्हारे वाण काम नहीं कर रहे।" कृष्ण बोले, "वे तो जैसे प्रस्तर-खंड से टकरा-टकराकर गिर रहे हैं। तुम्हारा गांडीव, तुम्हारी मुट्ठी तथा तुम्हारा वाहुवल ठीक है न ? या किसी कारणवश तुम समझते हो कि शत्रु से भेंट का अभी अंतिम समय नहीं आया ? तुम्हारे बाणों को इस प्रकार निप्फल होते तो मैंने कभी नहीं देखा।"

अर्जुन की चेतना लौटी, "लगता है कि आचार्य ने मंत्रों सहित इसे यह अभेद्य कवच वाँध दिया है। दुर्योधन भी जानता है कि यह कवच मेरे वाणों के लिए अभेद्य है। तभी तो आकर इस प्रकार सामने खड़ा हो, चुनौती दे रहा है।"

"तो ?"

"आचार्य ने इसे कवच तो बाँध दिया है किंतु इस कवच को धारण करने पर, जिस कर्तव्य के पालन का विधान किया गया है, उसे यह नहीं जानता। जैसे स्त्रियाँ कहीं से अलंकार बनवाकर धारण कर लेती हैं, वैसे ही यह किसी और की दी हुई कवच-धारणा को अंगीकार किए हुए है।" अर्जुन ने कहा।

अर्जुन के चेहरे का द्वंद्व और अनिर्णय का भाव मिट चुका था। उसने मानवास्त्र से अपने बाणों को अभिमंत्रित कर, धनुष खींचा।

दुर्योधन उसी प्रकार निर्भय उसके सामने खड़ा रहा; किंतु अश्वत्थामा पीछे से आगे आ गया। उसने असाधारण स्फूर्ति का परिचय देते हुए, अर्जुन के इस सर्वास्त्रघातक अस्त्र को काट डाला। इस स्थिति का लाभ उठाकर दुर्योधन ने अपने वाणों से कृष्ण और अर्जुन के शरीर को कितने ही छोटे-वड़े घाव दे दिए।

दुर्योधन और अश्वत्थामा दोनों ही एक प्रकार से आश्वस्त थे कि अर्जुन पुनः मानवास्त्र नहीं छोड़ सकता। साधारण बाणों से अर्जुन, दुर्योधन को कोई क्षति नहीं पहुँचा

सकता था। उसका प्रायः सारा ही शरीर अभेद्य कवच से सुरक्षित था।...

कोई विकल्प न देख, अर्जुन ने दुर्योधन के अश्वों और उसके पृष्ठरक्षकों को मार डाला। धनुष और दस्ताने काट दिए। रथ के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। दुर्योधन ने घबराकर अपने हाथ जैसे ऊपर उठाए और अर्जुन ने उसकी हथेलियों में पैने बाण धँसा दिए। वह अभी उन्हें देख भी नहीं पाया था कि अर्जुन ने उसके नखों के मांस में प्रहार किया।

दुर्योधन समझ गया कि केवल एक अभेद्य कवच ही युद्ध जीतने के लिए पर्याप्त नहीं है। उसने उस कवच से कुछ अधिक ही अपेक्षा की थी। दुर्योधन असह्य वेदना का अनुभव कर रहा था। उसे पितामह द्वारा दी गई विशल्यकारिणी बूटी स्मरण हो आई। कदाचित् वह ऐसे ही समय के लिए उपयुक्त औषध थी।

कौरव योद्धाओं ने अपने राजा को इस प्रकार व्याकुल देखा तो वे उसकी रक्षा को दौड़े आए।

"मुझे छोड़ो मूर्खो !" दुर्योधन चिल्लाया, "जाओ, सिंधुराज जयद्रथ की रक्षा करो।"

दुर्योधन युद्धभूमि से हट गया। उसके तन और मन में असह्य वेदना हो रही थी।... वह कुछ भी कर ले; किंतु अर्जुन के पास उसके प्रत्येक घात का प्रतिघात होता ही है। आचार्य उसको ऐसा अभेद्य कवच दे सकते थे तो उसकी हथेलियों और नखों का भी कोई न कोई प्रबंध कर ही सकते थे। पर क्यों नहीं किया उन्होंने।... वह बुड्ढा कोई न कोई कमी छोड़ ही देता है।... ठीक है कि दुर्योधन को धनुर्वेद का इतना ज्ञान नहीं है। बाण विद्या का इतना अभ्यास भी नहीं है।... पर आचार्य को तो है। वे ऐसा ही कवच अपने शरीर पर बाँध कर अर्जुन से नहीं लड़ सकते क्या ? अर्जुन उनको लाँघ कैसे आया ? वहाँ वे अपना व्यूह बचाने में लगे हैं और यहाँ जयद्रथ मारा जाएगा।... जो भी बात कही जाए, उसी का विरोध कर देते हैं। ऐसे-ऐसे स्वर्ण अवसर व्यर्थ ही हाथ से निकलते जा रहे हैं। उन्होंने कहा था अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर ले जाओ तो वे युधिष्ठिर को जीवित बंदी कर उसे सौंप देंगे। आज तीसरा दिन है... अर्जुन और युधिष्ठिर को पृथक्-पृथक् स्थानों पर लड़ते हुए, किंतु आज तक वे उस धर्मराज को बंदी नहीं कर पाए हैं। आज कहा था कि अर्जुन को जयद्रथ से दूर रखिए। बस ! और कुछ नहीं। वे उतना भी नहीं कर पाए।... कर नहीं पाए अथवा करना चाहते ही नहीं ?... और अर्जुन ऐसा लक्ष्य कैसे साध सकता है ? इतनी दूरी से कोई किसी के नखों में बाण कैसे धँसा सकता है ? यह उसके योगाभ्यास के कारण है क्या ? ऐसी एकाग्रता तो योग से ही हो सकती है। अर्जुन तो वैसे भी अपने शैशव से ही केवल चिड़िया की आँख देखता रहा है।...

कृष्ण रथ को दौड़ाते जा रहे थे। युद्धभूमि में उड़ी धूल से उनकी पलकें तक धूल-धूसरित हो रही थीं और चेहरा स्वेद से भीगा जा रहा था।... रथ की गति फिर से कुछ मंद होने लगी थी।

"वे आ रहे हैं।" अर्जुन ने कहा।

"हाँ !" कृष्ण बोले, "जिस प्रकार से उनके रथ चल रहे हैं, उनका प्रयोजन हमें घेर लेना ही हो सकता है। संभव है हमें घेर कर वे फिर से दुर्योधन अथवा कर्ण की प्रतीक्षा करना चाहते हों। आचार्य तो अपना व्यूह छोड़कर आते दिखाई नहीं देते।"

"आचार्य के मन का द्वंद्व मैं समझता हूँ।" अर्जुन ने कहा, "वे अपना कर्तव्यबोध कितना भी जगा लें; किंतु वे मेरे शत्रु नहीं हो सकते।"

"ठीक है, पर वे तुम्हारे मित्र भी नहीं हो सकते।" कृष्ण बोले, "वे दुर्योधन के सेनापति हैं। उसको अभेद्य कवच दे सकते हैं; पर जो निष्ठा वह उनसे माँगता है, वह नहीं दे सकते। जो श्रद्धा वे दुर्योधन से माँगते हैं, वह दुर्योधन नहीं दे सकता। दुर्योधन और आचार्य–राजा और सेनापति–के पारस्परिक द्वंद्वों को तुम अपने प्रति उनका प्रेम मत समझो। मत भूलो कि अभिमन्यु के आखेट के लिए चक्रव्यूह भी उन्होंने ही रचा था। हम उन पर विश्वास तो नहीं कर सकते।"

अर्जुन ने कोई उत्तर नहीं दिया।... कृष्ण कैसे इतने निर्मोही हो सकते हैं। अर्जुन के मन से अपने गुरु का मोह नहीं जाता। कृष्ण केवल धर्म से प्रेम करते हैं... और किसी से भी नहीं।... उनकी व्यावसायित्मिका वृत्ति, उनकी निश्चयात्मक बुद्धि इतनी एकाग्र है कि उनको उनके लक्ष्य से कोई रंच भर भी डिगा नहीं सकता। वे जैसे सदा समाधि में ही रहते हैं। ऐसा योगी कोई और कैसे हो सकता है...

"जयद्रथ अभी भी हमसे एक कोस दूर तो होगा ?" अर्जुन ने कहा।

"हाँ ! इतना तो होगा।" कृष्ण बोले, "किंतु कौरव रथियों की सेना तो आ पहुँची है। वे हमें घेर लेंगे तो एक कोस पहुँचने में भी बहुत समय लग जाएगा।"

अर्जुन ने अपना गांडीव ताना, "मैं अभी इनका घेरा तोड़ता हूँ।"

"अर्जुन !" कृष्ण धीरे से बोले, "तुम उनका घेरा तोड़ तो लोगे, किंतु उसमें समय लगेगा और आज हमारे पास समय ही नहीं है।"

"तो ?"

"तुम गांडीव की टंकार करो।" कृष्ण बोले, "और मैं पांचजन्य फूँकता हूँ।"

"उससे क्या होगा ?"

"बिना तनिक-सा भी समय खोए हम इनका घेरा तोड़कर निकल जाएँगे।"

अर्जुन समझ नहीं पाया कि कृष्ण क्या कर रहे हैं। शस्त्रास्त्रों का प्रयोग न कर कृष्ण ध्वनि मात्र से शत्रुओं को पराजित करना चाहते हैं। ध्वनि की शक्ति को अर्जुन भी मानता था। वस्तुतः वह पवनदेव की ही तो शक्ति थी, जो नाद बनकर गूँजती थी। नाद के महत्त्व का तिरस्कार कौन कर सकता था। ओंकार भी तो नाद ही है। वह ब्रह्म है। पर युद्ध में नाद का प्रयोग ? जाने कृष्ण के मन में क्या है।... पर कृष्ण की योजना समझे बिना भी उसके अनुसार कार्य करने में अर्जुन को कोई आपत्ति नहीं थी।

उसने गांडीव की प्रत्यंचा को अपने दाएँ कान तक खींचा और कृष्ण ने पांचजन्य

को शक्ति भर फूँका...

अर्जुन ने देखा : उन्हें घेरने वाले रथियों में भी कँपकँपी मच गई थी। उनके रथ ऐसे अस्थिर हो रहे थे, जैसे कोई भूचाल आया हो।... और कृष्ण अपने अश्वों को उनके बीच में से निकालकर ले गए। अर्जुन के रथ के चारों ओर घेरा बनते-बनते रह गया।...

वे बहुत दूर नहीं जा सके। भूरिश्रवा, शल, कर्ण, वृषसेन, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य और दुर्योधन—आठ-आठ महारथी पुनः उनके सम्मुख खड़े थे। सबसे आश्चर्य की बात थी कि जयद्रथ भी उनके साथ था।... तो इसका अर्थ था कि वे जयद्रथ के इतने निकट पहुँच गए थे कि जयद्रथ को अब छुपे रहना सुरक्षित नहीं लगा। संभव है कि उसका अपने रक्षकों पर से विश्वास उठ गया हो। उसने स्वयं युद्ध करना ही उचित समझा हो।...

वे आठों युद्ध के लिए पूर्णतः सन्नद्ध थे। उनके रथों के अश्वों की एकरूपता पर अर्जुन का ध्यान अटका : अश्वों पर व्याघ्रचर्म का आच्छादन डाला गया था और उन्हें चंद्र चिह्नों से विभूषित किया गया था। वे बहुत आक्रामक मुद्रा में थे, जैसे आर-पार का युद्ध करने आए हों। उन्होंने अर्जुन को घेर कर जैसे किसी पूर्वविचारित योजना के अंतर्गत भल्लों से बींधना आरंभ किया। ध्वज पर चोट की और अश्वों को घायल किया। शत्रु योद्धा से लड़े बिना उसके अश्वों और सारथि पर ऊर्जा का अपव्यय किसी योद्धा की व्याकुलता का ही लक्षण होता है।

कृष्ण को घायल देखकर अर्जुन कुपित हो उठा। जिसको देखो, वही योद्धा को छोड़ सारथि पर प्रहार कर रहा है। क्या चाहते हैं वे ? वे चाहते हैं कि कृष्ण शस्त्र उठाएँ ? वे चाहते हैं कि कृष्ण की प्रतिज्ञा भंग हो ?... पर वे नहीं जानते कि यदि सचमुच ही कृष्ण ने शस्त्र उठा लिया तो इनकी कितनी दुर्गति होगी। कृष्ण पर प्रतिज्ञा भंग का आरोप ही तो लगेगा। पर उससे क्या बिगड़ जाएगा कृष्ण का। इन कौरवों ने सारी मर्यादाओं को भंग कर अभिमन्यु का वध कर दिया, तो किस क्षत्रिय ने दुर्योधन का मुख काला कर, उसके सम्मुख उसके पुत्र को मृत्युदंड देने का साहस किया ? द्रोण ने प्रतिज्ञा की और धर्मराज को बंदी नहीं बना सके तो क्या बिगड़ गया उनका ? प्रतिज्ञा तो व्यक्ति का अपने आपको दिया गया एक वचन है। यदि धर्म की रक्षा के लिए कृष्ण अपने आपको अथवा बलराम को दिया गया एक वचन स्थगित करने का निश्चय कर लेंगे तो ये आठ के आठ महारथी अभी धूल चाटते दिखाई देंगे।... पर अर्जुन यह नहीं होने देगा। उसके रहते वह स्थिति कभी नहीं आएगी कि कृष्ण को युद्ध में शस्त्र उठाना पड़ जाए।...

बाण दोनों ओर से चल रहे थे। घाव भी दोनों ओर लग रहे थे।... पर अर्जुन का ध्यान कर्ण और जयद्रथ पर अटका था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि वह आज जयद्रथ का वध करेगा। वध तो उसे इस कर्ण का भी करना था। इस युद्ध में बहुत कोलाहल नहीं मचा रहा कर्ण। क्या द्रोण भी उसे पितामह के ही समान कोई महत्त्वपूर्ण दायित्व

नहीं सौंप रहे अथवा वह स्वयं ही मैत्री के नाम पर अभी तक दुर्योधन का अंगरक्षक बना घूम रहा है। राजा के साथ-साथ लगे रहने के कई लाभ होते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि व्यक्ति सुरक्षित रहता है।...

मातुल शल्य भी वहुत उग्र हो रहे थे। किसके लिए लड़ रहे हैं ये ? संवंधों के लिए ? न्याय के लिए ? अधिकार के लिए ? धर्म के लिए ? लाभ के लिए ? लोभ के लिए ?... कुछ पता नहीं है इनको। युद्ध का उन्माद है उनको। बस युद्ध के लिए ही युद्ध कर रहे हैं शायद। उस युद्ध के लिए, जो लूट में धन और सत्ता देता है। शेप तो कुछ पता ही नहीं है उनको।... और जयद्रथ लड़ने आया भी है तो आठ-आठ महारथियों को साथ ले कर।...

कृष्ण ने रथ को ले जा कर जैसे जयद्रथ के वक्ष पर खड़ा कर दिया था और अर्जुन का तूणीर बाणों की वर्पा करके भी रिक्त नहीं हो रहा था।...

जयद्रथ का चेहरा भय से पीला पड़ रहा था। उसकी कातर दृष्टि दुर्योधन पर पड़ी, "तुमने तो कहा था राजन् ! तुम मेरी रक्षा करोगे।..."

दुर्योधन अपनी ही पीड़ा से व्याकुल था कि जयद्रथ के एक वाक्य ने उसे अपमान के क्षुरों से गोदना आरंभ कर दिया।

"पीछे हटो।" उसने अपने सैनिकों को संकेत किया।

वे लोग व्यूह की सुरक्षा में लौट गए थे।

युधिष्ठिर को लगातार युद्ध के समाचार प्राप्त हो रहे थे। पांचालों और कौरवों में द्रोण को दाँव पर रखकर एक प्रकार का द्यूत-सा हो रहा था। पांचाल किसी भी प्रकार आचार्य का वध कर देने पर तुले हुए थे और कौरवों की विजय इसी में थी कि आचार्य सुरक्षित रहें। कैकेय के बृहत्क्षत्र ने द्रोण पर प्रवल आक्रमण किया था और क्षेमधूर्ति बृहत्क्षत्र का सामना करने आ गया था। धृप्टकेतु के सामने वीरधन्वा डट गया था। विकर्ण और नकुल में द्वंद्व हो रहा था। दूसरी ओर दुर्मुख से सहदेव भिड़ा हुआ था। व्याघ्रदत्त ने सात्यकि पर आक्रमण किया था। द्रौपदेयों ने सोमदेव के पुत्र और भूरिश्रवा के भाई शल को घेर रखा था। अलंबुश अपने भाई वकासुर की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए अब भी भीम से उलझा हुआ था।

युधिष्ठिर को लगा कि यदि इस समय आचार्य को न रोका गया तो वे युद्ध का सारा संतुलन कौरवों की ओर झुका देंगे। धृष्टद्युम्न दूर था, नहीं तो वे उसी को भेजते। वे जानते थे कि उन्हें द्रोण से दूर रहना है। इस समय उनकी रक्षा के लिए नियुक्त सात्यकि भी उनके निकट नहीं था। किंतु द्रोण को मुक्त नहीं छोड़ा जा सकता था।...

युधिष्ठिर ने अपनी वाहिनियों के साथ स्वयं द्रोण पर आक्रमण किया। पर द्रोण इस समय वहुत ही आक्रामक मुद्रा में थे। उन्होंने युधिष्ठिर पर बाणों की वर्पा कर दी। युधिष्ठिर का धनुष कट गया और वे बाणों से इस प्रकार ढँक गए कि अपनी वाहिनी

से भी उनका संपर्क टूट गया। वे समझ रहे थे कि उनका इस प्रकार अपनी वाहिनी से असंपर्क और अपनी सेना की दृष्टि से ओझल हो जाना, उनकी सेना के लिए शुभ नहीं था। कोई भी सेना ऐसे में उन्हें मृत मान लेगी और जिस सेना का राजा मारा जाता है, उसका आत्मबल क्षण भर भी नहीं टिकता।...

युधिष्ठिर ने अपने आत्मबल को संचित किया। अपने धर्म को स्मरण किया और उठकर खड़े हो गए। उन्होंने दूसरा धनुष लिया और आचार्य का धनुष काट डाला, ताकि न आचार्य की ओर से बाण चलें और न ही वे उन्हें ढँक पाएँ। पांडवों की सेना को ज्ञात होना चाहिए कि उनका राजा अभी जीवित है और युद्ध में समर्थ ही नहीं है, कौरवों के महासेनापति से भी लोहा ले सकने की स्थिति में है। राजा सदा अपनी सेना के सामने होना चाहिए।... जब एक के पश्चात् एक कर उन्होंने द्रोण के कई धनुष काट डाले तो किसी प्रभावी परिणाम के लिए हाथ में एक शक्ति उठा ली और उच्च स्वर में सिंहनाद किया।

आचार्य ने तनिक भी संकट झेलना उचित नहीं समझा। उन्होंने धर्मराज की शक्ति को काटने के लिए ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। वह युधिष्ठिर की शक्ति को काटता हुआ उनकी ओर बढ़ रहा था। युधिष्ठिर के सम्मुख भी और कोई मार्ग नहीं था। उन्होंने भी आचार्य के ब्रह्मास्त्र के शमन के लिए अपना ब्रह्मास्त्र प्रकट किया। द्रोण को घायल किया और उनके विशाल धनुष को फिर काट डाला।

आचार्य ने इस बार अपना कटा हुआ धनुष फेंककर दूसरा धनुष नहीं उठाया, एक भारी गदा उठाई और युधिष्ठिर पर सीधा वार किया। धर्मराज ने भी गदा से ही उसका प्रतिकार किया। किंतु तब तक आचार्य ने उनके अश्व मार दिए थे और उनके बाण सीधे युधिष्ठिर को पीड़ा पहुँचा रहे थे। युधिष्ठिर अपने रथ से कूदकर धरती पर आ गए। वे निःशस्त्र थे और धरती पर खड़े थे।... आचार्य के लिए उन्हें बंदी करने का स्वर्णिम अवसर था। वे युधिष्ठिर की ओर किसी श्येन के समान झपटे...

पांडव सेना में भयंकर कोलाहल हुआ... राजा मारे गए... राजा मारे गए...

पर तब तक सहदेव किसी ओर से प्रकट हो गया। उसने धर्मराज को तत्काल अपने रथ पर चढ़ा लिया और वहाँ रुकने के स्थान पर द्रोण के व्यूह से दूर अपनी सेना के मध्य ले गया।

अपनी सेना के मध्य सुरक्षित युधिष्ठिर स्वयं अपने आपको भी सँभालने का प्रयत्न कर रहे थे और अपनी सेना को भी। उन्हें समाचार मिल रहे थे।... संशप्तक युद्ध के बचे हुए त्रिगर्त एक-एक कर मारे जा रहे थे। पहले त्रिगर्त वीर वीरधन्वा की मृत्यु हुई। उसके पश्चात् सुशर्मा का पुत्र निरमित्र पांडव सेना में घिर कर मारा गया। नकुल ने विकर्ण को पराजित कर दिया था और विकर्ण उसके सम्मुख से हट गया था। व्याघ्रदत्त ने सात्यकि को पीड़ित किया था और सात्यकि ने उसका वध कर दिया था। द्रौपदेयों ने शल को मार गिराया था। अलंबुश ने भीम को कुछ इस प्रकार घायल कर दिया था

कि भीम को मूर्च्छा आ गई थी। भीम अपने रथ की बैठक में गिर गया था। पर शीघ्र ही सचेत होकर उसने अलंबुश को घेरना आरंभ किया। अलंबुश ने अपनी राक्षसी विद्या प्रकट की किंतु भीम के बाणों ने उसकी एक नहीं चलने दी। अंततः वह अपने प्राण वचाने के लिए भाग कर द्रोण की शरण में चला गया।

इस वार घटोत्कच ने अलंबुश पर आक्रमण किया। अलंब्बुश ने अपनी माया प्रकट की। पांडवों के लिए उसका एक ही अर्थ था कि वह राक्षस, युद्ध के नियमों का उल्लंघन कर रहा था। क्रुद्ध पांडव उस पर टूट पड़े। उन्होंने अलंबुश को घेर लिया।··· और घटोत्कच सबके देखते हुए अपने रथ से कूदकर अलंवुश के रथ पर जा चढ़ा। जव तक स्वयं अलंबुश और उसका सारथि यह समझ सकते कि क्या हो रहा है, घटोत्कच ने उसे पकड़कर अपने सिर से भी ऊपर उठा लिया था। उसने उसे हवा में कई चक्कर दिए और पूरे वेग से धरती पर पटक दिया। अलंबुश का क्षतविक्षत शरीर धरती पर पड़ा था। उसकी त्वचा अनेक स्थानों से फट गई थी और उसकी हड्डियाँ टूट गई थीं।

अलंवुश को मारकर घटोत्कच स्वयं युधिष्ठिर के पास आया। उसने हाथ जोड़कर अपना मस्तक नवाया और फिर धर्मराज के चरणों का स्पर्श किया। उसकी वीरता से धर्मराज गद्गद थे। भावुक स्वर में बोले, "मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ वत्स ! तुम अपने पिता के उपयुक्त वीर पुत्र हो।"

धर्मराज को सूचना मिली कि सात्यकि द्वारा अपनी सेना को पीड़ित जान और उसका कोई प्रतिकार न देख, आचार्य द्रोण ने स्वयं ही सात्यकि पर आक्रमण किया। दोनों में भयंकर युद्ध चला। द्रोण स्वयं भी घायल हो गए थे और सात्यकि भी क्षतविक्षत हो गया था। सात्यकि की शिथिलता का समाचार पाते ही युधिष्ठिर सतर्क हो गए।

"जैसे राहु सूर्य को ग्रस लेता है, वैसे ही इस समय सात्यकि को द्रोण ग्रस रहे हैं। तुम लोग दौड़ो और वहीं व्यूह बाँधो, जहाँ सात्यकि युद्ध कर रहा है।" युधिष्ठिर ने कहा और तब उनकी दृष्टि धृष्टद्युम्न पर पड़ी, "द्रुपदकुमार तुम इस प्रकार निष्क्रिय क्यों खड़े हो। द्रोण पर आक्रमण करो। उनको रोको। नहीं तो हम सात्यकि को खो बैठेंगे। सात्यकि मेरे लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितने कृष्ण अथवा अर्जुन हैं। तुम देख नहीं रहे कि उस पर द्रोण का भय उपस्थित हो गया है ? भीम को भी अपने साथ लो और जाकर सात्यकि युयुधान की रक्षा करो। सारे महारथी इस समय सात्यकि के रथ के समीप जाएँ और उसे यमराज के पाश से छुड़ाएँ। द्रोण उसे आज नहीं छोड़ेंगे।"

युधिष्ठिर का शरीर युद्ध कर रहा था और उनका आशंकित मन अपना ताना-वाना बुनता जा रहा था। इस समय उनको अपनी चिंता नहीं थी। उनके साथ जो होना होगा, वह हो; किंतु उनके लिए युद्धरत उनके ये बंधु कितनी कठिनाई में हैं। कभी-कभी तो उन्हें लगने लगता है कि द्रोण का क्रोध देखकर धृष्टद्युम्न का उत्साह भी जैसे समाप्त हो जाता है। ऐसे में आचार्य से वे कैसे पार पाएँगे··· और आचार्य से पार पाए बिना

कोई कौरव सेना में प्रवेश नहीं कर सकता। वहाँ अर्जुन है। कृष्ण हैं। उनका कोई भी समाचार नहीं मिला है। सामान्य युद्ध होता तो संदेशवाहकों के अश्व दौड़ते रहते और उनको समाचार मिलते रहते। आवश्यकता पड़ने पर युद्ध की नई नीति निर्धारित की जाती। सहायता भेजी जाती। किंतु यहाँ तो कृष्ण और अर्जुन जाकर जैसे कौरव सेना में बंद हो गए हैं। न कोई भीतर जा सकता है, न समाचार ला सकता है।...

द्रोण पीछे हट गए थे। पांडव महारथियों ने सात्यकि को उनसे मुक्त करा लिया था और सात्यकि अब स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दे रहा था।...

और तभी युधिष्ठिर ने कहीं दूर से आती शंख की क्षीण-सी ध्वनि सुनी।... उनके कान धोखा नहीं खा सकते थे। यह निश्चय ही पांचजन्य का घोष था।... कृष्ण पांचजन्य का घोष क्यों कर रहे हैं ?... उन्हें लगा कि वे कौरव सैनिकों का हर्षनाद भी सुन रहे हैं। कौरव किस बात से प्रसन्न हैं। क्या उन्होंने अर्जुन पर विजय प्राप्त की है ? अर्जुन किसी कठिनाई में फँस गया है ? उस पर कोई संकट आया है क्या ?... कहीं ऐसा तो नहीं कि अर्जुन ने वीरगति प्राप्त की हो और कौरव सैनिक हर्ष से उन्मत्त हो रहे हों... तभी तो कृष्ण को अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध युद्ध करना पड़ रहा है। नहीं तो वे पांचजन्य का घोष क्यों करते ?... पर वे अकेले क्या-क्या करेंगे ? रथ को सँभालेंगे अथवा शत्रुओं को ?

युधिष्ठिर का मन अनेक प्रकार की कल्पनाएँ कर रहा था। उनके मन में अर्जुन और कृष्ण के संकट के अनेक चित्र बन और बिगड़ रहे थे। वे जानते थे कि कृष्ण सब प्रकार से समर्थ थे। अर्जुन जैसा योद्धा भी कोई नहीं था कौरवों के पास।... किंतु उससे क्या होता है। वे सब मिल जाएँगे। कृष्ण और अर्जुन को घेर लेंगे। युद्ध के नियमों की मर्यादा का भी उनको कोई ध्यान नहीं रहेगा। वे अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ भी कर सकते हैं।... युधिष्ठिर को कुछ करना होगा।... वे जानते हैं कि कितनी भी इच्छा होने पर वे स्वयं द्रोण को लाँघकर कौरव सेना में प्रवेश नहीं कर सकते।... यदि वे ऐसा कोई प्रयत्न करेंगे तो संभव है कि द्रोण उनको मार्ग भी दे दें, और कौरव सेना में प्रविष्ट होने पर उनको घेर कर बंदी कर लें।... युधिष्ठिर बंदी हो गए तो अर्जुन युद्ध को जीत कर भी क्या पाएगा। अपने भाई और राजा की मुक्ति के लिए उसे सब कुछ त्यागना पड़ेगा।... तो किसे भेजें, वे अर्जुन की सहायता के लिए ? भीम वैसा दक्ष धनुर्धर नहीं है कि द्रोण, कर्ण और कृतवर्मा से लोहा ले सके और अर्जुन तथा कृष्ण की कोई सहायता कर सके।...

युधिष्ठिर, सात्यकि के निकट आए, "अब स्वस्थ हो ?"

"महाराज ! मुझ-सा स्वस्थ और कौन होगा। सामने शत्रु हों और मेरे हाथ में शस्त्र हो।" सात्यकि हँसा।

"अर्जुन तुम्हारा भाई है। वह तुम्हारा मित्र भी है और गुरु भी।" युधिष्ठिर बोले, "वह इस समय संकट में है। जाओ, उसकी सहायता का प्रयत्न करो।"

सात्यकि का मुख आश्चर्य से खुल गया, "क्या कह रहे हैं धर्मराज !"

"चिंता मत करो।" युधिष्ठिर बोले, "यदि आचार्य द्रोण तुम्हारा पीछा करेंगे तो भीम के साथ मिलकर हम उन्हें रोकेंगे। तुम उनको लाँघ जाओ तो फिर और कौन है उस सेना में जो तुम्हें रोक पाए।"

"पर महाराज !…"

"सात्यकि ! मुझे लगता है कि वहाँ अर्जुन नखर और प्रासों से युद्ध करने वाले जयद्रथ के सैनिकों में घिर गया है।" युधिष्ठिर बोले, "उस सेना का निवारण किए बिना जयद्रथ को जीतना असंभव है।"

"महाराज ! आपको ऐसा क्यों लग रहा है ? कोई कारण तो होगा। क्या ऐसा कोई समाचार आया है ?"

"नहीं समाचार ही तो नहीं आया।" युधिष्ठिर बोले, "किंतु मैंने कौरव सैनिकों का हर्षनाद और पांचजन्य का भयंकर घोष सुना है। इसका एक ही अर्थ है कि वे लोग संकट में हैं; और केशव को अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध युद्ध करना पड़ रहा है। तुम जाओ सात्यकि ! न विलंब करो, न भय।"

"महाराज ! अर्जुन के हित के लिए मुझे किसी प्रकार भी अपने प्राणों की चिंता नहीं है। फिर आपका आदेश मिलने पर मैं इस महायुद्ध में क्या नहीं कर सकता। मैं दुर्योधन से भयभीत नहीं हूँ। मैं उससे युद्ध करूँगा। मैं धनंजय के निकट पहुँचूँगा। जयद्रथ के मारे जाने पर उनके साथ ही लौट कर आपके दर्शन करूँगा। पर अर्जुन मुझे आपकी रक्षा में नियुक्त करके गए हैं। ऐसे में मैं आपको छोड़कर कैसे जा सकता हूँ। द्रोण ने आपको बंदी कर लिया तो जयद्रथ का वध किसी भी प्रकार नहीं हो सकेगा।"

"आचार्य मुझे बंदी नहीं कर पाएँगे।" युधिष्ठिर बोले, "तुम सोचो, यदि वे इसमें समर्थ होते तो उनकी प्रतिज्ञा के तीसरे दिन भी मैं तुम लोगों के मध्य कैसे होता ?"

"वह तो ठीक है। हम यही चाहते हैं कि वे इसमें कभी सफल न हो पाएँ।" सात्यकि ने कहा, "मैं तो प्रातः ही धनंजय के साथ जा रहा था, पर उन्होंने आपको मेरे पास धरोहर के रूप में रख छोड़ा है। मेरे चले जाने पर आपकी रक्षा कौन करेगा ? जब तक मैं नहीं लौटता, तब तक द्रोण को कौन रोकेगा ?"

युधिष्ठिर ने उसे स्थिर दृष्टि से देखा और बोले, "युद्धक्षेत्र में तुम्हें समझाने या मनाने में अधिक समय नहीं लगा सकता। मेरी आज्ञा से तुम वहीं जाओ। उनकी सहायता करो। मैं राजा होकर अपनी ही रक्षा करता रहूँगा या अपने सहयोगियों की देखभाल भी करूँगा। तुम स्वयं ही सोचो, ऐसे में तुम क्या करते।"

"यह आपकी उदारता है।" सात्यकि बोला, "किंतु हमारा भी तो कुछ कर्तव्य है। आपकी रक्षा…"

"मेरी रक्षा भीम करेगा। द्रौपदेय करेंगे। कैकेय राजकुमार हैं, घटोत्कच है, विराट हैं, द्रुपद हैं, शिखंडी है, धृष्टकेतु है, पुरुजित है। मेरे भाई हैं।" युधिष्ठिर बोले, "इतने

योद्धा होते हुए भी मेरी रक्षा नहीं होगी, तो क्या करना है इतने महारथियों का ?…"
युधिष्ठिर रुके, "मैं तुम्हारा महत्त्व कम नहीं आँक रहा हूँ युयुधान ! तुम इन सबसे ऊपर हो। इसीलिए तुम्हें अकेले को कौरव सेना को लाँघकर अर्जुन की सहायता के लिए भेज रहा हूँ। आज तुम्हारी वीरता, बल और कौशल की परीक्षा है… मेरा आदेश है, तुम जाओ।"

सात्यकि ने अब कोई आपत्ति नहीं की। अपने आदेश द्वारा युधिष्ठिर ने उसको अर्जुन के वचन से मुक्त कर दिया था। उसका अपना मन भी तो भाग-भाग कर कृष्ण और अर्जुन के आसपास मँडरा रहा था। वह यहाँ लड़ता रहे और वे वहाँ संकट में फँसकर अपने प्राण दे दें, उसका क्या लाभ है। वह उनसे पाई हुई शस्त्र विद्या का मूल्य कब चुकाएगा।… युधिष्ठिर ने उसका एक अद्भुत अवसर प्रदान किया था। अकेला सात्यकि सारी कौरव सेना का लंघन कर अर्जुन की सहायता को पहुँचेगा।…

सात्यकि अपने शिविर में लौटा। रथ को शस्त्रास्त्रों से पूरित करने का आदेश दिया। सेवकों ने रथ में नए अक्लांत अश्व जोते। उन्हें मादक द्रव्य पिलाया। सात्यकि ने भी कैलातक मधु का पान किया और रथारूढ़ हो गया।

भीम ने सात्यकि की कुछ नई-सी भंगिमा देखी तो साथ हो लिया, "कहाँ जा रहे हो ?"

"धर्मराज ने मुझे धनंजय और केशव की सहायतार्थ जाने के लिए कहा है।"

भीम स्तब्ध-सा रह गया, "उन लोगों ने सहायता माँगी है क्या ? क्या वे संकट में हैं ?"

"महाराज का अनुमान है कि वे लोग किसी गंभीर संकट में हैं।"

"चलो ! मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" भीम ने कहा।

"नहीं !" सात्यकि बोला, "महाराज ने कहा है कि मेरी अनुपस्थिति में आप उनकी रक्षा करेंगे।" वह रुका, "और मैं तो अपनी ओर से भी कहने वाला था कि मेरी प्रार्थना मान कर, आप धर्मराज की रक्षा के लिए उनके निकट ही रहें। यदि हम दोनों चले जाएँगे तो महाराज के लिए संकट हो सकता है।"

भीम रुक गया, "ठीक है, तुम चलो।"

18

सात्यकि ने देखा, उसके लिए मार्ग बनाने के लिए, स्वयं धर्मराज ने आचार्य द्रोण पर आक्रमण कर दिया था।… धर्मराज के हृदय की उदारता को पाना बहुत कठिन है। अपनी रक्षा की तनिक भी चिंता किए बिना, वे अपने भाई की रक्षा के लिए उसे भेज रहे हैं; और उसकी रक्षा के लिए स्वयं आचार्य पर आक्रमण कर रहे हैं।… जब वे अपनी

अक्षमता जानते हुए भी अपने गुरु और कौरवों के सबसे दुर्द्धर्ष योद्धा पर आक्रमण कर सारे संकट अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं तो फिर सात्यकि किसका भय करे ? और इस समय तो वैसे भी द्रोण को धर्मराज ने उलझा रखा था।

सात्यकि ने सामने आने वाले सात धनुर्धरों को मार गिराया और वह कौरव सेना में प्रवेश कर गया। उसने देखा, द्रोण धर्मराज को छोड़कर उसकी ओर दौड़े। उन्होंने तत्काल उसके सम्मुख आकर उसे रोका ही नहीं घायल भी कर दिया। पर उससे तो सात्यकि की उग्रता और भी भड़क उठी। उसने द्रोण को क्षतविक्षत कर दिया।

द्रोण हँस पड़े। बोले, "तुम्हारे आचार्य अर्जुन तो एक कायर के समान, समरभूमि छोड़कर चले गए। मैं युद्ध कर रहा था, तो भी मेरी परिक्रमा कर, आगे बढ़ गए। यदि तुम भी उसी के समान भाग नहीं गए तो आज मेरे हाथों से मारे जाओगे।"

सात्यकि के मन में जैसे चपला चमकी : उस सघन अंधकार में प्रकाश की एक रेखा खिंच गई थी। यह आचार्य की चुनौती है अथवा उनका संकेत ? क्या वे उसे बता रहे हैं कि वह भी अर्जुन के समान उनकी परिक्रमा कर चला जाएगा तो वे उसके मार्ग की बाधा नहीं बनेंगे ?... पर इस ऊहापोह में क्या पड़ना। यदि वे ऐसा कोई संकेत नहीं भी दे रहे, तो भी यही उत्तम मार्ग है।... यदि वह उनको छोड़कर नहीं गया, उनके साथ युद्ध में उलझ गया तो सूर्यास्त तक वह यहीं खड़ा दिखाई देगा। वह नहीं चाहता कि ऐसा हो। आचार्य भी नहीं चाहते कि ऐसा हो... यही एक मार्ग है...

"मैं धर्मराज की आज्ञा से अपने आचार्य धनंजय के मार्ग पर जा रहा हूँ।" वह बोला, "आप ऐसा करें कि जिससे मुझे विलंब न हो। शिष्य तो सदा ही अपने आचार्य के मार्ग का अनुसरण करता है। जिस मार्ग से मेरे गुरु गए हैं, मैं भी उसी से जा रहा हूँ।"

द्रोण उस पर बाण चलाते रहे; किंतु सात्यकि ने उनसे उलझने का कोई प्रयत्न नहीं किया। तब तक धर्मराज और मध्यम पांडव भीम आ गए थे और उन्होंने आचार्य को उलझा लिया था।

"ऐसा करो सारथे !" सात्यकि बोला, "वह सामने अवंति की सेना है। उसके पश्चात् वह दाक्षिणात्यों की सेना है। तब बाह्लीकों की सेना है। उसके साथ कर्ण की सेना लगी खड़ी है। ये सब एक-दूसरे से भिन्न हैं। अपने-अपने मार्ग पर डटी हुई हैं। ये अपने स्थान का त्याग नहीं करेंगी। जल्दी एक-दूसरे की सहायता को नहीं आएँगी। तुम इन के मध्य में से होकर चलो। इनको सोचने दो कि तुम किसके क्षेत्र में से जा रहे हो और तुमको रोकना किस सेना का दायित्व है। उस ओर बाह्लीकों के पैदल सैनिक हैं। वहीं चलो।"

सात्यकि का रथ वेगपूर्वक बाह्लीकों की ओर चला तो द्रोण उसके पीछे दौड़े।

सात्यकि ने अपना मार्ग बदल दिया। वह कर्ण की सेना में से होकर कौरवों की सेना में प्रवेश कर गया। कौरव सैनिक इस प्रकार के आकस्मिक और वेगवान आक्रमण

के लिए तैयार नहीं थे। उनके पाँव उखड़ गए।

कृतवर्मा को सात्यकि की यह आकस्मिक सफलता एकदम नहीं भाई।''' और सात्यकि को तो वह किसी भी स्थिति में आगे बढ़ने नहीं देगा। यदि इस युद्ध में से सात्यकि जीवित और यशस्वी होकर निकल गया तो कृतवर्मा के जीवन का लक्ष्य ही क्या रह जाएगा।'''

कृतवर्मा ने आकर सात्यकि को घेर लिया। सात्यकि के लिए अपने मन का क्षोभ दूर करने का यह स्वर्णिम अवसर था। उसने तत्काल भयंकर बाणों से कृतवर्मा को आहत कर दिया।

कहाँ तो कृतवर्मा सोच रहा था कि वह सात्यकि को लोहे के चने चबवाएगा और कहाँ वह स्वयं घायल हो गया था। वह आपे से बाहर हो गया। सबसे पहले उसने सात्यकि का धनुष काटा। सात्यकि अभी असमंजस में ही था कि कृतवर्मा ने अपने बाणों से सात्यकि का कवच फाड़कर, उसे उसके अपने ही रक्त में स्नान करा दिया।

सात्यकि ने धनुष छोड़ एक भयंकर शक्ति से कृतवर्मा की दाहिनी भुजा पर प्रहार किया। दूसरा धनुप लेकर उसके सारथि का मस्तक काट कर फेंक दिया।''' कृतवर्मा के घोड़े अनियंत्रित होकर इधर-उधर भागने लगे। किंतु कृतवर्मा ने तनिक भी घबराहट नहीं दिखाई। उसने वल्गा अपने हाथ में ली और अश्वों को नियंत्रित कर, धनुष उठा लिया।

इस बीच सात्यकि आगे जा चुका था। कृतवर्मा ने झल्लाकर सामने आए भीम पर आक्रमण किया। द्रोण ने भी विखरी हुई सेना को सँभाला और उसका भार कृतवर्मा को सौंप कर स्वयं सात्यकि के पीछे भागे। युधिष्ठिर उन्हें यह नहीं करने दे सकते थे। वे नकुल और सहदेव के साथ आकर द्रोण के मार्ग में अड़ गए।

कृतवर्मा ने भीम को अपने बाणों से घायल कर दिया था। उसने भीम का धनुष भी काट दिया था। भीम पीड़ा से काँप रहा था। युधिष्ठिर ने अपना ध्यान अब कृतवर्मा पर केंद्रित किया।''' कृतवर्मा युधिष्ठिर की ओर उन्मुख हुआ और इधर भीम फिर से सचेत हो गया। उसने लोहे की एक शक्ति हाथ में लेकर कृतवर्मा पर प्रहार किया। कृतवर्मा ने उस शक्ति के भी टुकड़े कर दिए। पर अब भीम पूर्णतः सजग और सचेत था। उसने दूसरा धनुष उठा लिया और कृतवर्मा पर प्रहार किया। दूसरी ओर से शिखंडी आ गया था। कृतवर्मा ने अपने पहले ही बाण से उसका धनुष काट दिया। शिखंडी ने खड्ग उठाकर अपने रथ से ही कृतवर्मा को दे मारा। स्वयं कृतवर्मा को तो चोट नहीं लगी, किंतु उसका धनुप कट गया। कृतवर्मा उसके इस कौतुक से चकित ही रह गया। उसने दूसरा धनुप उठाया और वाणों की ऐसी वर्षा की कि शिखंडी उसमें घिर कर रह गया। न वह दूसरा धनुप उठा सका, न किसी और के रथ पर जा सका। परिणामतः मूर्च्छित होकर रथ में गिर गया। और कोई मार्ग न देख, उसका सारथि रथ को तत्काल युद्धभूमि से हटा ले गया।

शिखंडी के हटते ही पांडव सेना में भगदड़ मच गई। सात्यकि को लौटना पड़ा। उसने लौट कर कृतवर्मा पर आक्रमण किया; और एक ही झोंके में उसका धनुप काट कर, उसके घोड़ों को मार दिया। उसके पृष्ठरक्षकों और सारथि को क्षतविक्षत कर दिया। इस बार कृतवर्मा की भोजवंशी सेना सात्यकि के सामने नहीं ठहर सकी।

त्रिगर्तों की गजसेना ने सात्यकि को बढ़ते देखा तो उसके चारों ओर घेरा डाल दिया। पर सात्यकि अव किसी से भी रुकने वाला नहीं था। उसने गजसेना को एक प्रकार से ध्वस्त ही कर दिया।

मगधराज जलसंध अपने हाथी को सात्यकि पर चढ़ा लाया। हाथी को इस प्रकार वढ़ते देख सात्यकि के घोड़े कुछ बिदके और उतने में जलसंध ने सात्यकि का धनुप काट दिया। सात्यकि ने दूसरा धनुष लेकर जलसंध के कोदंड को ही काट दिया। जलसंध ने तोमर का प्रहार किया। तोमर सात्यकि की बाईं भुजा पर लगा। भुजा घायल हो गई। सात्यकि ने अपने घाव की चिंता न करते हुए, सीधा नाराच मार कर जलसंध का वध कर दिया।

अब तक द्रोण भागते-दौड़ते सात्यकि के सम्मुख आ गए थे। उनके साथ दुःसह, विकर्ण, चित्रसेन और दुर्योधन थे। सात्यकि ने द्रोण की आँख बचाई और दुर्योधन के रथ से अपना रथ भिड़ाकर जैसे एक श्रृंखला के रूप में अनेक वाण चला दिए। दुर्योधन इतना क्षतविक्षत हुआ कि वह अपना रथ छोड़कर चित्रसेन के रथ पर जा चढ़ा।...

सात्यकि को आश्चर्य हुआ। कौरव और पांडव सेनाओं में उस अभेद्य कवच की वहुत चर्चा थी, जो द्रोण ने दुर्योधन के शरीर पर मंत्रोच्चार के साथ बाँधा था। उसका क्या हुआ ? उसका प्रभाव समाप्त हो गया था अथवा दुर्योधन उसे उतार ही आया था ? या वह उस कवच को पहनकर उसके अनुरूप आचरण नहीं कर सका ? आचार्य का ध्यान इस ओर गया ही नहीं होगा कि ऐसे कवच के साथ आचरण की भी आवश्यकता होती है। आचार्य भी वस वंदर के कंठ में सच्चे मोतियों का हार डाल देते हैं।

कृतवर्मा फिर से लौट आया था। उसे देखकर सात्यकि के मन में क्रोध का जैसे ज्वार उठ आया। यह व्यक्ति श्रीकृष्ण का शुभचिंतक भी वनता है और उनसे शत्रुता भी रखता है। स्मयंतक मणि की चोरी में सहयोगी भी होता है और वलराम का आश्रय भी चाहता है। कौरवों की सभा में से श्रीकृष्ण को वचा ले जाने के लिए अपने प्राण लगा देता है और अपनी सेना लेकर दुर्योधन की ओर से श्रीकृष्ण के विरुद्ध लड़ने भी आ जाता है।... क्या है यह—दोमुँहा साँप ? सात्यकि तो उसका शत्रु है ही; वह स्वयं को सात्यकि का मित्र कहे भी तो सात्यकि उसको स्वीकार नहीं करेगा। इस व्यक्ति का कोई सिद्धांत नहीं है। इसके जीवन का कोई आदर्श नहीं है। केवल घृणा और द्वेष के आधार पर जीने वाला यह व्यक्ति इस धरती का बोझ है। इससे तो यहीं, कुरुक्षेत्र में ही, अपना गणित वरावर कर लेना चाहिए। फिर जाने यह कहीं दिखाई पड़े न पड़े।...

सात्यकि के धनुप से वाणों की धारा फूट पड़ी। कृतवर्मा अभी विचार ही कर रहा

था कि सात्यकि के वाणों ने उसके शरीर से रक्त वहाना आरंभ कर दिया। कृतवर्मा के हाथ से धनुष बाण छूट गए और वह रथ के पिछले भाग में गिर गया।

दुःशासन को अपने रथ के सामने खड़ा देख, आचार्य के धैर्य का बाँध टूट गया : क्या करते हैं धृतराष्ट्र के ये पुत्र। जहाँ युद्ध कुछ कठोर हुआ कि युद्ध छोड़कर भागते हुए आचार्य के पास पहुँच जाते हैं, जैसे योद्धा न हों, छोटे-छोटे बालक हों।...

"ये सारे रथी कहाँ भागे जा रहे हैं ?" द्रोण ने पूछा। और सहसा उनका मन आशंकित हो उठा, "राजा दुर्योधन सकुशल है ? जयद्रथ अभी जीवित है या न ?"

"आचार्य ! वे लोग सकुशल हैं।" दुःशासन बोला।

"तो फिर तुम यहाँ क्या कर रहे हो ? युद्ध क्यों नहीं करते ?"

"आचार्य ! सात्यकि किसी से भी सँभल नहीं रहा है।" दुःशासन बोला।

"गुरुकुल समझ रखा है इसे कि सात्यकि का दोष बताने चले आए।" द्रोण क्षुब्ध हो उठे, "युद्धक्षेत्र है। कोई नहीं सँभलता तो उसको सँभालने का प्रयत्न करना होता है। तुम राजा के पुत्र हो, राजा के भाई हो और स्वयं महारथी वीर हो। युवराज का पद पाकर भी ढंग से युद्ध करने के स्थान पर किसलिए इधर-उधर भागे-भागे फिरते हो। द्यूत में हारी हुई असहाय स्त्री को अभद्र और अश्लील वातें कहते हो; और वास्तविक युद्ध के सम्मुख पड़ते ही भाग जाते हो। वहीं लड़ सकते हो, जहाँ सामने कोई योद्धा न हो—एक असहाय स्त्री हो और शस्त्रविहीन, नतशिर योद्धा हताश बैठे हों। कोई लड़ न रहा हो। सारे पांचालों और पांडवों से वैर ठानकर अकेले सात्यकि का सामना नहीं होता तुमसे ? कहाँ गया तुम्हारा वह दर्प और अभिमान ? कहाँ गई तुम्हारी गर्जना ? विषैले सर्पो के समान कुंतिकुमारों को कुपित कर, अब कहाँ भागे जा रहे हो ? राजा के क्रूरकर्मा भाई ! अपनी सेना की रक्षा करने के स्थान पर युद्ध में पीठ दिखाकर भागे जा रहे हो ? सात्यकि से इतना डरते हो तो अर्जुन और भीम का सामना कैसे करोगे ?" आचार्य को लगा कि उनका क्रोध अपनी सीमा का अतिक्रमण कर रहा है। वे कुछ इतना कठोर कहना चाहते हैं जो बाणों से भी भयंकर हो, "जाओ जाकर गांधारी के उदर में छुप जाओ। सारी पृथ्वी पर और कहीं भी तुम पांडवों से सुरक्षित नहीं हो। भागने का ही निर्णय कर लिया है तो युधिष्ठिर का राज्य शांति से उसे क्यों नहीं दे देते ? व्यर्थ ही इतना रक्तपात क्यों करवा रहे हो ?"

"राज्य नहीं देंगे हम।" दुःशासन बोला।

आचार्य ने जैसे उसकी बात सुनी ही नहीं। वोले, "इससे पहले कि वे तुम्हारे सारे भाइयों को मार डालें, उनसे संधि कर लो। तुम क्या भीम के पराक्रम को नहीं जानते कि वैर ठाना और अब युद्ध से भागे जा रहे हो। जाओ, जाकर सात्यकि से युद्ध करो, ताकि सेना कुछ ठहर सके।"

दुःशासन पैर पटकता और दाँत पीसता हुआ चला गया : एक बार यह युद्ध समाप्त

हो ले, फिर देखेंगे इस बुड्ढे को। युवराज को कह रहा है कि जाओ, गांधारी के उदर में छिप जाओ।''' इतना अपमान ! यह भी नहीं कहा कि जाओ, माँ के उदर में छिप जाओ। कहता है गांधारी के उदर में छिप जाओ, जैसे गांधारी कोई सामान्य स्त्री हो।''' इसकी भ्रष्ट बुद्धि का उपचार करना होगा। जानता है न कि युद्ध में हमें इसकी आवश्यकता है। इसीलिए हमारे वक्ष पर चढ़कर बैठ गया है।'''

इतना सब कहकर भी द्रोण शांत नहीं हुए। उनके भीतर जैसे अब भी लावा उबल रहा था। सामने पांचाल राजकुमार वीरकेतु पड़ गया तो उसका वध कर डाला। भाई का वध देखकर कुपित चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्रवर्मा और चित्ररथ—आचार्य पर टूट पड़े। पर आचार्य तो इस समय महाकाल के अवतार हो रहे थे। उन्होंने उन सबका वध कर दिया।

धृष्टद्युम्न ने सब कुछ देखा। उसकी आँखों में अश्रु आ गए। वह द्रोण की ओर बढ़ा। वह इतना प्रचंड हो रहा था कि उसने द्रोण की गति सर्वथा अवरुद्ध कर दी। कौरव सेना में हाहाकार मच गया। द्रोण मूर्च्छित होकर रथ के पिछले भाग में बैठ गए। धृष्टद्युम्न हाथ में नग्न खड्ग लेकर द्रोण के रथ में कूद गया। वह अपने हाथों से आचार्य का मस्तक काट लेना चाहता था।''' पर तभी जैसे द्रोण की चेतना लौटी। उनके पास अपने ही बनाए हुए वैतस्तिक बाण उपलब्ध थे, जो इतनी कम दूरी से भी वार कर सकते थे। कहाँ तो लगता था कि धृष्टद्युम्न एक हाथ से उनके केश पकड़ेगा और दूसरे से उनका मस्तक काट लेगा और कहाँ वह आचार्य के द्वारा इतना क्षतविक्षत कर दिया गया कि उसका द्रोण के रथ में रुकना असंभव हो गया। उसका सारथि उसकी यह दुर्दशा देखकर अपना रथ उसके बराबर ले आया। धृष्टद्युम्न के लिए और कोई विकल्प नहीं रह गया था। वह तत्काल अपने रथ में कूद गया।

द्रोण अनुभव कर रहे थे कि धृष्टद्युम्न उनके लिए भयंकर आतंक का रूप धारण करता जा रहा था। यह दूसरा अवसर था कि वह अपने रथ से कूदकर उनके रथ पर आ गया था। वह उन योद्धाओं में से नहीं था, जो अपने रथ पर बैठे बाण चलाते रहते हैं। यह घटोत्कच और अलंबुश से कम था क्या कि कूद कर किसी के भी रथ पर जा चढ़ता था। इसको न रथ की आवश्यकता थी, न अश्वों की। किसी भी क्षण कूदकर वह वानर के समान किसी के ध्वज पर जा बैठेगा और वह योद्धा भी कपिध्वज हो जाएगा। द्रोण का मन धृष्टद्युम्न के विषय में सोचकर त्रस्त होता जा रहा था। वह तो मायावी था। युद्धक्षेत्र में जैसे उड़ता फिरता था।''' और कैसा हिंस्र। वह द्रोण के केशों को अपनी मुट्ठी में जकड़कर अपने खड्ग से उनका मस्तक काट लेना चाहता है। जैसे भीम, दुःशासन का रक्त पीना चाहता है, वैसे ही धृष्टद्युम्न उनका रक्त पी कर रहेगा।'''

द्रोण की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। पहले तो उन्हें लगा था कि वे धृष्टद्युम्न के चंगुल में फँस गए हैं और दूसरे ही क्षण धृष्टद्युम्न उनकी मुट्ठी में आकर सुरक्षित

निकल गया था और अब वह अपने रथ के दंड और अपने कवच इत्यादि में इतना सुरक्षित था कि वे उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। द्रोण का सारा क्रोध उसके सारथि की ओर मुड़ गया। वह इस प्रकार समय से रथ न ले आया होता तो धृष्टद्युम्न बच नहीं सकता था।...

द्रोण ने अपने बाणों से धृष्टद्युम्न के सारथि का मस्तक काट कर फेंक दिया। उनका मन धृष्टद्युम्न से जितना डर रहा था, उनका प्रतिमन उतना ही हिंस्र होता जा रहा था।...

धृष्टद्युम्न के रथ के अश्व अनियंत्रित हो गए थे। सारथि के न रहने पर धृष्टद्युम्न उन्हें सँभाल नहीं पाया। वे रथ को ले भागे। पांचालों का मनोबल टूट गया। उनका वीर राजकुमार और पांडवों का प्रधान सेनापति युद्धक्षेत्र में से भाग गया था।

द्रोण इतने उग्र हो गए थे कि पांचाल उनके सामने टिक नहीं सके। वे पीछे हट गए।

सहसा द्रोण की चेतना कुछ लौटी। जाने उनकी चेतना कहाँ चली गई थी। उन्होंने बिना कुछ सोचे-समझे असंख्य बाण बरसाए थे, जैसे कोई डरा हुआ बालक बिना सोचे-समझे और बिना देखे-भाले हवा में अपने हाथ-पैर पटकता रहता है।...

द्रोण लौटकर अपने व्यूह में आ खड़े हुए।

द्रोण की ताड़ना से आहत होकर दुःशासन सात्यकि का मार्ग रोकने के लिए पहुँचा। उसकी इच्छा हो रही थी कि वह या तो सात्यकि का वध कर उसका मस्तक अपने शूल पर टाँगे हुए सारी सेना के सामने प्रदर्शित करे, अथवा अपने वक्ष में सात्यकि के बाण खाकर समरभूमि में शांति से सो जाए। द्रोण की ताड़ना सात्यकि के बाणों से किसी भी प्रकार कम पीड़ादायक नहीं थी।... यह बुड्ढा उनका ही अन्न खाकर, उन्हीं लोगों को वाणी के शूल चुभोता था।

सात्यकि ने दुःशासन को आते देखा तो उसका उत्साह जैसे दुगुना हो गया।... यह मूर्ख युद्ध तो कर नहीं सकता, असहायों को पीड़ित भर कर सकता है। इसी ने पांचाली के केश पकड़कर उसे घसीटा था।... सात्यकि को पता ही नहीं चला, कब उसने दुःशासन का धनुष काट डाला, उसका खड्ग तोड़ दिया, उसके रथ के अश्वों और सारथि को मार डाला। दुःशासन की सेना उसे छोड़कर भाग चुकी थी; और वह असहाय-सा उसके सम्मुख खड़ा था। वह पूरी तरह से सात्यकि के वश में था।...

द्रोण ने देखा कि दुःशासन घिर गया है। उन्होंने त्रिगर्तों को भेजा, "जाओ, अपने लाडले युवराज के प्राण बचाओ।"

त्रिगर्त अर्जुन को नहीं पा सके थे। उनका अर्जुन के प्रति संचित द्वेष सात्यकि की ओर मुड़ गया। उन्होंने सात्यकि को जा घेरा। दुःशासन को साँस लेने का अवसर मिल गया। वह त्रिगर्तों के पीछे खड़ा होकर कुछ विश्राम की मुद्रा में सात्यकि की अपमानजनक पराजय का दृश्य देखना चाहता था।... पर उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। सात्यकि इस समय अपने परम तेजस्वी रूप में था। उसके सामने त्रिगर्तों की एक नहीं

चली। वे कट-कटकर गिरते रहे। कुछ मर गए और शेष समरभूमि छोड़कर भाग गए।

सात्यकि एक क्षण के लिए भी रुकना नहीं चाहता था। उसे अर्जुन के निकट पहुँचने की जल्दी थी। उसने रुककर यह भी नहीं देखा कि त्रिगर्त उसके सामने से हटकर कौन-सा नया व्यूह रच रहे हैं। दुःशासन से सात्यकि का इस प्रकार मुक्तभाव से आगे बढ़ जाना देखा नहीं गया। उसने एक के पश्चात् एक कर, सात्यकि को नौ वाण मारे। सात्यकि ने उसके वाण काटे और आगे वढ़ गया। वह दुःशासन को दंडित करने के लिए भी नहीं रुका। दुःशासन पुनः उसका मार्ग छेककर, उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ। सात्यकि ने उसकी गति रुद्ध करने के लिए उसके अश्वों और सारथि को मार डाला। भल्ल से उसका धनुष और उसकी ध्वजा काट डाली। उसके पार्श्वरक्षकों को मार डाला। उसकी रथ शक्ति के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

सात्यकि की वाणवर्षा से वचे हुए त्रिगर्त अव फिर उसके पीछे आ रहे थे। त्रिगर्त सेनापति ने दुःशासन को अपने रथ पर चढ़ा लिया और उसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचाने के लिए कौरवों की छावनी की ओर मुड़ गया।

सात्यकि ने यह देखा तो उसका क्रोध फिर से उमड़ पड़ा। यह निर्लज्ज दुःशासन जीवित बच गया है। अब यह अपने घावों का उपचार करवाकर फिर से समरभूमि में आएगा और पांडव सेना को ललकारेगा। इसका तो मर जाना ही उचित है।''' सात्यकि ने अपना रथ मोड़ लिया और त्रिगर्त सेनापति का पीछा किया।''' सहसा वह चेता : वह क्या कर रहा है। यह दुःशासन से निर्णय कर लेने का अवसर नहीं था। वह तो अर्जुन के पास जा रहा था। उसे शीघ्रातिशीघ्र वहाँ पहुँचना है। संभव है कि अर्जुन को उसकी सहायता की आवश्यकता हो। संभव है कि धनंजय उसकी प्रतीक्षा ही कर रहे हों।''' और फिर इस दुःशासन के वक्ष का रक्त पीने की प्रतिज्ञा कर रखी है भीम ने। यदि इसे यहाँ सात्यकि ने मार डाला तो फिर भीम की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी ?

द्रोण ने बृहत्क्षत्र, धृष्टकेतु, जरासंधपुत्र सहदेव और धृष्टद्युम्नपुत्र क्षत्रधर्मा का वध कर दिया था। वे अपना पराक्रम प्रकट कर अब भी गर्जना कर रहे थे। धृष्टद्युम्न का पता नहीं था कि वह इस समय कहाँ था। द्रुपद स्वयं को असहाय पा रहे थे; किंतु वे युद्ध छोड़कर भाग नहीं सकते थे। उनके सम्मुख उनके पौत्र का वध हुआ था। वे युद्ध से मुँह कैसे फेर लेते। पर वे स्वयं द्रोण पर आक्रमण करने का साहस भी नहीं कर पा रहे थे। अंततः उन्होंने कुंतिपुत्रों को सामने रख द्रोण पर आक्रमण किया।

युद्ध-क्षेत्र में युधिष्ठिर स्वयं द्रोण के सम्मुख खड़े थे; किंतु उनका मन सहस्रों चिंताओं के दंशों का अनुभव कर रहा था। उन्हें अपनी चिंता थी, अर्जुन की चिंता थी, सात्यकि की चिंता थी। जाने वे लोग कहाँ थे और किस स्थिति में थे। उन्हें न तो कोई अपना रक्षक दिखाई पड़ रहा था और न ही द्रोण का कोई प्रतिद्वंद्वी। किसे कहें वे ? कौन करेगा, उनका काम ? क्या भीम ?

वे भीम के पास पहुँचे, "भीम ! अर्जुन का कोई पता नहीं है।"

युधिष्ठिर के चिंतित स्वर ने भीम को चौंका दिया। उसने युधिष्ठिर की ओर देखा तो लगा, जैसे युधिष्ठिर अपने आपे में नहीं हैं। वे चिंता से प्रायः अचेत से हो रहे थे।

"क्या हुआ ?" भीम ने उनकी ओर देखा, "आपकी ऐसी व्याकुलता तो मैंने कभी नहीं देखी। आज्ञा करें, मैं क्या करूँ।"

"पांचजन्य की जैसी ध्वनि सुनाई पड़ रही है और कृष्ण का जैसा क्रोधमय स्वर सुनाई पड़ रहा है, उससे लगता है कि हम सबका प्यारा अर्जुन अब जीवित नहीं है। उसके दिवंगत होने पर कृष्ण स्वयं युद्ध कर रहे हैं। हमें अर्जुन के कौरवों की सेना में जाने का पता है, लौटने का नहीं। तुम अर्जुन और सात्यकि के पास जाओ।" युधिष्ठिर ने उसकी ओर देखा, "देखो, मुझे मना मत करना। यदि बड़े भाई की आज्ञा मानना तुम्हारा कर्तव्य है तो जैसा मैं कह रहा हूँ, वैसा ही करो। अर्जुन को खोजो, सात्यकि को खोजो। अर्जुन से भी अधिक सात्यकि को खोजो। वह मेरे ही आदेश पर अर्जुन को खोजने के लिए मृत्यु के समान इस कौरव सेना में धँस गया है।"

भीम यह नहीं कह सका कि उसने न तो पांचजन्य का उद्घोष सुना है और न ही कृष्ण का चिंतित स्वर। धर्मराज ने सचमुच ही वैसा कुछ सुना है या यह उनके व्याकुल मन का भय ही है ?...

भीम ने युधिष्ठिर की बात चुपचाप सुन ली। वह उनके मन की स्थिति को समझ रहा था। युधिष्ठिर तो युद्ध करना ही नहीं चाहते थे। यह तो भीम ही था, जिसने उन्हें बाध्य किया था। अब प्रत्येक योद्धा की मृत्यु के लिए धर्मराज व्यक्तिगत रूप से स्वयं को उत्तरदायी मान लेते हैं। वे यह नहीं मानते कि यह पांडवों और पांचालों का सामूहिक युद्ध है, जो सब लोग मिलकर लड़ रहे हैं। वे यह ही मानते हैं कि यह उनका युद्ध है, उनके लिए राज्य प्राप्ति का युद्ध है, जो उनके भाई और संबंधी लड़ रहे हैं।... वे इस समय अपनी सुरक्षा की ओर से अचेत हैं, किंतु भीम उनको असुरक्षित नहीं छोड़ सकता। सात्यकि ने उनकी रक्षा के लिए विशेष रूप से उससे कहा था।...

भीम ने, समरभूमि में लौटते हुए, धृष्टद्युम्न को रोका।

"युद्ध की क्या स्थिति है ?" धृष्टद्युम्न ने पूछा।

भीम की इच्छा हुई कि उसे उसके पुत्र क्षत्रधर्मा के द्रोण द्वारा मारे जाने का समाचार दे दे, किंतु फिर वह रुक गया। वह समाचार तो उसे कुछ समय बाद मिल ही जाएगा। युद्धक्षेत्र में प्रवेश के समय ही उसे वह समाचार दे कर हतोत्साहित करने का क्या लाभ ?

"महाबाहो ! आचार्य द्रोण धर्मराज को बंदी करने पर तुले हुए हैं। उधर महाराज चिंतित हैं अर्जुन और सात्यकि के लिए। मैं जानता हूँ कि मेरे लिए अर्जुन और सात्यकि की सहायता करने से बड़ा कर्तव्य धर्मराज की रक्षा है, किंतु धर्मराज ने मुझे आदेश दिया है कि मैं अर्जुन और सात्यकि की सहायता के लिए जाऊँ। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।..."

धृष्टद्युम्न को भीम का संकेत समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। वह उल्लसित भाव से बोला, "तुम कुछ भी सोच-विचार मत करो मध्यम पांडव ! तुम प्रसन्न चित्त से धर्मराज की आज्ञा का पालन करने के लिए जाओ। धर्मराज की रक्षा मैं करूँगा। मुझे द्रोण से वैसे भी अपना ऋणशोधन करना है। वह तो कहो कि उसका भाग्य ही अच्छा है, नहीं तो अब तक मैं दो-दो बार उसका मस्तक काट कर अपने शिविर के प्रवेश-द्वार पर टाँग चुका होता।"

"तो मैं जाऊँ ?" भीम ने पूछा।

"मुक्त मन से जाओ। निर्द्वंद्व होकर जाओ।" धृष्टद्युम्न ने कहा, "मेरा वध किए बिना, द्रोण धर्मराज को बंदी नहीं कर सकते। और इतना तो तुम भी जानते हो कि वे मेरा वध नहीं कर सकते। मैं ही उनका वध करने वाला हूँ।"

भीम ने अपना रथ घुमाया और अपने शिविर में आ गया। उसने पूजित और संतुष्टचित्त हुए ब्राह्मणों की परिक्रमा कर, आठ प्रकार की मांगलिक वस्तुओं—अग्नि, गौ, सुवर्ण, दूर्वा, गोरोचन, घी, अक्षत और दही—का स्पर्श किया। कैरातक मधु का पान किया। उसका उत्साह उस समय आकाश को छू रहा था और उसके नेत्र मद से लाल हो रहे थे।

19

भीम समरभूमि में लौट आया।

दुःशल, चित्रसेन, कुंडभेदी, विविंशति, दुर्मुख, दुःसह, विकर्ण, शल, सुमुख, दीर्घबाहु, सुदर्शन, विन्दारक, सुहस्त, सुषेण, दीर्घलोचन, अभय, रौद्रकर्मा, सुवर्मा और दुर्विमोचन—ने आकर उसका मार्ग इस प्रकार छेक लिया, जैसे वे लोग उसको ही खोज रहे हों। पर भीम इस समय जिस मनःस्थिति में था, उसमें उसके लिए वे सब योद्धा नहीं थे। वे केवल बाधाओं का एक रूप थे, जो उसका मार्ग रोककर उसे अर्जुन और सात्यकि के निकट नहीं पहुँचने देना चाहते थे। भीम मुस्कराया। कोई व्यक्ति दूर के किसी देश की यात्रा पर निकला हो और मार्ग में कोई पर्वत आ जाए तो यात्री, उस पर्वत को खोदने नहीं बैठ जाता। वह उसे लाँघ जाता है। भीम को भी उनको लाँघ ही जाना था। हाँ ! कोई शिला ऐसे ही अड़ जाए कि उसका पार पाना असंभव हो तो उस शिला को तोड़ना भी पड़ता है। दुर्योधन के ये भाई उसके लिए वैसी शिला नहीं थे। वह शिला तो इनके पार थी और वह थी आचार्य द्रोण की सेना।

भीम उन सबको अपने वेग में लाँघ गया और द्रोण की सेना पर टूट पड़ा।

द्रोण मुस्कराए। तो अब भीम आया है। निश्चित रूप से वह भी अर्जुन और सात्यकि के पीछे जा रहा होगा। वह दुर्मद योद्धा है, किंतु धनुर्धारी नहीं है। फिर उनका शिष्य

है। अर्जुन अपने गुरु की पूजा कर आगे बढ़ा था। देखें भीम कौन-सी विधि अपनाता है।

"महाबली भीमसेन !" द्रोण ने कहा, "तुम समरभूमि में मुझ शत्रु को पराजित किए बिना, इस शत्रु सेना में प्रवेश नहीं कर सकोगे। अर्जुन मेरी अनुमति लेकर ही इस सेना के भीतर घुसा है। यदि इच्छा हो तो तुम भी उसी प्रकार भीतर जा सकते हो। अन्यथा मेरी इस सेना में प्रवेश नहीं कर पाओगे।"

अपने गुरु रहे, इस शत्रु योद्धा और दुर्योधन के सेनापति की यह गर्वोक्ति भीम को सहन नहीं हुई। अपने पक्ष के अनेक योद्धाओं को उसने द्रोण के हाथों मरते देखा था। उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। बोला, "अर्जुन तुम्हारी अनुमति से इस समरांगन में प्रविष्ट नहीं हुए हैं।..."

द्रोण चौंके, भीम अपने छोटे भाई की चर्चा तो सम्मानपूर्वक कर रहा था और उनके लिए तुम का संबोधन कर रहा था।... तो भीम के मन में अपने गुरु के लिए पूज्य भाव नहीं था।...

"वे तो दुर्जय हैं। देवराज इंद्र की सेना में भी प्रविष्ट हो सकते हैं।" भीम ने कहा, "उन्होंने तुम्हारी पूजा कर निश्चय ही तुम्हें सम्मान दिया है। परंतु द्रोण ! मैं दयालु अर्जुन नहीं हूँ।..."

आचार्य द्रोण को जैसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था।... भीम उन्हें नाम लेकर ऐसे संबोधित कर रहा था, जैसे वे उसके गुरु न हों, कोई साधारण योद्धा हों...

"मैं तो तुम्हारा शत्रु भीमसेन हूँ।" भीम ने कहा, "तुम हमारे पिता, गुरु और बंधु हो। हम तुम्हारे पुत्र के तुल्य हैं। हम सब यही मानते हैं और सदा तुम्हारे सामने प्रणतभाव से खड़े होते हैं। यदि तुम अपने आपको शत्रु मानते हो तो ऐसा ही सही। मैं भीमसेन तुम्हारे शत्रु के अनुरूप ही कर्म कर रहा हूँ।..."

द्रोण पहचान रहे थे। भीम के स्वर में उस शिष्य के मन की पीड़ा थी, जो अपने गुरु का उसकी योग्यता, क्षमता, शिक्षा के लिए सम्मान तो करना चाहता है; किंतु उसके आचरण को देखकर उसका सम्मान कर नहीं सकता।...

भीम की जिह्वा शांत हुई तो उसके हाथ सक्रिय हो उठे। भीम ने एक भयंकर गदा उठाई और घुमाकर द्रोण पर दे मारी।

द्रोण ने नहीं सोचा था कि भीम का पहला ही प्रहार इतना भयंकर होगा। अब अपने अस्त्रों में से कोई समर्थ अस्त्र चलाकर, उसकी गदा को रोकना संभव नहीं था। अपनी रक्षा के लिए वे अपने रथ से कूद पड़े। गदा रथ से टकराई और रथ चूर-चूर हो गया। कितने ही योद्धा उसमें दब कर मारे गए। यह तो द्रोण का भाग्य ही था कि वे उस गदा की भयंकरता को समय से जान गए और उनके प्राण बच गए।

भीम ने समरभूमि में अपने प्रवेश की घोषणा बड़े धमाके से की थी। कौरवों में उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही वेगशाली हुई। द्रोण के लिए नया रथ आया। वे तत्काल

अपने व्यूह में आ खड़े हुए। भीम की उस गदा का आतंक असाधारण था। द्रोण क्षण भर को भी कल्पना करते तो उनका वक्ष चिंता से फटने लगता था। गदा जिस समय रथ से टकराई थी, उस समय कहीं वे भी रथ में होते तो उनके शरीर के अनेक खंडों को समरभूमि में दूर-दूर तक खोजना पड़ता...

दुःशासन के नेतृत्व में धार्तराष्ट्रों ने भीम को घेरा। दुःशासन आज बहुत क्रुद्ध था। वह न अर्जुन को रोक पाया था, न सात्यकि को; और ऊपर से द्रोण की ताड़ना अलग। उसके मन में अभी भी द्रोण के शब्द अंगारों से दहक रहे थे,... जाओ ! जा कर गांधारी के उदर में छिप जाओ... अभी इस भीम को वह एक शव में परिणत कर देगा तो सारी पराजयों की क्षतिपूर्ति हो जाएगी।...

पर भीम तो दुःशासन को अपने सम्मुख देखकर अत्यंत प्रसन्न था, जैसे सिंह के सामने उसके भोजन के लिए कोई कोमल-सा मृग आ गया हो। प्रसन्नता से उसके दाँत दिखाई देने लगे। भीम के बाण आज कौरवों को अर्जुन के बाणों से भी कठोर लग रहे थे। दुःशासन का वक्ष छलनी हो रहा था।

भीम ने उच्च स्वर में कहा, "ठहर दुःशासन ! तेरे वक्ष से बाणों द्वारा बहाया गया रक्त नहीं पीना है मुझे। मुझे तो तेरा वक्ष अपने इन हाथों से फाड़कर उसका तप्त लहू पीना है...।"

भीम हँस रहा था, किंतु उसकी भंगिमा कुछ इतनी भयंकर थी कि दुःशासन अपने भाइयों को वहीं छोड़कर भाग गया। उसके भाई भी वहाँ खड़े नहीं रह सके। वे भीम के भय से, ऐसे आहत थे कि भीम के शस्त्रों की मार की प्रतीक्षा भी नहीं कर सके। भीम ने उनका दूर तक पीछा किया।... तभी उसे स्मरण हो आया कि वह अर्जुन और सात्यकि की खोज में जा रहा था। धार्तराष्ट्रों के आखेट के लिए नहीं आया था वह। अर्जुन और सात्यकि की सुरक्षा अधिक आवश्यक है। वस्तुतः धर्मराज की सुरक्षा भी उन्हीं की सुरक्षा पर निर्भर थी।

द्रोण चाहे कितने भी डर गए हों, किंतु वे भीम को इस प्रकार उन्मुक्त नहीं छोड़ सकते थे। उन्होंने कौरवों को एकत्रित किया और फिर से एक बार भीम को घेरा।

स्वयं को घिरा हुआ देखकर भीम को आंतरिक प्रसन्नता हुई। उसने फिर से एक भयानक गदा उठाई और शत्रुपक्ष पर दे मारी। अनेक सैनिकों का कचूमर निकल गया। द्रोण प्रसन्न थे कि इस बार भीम का लक्ष्य वे नहीं थे। उसने तो सारी सेना को ही लक्ष्य बनाया था। गदा जहाँ भी गिरे। कोई भी मरे। कहीं भी मरे।

द्रोण आगे बढ़े और उन्होंने भीम का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। पांडवों के हर्ष पर जैसे कुहासा छा गया। भीम का वेग रुक गया था। दोनों ओर से प्रहार हो रहे थे और समरभूमि में दोनों ही ओर से असंख्य योद्धा मारे जा रहे थे। द्रोण की अपेक्षा थी कि भीम फिर से गदा का प्रहार करेगा। इस बार वे उसके लिए प्रस्तुत थे। किंतु भीम ने गदा नहीं उठाई। अकस्मात् ही वह अपने रथ से कूद पड़ा। उसने अपने दोनों नेत्र

मूँद रखे थे। वह किसी को भी देख नहीं रहा था। न मित्र को न शत्रु को। उसने अपने सिर को जैसे कंधों पर सिकोड़ कर, दोनों हाथों को छाती पर सुस्थिर कर लिया था। और मन, वायु अथवा गरुड़ के से वेग से वह द्रोण के रथ की ओर दौड़ा।

कौरव चारों ओर से उस पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। किसी का साहस नहीं हो रहा था कि वह उसके सम्मुख अपना रथ अड़ा दे अथवा अपने खड्ग अथवा गदा से उसका वेग रोक ले।... पर भीम को आज बाणों की कोई चिंता नहीं थी। वह द्रोण के रथ के निकट पहुँच गया था। उसने उनके रथ का ईषादंड थाम लिया।

द्रोण डर गए। क्या करना चाहता है भीम। क्या वह भी धृष्टद्युम्न के समान रथ पर चढ़कर उनका मस्तक काटना चाहता है ? किंतु उसके हाथ में तो खड्ग भी नहीं था। तो क्या वह उनका कंठ दबाकर उनको मार डालना चाहता है ? या वह अपने मुष्टिका प्रहार से उनके प्राण लेना चाहता है।...

पर भीम ने वह सब कुछ भी नहीं किया। वह रथारूढ़ भी नहीं हुआ। उसने ईषादंड को पकड़ा और रथ को जैसे अपनी ओर घसीट ही तो लिया। वह रथ को घुमा रहा था और रथ उसकी भुजाओं के बल से घूम रहा था, जैसे कोई बालक खेल में किसी बड़े आकार के खिलौने को घुमाता है। रथ के पहिए भूमि से ऊपर उठ गए थे और वह वायु में चक्कर खा रहा था।...

द्रोण अपने स्थान पर टिककर खड़े भी नहीं हो पा रहे थे कि वे किसी शस्त्र का प्रयोग कर भीम को रथ छोड़ने को बाध्य करते। रथ घूम रहा था और द्रोण किसी प्रकार उससे चिपके हुए थे कि कहीं वे नीचे भूमि पर गिरकर भीम के पैरों तले कुचले ही न जाएँ।... और फिर भीम ने द्रोण के उस घूमते हुए रथ को छोड़ दिया। रथ दूर जाकर गिरा। उसकी चपेट में कुछ और रथ भी आ गए, जैसे भीम ने एक रथ से दूसरे रथों को ध्वस्त किया हो। उसकी चपेट में आए कुछ सैनिकों का कचूमर ही निकल गया था।

द्रोण का सारा उत्साह भंग हो चुका था। ऐसे विकट कर्म करने वाले भीम से वे कैसे पार पा सकते थे।

भीम को अब किसी की चिंता नहीं थी। वह द्रोण की सेना को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गया था। मार्ग में कृतवर्मा की भोजवंशी सेना आई, पर भीम ने अपने वेग से उसे मथ दिया और स्वयं आगे बढ़ गया। उसने दरदों को भी पार किया। मलेच्छों को परास्त किया। उसको अपने सामने कुछ दूरी पर सात्यकि युद्ध करता दिखाई दे रहा था और उससे भी कुछ दूरी पर स्वयं अर्जुन युद्ध में व्यस्त था।

भीम ने पूरे उत्साह से सिंहनाद किया। कृष्ण और अर्जुन ने भीम का सिंहनाद सुना। उनके चेहरे खिल गए। अर्जुन ने तत्काल अपना देवदत्त शंख फूँका। सात्यकि ने अपने उत्साह में भयंकर गर्जन किया।

दुर्योधन और उसके मित्र जैसे अपने रथों में अपने पैरों के पंजों पर खड़े हो गए

थे। अकेला अर्जुन ही उनसे सँभल नहीं रहा था; और अब अर्जुन, सात्यकि और भीम इकट्ठे हो गए थे। वे त्रिकोण बनाकर लड़ेंगे तो कौरव सेना उनको रोक नहीं पाएगी। जयद्रथ की रक्षा अब कैसे होगी ?

दुर्योधन ने कर्ण की ओर देखा, "कुछ करो। और कुछ नहीं तो किसी प्रकार इस भीम को रोको।"

कर्ण का मन कैसा तो हो गया था।... एक-एक पांडव कौरव सेना के सारे वीरों के लिए यमराज हो जाता है। दो मिल जाएँगे तो जाने क्या होगा।... और प्रत्येक पांडव उसका भाई था। कुंती को वचन दिया था उसने कि वह अर्जुन को छोड़कर और किसी पांडव का वध नहीं करेगा। दुर्योधन यह सब नहीं जानता है। वह उस पर पूर्णतः निर्भर है। दुर्योधन को भीष्म और द्रोण पर भी उतना विश्वास नहीं है, जितना वह कर्ण पर करता है।... अर्जुन आज अपने तेज में ऐसा तप रहा है कि वह अकेला ही कौरव सेना को विदीर्ण कर इस सीमा तक उसके भीतर घुस आया है कि कौरवों के सारे व्यूह ध्वस्त होते गए हैं।... वह अर्जुन और भीम को रोके, न रोके, वह उन दोनों को मिलकर लड़ने नहीं देगा।...

कर्ण को अपने सम्मुख देखकर भीम को वास्तविक सुख मिला। इस व्यक्ति को वह कब से खोज रहा था। यह है, जो दुर्योधन के मन का विष अधिक से अधिक गाढ़ा करता रहता है। यह है, जो दुर्योधन का सबसे बड़ा सहारा है। यह है जो पांडवों को पीड़ित कर सबसे अधिक सुख पाता है। यह है, जिसने द्यूतसभा में पांचाली को वेश्या कहा था और उसे निर्वस्त्र कर देने का प्रस्ताव किया था।...

भीम ने अपने पहले बाण से कर्ण का कोदंड काट दिया।... कर्ण कुछ सँभला। वह युद्ध में इस प्रकार शिथिल रहेगा तो भीम का वेग नहीं सँभाल पाएगा। भीम क्रोधी है, यह कर्ण भी जानता है। और भीम क्षमा करना भी नहीं जानता। इसी भीम ने दुर्योधन की जंघा तोड़ने और दुःशासन के वक्ष को फाड़कर उसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा की है।... भीम नहीं जानता कि कर्ण उसका भाई है। जान जाएगा तो क्या वह कर्ण के अपराध क्षमा कर देगा ? क्या भूल जाएगा कि कर्ण का अब तक उन लोगों के प्रति कैसा व्यवहार रहा है ?... नहीं ! शायद जानकर भी वह पांचाली का अपमान भूल नहीं पाएगा।... पर भीम को रोकना तो होगा ही। कर्ण उसे मारना नहीं चाहता तो उसके हाथों मरना भी नहीं चाहता। न ही वह उसे उससे अपने संबंध के विषय में बता सकता है।...

कर्ण ने दूसरा धनुष उठाया और भीम को आहत कर दिया। भीम ने अपना रक्त देखा, तो और भी उग्र हो उठा। उसने क्षुर मारकर कर्ण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी। उसके अश्वों और सारथि को भी मार दिया।

कर्ण इस टूटे हुए रथ पर बैठा रहकर अपने प्राण नहीं गँवाना चाहता था। वह रथ वहीं छोड़कर कूद गया। सामने ही वृषसेन का रथ आ रहा था। वृषसेन ने रथ

रुकवाकर कर्ण को सहारा दिया। भीम को यह अच्छा नहीं लगा। वह सोच ही रहा था कि वह गदा लेकर कर्ण पर जा कूदे कि वृषसेन उसे वहाँ से हटा ले गया। भीम ने पुनः धनुष उठा लिया। वह कठोर से कठोर होता जा रहा था, किंतु कर्ण का धनुष अधिक हिंस्र हो ही नहीं पा रहा था।... उसका मन, अहंकार और शरीर जैसे एकाग्र ही नहीं हो रहे थे।

दुर्योधन ने कर्ण को देखा : वह तो भीम से ही दब रहा था। भीम तो धनुर्धर था भी नहीं। अर्जुन के सामने पड़कर यह कर्ण क्या करेगा। कहीं कर्ण गंभीर रूप से घायल तो नहीं है ? संभवतः उसे शल्य चिकित्सक अथवा वैद्य की आवश्यकता हो।...

"दुःशल ! कर्ण संकट में है। उसके लिए रथ प्रस्तुत करो।"

दुःशल अपना रथ लेकर कर्ण के निकट पहुँचा। कर्ण ने उसका संकेत समझा। वह उसके रथ पर आ गया।

"युवराज ने कहा है कि आपके लिए रथ प्रस्तुत किया जाए।" दुःशल बोला, "आप मेरा यह रथ ले लें। मैं अपने लिए दूसरे रथ का प्रबंध करता हूँ।"

दुःशल उस रथ से उतरने की सोच ही रहा था कि भीम के बाण ने उसका मस्तक काटकर भूमि पर गिरा दिया। जब तक कर्ण कुछ समझ पाता, वह स्वयं भी घायल हो चुका था।... आज भीम स्वयं को अर्जुन के समकक्ष धनुर्धर सिद्ध करने पर तुला हुआ था।

कौरव सेना ने देखा कि दुःशल मारा गया है। कर्ण आहत हुआ है और दुर्योधन वहाँ से कहीं दूर चला गया है। अर्जुन का रथ जयद्रथ की दिशा में और आगे बढ़ गया था और सात्यकि तथा भीम अर्जुन के निकट पहुँचते जा रहे थे।

कौरव सेना का अपने स्थान पर टिके रहना असंभव हो गया था।

दुर्योधन का भागता हुआ रथ आचार्य द्रोण के निकट आकर ठहर गया। आचार्य ने देखा, दुर्योधन के नेत्र रक्तिम हो रहे थे। वह क्रुद्ध भी दिखाई दे रहा था और घबराया हुआ भी।

"अर्जुन, सात्यकि और भीम मेरी विशाल सेना को पराजित कर जयद्रथ के अति निकट पहुँच गए हैं। उन्हें कोई नहीं रोक सका है। वे अपराजित होकर मेरी सेना पर प्रहार कर रहे हैं। मान लिया कि अर्जुन संसार का सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी है, इसलिए आपको व्यतिक्रांत कर गया; किंतु सात्यकि और भीम आपको कैसे व्यतिक्रांत कर गए ? क्या आप उनसे पराजित हो गए ?"

द्रोण समझ नहीं पा रहे थे कि वे दुर्योधन से क्या कहें। वह एक ओर उनको पराजित बताकर लज्जित कर रहा था। दूसरी ओर वह उपालंभ लेकर आया था कि वे तीनों उनको व्यतिक्रांत कैसे कर गए। वह उन पर निष्ठाहीनता का आरोप भी लगा रहा था और उनसे सहायता माँगने भी आया था। वह उनको पराजित बताकर लज्जित

था। द्रोण केवल पांचालों से लड़ना चाहते हैं। वे पांडवों अथवा यादवों से लड़ना ही नहीं चाहते ?··· या आज वे अर्जुन, सात्यकि और भीम से बहुत भयभीत हैं ? वे कह रहे हैं कि जयद्रथ की रक्षा करो; किंतु उसकी रक्षा के लिए स्वयं कोई प्रयत्न करना नहीं चाहते। क्या वे जयद्रथ के वध के इच्छुक हैं ? क्या वे नहीं चाहते थे कि अभिमन्यु मारा जाए ?··· पर कल तो ऐसा कुछ नहीं लगा था। उन्होंने चक्रव्यूह रचा भी था, सेना का संचालन भी किया था, अभिमन्यु के वध में भी वे पूर्णतः सहायक रहे थे।··· तो क्या आज, अर्जुन का पुत्र-वियोग में सूखा हुआ चेहरा देखकर आचार्य का मन विगलित हो गया है; और वे अर्जुन को अपना प्रतिशोध ले लेने की सुविधा देना चाहते हैं, या पुत्र की मृत्यु से अर्जुन इतना भयंकर हो उठा है कि द्रोण जैसे योद्धा का भी उसके सम्मुख पड़ने का साहस नहीं हो रहा है ?

दुर्योधन उस दिशा में मुड़ा, जहाँ अर्जुन युद्ध कर रहा था और निरंतर जयद्रथ के निकट होता जा रहा था। अब द्रोण से इस संदर्भ में अधिक आशा नहीं रखनी चाहिए थी। वे अपने स्थान से नहीं हटेंगे। संभवतः वे अपने व्यूह में स्वयं को सुरक्षित पा रहे हैं और वहाँ रहकर वे अपने सम्मान की रक्षा भी कर सकते हैं। दुर्योधन की सहायता के लिए वे इतना ही कर सकते हैं कि पांडवों में से किसी और को कौरव सेना में न घुसने दें।··· पर उससे क्या ? जिनको आना था, वे तो आ ही चुके हैं। कृष्ण, अर्जुन, भीम और सात्यकि—सब ही तो आ चुके। अब कोई और आए या न आए, उससे बहुत अंतर नहीं पड़ेगा।···

सहसा दुर्योधन की दृष्टि अर्जुन की दिशा में उठी।··· अर्जुन के चक्ररक्षक—पांचाल कुमार, युधामन्यु और उत्तमौजा—सेना के बाहरी भाग से होकर अब सेना में प्रवेश कर अर्जुन के निकट जाने का प्रयत्न कर रहे थे। इसका अर्थ हुआ कि आचार्य ने उन्हें सेना में प्रवेश करने नहीं दिया। वे कौरव सेना के बाहर-बाहर से वन में यात्रा करते हुए, कौरवों की सेना के इस सिरे पर पहुँच गए हैं और यहाँ से सेना में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं, जहाँ कोई प्रभावी प्रतिरोध नहीं है।··· यदि ये भी अर्जुन के निकट पहुँच गए तो अर्जुन की स्थिति और भी सबल हो जाएगी।

दुर्योधन अपनी वाहिनी के साथ उनके सम्मुख जा खड़ा हुआ। युधामन्यु ने उसे प्रहार का अवसर नहीं दिया। जब तक कि दुर्योधन सँभलता युधामन्यु ने उसे घायल कर दिया था और उसके अश्वों और सारथि को बींध डाला था।

इसी बीच उत्तमौजा को असावधान पाकर दुर्योधन ने उसके पृष्ठरक्षकों को मार डाला। पृष्ठरक्षकों के मारे जाने के कारण सारथि और अश्व असुरक्षित हो गए थे। दुर्योधन ने उन्हें भी जीवित नहीं छोड़ा। उत्तमौजा समझ रहा था कि उसका अपने रथ पर बने रहना मृत्यु को आमंत्रित करना था। वह तत्काल युधामन्यु के रथ पर जा चढ़ा। अपने रथ की रक्षा युधामन्यु कर ही रहा था। उत्तमौजा ने वहाँ से दुर्योधन के सारथि और अश्वों को मार डाला।

अब दुर्योधन उसी स्थिति में था, जिसमें थोड़ी देर पहले उत्तमौजा था। उसके निकट अपना कोई सहायक भी नहीं था। दुर्योधन गदा लेकर रथ से कूद पड़ा और उन दोनों की ओर दौड़ा। उत्तमौजा और युधामन्यु अपने रथ के पिछले भाग से कूद गए। दुर्योधन ने उनके रथ को चूर कर दिया; और इससे पहले कि उत्तमौजा अथवा युधामन्यु में से कोई उस पर प्रहार करता, वह शल्य के रथ पर आरूढ़ हो गया।

उत्तमौजा और युधामन्यु बिना रथ के युद्धक्षेत्र में खड़े थे और दुर्योधन उन्हें छोड़कर चला गया था। उन्होंने चकित होकर एक-दूसरे की ओर देखा। पर वे तत्काल समझ गए। वे लोग एक प्रकार से अर्जुन, सात्यकि और भीम के त्रिकोण के बीच खड़े थे। यहाँ दुर्योधन अधिक देर टिक नहीं सकता था। वह इन दोनों से लड़ता हुआ, अर्जुन के हाथों मरना नहीं चाहता था।''' वे लोग अर्जुन की ओर बढ़ गए।'''

भीम को अर्जुन के निकट जाने को उतावला देखकर कर्ण ने ललकारा, "तुम्हारे शत्रुओं ने भी नहीं सोचा था कि तुम युद्ध में पीठ दिखाओगे। तुम्हारा यह कार्य एक कुंतिपुत्र के योग्य नहीं है। मेरे सम्मुख रुककर मेरे साथ युद्ध करो।"

भीम ने क्रुद्ध दृष्टि कर्ण पर डाली, किंतु उसका मन कर्ण में एक अंतर का अनुभव कर रहा था। कर्ण के स्वर में आज उतना विष नहीं था। उसने भीम को अपने वाग्बाणों से बींधने का प्रयत्न नहीं किया था। वह कह रहा था कि युद्ध से भागना एक कुंतिपुत्र के योग्य कृत्य नहीं था। इस वाक्य में तो कुंती का पुत्र होने में गौरव की ध्वनि थी। कर्ण ने उसे पांडव भी नहीं कहा था। यह नहीं कहा था कि युद्ध की अवज्ञा करना पांडुपुत्र के योग्य कर्म नहीं था। वह कुंती को यह गौरव क्यों दे रहा था ?''' पर न तो कर्ण से कुछ पूछने का यह उपयुक्त अवसर था और न ही कर्ण के मन का विश्लेषण करने का समय था।''' यह तो युद्ध का क्षण था। यदि कर्ण समझता है कि कुंती के पुत्र को इस प्रकार व्यवहार नहीं करना चाहिए, तो भीम कुंती का योग्य पुत्र होने का पूर्ण प्रमाण देगा।

भीम ने अर्द्धमंडलाकार गति से घूमकर कर्ण से युद्ध आरंभ किया। इच्छा हुई कि बाण मारकर इस कर्ण को सदा के लिए चुप ही करा दिया जाए। उसने बाणों की भयंकर वर्षा आरंभ की।

इस बार भीम का उपहास-सा करता हुआ, कर्ण उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसकी हँसी भीम को विष के समान लगी। उसके वक्ष में जैसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसने दाँत पीसते हुए, कर्ण के वक्ष में गंभीर घाव करने की इच्छा से वत्सदंत नामक बाणों की झड़ी लगा दी। पर कर्ण के विचित्र कवच पर उन बाणों का कोई प्रभाव नहीं हुआ।''' भीम के मन में कर्ण के अलौकिक कवच कुंडल की कथा गूँज गई। भीम ने आज तक स्वीकार नहीं किया कि कर्ण के शरीर पर जन्म के समय से कोई कवच था। यदि होता तो वह भीम को भी दिखाई पड़ना चाहिए था और पिछले सारे युद्धों में उसके

शरीर में घाव करने वाले बाणों को भी। वैसा कोई अलौकिक कवच होता तो न तो कर्ण को घायल होना चाहिए था और न ही किसी युद्ध से पलायन करना चाहिए था।... पर आज उसने कोई विचित्र कवच धारण कर रखा था।... प्रातः सुना था कि आचार्य ने दुर्योधन को भी कोई अभेद्य कवच बाँध दिया था, पर उसका प्रभाव तो एक प्रहर भी नहीं रहा। दुर्योधन अभी तो उसके सामने ही पिट कर भागा है। फिर कर्ण का कवच कोई ऐसा अभेद्य भी नहीं था कि भीम पूर्णतः हतोत्साहित हो जाता।... उसने कर्ण को इक्कीस बाण मारे और उसे क्षत-विक्षत कर दिया।

भीम के बाणों की चोट खाकर कर्ण हँसा। उसने चौंसठ बाण मारकर भीम के कवच की धज्जियाँ उड़ा दीं। स्पष्टतः भीम के शरीर में अनेक घाव लगे थे, किंतु भीम ने उनकी तनिक भी चिंता नहीं की। वह कर्ण के निकट से निकट होता जा रहा था। वह तो जैसे कर्ण से सटता ही जा रहा था। उसके धनुष से निरंतर बाण छूट रहे थे। ऐसा लग रहा था कि भीम, भीम का रथ और भीम के बाण—सब ही कर्ण को कंठ से लगाने को आतुर थे।

पर कर्ण अब भी विशेप उग्र नहीं हुआ था। वह अपनी रक्षा कर रहा था और भीम को पीड़ित भी कर रहा था, किंतु उसके चेहरे पर किसी प्रकार की क्रूरता प्रकट नहीं हुई थी। भीम का कैतालक मद, उसे स्मरण करा रहा था कि कर्ण ने कब-कब उन लोगों के प्रति किस-किस रूप में क्रूरता का व्यवहार किया। वह अपने क्रोध को रोक नहीं पा रहा था। उसे इस बात से भी झुँझलाहट हो रही थी कि कर्ण उसकी बातों और उसके बाणों से उत्तेजित नहीं हो रहा था।... क्या वह यह जताना चाहता है कि भीम ऐसा योद्धा नहीं है, कि जिससे वह गंभीरतापूर्वक युद्ध करे ? क्या वह भीम का उपहास करने का प्रयत्न कर रहा है ?... पर तब कर्ण उसे छोड़कर अर्जुन से युद्ध करने क्यों नहीं जाता ? क्या वह अर्जुन से भयभीत है और भीम को वह अपने समकक्ष योद्धा नहीं मानता ?...

भीम ने जैसे अपने अपमान की पीड़ा का दंश अनुभव किया और वह अत्यंत उग्र हो उठा। उसने कर्ण के धनुष की प्रत्यंचा काट दी और कर्ण के वक्ष में भीषण आघात किया। उसके अश्वों का वध कर दिया और उसके सारथि का मस्तक काट दिया।...

कर्ण का अभिमान सहसा उसे छोड़कर भाग गया। भीम उसके समतुल्य योद्धा हो या न हो, कर्ण उससे लड़ना चाहे या न चाहे, किंतु इस समय भीम ने उसे घायल ही नहीं कर दिया था, उसे शस्त्रों और रथ से भी विहीन कर दिया था। यदि वह तत्काल ही अपनी सुरक्षा का प्रबंध नहीं करता तो वह भीम के हाथों मारा जाएगा।...

कर्ण को लगा, उसका कंठ सूख रहा है। भीम अर्जुन के समान धनुर्धर हो या न हो, किंतु ऐसा साधारण योद्धा भी नहीं है कि जिससे अगंभीर युद्ध किया जाए।...

कर्ण तत्काल दूसरे रथ में लौटा। भीम अब तक कर्ण के द्वारा किए गए अपमान

और दुर्व्यवहार को स्मरण कर जैसे जीवन से विरक्त हो उठा था। कर्ण को लौटा देख, उसने उस पर भयंकर आक्रमण किया।

कृष्ण ने भीम को कर्ण से लड़ते देखकर अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन मुस्कराया। कृष्ण ने रथ भीम की ओर हाँक दिया। इस बीच भीम ने कर्ण के नए सारथि का वध कर दिया था। कर्ण बिफर गया। सारथि के मारे जाने पर वह पुनः संकट में पड़ गया था। अब उसे यह रथ भी छोड़ना होगा, अन्यथा बिना सारथि के लड़ना होगा।''' बिना सारथि के ?''' एक ओर भीम था और दूसरी ओर अर्जुन ! सात्यकि निरंतर उनकी ओर बढ़ रहा था''' और ऐसे में कर्ण बिना सारथि के युद्ध करेगा ? यह भूल होगी उसकी।

कर्ण ने एक भयंकर शक्ति उठाई। उसे भीम को मार देना होगा।''' उसके मन में निमिष मात्र के लिए कुंती की मूर्ति उभरी। उसने माँ को वचन दिया था कि वह अर्जुन के सिवाय और किसी पांडव का वध नहीं करेगा।'''यह शक्ति लग गई तो भीम जीवित नहीं बचेगा''' पर यह शक्ति न चलाई तो कर्ण जीवित नहीं बचेगा। या तो कर्ण का जीवन बच सकता था या वचन। दोनों का बचना संभव नहीं था।

भीम ने उस शक्ति को आकाश में ही काट दिया। कर्ण के बाणों को भी काट दिया। उसके अश्वों को भी मारकर उसे फिर से रथ से उतर आने को बाध्य कर दिया।

कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा और मुस्कराए, "भीम आज अपने पूरे ज्वार पर है।"

दुर्योधन ने दुर्जय को पुकारा, "दुर्जय ! कर्ण को भीम रूपी इस दावानल से बचाओ। कर्ण का बल बढ़ाते हुए, उस दाढ़ी-मूँछ मुंडे भीम को शीघ्र मार डालो। तुम लोग व्यर्थ ही इधर-उधर उलझे रहते हो। जिन्हें मार डालना चाहिए था, उन्हें अभी तक नहीं मारा है।"

दुर्जय अकस्मात् ही अपने मन में अपने लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो उठा। उसे भीम जैसे योद्धा से लड़ने के लिए कहा था दुर्योधन ने। स्वयं दुर्योधन ने उसे कर्ण की रक्षा का दायित्व सौंपा था। दुर्जय का अहंकार स्फीत होकर जैसे आकाश की ओर उठने लगा था। उसने अपना रथ सीधे भीम के रथ से भिड़ा दिया।

भीम को अपने और कर्ण के मध्य किसी और का इस प्रकार आना अच्छा नहीं लगा। उसका क्रोध जैसे सर्वथा अनियंत्रित हो उठा। उसने कर्ण के प्रति अपने मन में संचित सारा आक्रोश दुर्जय पर उँडेल दिया। दुर्जय उसके बाणों की बौछार को तनिक भी सँभाल नहीं सका और रक्त वमन करता हुआ रथ से नीचे गिर पड़ा। भीम ने उसके अश्वों और सारथि को भी जीवित नहीं छोड़ा।

कर्ण का हृदय पीड़ा से रो उठा। दुर्जय को भीम ने कर्ण को बचाने के प्रयत्न का दंड दिया था। दुर्जय व्यर्थ ही बीच में आकर अपने प्राण गँवा बैठा था। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि उसने अपने प्राण कर्ण के लिए ही त्यागे थे।

अश्रु वहाते हुए कर्ण ने धराशायी दुर्जय की परिक्रमा की।

भीम ने मुस्कराते हुए, रथहीन कर्ण को शस्त्रास्त्रों से आच्छादित कर दिया। कर्ण दुर्जय के रथ में आरूढ़ होकर पुनः भीम की ओर लौटा। क्रुद्ध होकर भीम के शरीर को विदीर्ण कर देने वाले बाणों से प्रहार किया। भीम तत्काल समझ गया कि यदि वह बाणों का ही आश्रय लेगा तो कदाचित् कर्ण उस पर भारी पड़ेगा। भीम ने वज्र के समान भयंकर, छह कोणों वाली, भारी गदा उठाकर, कर्ण पर दे मारी; और तत्काल ही दो क्षुरों की सहायता से उसके सारथि को मारकर उसके रथ की ध्वजा भी काटकर फेंक दी।

कर्ण हाथ में धनुष और कंधे पर एक तूणीर लेकर दुखी मन से रथ से उतर आया। वह सारथि रहित उस रथ पर रहकर युद्ध नहीं कर सकता था। जाने उसके अश्व कब किधर दौड़ पड़ें। वह अश्वों को ही सँभालता रहेगा और भीम उसका वक्ष छेद देगा। पर भूमि पर खड़ा रहकर युद्ध करना भी तो संकटपूर्ण है। किसी ओर से कोई ओट नहीं है। अचल रहकर शत्रु का सामना कैसे किया जा सकता है। फिर शस्त्रों का भी अभाव हो जाएगा। वह अपने हाथों और कंधों पर कितने शस्त्र ढो सकता है।... पर जब तक उसके पास बाण हैं, वह भीम को आगे बढ़ने नहीं देगा।

कर्ण समझ नहीं पा रहा था कि भीम सचमुच इतना कुशल योद्धा था कि वह कर्ण पर भारी पड़ रहा था या फिर कर्ण ही कुंती को दिए हुए वचन के कारण स्वयं को भीम के वध के लिए तैयार नहीं कर पा रहा था।... कुंती को वचन दिया होता, न दिया होता, पर यह जानकर कि भीम उसका भाई है, वह उसका वध कर पाएगा ? आज भीम को वह बता दे कि वह उसका बड़ा भाई है तो क्या भीम भी उसके प्रति ऐसा ही कठोर रह पाएगा ? नहीं ! कर्ण तो उसके साथ युद्ध कर रहा है, उसे आहत और पीड़ित भी कर रहा है, भीम तो शायद उससे युद्ध ही न कर पाए।...

दुर्योधन की चिंता बढ़ती जा रही थी। कर्ण तो भीम से ही पार नहीं पा रहा था। यह अर्जुन से कैसे लड़ेगा ? अब इसका रथ फिर छूट गया है। भूमि पर खड़ा होकर युद्ध करने से बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है। वह अपना रथ दुर्मुख के निकट ले गया।

"कर्ण रथ से वंचित कर दिया गया है। उसे रथ दो।" दुर्योधन ने उसे डाँटा, "कुछ अपने आप भी देख लिया करो। सब कुछ मेरे कहने पर ही करना है तो अपनी बुद्धि का उपयोग कब करोगे ?"

दुर्मुख ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप कर्ण की ओर बढ़ गया। दुर्योधन को क्या कहना। आज तक उसने अपने किसी छोटे भाई को कुछ माना भी है। बड़ा है तो उसका क्या अर्थ ? ऐसे बात करता है, जैसे वे सब लोग तो बस कीड़े-मकोड़े ही हों।

भीम ने दुर्मुख को आया देखा तो वह प्रसन्न हो गया। कर्ण तो अर्जुन के भाग का था। धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारना तो भीम के लिए परम आनन्द का विषय था। धृतराष्ट्र का एक पुत्र मरता था तो भीम के कंठ में जैसे अमृत का एक और चषक

उतर जाता था। उसने कर्ण को छोड़ दिया और अपना रथ दुर्मुख के सम्मुख ले गया। जव तक कर्ण अथवा कोई और दुर्मुख की सहायता को आता, भीम ने नौ सुमुख वाणों से दुर्मुख को जीवनमुक्त कर दिया।

कर्ण दौड़कर आया और दुर्मुख के रथ में आरूढ़ हो गया। अब वह दुर्मुख की कोई सहायता नहीं कर सकता था। उसने दुर्मुख के शव की परिक्रमा की और आगे वढ़ गया। कर्ण देख रहा था कि दुर्मुख का यह रथ उसके अपने युद्ध कौशल के अनुरूप शस्त्र संपन्न नहीं था। उसमें वे ही शस्त्र उपलव्ध थे, जिनमें दुर्मुख की रुचि थी। निश्चित रूप से दुर्मुख ने वह रथ अपने लिए शस्त्र आपूर्त किया था, उसने कभी सोचा भी नहीं होगा, कि उसका यह रथ कर्ण के युद्ध करने के काम में आएगा। कर्ण स्वयं को निःशस्त्र तो नहीं, किंतु अल्पशस्त्रसज्जित पा रहा था। भीम के वाण अव भी उसका रक्त पी रहे थे। कर्ण ने भीम को चौदह वाण मारे। भीम के शरीर पर क्षत लगे और उनसे रक्त वहा। कर्ण को कुछ संतोष हुआ। किंतु अगले ही क्षण भीम का प्रत्याक्रमण अत्यंत भयंकर था। कर्ण ऐसा विह्वल हुआ कि उसने एक वार शांत मन से विचार भी नहीं किया और युद्ध छोड़कर भाग गया।

कर्ण को इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागते देख, दुर्मर्षण, दुःसह, दुर्मद, दुर्धर, और जय ने भीम पर आक्रमण किया। कर्ण ने उन पाँचों को भीम से लड़ते देखा तो पलट आया। भीम ने कर्ण को लौटकर आते देखा तो वह उन पाँचों को छोड़कर कर्ण की ओर वढ़ गया। कौरवों ने कर्ण को घेर लिया। इस प्रकार वे उसकी रक्षा कर रहे थे और कर्ण उनके लिए अपने बाणों से कवच का निर्माण कर रहा था। भीम को यह व्यवस्था अपने आड़े आती लगी। उसने पच्चीस वाणों से उन पाँचों और उनके सारथियों को यमलोक भेज दिया।

कर्ण का मन बुझ गया। दुर्योधन उसकी रक्षा के लिए बार-बार अपने भाइयों को भेज रहा था और कर्ण उनकी रक्षा नहीं कर पा रहा था। कर्ण जब दिग्विजय कर लौटा था तो धृतराष्ट्र ने उसे अपना पुत्र कहा था। और उसके सामने ही भीम धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध करता जा रहा है। कर्ण इतना असहाय तो कभी नहीं था। क्या दुर्योधन और धृतराष्ट्र मान लेंगे कि उसने उन धृतराष्ट्रपुत्रों की रक्षा में कोई शिथिलता नहीं दिखाई ?

तभी दुर्योधन के भेजे उसके और भाई कर्ण की रक्षा के लिए आ गए। चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, चित्रायुद्ध, चित्रवर्मा ने आकर भीम को रोकने का प्रयत्न किया। पर कर्ण देख रहा था कि यह कोई युद्ध नहीं था। वे आए और मारे गए। युद्ध में योद्धा लड़ता तो है, चाहे उसका मस्तक कट ही क्यों न जाए; किंतु दुर्योधन के ये भाई तो जैसे आकर भीम के सामने खड़े हो जाते थे, जैसे वे भीम को लक्ष्यवेध का अभ्यास करा रहे हों।

कर्ण के मन में आया कि वह दुर्योधन से प्रार्थना करे कि वह कर्ण की रक्षा के

लिए अपने भाई न भेजे। इससे कर्ण की कोई सहायता तो होती नहीं, उलटे उसके मन का बोझ बढ़ जाता है कि उसकी रक्षा करने के प्रयत्न में राजा के पुत्र मारे गए।

और तभी शत्रुंजय, शत्रुसह, दृढ़वर्मा, उग्रसेन और विकर्ण ने आकर भीम को रोकने का प्रयत्न किया।

कृष्ण, अर्जुन, युधामन्यु और उत्तमौजा अपने-अपने स्थान से भीम का यह भयंकर युद्ध देख रहे थे। भूरिश्रवा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, शल्य, और जयद्रथ की दृष्टि भी भीम पर लगी हुई थी। जो अकेला ऐसा भयंकर कृत्य कर रहा है, वह आकर अर्जुन के साथ खड़ा हो गया तो क्या होगा।''' सात्यकि भी अर्जुन की ओर बढ़ता हुआ भीम का पराक्रम देख रहा था।

तभी भीम ने शत्रुंजय, शत्रुसह, दृढ़वर्मा, और उग्रसेन के साथ-साथ विकर्ण को भी मार गिराया।

अर्जुन को प्रसन्नता नहीं हुई। विकर्ण ही एकमात्र धृतराष्ट्रपुत्र था, जिसने द्यूतसभा में द्रौपदी का पक्ष लिया था और दुर्योधन का विरोध किया था। विकर्ण पांडवों को प्रिय था। भीम ने उसे भी मार दिया था'''

"विकर्ण !" भीम का शोकातुर स्वर सुनाई दिया, "मेरी प्रतिज्ञा है कि युद्धस्थल में धृतराष्ट्र के सारे पुत्रों को मार डालूँगा। इसलिए तुम्हारे वध के लिए भी बाध्य था। मेरे मन में तुम्हारे लिए कोई वैर नहीं था। मैंने तुम्हारा वध नहीं किया, बस अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह किया है। गंगानन्दन भीष्म हमसे प्रेम करते थे, फिर भी न्याय-अन्याय के इस संघर्ष में मारे गए। व्यक्तिगत रूप से कोई हमारा कितना ही निकट संबंधी क्यों न हो, हमसे कितना ही प्रेम क्यों न करता हो, हमारा कितना ही हित क्यों न साधता हो, यदि वह दुर्योधन के पक्ष से लड़ेगा तो हमारे हाथों मारा जाएगा।'''"

कर्ण चौंका। क्या भीम कर्ण के साथ अपने संबंध को जान गया है ? क्या वह यह घोषणा उसको सुनाने के लिए कर रहा है। क्या वह उसे जता रहा है कि यह जानते हुए भी कि कर्ण उसका भाई है, दुर्योधन के पक्ष से लड़ने के कारण वह उसका वध कर देगा ?

तभी भीम ने कर्णी बाण को अपने धनुष पर साधा और कर्ण के शिरस्त्राण और कवच के बीच लक्ष्य साध कर छोड़ दिया। बाण ने कर्ण का बड़ा-सा स्वर्ण कुंडल काट कर भूमि पर गिरा दिया और उसके कान को घायल कर दिया। जब तक कर्ण सँभलता, भीम ने भल्ल से उसका वक्ष और नाराच से उसका ललाट आहत कर दिया। कर्ण का मस्तक जैसे घूम गया। वह मूर्च्छा के द्वार पर खड़ा था। उसने रथ के कूबर का सहारा लिया और क्षण भर के लिए आँखें बंद कर, निःस्पंद खड़ा रहा।'''

इस बार कर्ण सचेत हुआ तो वह एक परिवर्तित कर्ण था। उसे केवल यह स्मरण था कि वह दुर्योधन का मित्र है; और पांडव दुर्योधन के शत्रु हैं। उसने भीम का धनुष काट दिया। अश्व मार दिए और सारथि को आहत कर दिया।

भीम का सारथि अपना रथ छोड़कर कूद गया और युधामन्यु के रथ पर जा चढ़ा।

कर्ण के मन से भीम का भय जैसे विलुप्त हो गया था। उसने भीम की अवमानना करते हुए, उसके रथ का ध्वज भी काट गिराया।

भीम का रथ अचल हो चुका था। उसे छोड़ देना ही उचित था।... किंतु अर्जुन का रथ अभी भीम से दूर था। सात्यकि भी यद्यपि दिखाई पड़ रहा था, किंतु इतना निकट भी नहीं था कि वह भीम की सहायता कर सकता। ऐसे में भीम यदि रथ छोड़ देता तो वह पूर्णतः शस्त्रविहीन हो जाता। यहाँ रथ चाहे अचल हो चुका था, किंतु सारे शस्त्रास्त्र अभी भीम के निकट ही थे।

भीम ने एक शक्ति हाथ में उठा ली और उसे घुमाकर कर्ण पर दे मारा।

कर्ण को सहसा लगा कि वह कुछ थक-सा गया है। रक्त अधिक बह गया अथवा उसकी अवस्था अधिक हो गई है ? पर उसकी अवस्था भीष्म और द्रोण से तो अधिक नहीं। वे लोग तो कभी ऐसे नहीं थके। इस भयंकर युद्ध के बीच भी कर्ण के मन में भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य के संबंध में अनेक प्रश्न उमड़ने-घुमड़ने लगे।... क्या रहस्य है उन लोगों के स्वास्थ्य और इस क्लांतिहीनता का ? क्या यह अभ्यास मात्र है ? क्या यह ब्रह्मचर्य है ? क्या यह योगाभ्यास है ? क्या वे लोग किन्हीं विशेष औषधियों का सेवन करते हैं ? नहीं ! उसने अपने सिर को झटक दिया।... यह उसकी शारीरिक क्लांति नहीं थी। कदाचित् प्रातः से अनेक पराजयों का सामना करने के कारण मन ही कुछ शिथिल हो रहा था। पर वह भीम द्वारा फेंकी गई इस शक्ति के सम्मुख आत्मसमर्पण तो नहीं कर सकता।

कर्ण ने अपने बाणों से शक्ति को काट गिराया।

इस बार भीम ने खड्ग और ढाल उठा ली। वह कर्ण के निकट जाकर युद्ध करना चाहता था। जानता था कि उन दोनों के बीच जितनी दूरी होगी, कर्ण को उतना ही बल मिलेगा। वह बाणों के सहारे भीम को पीड़ित कर सकता है। वे एक-दूसरे के निकट होंगे तो अपने बाणों को छोड़कर कर्ण को कोई अन्य शस्त्र उठाना पड़ेगा, या फिर शारीरिक बल का सहारा लेना पड़ेगा।... भीम के लिए उससे अच्छा अवसर और क्या हो सकता था।...

पर कर्ण ने अपने रथ से ही बाण मारकर भीम की ढाल नष्ट कर दी। भीम निमिष मात्र के लिए स्तब्ध खड़ा रह गया। अगले ही क्षण उसने खड्ग, कर्ण के रथ पर चला दी। भीम के खड्ग से कर्ण का धनुष कट गया। कर्ण ठठाकर हँसा।... उसने भीम को एक प्रकार से निःशस्त्र कर दिया था। उसने दूसरा धनुष उठा लिया और भीम को बाणों से बींधना आरंभ कर दिया।

भीम के पास कोई विकल्प नहीं बचा था। वह कूदा और जैसे वायु में उड़ता हुआ कर्ण के रथ पर आ गया।

कर्ण अपने रथ के पिछले भाग में दुबक गया। भीम उसके सम्मुख, उसके रथ

के ध्वजदंड का सहारा लिये हुए खड़ा था। अभी वह पूर्णतः रथ के भीतर नहीं था और न ही अभी अपना संतुलन साध पाया था।

भीम ने कर्ण को उसके रथ पर ही पीटने की योजना बनाई थी। पर रथ पर पहुँचकर भी वह कर्ण पर हाथ नहीं डाल पा रहा था। कर्ण ने इतने निकट होने पर भी उस पर बाणों का प्रहार आरंभ कर दिया था। इस समय भीम के पास कोई शस्त्र नहीं था। कोई ओट भी नहीं थी कि वह बाणों से बचने का प्रयत्न करता।''' और कर्ण था कि मारता ही जा रहा था।

भीम रथ से कूद गया। उसे सबसे पहले कोई ओट चाहिए थी, जहाँ वह कर्ण के बाणों से बच सकता। युद्धक्षेत्र में कितने ही रथ टूटे पड़े थे। वहीं पास ही अनेक हाथियों के शव थे। इन्हें अर्जुन ने मारा था। भीम रथ पर होता तो ये हाथी उसके मार्ग की बाधा हो सकते थे, किंतु इस समय तो ये उसका कवच बन गए थे। भीम को लगा कि यदि वह उनको अपना कवच मानकर, इसी प्रकार उनके पीछे दुबका रहा तो कर्ण को उसके निकट आते कितनी देर लगेगी; और अर्जुन अभी दूर था। अपनी सुरक्षा के लिए भीम को कुछ तो करना ही पड़ेगा। यदि वह प्रहार नहीं करेगा तो यह युद्ध नहीं होगा, बालकों का लुकाछिपी का खेल हो जाएगा। वह हाथियों के पीछे छिपा बैठा रहेगा और कर्ण आकर उसे पकड़ लेगा। वह चोर घोषित होगा। पर युद्ध में चोर अन्य छिपे हुए लोगों को खोजता नहीं है। उसे अपना शत्रु मानकर उसका वध कर दिया जाता है। भीम न तो कर्ण के हाथों मरना चाहता था और न ही युद्धवंदी के रूप में दुर्योधन के दास के समान उसके सम्मुख घसीटा जाना चाहता था। वह योद्धा था, उसे युद्ध करना ही होगा।

भीम ने हाथियों के शव, उनके कटे अंग, रथों के भग्न चक्र तथा अन्य भाग उठा-उठाकर कर्ण पर फेंकने आरंभ किए। ये भी तो गदा प्रहार जैसा ही काम है। ठीक है कि फेंके गए शस्त्रों का आकार गदा के समान नहीं है। उनमें पकड़ने की सुविधा उपलब्ध नहीं है, इसलिए उनका फेंका जाना सरल नहीं है। विशेष प्रहारक नहीं है। किंतु कर्ण के अश्व इस ओर सुविधा से बढ़ नहीं पाएँगे। यदि कर्ण उन्हें छोड़कर आया तो मल्ल युद्ध की कुछ संभावना तो है।''' पर कर्ण अपने बाणों से भीम द्वारा फेंके गए वे शस्त्र काटता जा रहा था। उनसे उसकी कोई क्षति नहीं हो रही थी।

अब तो भीम के पास एक ही विकल्प था कि वह दौड़े और कर्ण को अपने मुष्टिकाप्रहार से मार डाले, या फिर उसके रथ का ईपादंड पकड़कर उसे भी घुमाकर द्रोण के रथ के समान दूर फेंक दे।''' पर यहाँ भीम का सहायक कोई नहीं था। उसके कर्ण के रथ तक पहुँचने के अंतराल में कर्ण तथा अन्य कौरवों के बाणों से उसकी रक्षा करने वाला कोई नहीं था।''' और फिर अर्जुन ने कर्ण को मारने की प्रतिज्ञा की है। यदि कर्ण भीम के हाथों मारा गया तो अर्जुन की प्रतिज्ञा का क्या होगा ?

तत्काल भीम के मन में एक संशय ने सिर उठाया''' यदि कर्ण उसके नियंत्रण में

होता और भीम उसका वध न करता तो यह माना जा सकता था कि वह समर्थ होते हुए भी कर्ण को इसलिए जीवित छोड़ रहा है कि अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके। यहाँ तो भीम के अपने प्राणों पर बनी है। तो क्या यह उसके भयभीत मन की अपने प्राण बचाने के लिए आड़ मात्र है ?'''

कर्ण के वाण चल रहे थे और लगता था कि उसका रथ निकट आता जा रहा है। भीम को मूर्च्छा-सी आ रही थी।

20

सात्यकि ने भीम को कर्ण से त्रस्त देखा तो वह अर्जुन की ओर बढ़ने के स्थान पर भीम की दिशा में मुड़ गया।

दुर्योधन की दृष्टि उस पर पड़ी। वह नहीं चाहता था कि भीम को किसी प्रकार की सहायता मिले। दूसरी ओर से अर्जुन भी उसकी ओर बढ़ रहा था। यदि सात्यकि भी वहाँ जा पहुँचा तो वे तीनों मिलकर अपना व्यूह रच लेंगे। पर वह देख रहा था कि कौरवों के लिए सात्यकि को रोकना भी कठिन हो रहा था। सात्यकि इस समय धधकते दावानल के समान प्रचंड हो रहा था। वह किसी सर्वग्रासी यंत्र के समान कौरवों को निगलता जा रहा था। जो कोई उसके सम्मुख जाता था, वह लौटकर नहीं आता था। कौरवों के अनेक महारथी मारे गए तो राजा अलंबुश उसकी ओर बढ़ा। किंतु वह राक्षस अलंबुश तो था नहीं कि अपनी माया का प्रदर्शन करता। वह तो राजा अलंबुश था। सात्यकि के एक बाण ने उसका सिर काट दिया। दुःशासन आगे बढ़ा तो सात्यकि ने उसके घोड़ों को मार डाला। त्रिगर्तों ने सात्यकि को घेरा और पिटकर पीछे हट गए। शूरदेशीय सैनिक बढ़े और पराजित होकर लौट आए। कलिंग आगे बढ़े तो सात्यकि सुविधा से उन्हें भी लाँघ गया।

कृष्ण ने सात्यकि की इस अद्‌भुत वीरता को देखा और अर्जुन का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट किया, "देखो ! सात्यकि भी आ रहा है।"

अर्जुन ने सात्यकि की ओर देखा।''' कृष्ण का ध्यान सब ओर रहता है।''' उसने सोचा। युद्ध में भी और जीवन में भी। अर्जुन की विशिष्टता उसकी एकाग्रता और एकनिष्ठा में थी। पर कृष्ण तो सबका उसी प्रकार ध्यान रखते थे, जैसे संसार का स्रष्टा अपने रचे प्रत्येक जीव का रखता है। कोई बात कृष्ण की दृष्टि से छिप नहीं सकती।

और फिर अर्जुन के मुख पर चिंता की घटाएँ छा गई, "सात्यकि आ तो रहा है, पर धर्मराज किस स्थिति में हैं ? यह उनको आचार्य द्रोण को सौंप आया है क्या ? और यहाँ जयद्रथ अभी मारा भी नहीं जा सका है। मैं धर्मराज की सहायता के लिए जा भी नहीं सकता।"

तभी अर्जुन ने देखा कि भूरिश्रवा का रथ पर्याप्त वेग से आगे बढ़ रहा था; किंतु उसका गंतव्य अर्जुन अथवा भीम नहीं थे। वह सात्यकि की दिशा में बढ़ रहा था।

अर्जुन की चिंता कुछ और बढ़ गई। जाने धर्मराज किस स्थिति में होंगे। सात्यकि और भीम दोनों ही उन्हें छोड़कर आ गए हैं। सात्यकि थककर अल्पप्राण हो रहा है। उसके घोड़े और सारथि सब ही थके हुए हैं। जाने यह किस समय का चला हुआ है और अकेला ही कौरवों की सारी सेना को लाँघकर आ रहा है। कौरवों की सेना को लाँघा तो अर्जुन ने भी है। किंतु उसके पास दिव्यास्त्र हैं। उसे अभ्यास है, ऐसे युद्धों का। उसके साथ श्रीकृष्ण हैं। यह सात्यकि कैसे चला आया, सबको लाँघकर ? और भूरिश्रवा तथा उसके साथी तो तनिक भी क्लांत नहीं हैं। प्रातः से अर्जुन ने उन्हें एक आध स्थान पर भिड़ते देखा है, किंतु किसी कठोर युद्ध में उन्होंने स्वयं को थकाया नहीं है। संभव है कि दुर्योधन ने उन्हें अभी इसी क्षण युद्ध में उतारा हो, ताकि वे थके हुए कौरव महारथियों का स्थान ले सकें। या फिर भूरिश्रवा अपनी व्यक्तिगत शत्रुता का प्रतिशोध लेने के लिए विशेष रूप से सात्यकि से युद्ध करने आए हैं। ''' सात्यकि की रक्षा करनी होगी।''' सूर्य भी अस्ताचल की ओर बढ़ रहा है। जयद्रथ का वध अभी नहीं हुआ है। '''

भूरिश्रवा ने सात्यकि पर आक्रमण किया।

"आओ सात्यकि !" भूरिश्रवा ने कहा, "बहुत प्रतीक्षा की है मैंने तुम्हारी। तुम्हारे दादा ने मेरे पिता को युद्ध में अपमानित किया था। उनको धरती पर पटककर घसीटा था। उन्हें लात मारी थी। उन सबका प्रतिशोध लेना है मुझे। तुम्हारे पिता तो कभी युद्ध में सामने ही नहीं आए, तो अपने दादा का ऋण तुम्हीं चुकाओ। मैंने तुम्हारी बहुत प्रतीक्षा की है। आज तुम मेरी पकड़ में आए हो। तुम्हारे मारे जाने पर कृष्ण, अर्जुन और धर्मराज युधिष्ठिर उत्साहशून्य होकर युद्ध बंद कर देंगे। एक तुम्हारी मृत्यु से ये इतने सारे वीर क्षत्रिय इस युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने से बच जाएँगे।"

सात्यकि ने वे सारी घटनाएँ सुनी थीं। उसके दादा ने एक स्वयंवर में भूरिश्रवा के पिता सोमदत्त को बहुत अपमानित किया था। सोमदत्त और भूरिश्रवा ने सात्यकि के दादा शिनि से अपने उस अपमान का प्रतिशोध लेने का बहुत प्रयत्न किया था, किंतु वे लोग सफल नहीं हो पाए। उन्होंने उसके पिता सत्यक से भी प्रतिशोध लेना चाहा, किंतु उनका लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सका। आज भूरिश्रवा उसी प्रतिशोध की बात कर रहा था।

भूरिश्रवा कुछ जल्दी में था। उसने रथी से युद्ध करने के स्थान पर सारथि से युद्ध आरंभ किया और अगले ही क्षण सात्यकि के घोड़े मार दिए। सात्यकि को अपनी रक्षा के लिए आवश्यक लगा कि वह भी भूरिश्रवा को विरथ कर दे, ताकि दोनों समानता के आधार पर लड़ सकें। भूरिश्रवा की सहायता को तो फिर कोई आ जाएगा, किंतु सात्यकि को अभी अपने लिए किसी सहायता की संभावना दिखाई नहीं दे रही थी।

उधर भीम को कर्ण ने रोक रखा था और इधर अर्जुन को रोकने के लिए सारे कौरव महारथी तत्पर खड़े थे।

सात्यकि ने भी भूरिश्रवा के रथ के घोड़े मार दिए।

अव वे दोनों ही अपने-अपने खड्ग लेकर आमने-सामने आ डटे। उन्होंने भ्रांत, उद्भ्रांत, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सृत, संपात और समुदीर्ण आदि गति और पैंतरे दिखाए। दोनों ने ही एक-दूसरे की ढालें काट डालीं और खड्ग उनके हाथ से गिर गए। अब मल्लयुद्ध के अतिरिक्ति और कोई विकल्प नहीं था। आघात, निग्रह और प्रग्रह का प्रयोग होता रहा। मल्लयुद्ध प्रमाणित कर रहा था कि उन दोनों को ही अपने-अपने दाँव, प्रशिक्षण और शारीरिक वल का भरोसा था। भुजपाश उनका प्रिय दाँव था। दोनों सिरों को टक्कर भी दे रहे थे पैरों को खींचकर, पैरों से पैर लपेटकर, तोमर प्रहार के समान ताल ठोंककर, अंकुश गड़ाने के समान नोचकर उनका मल्लयुद्ध चलता रहा। फिर पादवंध, उदरवंध, उद्भ्रमण, गत, प्रत्यागत, आक्षेप, पतन, उत्थान और संप्लुत का प्रयोग किया गया।

सारथ्य करते हुए भी कृष्ण की दृष्टि सात्यकि की ओर लगी हुई थी। वे सात्यकि के युद्ध कौशल और साहस की सराहना कर रहे थे। किंतु सात्यकि प्रत्येक क्षण शिथिल होता जा रहा था। कृष्ण को निरंतर लग रहा था कि सात्यकि और भूरिश्रवा का यह युद्ध समान योग्यता का नहीं था। सात्यकि दिन भर की लंवी युद्ध-यात्रा के पश्चात् यहाँ तक पहुँचा था और उसे भूरिश्रवा जैसे अक्लांत योद्धा और उसकी वाहिनी से लड़ना पड़ रहा था।''' पर युधिष्ठिर ने भी तो उसे उनकी सहायता के लिए ही भेजा होगा। ऐसे में क्या सहायता करेगा सात्यकि और क्या सहायता करेगा भीम ? उन्हें तो स्वयं अपनी रक्षा के लिए अर्जुन की सहायता की आवश्यकता पड़ गई थी।'''

"देखो पार्थ !" कृष्ण बोले, "वृष्णि और अंधक वंश का वह श्रेष्ठ वीर, भूरिश्रवा के वश में हो गया है। दुष्कर कर्म और कठिन परिश्रम से चूर-चूर होकर वह पृथ्वी पर गिर गया है। सात्यकि तुम्हारा शिष्य है। उसकी रक्षा करो अर्जुन !"

भूरिश्रवा ने सात्यकि को अपनी भुजाओं में उठाकर चार-पाँच चक्कर दिए और उठाकर धरती पर पटक दिया। सात्यकि ने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा और अपने हाथ धरती पर टिकाकर, अपने शरीर का संपूर्ण बल लगाकर धरती से उठने का प्रयत्न किया।

भूरिश्रवा ने उसे उसका भी अवसर नहीं दिया। उसने खींचकर एक लात उसके वक्ष पर मारी। सात्यकि पुनः धरती पर लुढ़क गया। उसके वक्ष में पीड़ा हो रही थी। पता नहीं कोई अंग-भंग हो गया था या मात्र आघात की ही पीड़ा थी।

उसने पुनः उठने का प्रयत्न किया।

इस बार भूरिश्रवा ने उसकी टाँग पकड़कर उसे घसीटना आरंभ किया। सात्यकि के शरीर पर अब कोई कवच नहीं था। धरती कठोर और ऊबड़-खाबड़ थी। उन दोनों

के युद्ध की स्थिति कुछ ऐसी हो रही थी, जैसे अखाड़े में दो मल्ल क्रीड़ार्थ मल्लयुद्ध कर रहे हों; और शेष लोग उन्हें देखकर अपना मनोरंजन कर रहे हों। कौरवों को भूरिश्रवा की सहायता करने की आवश्यकता नहीं थी और सात्यकि की सहायता करने वाला वहाँ कोई था नहीं। अर्जुन और भीम पृथक्-पृथक् दिशाओं में दिखाई पड़ रहे थे; किंतु भीम कर्ण से उलझा हुआ था और अर्जुन को कौरव महारथियों ने घेर रखा था।

भूरिश्रवा को विश्वास हो गया कि अव सात्यकि पूर्णतः असहाय हो गया है। वह उसे भूमि पर घसीट भी चुका था और उसके वक्ष पर लात मारकर अपमानित भी कर चुका था। अव केवल उसका वध ही शेष था। पर वह वध भी तो अपमानजनक ही होना चाहिए। वाण मारकर अथवा खड्ग के आघात से उसके प्राण लेना भूरिश्रवा को प्रिय नहीं था।

भूरिश्रवा ने अपने दाहिने हाथ में खड्ग ले लिया और बाएँ हाथ से सात्यकि की शिखा पकड़ ली। वह किसी पशु के समान सात्यकि का वध करना चाहता था। सात्यकि उसके मन की बात समझ रहा था और अपनी उस अर्द्धमूर्च्छितावस्था में भी अपने प्राणों की रक्षा के लिए अपनी गर्दन को घुमा रहा था, ताकि भूरिश्रवा का खड्ग अपने लक्ष्य को न पा सके।

"यह न्याय नहीं है पार्थ ! निःशस्त्र और युद्ध के अयोग्य सात्यकि को भूरिश्रवा खड्ग से मार रहा है।" कृष्ण कुछ आवेश में वोले, "वृष्णि और अंधक वंश का यह सिंह, भूरिश्रवा के वश में पड़ गया है। अर्जुन ! यह तुम्हारा शिष्य है और धनुर्विद्या में तुमसे कम नहीं है। वह तुम्हारा आश्रित है और तुम्हारे सम्मुख मर रहा है। तुम्हारा आश्रय लेकर भी वह इस दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है तो तुम्हारा पराक्रम मिथ्या है।"

"मेरी दृष्टि जयद्रथ की ओर लगी हुई थी केशव ! इसलिए सात्यकि की दुर्दशा मेरी आँखों से ओझल रही।" अर्जुन ने कहा, "आप चिंता न करें। भूरिश्रवा उसका वध नहीं कर पाएगा।"

अर्जुन ने गांडीव पर एक तीक्ष्ण क्षुरप्र चढ़ाया और भूरिश्रवा के दाहिने कंधे का लक्ष्य कर उसे छोड़ दिया। अगले ही क्षण वह वाण भूरिश्रवा की खड्ग वाली भुजा लेकर इस प्रकार उड़ गया, जैसे कोई गरुड़ आकाश से उतरकर किसी भुजंग को अपनी चोंच में दवा, पुनः उड़ गया हो।

कुछ क्षणों तक तो भूरिश्रवा समझ ही नहीं पाया कि उसे क्या हो गया है। उसका हाथ उठ क्यों नहीं रहा और खड्ग सात्यकि के कंठ पर प्रहार क्यों नहीं कर रहा। पर तव उसने अपनी कटी हुई भुजा भी देखी और दूर से आता हुआ, अर्जुन का रथ भी।... वह समझ गया कि उसने सात्यकि को समरभूमि में घसीटा भी है, उसके वक्ष पर लात मारकर उसे अपमानित भी किया है; किंतु वह उसके प्राण न ले पाया है, न ले पाएगा।

अर्जुन निकट आ गया तो भूरिश्रवा ने उसकी ओर देखा, "अर्जुन ! यह तुम्हारी वीरता नहीं, क्रूरता है। मैं किसी अन्य योद्धा से युद्ध कर रहा था। तुम्हारी ओर तो

मैंने देखा भी नहीं था। मेरी बाँह काट दी तुमने। धर्मराज को क्या मुँह दिखाओगे ?"

"निःशस्त्र सात्यकि का वध खड्ग से कर रहे थे आप। उस पर भी आपको अपनी धर्मपरायणता और वीरता पर अभिमान है।" अर्जुन बोला।

"ऐसी धूर्तविद्या और ऐसे कुतर्कों का उपदेश तुम्हें तुम्हारे किस गुरु ने दिया है—इंद्र ने ? रुद्र ने ? द्रोण ने ? या कृपाचार्य ने ?" भूरिश्रवा ने तड़पकर कहा, "यह नीच और पाप कर्म है। कुरुकुल में जन्म लेकर भी तुम क्षत्रिय धर्म से कैसे गिर गए। तुम्हारा शील तो उत्तम था। तुमने अव तक श्रेष्ठ व्रतों का पालन किया है। सात्यकि की रक्षा के समय तुम्हें धर्म स्मरण ही नहीं रहा। तुम्हें सात्यकि प्यारा है, धर्म नहीं ? यह निश्चय ही तुम्हारा नहीं कृष्ण का मत है। तुम्हारे लिए इतना नीचे गिरना संभव नहीं है। ऐसा तो कृष्ण का कोई मित्र ही कर सकता है।" वह रुका और फिर जैसे कृष्ण को सुनाता हुआ बोला, "वृष्णि और अंधक वंश के लोग संस्कारभ्रष्ट हिंसाप्रधान कर्म करने वाले और स्वभाव से ही निन्दित हैं। उनको तुमने प्रमाण कैसे मान लिया ?"

"कल ही जिन महारथियों ने मिलकर अकेले, निःशस्त्र अभिमन्यु का वध किया है, वे न तो वृष्णिवंशी थे, न अंधकवंशी। न ही वे श्रीकृष्ण के मित्र थे; न ही उनके परामर्श पर चल रहे थे। न ही आप उनसे यह सब कहने गए थे भूरिश्रवा !" अर्जुन बोला, "आज प्रातः से आपके किस-किस योद्धा ने ध्यान रखा है कि अर्जुन, भीम या सात्यकि किसी अन्य योद्धा से युद्ध में संलग्न हैं, इसलिए किसी तीसरे योद्धा को उनके बीच हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ? जब मैं संशप्तकों से अकेला भिड़ रहा था, तब तो आपने दुर्योधन को नहीं समझाया कि वह अन्याय था।" वह रुका, "वृद्ध होने पर मनुष्य की बुद्धि भी बुढ़ा जाती है। क्षत्रिय अपने-अपने भाई, पिता, पुत्र, संबंधी बंधु-बांधवों, समवयस्क साथियों और मित्रों से घिर कर शत्रुओं के विरुद्ध युद्ध करते हैं। वे सब लोग उस प्रधान योद्धा के बाहुबल के आश्रित होते हैं। सात्यकि मेरा मित्र, शिष्य और संबंधी है। वह मेरे लिए ही अपने दुस्त्यज प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध कर रहा है। राजन् ! रणदुर्मद सात्यकि युद्धस्थल में मेरी दाहिनी भुजा के समान है। आप चाहते हैं कि मैं उसे मर जाने देता और आपकी वीरता की प्रशंसा करता ?" अर्जुन का स्वर कुछ और प्रखर हो गया, "रणभूमि में वीर अपनी ही रक्षा नहीं करता, अपने रक्षणीयों की भी रक्षा करता है। इस समग्र युद्ध में सात्यकि के साथ आपके युद्ध को दो योद्धाओं का संग्राम कैसे माना जा सकता है ? प्रातः से सात्यकि से केवल एक आप ही लड़े थे क्या ? असंख्य योद्धाओं को धूल चटाकर आए, थके-हारे, परिश्रम से चूर, सात्यकि को पराजित कर आप वीर हो गए ?"

भूरिश्रवा ने अर्जुन की ओर देखा, "तुमने मेरी भुजा काटी है, मेरे प्राण नहीं लिए। तुमने मुझे वीरगति का यश भी नहीं दिया। मेरा जीवन न अब जीने योग्य है, न मेरी मृत्यु गौरवमयी हो सकती है। मैं ऐसा जीवन जीना नहीं चाहता। अपनी भुजा से होने वाले रक्तस्राव से मरने से पूर्व ही मैं आमरण अनशन का संकल्प लेकर यहीं युद्धक्षेत्र

में बैठ रहा हूँ, ताकि संसार मेरी मृत्यु देखे और तुम्हें धिक्कारे।"

भूरिश्रवा आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गया। ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा से प्राणायाम के द्वारा, प्राणों को उसने प्राणों में ही होम दिया। वह नेत्रों को सूर्य में और प्रसन्न मन को जल में समाहित करके महोपनिषत्प्रतिपादित परब्रह्म का चिंतन करते हुए योगयुक्त मुनि हो गया।.

युद्ध जैसे थम गया। कौरव सेना अपने स्थान पर रुक गई थी। वे बाण चलाने के स्थान पर अर्जुन के चरित्र के विषय में चर्चा कर रहे थे। भूरिश्रवा जैसे उनका आदर्श हो गया था। वे उसकी प्रशंसा कर रहे थे। उसने अपने जीवन में असंख्य यज्ञ किए थे। बहुत सारा दान दिया था अपने इन्हीं हाथों से। सात्यकि को बहुत अपमानजनक ढंग से पराजित किया था उसने।''' पर अर्जुन ने'''

भूरिश्रवा अपनी प्रशंसा सुन रहा था; किंतु उसने कोई प्रसन्नता व्यक्त नहीं की। कदाचित् वह ध्यान की स्थिति में था अथवा अधिक रक्त बह जाने के कारण मूर्च्छावस्था को प्राप्त हो गया था। सैनिक आश्चर्य कर रहे थे। क्या कोई मूर्च्छावस्था में भी पद्मासन लगाए बैठा रह सकता है ?''' कोई योद्धा भूरिश्रवा की ओर नहीं बढ़ रहा था। दुर्योधन ने भी अर्जुन के भय से भूरिश्रवा के निकट जाने का साहस नहीं किया। अर्जुन वहाँ से बहुत निकट था। उसके बाणों की पहुँच में जाने की मूर्खता कौन करे।

तभी अर्जुन ने उच्च स्वर में कहा, "मेरा जो आत्मीय मेरे बाणों की प्रहारक्षमता के भीतर होगा, मेरे शत्रुओं के हाथों मारा नहीं जा सकता। मेरे किसी शरणागत का मेरे निकट रहते वध नहीं हो सकता। और फिर जिस प्रकार तुम लोगों ने अभिमन्यु का वध किया है, उसके पश्चात् दूसरों को धर्म का उपदेश देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं। जो लोग स्वयं मर्यादा और धर्म की रक्षा नहीं करते हैं, उन्हें कोई अधिकार नहीं है कि वे दूसरों को धर्मोपदेश दें।"

सहसा भूरिश्रवा ने अपने मस्तक से भूमि का स्पर्श किया और अपने बाएँ हाथ से उठाकर अपनी कटी हुई दाहिनी भुजा, अर्जुन के सम्मुख फेंक दी।

अर्जुन का हृदय कुछ पिघला। बोला, "तात भूरिश्रवा ! मैं धर्मराज युधिष्ठिर के समान ही आपका भी सम्मान करता हूँ। युद्ध में मैं आपको छोड़ नहीं सकता था; किंतु अब हमारी कोई शत्रुता नहीं है। मैं और कृष्ण आपको आदेश देते हैं कि आप शिवि के समान पुण्यात्मा पुरुषों के लोक में जाएँ।"

सात्यकि अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया। उसने भूमि पर पड़ा अपना खड्ग उठा लिया। वह भूरिश्रवा की ओर बढ़ा। सबकी दृष्टि उसकी ओर गई। क्या करने जा रहा था वह ? क्या वह कटी भुजा वाले, आमरण अनशन कर बैठे, योग के माध्यम से ब्रह्मलोक जाने का प्रयत्न करते हुए, भूरिश्रवा का वध करेगा ?

चारों ओर कोलाहल मच गया। कृष्ण और अर्जुन भी उसे रोक रहे थे।''' पर वह बढ़ता ही गया। और सब के देखते-देखते उसने भूरिश्रवा का मस्तक काट डाला।

चारों ओर पूर्ण निःस्तब्धता थी। कोई कुछ नहीं कह रहा था। कौरव महारथी आगे बढ़ने को मचल रहे थे, किंतु सामने अर्जुन अपना गांडीव लिये खड़ा था। नहीं तो अब तक किसी ने सात्यकि का मस्तक भी काट लिया होता।...

सात्यकि हाथ में खड्ग लिये उठा और बोला, "धर्म का आवरण ओढ़कर खड़े हुए, अधर्मपरायण पापात्माओ ! जब तुमने अभिमन्यु को युद्ध में शस्त्रहीन कर मारा था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था ? भूरिश्रवा ने एक वीर के समान युद्ध में मेरा वध कर दिया होता, तो मुझे कोई दुख न होता। उसने मुझे पटककर भूमि पर घसीटा। मुझे अपमानित करने के लिए रोषपूर्वक पादप्रहार किया। किसलिए ? इसलिए कि मेरे दादा ने उसके पिता का अपमान किया था ?... या इसलिए कि मैं उसकी पशुता का असहाय आखेट था ? जब वह मेरा अपमान कर रहा था, वीरों के लिए वर्जित नीच कर्म कर रहा था, उस समय तो किसी ने उसे नहीं रोका। अब वह धर्मात्मा हो गया, क्योंकि वह मुनियों के समान मौन व्रत लेकर बैठ गया है।... वह मुझसे मेरे दादा का प्रतिशोध ले रहा था तो मैं उससे अपना प्रतिशोध भी न लेता ? मेरी भुजाएँ वर्तमान हैं और मैं अपने ऊपर किए गए, आघात का बदला लेने की निरंतर चेष्टा करता आया हूँ। तो भी तुम लोग मुझे मरा हुआ मान लेते हो तो दोष तुम्हारी बुद्धि में है। मैंने भूरिश्रवा का वध कर, मात्र उसके घात का प्रतिघात किया है। हाँ ! मुझे संकट में देखकर धनंजय ने उसकी भुजा काट डाली, इससे मैं भूरिश्रवा के वध के यश से वंचित हो गया हूँ।"

"आओ सात्यकि !" अर्जुन ने कहा, "तुम उत्तमौजा के रथ में आ जाओ। हमें मध्यम पांडव की भी खोज करनी है।"

कर्ण का उन्माद क्षीण हो चुका था। अब भीम उसके वश में था। असहाय और निरीह भीम। वह बेचारा अपने प्राणों के लिए युद्धक्षेत्र में मारे गए पशुओं के पीछे, सिर झुकाए, शत्रुओं की ओर पीठ किए बैठा था। इस समय कर्ण भीम का वध भी कर सकता था।... पर प्रतिशोध के उन्माद के उतरते ही उसे कुंती को दिया गया अपना वचन भी स्मरण हो आया था। वह उसका वध नहीं करेगा, चाहे अपमानित कितना ही क्यों न कर ले। आज प्रातः से भीम ने भी उसे बहुत अपमानित और पीड़ित किया था। वैसे भी निःशस्त्र शत्रु का वध करने में कोई सुख नहीं है...

कर्ण ने निकट आकर अपने धनुष की नोक से भीम को स्पर्श किया।

भीम उसके लिए तनिक भी तैयार नहीं था। कर्ण के धनुष के छूते ही वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा। उसने धनुष पकड़कर खींचा और उसके दो खंड कर कर्ण के माथे पर दे मारा।

मार खाकर कर्ण के मन का वह कोमल भाव विलुप्त हो गया। उसके नेत्र क्रोध से आरक्त हो उठे। उसने स्वयं को सँभाला और भीम पर अपनी घृणापूर्त हँसी की वर्षा करते हुए कहा, "ओ श्मश्रुविहीन नपुंसक ! अरे मूर्ख ! ओ पेटू ! शस्त्रास्त्र के

ज्ञान से शून्य युद्धभीरु कायर ! अव कभी युद्ध मत करना। जहाँ खाने-पीने को मिलता हो, और पेट फुलाकर सोया जा सकता हो, वहीं चला जा। समरभूमि तेरे लिए नहीं है।" कर्ण ने उसकी ओर देखा और उसे लगा कि शायद उसके वचन उतने कठोर नहीं थे, जितने होने चाहिए थे। पुनः बोला, "तू वन में रहकर फल-फूल खाकर, नियम-व्रत का पालन करने योग्य है। युद्ध में आने योग्य नहीं है। तुझमें मुनि वृत्ति है, क्षत्रिय वृत्ति नहीं। जा वन में चला जा। या तू विराट की रसोई के वर्तन माँज। उसके दासों और सेवकों से काम कराने के लिए उन्हें पीट। युद्ध में तेरा क्या काम है।"

कर्ण के मन में भीम के लिए रंच मात्र भी स्नेह नहीं उपजा। उसे अपने हाथ अपने वचन के कारण वँधे हुए लग रहे थे। दाँत किटकिटा रहे थे कि किस प्रकार भीम को अधिक से अधिक कष्ट दे, उसे कैसे सताए, कैसे पीड़ित करे। कर्ण ने उसे पुनः धनुष से कोंचा और वोला, "तुझे वन के वानर भालुओं से युद्ध करना चाहिए, मुझ सरीखे महावीरों से नहीं। मुझसे जूझेगा तो इससे भी अधिक दुर्दशा होगी। या फिर रोता हुआ, कृष्ण और अर्जुन के पास चला जा, वे ही तेरी रक्षा करेंगे।"

भीम का धैर्य समाप्त हो गया था और कर्ण का भय भी विलुप्त हो गया था। उच्च स्वर में हँसते हुए वोला, "दुष्ट ! मैंने तुझे एक बार नहीं, बार-बार पराजित किया है। तब तो तू महावीर और मैं विराट का रसोइया नहीं था। मैं तुझे पीट रहा था, पर तूने स्वयं को विराट के नौकरों में से एक नहीं माना। इतनी पराजयों के पश्चात् एक जय से ही तुझे उन्माद हो गया है। देवराज इंद्र की भी कभी जय और कभी पराजय होती है। नीचकुलोत्पन्न ! आ और मेरे साथ मल्लयुद्ध कर ले। जैसे कीचक को पीस डाला था, वैसे ही तेरे शरीर को भी एक कंदुक बना दूँगा, ताकि प्रत्येक योद्धा उसे अपने पैरों से ठुकरा सके।"

भीम का यह अप्रत्याशित साहस देख कर्ण स्तब्ध रह गया। वह अपने शब्द ज्ञान में से सबसे प्रहारक और पीड़ादायक शब्दों को खोज रहा था, जैसे कोई अपने शस्त्रागार में से सवसे प्रहारक शस्त्र खोजता है।... पर उसके लिए उसे अधिक समय नहीं मिला। तव तक अर्जुन के रथ की गर्जना निकट ही सुनाई पड़ने लगी थी और उसके वाण कर्ण तक पहुँच रहे थे। गांडीव से छूटे हुए बाण कर्ण को विषैले सर्पों से डँस रहे थे। वह अपना टूटा धनुष हाथ में लिये खड़ा था। अर्जुन के बाणों का प्रतिकार करने का साहस नहीं हुआ। भीम को छोड़कर दूर हट जाना ही उसे श्रेयस्कर लगा।

अर्जुन की मार से कर्ण को बचाने के लिए अश्वत्थामा बीच में आ कूदा। वह नहीं चाहता था कि भीम जैसे योद्धा पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् कर्ण पर अव कोई आँच आए। न ही वह यह चाहता था कि उनके हाथ में आया हुआ भीम इस सुविधा से छूट जाए।

अश्वत्थामा ने अर्जुन के नाराचों को काटा तो अर्जुन ने उसे ही अनेक वाणों से वींध दिया और बोला, "आज भागना मत अश्वत्थामा !"

अश्वत्थामा को वहाँ अकेले ठहरकर अर्जुन का सामना करने का कोई लाभ दिखाई नहीं दिया। अर्जुन की दाईं ओर युधामन्यु के रथ में भीम था और बाईं ओर उत्तमौजा के रथ में सात्यकि !

अश्वत्थामा भीम पर विजय का मोह त्याग कर, रथों और असंख्य गजों से सुरक्षित अपने व्यूह में प्रवेश कर गया।

21

अर्जुन का आत्मबल अपने चरम उत्कर्ष पर था।··· भीम और सात्यकि को अव किसी ओर से कोई संकट नहीं था। वे दोनों पूर्णतः सुरक्षित थे और उसके साथ थे। उन्होंने कई दिवंगत कौरव योद्धाओं के रथ अपने अधिकार में कर लिए थे। उत्तमौजा और युधामन्यु अपने-अपने रथों पर अर्जुन के पृष्ठरक्षकों के रूप में चल रहे थे। प्रातः से तो अर्जुन अकेला ही समस्त कौरव महारथियों से युद्ध कर रहा था; किंतु अब वह अकेला नहीं था। अब वे—पांडव सेना के पाँच-पाँच महारथी—एक साथ थे।··· पांडव सेना के पाँच रथ और उनके पाँच सर्वश्रेष्ठ योद्धा—जैसे सागर में पाँच भयंकर लहरें एक साथ उठी हों।···

"श्रीकृष्ण !" अर्जुन ने कहा, "रथ को जयद्रथ की ओर ले चलिए। अब उसे अधिक देर तक जीवित नहीं रहना चाहिए। सूर्यदेव भी तीव्रगति से अस्ताचल की ओर ढल रहे हैं।"

कृष्ण ने अर्जुन का उत्साह देखा तो प्रसन्न हो गए। उन्होंने एक बार अपने नेत्र उठाकर सूर्य की ओर देखा और घोड़ों को हाँक दिया, "शिथिलता तुम्हारी ओर से ही है अर्जुन ! मैं प्रसन्न हूँ कि अब मोह तुम्हें बाँध नहीं रहा।"

भूरिश्रवा के वध से स्तंभित कौरव जैसे निद्रा से जागे। भूरिश्रवा का मरना उनके लिए एक बड़ा आघात था; किंतु जयद्रथ मारा गया तो यह वज्रपात ही होगा।··· लगा, सारे प्रमुख कौरवों के रथ एक साथ ही जयद्रथ की रक्षा के लिए दौड़ पड़े।··· दुर्योधन, कर्ण, वृषसेन, शल्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य ने आकर अर्जुन के रथ को रोका।

जयद्रथ का रथ उनसे कुछ ही पीछे था। वह कुछ इस प्रकार खड़ा था कि अर्जुन के बाणों से बचने के लिए उसे उन महारथियों की आड़ उपलब्ध हो, किंतु वह स्वयं अर्जुन पर प्रहार करना चाहे, तो उसकी सुविधा भी उसे हो।

अर्जुन को तो जैसे अपने और जयद्रथ के मध्य खड़े छह महारथी दिखाई ही नहीं पड़ रहे थे। उसे केवल जयद्रथ दिखाई दे रहा था। जयद्रथ को अपने सम्मुख देखकर अर्जुन के नेत्र क्रोध से जल उठे।··· यह वह व्यक्ति है, जो दुर्योधन के साथ मिलकर सदा उन्हें पीड़ित और अपमानित करता रहा है। यह है, जिसने वन में से द्रौपदी का

अपहरण कर लिया था। जो दुस्साहस दुर्योधन भी नहीं कर सका था, वह इसने किया। वह तो पांडव ही समय से पहुँच गए थे, अन्यथा इसने तो कोई कसर नहीं छोड़ी थी।··· और यही वह व्यक्ति था, जिसने घिर गए, आहत हो गए और क्रमशः मृत्यु के मुख में जाते हुए अभिमन्यु की रक्षा के लिए किसी पांडव योद्धा को व्यूह में प्रवेश करने नहीं दिया। यह है वह, जिसने डींग मारी कि उसने सिवाय अर्जुन के पांडवों के सारे योद्धाओं को अकेले ही पराजित कर दिया है। यह वह व्यक्ति है, जो स्वयं को अभिमन्यु का हत्यारा कहकर गौरवान्वित अनुभव करता है। इसने अभिमन्यु के वध का श्रेय माँगा है, तो फिर अर्जुन के हाथों मृत्यु भी तो इसे ही मिलेगी।···

दुर्योधन ने यह स्थिति देखी तो भय से काँप उठा। उसने दृष्टि उठाकर अपने योद्धाओं की ओर देखा : यदि सचमुच ये छह योद्धा अपना रण कौशल दिखाएँ तो अर्जुन, जयद्रथ का बाल भी बाँका नहीं कर पाएगा।··· किंतु ये कृपाचार्य और अश्वत्थामा ! इनका भरोसा कैसे कर सकता है दुर्योधन। आज प्रातः से ही वह और दुःशासन कितनी बार विनती कर चुके हैं, आचार्य द्रोण के सम्मुख; किंतु वे एक बार भी अपना व्यूह छोड़कर अर्जुन को रोकने के लिए नहीं आए। यदि उन्होंने अपने व्यूह के द्वार पर ही अर्जुन को वैसे ही रोक लिया होता, जैसे कल जयद्रथ ने पांडवों को चक्रव्यूह के द्वार पर रोका था, तो आज कोई संकट ही न होता; और सूर्यास्त के साथ ही अर्जुन भी चिता पर जीवित जल जाता। किंतु आचार्य ने तो अर्जुन ही क्या, भीम और सात्यकि को भी मार्ग दे दिया। और जब दुःशासन उनसे प्रार्थना करने गया तो आचार्य ने उसे गांधारी के उदर में छिप जाने का परामर्श दिया। उसी द्रोण का पुत्र है यह अश्वत्थामा। उसी द्रोण का श्यालक है यह कृप। इनसे क्या आशा की जा सकती है ? जाने इनके मन में क्या है। किस षड्यंत्र के अधीन ये यहाँ युद्ध कर रहे हैं और किस दुरभिसंधि के कारण ये पांडवों की सहायता कर रहे हैं।···

दुर्योधन ने शल्य की ओर देखा।··· नहीं ! शल्य अर्जुन से नहीं लड़ सकता। उसे तो यह भीम ही उठाकर धरती पर दे मारेगा।··· हाँ ! कर्ण और उसके पुत्र वृषसेन से कुछ अपेक्षा की जा सकती है। वे दोनों ही दुर्योधन से छल नहीं करेंगे। वे किसी षड्यंत्र और दुरभिसंधि में सम्मिलित नहीं होंगे। दुर्योधन उन पर विश्वास कर सकता है।

दुर्योधन का रथ कर्ण के पास पहुँचा, "कर्ण ! अब तुम्हारे युद्ध का समय आया है मित्र ! तुम इस समय अपना बल दिखाओ। आज युद्ध समाप्ति तक जयद्रथ का वध किसी भी स्थिति में नहीं होना चाहिए।"

दुर्योधन को कुछ आश्चर्य हुआ। अर्जुन से युद्ध का अवसर पाकर भी कर्ण ने कोई विशेष उत्साह नहीं दिखाया था। शायद इस समय कर्ण भी भयभीत था। आज भीम ने कुछ समय के लिए उसे भी अपने बल से त्रस्त कर दिया था।

"सुनो।" दुर्योधन पुनः बोला, "बहुत नहीं लड़ना है राधेय ! दिन समाप्त होने तक जयद्रथ किसी प्रकार सुरक्षित रहे तो हमारी विजय ही विजय है। बहुत थोड़ा समय

रह गया है। सूर्यास्त तक अर्जुन को किसी भी प्रकार रोक लो।"

कर्ण के चेहरे पर एक प्रकार का दैन्य प्रकट हुआ, "भीम ने आज बहुत कष्ट दिया है मुझे। फिर भी अपने धर्म का विचार कर युद्धभूमि में खड़ा हूँ मैं।" कर्ण ने दुर्योधन की ओर देखा, "इस समय मेरे शरीर का कोई भी अंग हिलने-डुलने की स्थिति में नहीं है। मैं उस मोटे के बड़े-बड़े भारी बाणों की ज्वाला से भयंकर रूप से संतप्त हूँ। पर तुम चिंता मत करो मित्र ! तब भी मैं यथाशक्ति युद्ध करूँगा; क्योंकि मेरा यह जीवन तो तुम्हारे ही लिए है। इसकी और उपयोगिता ही क्या है। मेरा विश्वास करो, जब तक मेरे बाण चलते रहेंगे, तब तक अर्जुन, जयद्रथ को कोई क्षति नहीं पहुँचा सकेगा।"

"मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ।" दुर्योधन ने कहा और आगे बढ़ गया।

'चलो इतना ही पर्याप्त है।' वह सोच रहा था, 'नहीं तो यह भी कह देता—मैं अत्यंत घायल हूँ। बहुत रक्त बह चुका है। युद्ध करने में समर्थ नहीं हूँ। दो दिन विश्राम कर फिर समरभूमि में आऊँगा—तो दुर्योधन क्या कर लेता। अब तो योद्धाओं की स्थिति भी अश्वशाला में लीद उठाने वाले भृत्यों के समान हो गई है। जब काम कुछ अधिक हुआ तो स्वयं ही लीद करने लगते हैं। उनको विश्राम के लिए अवकाश की आवश्यकता पड़ जाती है। कामचोर हो गए हैं, सब के सब।'

भीम और सात्यकि से सुरक्षित अर्जुन सूर्य के ही समान तप रहा था। उसने कौरव सेना का संहार आरंभ किया।

जब तक कर्ण अपनी कोई रणनीति बनाता, कृपाचार्य ने कौरव महारथियों को संगठित कर लिया था। उन्होंने अपने रथ एक साथ सटा लिए थे और दीवार के समान अर्जुन के सम्मुख खड़े हो गए थे। वे सब अंधाधुंध अर्जुन पर बाण वर्षा कर रहे थे।

कृष्ण ने मुस्कराकर अर्जुन की ओर देखा, "ये लोग तुमसे युद्ध नहीं कर रहे हैं। वे तो बस सूर्यास्त की प्रतीक्षा कर रहे हैं। चाहते हैं कि जयद्रथ उनके रथों की दीवार के पीछे निष्क्रिय बैठा रहे और वे तुम पर बाण फेंकते रहें ताकि तुम आगे न बढ़ पाओ। बस। शेष कार्य सूर्यदेव को सौंप दिया है इन्होंने।"

"पर कृपाचार्य तो दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं।" अर्जुन ने कहा।

"ठीक है, किंतु वे शर-संधान कर रहे हैं या बाण फेंक रहे हैं ?" कृष्ण हँसे, "उनमें से कोई सोच-समझ भी रहा है कि व्यक्तिगत रूप से वह अपने शस्त्रों से क्या करना चाहता है और सामूहिक रूप से उनकी योजना क्या है ? वे बाण कम चला रहे हैं, सूर्य से प्रार्थना अधिक कर रहे हैं। इसका अर्थ है कि वे तुमसे बहुत भयभीत हैं।"

"उनके भय को अपनी शक्ति में परिणत किया जाए ?" अर्जुन ने कहा।

"हाँ ! इनको इसी प्रकार बाण फेंकते रहने दो। उन बाणों को काटने के लिए भीम और सात्यकि पूर्णतः समर्थ हैं।" कृष्ण बोले, "तुम इन छह महारथियों को लाँघ जाओ। तुम्हारा लक्ष्य जयद्रथ है। तुम्हारा शस्त्र खड्ग नहीं है कि सम्मुख खड़े इन महारथियों को लाँघे बिना तुम जयद्रथ को पा नहीं सकते।"

अर्जुन ने सीधे जयद्रथ पर वाण छोड़े।

कर्ण स्तब्ध रह गया। उसने यह सोचा ही नहीं था कि अर्जुन उन छह महारथियों को भीम और सात्यकि को समर्पित कर अपना लक्ष्य जयद्रथ को ही बनाएगा। उसने घबराकर कृपाचार्य की ओर देखा। लगा कृपाचार्य और अश्वत्थामा किसी निर्जीव यंत्र के समान अर्जुन की दिशा में बाण फेंककर अपना शस्त्र भंडार व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हैं।''' कहीं ये लोग भीतर ही भीतर अर्जुन से मिल ही तो नहीं गए ?''' नहीं ! यह शायद उसके आतंकित मन का ही ऊहापोह है। इस प्रकार वह सब पर संदेह करेगा तो अपना मित्र किसको मानेगा। यदि द्रोण, कृप अथवा अश्वत्थामा पांडवों की ओर जाना ही चाहते तो उन्हें कौन रोक सकता था। युयुत्सु उस ओर चला गया तो कोई क्या कर सका ? न उसने धृतराष्ट्र से अनुमति ली न धृतराष्ट्र में उसे लौटा लाने का सामर्थ्य था।

कर्ण ने अर्जुन के सम्मुख बाणों का एक जाल-सा बुन दिया। अर्जुन ने दस बाण मारकर न केवल उस जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया, वरन् कर्ण को घायल भी कर दिया। सात्यकि ने कर्ण को तीन वाण मारे। भीम ने कर्ण को अपने सामने आते देखा तो थोड़ी देर पहले की मुठभेड़ स्मरण हो आई।''' भीम अकेला और निःशस्त्र था तो कर्ण ने उसकी दुर्दशा कर डाली थी। अब देखें वह क्या करता है ? पर कर्ण तो अर्जुन का आखेट था।''' तो भी भीम ने चलते-चलते तीन बाण मार ही दिए।

कर्ण का तेज प्रज्वलित हुआ। उसने अर्जुन, भीम और सात्यकि—तीनों को ही अपना लक्ष्य मानकर अनेक बाण मारे। युद्ध तो वह करेगा ही, चाहे परिणाम कुछ भी हो।'''

कर्ण को इस प्रकार अपने मार्ग में आ उसे विलंब कराने का प्रयत्न करते देख, अर्जुन के मन में जैसे साक्षात् रुद्रदेव ही जाग्रत हो उठे।''' यह कर्ण उसका परम शत्रु तो था ही, उसके पुत्र के हत्यारों का रक्षक भी था। अर्जुन अपने हत्यारे को तो फिर भी क्षमा कर सकता था; किंतु अभिमन्यु के हत्यारों को दंडित किए बिना वह जीवित नहीं रह सकता था। उसका प्रत्येक रक्त बिंदु जैसे प्रचंड और जीवित ज्वालामुखी बन गया था।'''

अर्जुन के बाणों की झड़ी लग गई। कर्ण के शरीर से रक्त बहने लगा। उसके पिछले घाव भी छिल गए थे और अर्जुन ने कितने ही नए घाव भी दे दिए थे। अर्जुन ने कर्ण का धनुष काट दिया और अद्‌भुत स्फूर्ति का परिचय देते हुए, उसे नौ बाण मारे।

कर्ण ने दूसरा धनुष उठा लिया।

कर्ण के शरीर से इस प्रकार रक्त बहते देखकर दुर्योधन का रक्त अपनी धमनियों में जमता जा रहा था। क्या कर रहा है कर्ण।''' उसने आज तक कर्ण का पालन-पोषण क्या इसलिए किया था कि वह युद्ध में अर्जुन को मारे बिना अपना रक्त बहाकर चुपचाप भूमि पर लेट जाए।

"वीरो ! सब लोग मिलकर यत्नपूर्वक राधापुत्र कर्ण की रक्षा करो। वह युद्धस्थल में अर्जुन की हत्या किए बिना नहीं लौटेगा।" और दुर्योधन को लगा कि इतना कहना भर पर्याप्त नहीं है। उसने जोड़ा, "उसने मुझे ऐसा करने का वचन दिया है।"

कौरव महारथी दुर्योधन के कथन से उतने प्रभावित नहीं हुए, जितना कि अर्जुन हुआ··· तो यह कर्ण दुर्योधन को वचन दे कर आया है कि वह अर्जुन का वध करके लौटेगा।··· तो फिर वह भी देख ले कि कौन किसका वध करता है।··· अर्जुन ने कर्ण के रथ के अश्व मार दिए और सारथि को भी एक क्षुरप्र मारा। पता नहीं लगा कि सारथि उस बाण के लगने से पहले ही कैसे रथ से नीचे जा पड़ा। संभवतः वह अपने भय से ही मूर्च्छित हो गया था। वह कर्ण का नियमित सारथि तो था नहीं। प्रातः से कितने ही रथ और सारथि बदल चुका था कर्ण।···

अर्जुन के बाण जाल से कर्ण कुछ ऐसा मोहित हुआ कि उसकी समझ में ही नहीं आया कि उसे क्या करना चाहिए। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा युद्धक्षेत्र में ऐसे खड़ा था, जैसे भीड़ भरे मेले में कोई बच्चा खो जाता है।

अश्वत्थामा ने कर्ण को इस दशा में देखा तो तत्काल अपने रथ को उसके और अर्जुन के मध्य ला, खड़ा कर दिया। कर्ण अर्जुन की दृष्टि से ओझल हो गया। अश्वत्थामा ने उसे अपने रथ पर आ जाने का संकेत किया।

कृपाचार्य के प्राण अश्वत्थामा में ही बसते थे। उन्होंने उसे इस प्रकार स्वयं को अर्जुन के सम्मुख डाल देने का संकट उठाते देखा तो स्वयं भी उसकी सहायता को आ गए और शल्य को भी संकेत किया। अब शल्य, अश्वत्थामा और कर्ण अर्जुन पर बाण बरसा रहे थे और कृपाचार्य की दृष्टि कृष्ण पर लगी हुई थी ··· सब के सारथि क्षतविक्षत होते थे, मरते थे और रथ से गिरते थे, किंतु अर्जुन का यह सारथि न थकता था, न मरता था, न गिरता था।··· कृपाचार्य ने कृष्ण को बीस बाण दे मारे।

जयद्रथ का रक्त संचार बहुत बढ़ गया था। वह कल रात से ही प्रत्येक क्षण मृत्यु की पीड़ा झेल रहा था। अभी तक वह घायल भी नहीं हुआ था। वस्तुतः आज अभी तक तो उचित ढंग से उसने युद्ध भी नहीं किया था। कोई शत्रु उसके निकट भी नहीं आया था।··· किंतु वह प्रतिक्षण मर ही तो रहा था। मृत्यु के भय की पीड़ा झेल रहा था। वह स्वयं को महाकाल के जबड़ों में फँसा हुआ अनुभव कर रहा था। अभी दाँत दबेंगे और उसकी सारी अस्थियाँ चरमरा जाएँगी।··· अपने शव को मानों उसने समरभूमि में धराशायी हुआ देखा··· नहीं ! वह अपनी रक्षा का दायित्व इस प्रकार दूसरों पर छोड़कर निश्चिंत नहीं रह सकता था। वे लोग अपना युद्ध लड़ रहे थे। उसकी रक्षा हो रही थी तो इसलिए कि अभी अर्जुन उसके इतना निकट नहीं आ पाया था या फिर वह ही अपनी बिल से निकलकर उसके सम्मुख खड़ा नहीं हुआ था।··· क्या वह इसी प्रकार भयभीत मूषक के समान अपनी बिल में छिपा बैठा रहेगा ? क्यों नहीं वह अर्जुन के सम्मुख जाकर युद्ध करता ? कल उसने अकेले ही पांडव पक्ष के सारे योद्धाओं को

चक्रव्यूह के द्वार पर ही रोक लिया था। आज वह इस अकेले अर्जुन से नहीं लड़ सकता ?

वह इतना घबरा गया था कि अपने स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहना उसके लिए कठिन हो गया। कल दुर्योधन ने उसे सिंधुदेश लौटने नहीं दिया था। कहा था कि कौरव योद्धा उसकी रक्षा करेंगे। यही रक्षा हो रही है उसकी। भीम और सात्यकि को साथ लेकर अर्जुन उसके सम्मुख आ खड़ा हुआ है। निरंतर युद्ध हो रहा है। अर्जुन का रथ एक-एक अंगुल कर आगे बढ़ रहा है… और गिनती के ये कौरव योद्धा इधर-उधर बाण फेंकने का नाटक कर रहे हैं।… ये रक्षा करेंगे उसकी ?

दुर्योधन की चेतावनी की उपेक्षा कर जयद्रथ अपनी बिल से बाहर निकल आया। उसने अर्जुन और कृष्ण को चार-चार बाण दे मारे। वृषसेन ने उसका साथ दिया। वह अपने पिता को बचाने नहीं गया। जयद्रथ की सहायता को आ गया। जयद्रथ ने एक कृतज्ञ मुस्कान उसकी ओर उछाल दी।

और तब जयद्रथ समझ ही नहीं पाया कि क्या हुआ कि अर्जुन के गांडीव से बाण ऐसे छूटे, जैसे सूर्य से रश्मियाँ छूटती हैं। एक साथ ही अश्वत्थामा, शल्य, कृपाचार्य, वृषसेन और जयद्रथ को अर्जुन के बाणों ने वींध दिया। केवल दुर्योधन बच गया था। वह जयद्रथ के भी पीछे चला गया था।…

अर्जुन ने सिंहनाद किया।

कौरव भयभीत हो उठे। अर्जुन को रोकना शायद अब संभव नहीं था। किंतु वे जयद्रथ को इस प्रकार मरने नहीं दे सकते थे। यदि जयद्रथ आज अर्जुन के हाथों मारा गया तो फिर कल से अर्जुन का युद्धभूमि में सामना कौन करेगा।… दुर्योधन कुछ आगे बढ़ा और छह के छह महारथी अर्जुन पर टूट पड़े।

अर्जुन ने अपना रोष नहीं दिखाया। इस वार वह हँसा और उसने वारुणास्त्र प्रकट किया। पीली प्रत्यंचा वाला गांडीव धनुष इस प्रकार शस्त्रास्त्र उगल रहा था, जैसे कोई नदी अपना प्रवाह सागर में उँडेलती है। छह महारथी उसके सामने खड़े थे और अपनी सेना का नाश होते देख रहे थे। उनमें से किसी में साहस नहीं था कि वह अपनी रक्षा के अतिरिक्त भी किसी के विषय में कुछ सोच सकता।

वारुणास्त्र का वेग कुछ कम हुआ तो दुर्योधन ने पुनः अपने महारथियों को ललकारा। उनका एक सम्मिलित आक्रमण अर्जुन पर हुआ।

"तुम लोग धनंजय पर आरोप लगा रहे थे कि उन्होंने मेरे और भूरिश्रवा के युद्ध में हस्तक्षेप किया है तो अब तुम क्यों नहीं एक-एक कर धनंजय से लड़ते ? भेजो अकेले कर्ण को अथवा अकेले दुर्योधन को…" सात्यकि ने उच्च स्वर में कहा।

किंतु अर्जुन का ध्यान उस ओर नहीं था। उसने इस सम्मिलित आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए इस वार इंद्रास्त्र प्रकट किया था। इंद्रास्त्र अपना कार्य कर ही रहा था। उससे भयभीत कौरवों ने अंधाधुंध अपने शस्त्रागार उँड़ेलने आरंभ कर दिए। उन्होंने इतने शस्त्रास्त्रों की वर्षा की कि आकाश उनसे ढँक गया और सूर्य का सांध्यकालीन

निर्बल प्रकाश पृथ्वी तक आने में असमर्थ हो गया।''' लगा, जैसे रात्रि का आगमन हो गया है। सूर्यास्त के बाद का अंधकार हो गया क्या ?

जयद्रथ ने आकाश की ओर देखा : क्या सत्य ही रात्रि आ गई ? क्या वह अर्जुन के हाथों मारा जाने से बच गया ? क्या अब अर्जुन चितारोहण कर अपने प्राण दे देगा ?

कृष्ण ने अंधकार को भी देखा और जयद्रथ को भी। मुस्कराकर बोले, "अर्जुन ! शीघ्रता करो।"

कौरवों ने युद्ध समाप्ति की घोषणा नहीं की थी; किंतु इस अंधकार को नष्ट करने की तो वे क्या ही सोचते। वे उसे और सघन करना चाहते थे। यह तो उनके हित में ही था कि सूर्यास्त से पहले ही अंधकार हो जाए और पांडव युद्ध से निरस्त हो जाएँ।'''

अर्जुन ने अपने दिव्यास्त्र संबंधी मंत्रों से अभिमंत्रित बाणों द्वारा पराक्रमपूर्वक उस अंधकार को नष्ट कर दिया।

अंधकार अकस्मात् ही हट गया था और अर्जुन, जयद्रथ के अत्यधिक निकट आ खड़ा हुआ था। अब शायद जयद्रथ के जीवन की कोई आशा शेष नहीं थी। दुर्योधन तक जयद्रथ के जीवन से निराश हो चुका था। उसे लगा कि कर्ण जैसा योद्धा भी युद्ध से निवृत्त होकर बैठ गया था। इस समय जो-जो योद्धा अर्जुन की ओर बढ़ता था, उसके शरीर पर प्राणांतकारी बाणों की वर्षा होने लगती थी।

अर्जुन का रथ पुनः जयद्रथ की ओर बढ़ा। दुर्योधन ने जैसे उस ओर से अपनी आँखें फेर लीं। क्या होने जा रहा है। उसने पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना के उत्तर में अपने लिए ग्यारह अक्षौहिणी सेना एकत्रित की थी। उसने यादवों को इस युद्ध से निरस्त कर दिया था। कृष्ण के शस्त्र छीन लिए थे। उसकी नारायणी सेना हड़प ली थी।''' और फिर यहाँ तो पांडव सेना थी ही नहीं। उनके मात्र तीन योद्धा थे, कौरव सेना के महासागर में घिरे हुए, फिर भी दुर्योधन जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में असमर्थ होता जा रहा था।'''

अर्जुन ने अश्वत्थामा, वृपसेन, कृपाचार्य, शल्य और कर्ण को असंख्य बाण मारे और फिर उसने जयद्रथ को अपने बाणों से ढँक दिया। जयद्रथ ने अपना भय छोड़ दिया था अथवा इस समय वह संवेदनहीनता के उस धरातल पर पहुँच गया था कि वह भय का अनुभव करने के अयोग्य हो गया था। उसने अर्जुन को छह, कृष्ण को तीन, घोड़ों को आठ और ध्वजा को एक बाण मारा।

अर्जुन ने उसके सारथि का मस्तक काट दिया और ध्वज को धूल में मिला दिया।

कृष्ण बार-बार सूर्य की ओर देख रहे थे। उनकी दृष्टि रणभूमि में उड़ती सूर्य के प्रकाश को मंद करती उस धूल पर भी थी और घबराया हुआ जयद्रथ भी उनका ध्यान आकृष्ट कर रहा था।''' कृष्ण स्पष्टतः देख रहे थे कि जयद्रथ की रक्षा को आए ये छह महारथी अर्जुन की गति रुद्ध तो नहीं कर पा रहे थे और न ही वे अर्जुन को

जयद्रथ के वध से रोक पाएँगे, किंतु विलंब तो वे करा ही सकते हैं। उन छह का वध कर अर्जुन सूर्यास्त से पहले जयद्रथ तक नहीं पहुँच सकेगा। यह विलंब घातक भी हो सकता है।...

सहसा कृष्ण ने अर्जुन का ध्यान आकृष्ट किया, "पार्थ ! जयद्रथ इस समय भयभीत है। उसके और तुम्हारे मध्य छह महारथी हैं। पाँच ही समझो। दुर्योधन तो अपनी सुविधा के अनुसार अपना स्थान परिवर्तित कर लेता है। तुम इन सबको जीतकर जयद्रथ तक पहुँच नहीं सकते—ऐसा मैं नहीं कहता; किंतु हमारे पास समय कम है। समय बीत गया तो हमारी जय भी पराजय में बदल जाएगी। इसलिए आवश्यक है कि हम कुछ ऐसा करें कि वह धैर्य छोड़कर इतना व्याकुल हो जाए कि अपनी सावधानी भूलकर बाहर निकल आए।"

"क्या करोगे केशव ?"

"मैं सूर्य को ढँकने की कोई युक्ति करूँगा। उसे लगेगा कि सूर्यास्त हो गया है तो वह असावधान होकर सामने आ जाएगा। तुम्हारी मृत्यु के लिए उतावला होकर वह स्वयं को गुप्त नहीं रख पाएगा।" कृष्ण मुस्कराए, "ऐसा क्षण आने पर तुम यह मत सोचने लग जाना कि सूर्यास्त हो गया है और जयद्रथ के वध का काल सीमा पार कर गया है। उसका तत्काल वध करना। तुम्हें अधिक समय नहीं मिलेगा। तुम्हारी निमिष मात्र की भी शिथिलता हम सबके लिए घातक होगी।" उनका स्वर असाधारण रूप से गंभीर था, "एक निमिष की सक्रियता और निष्क्रियता से राष्ट्रों का इतिहास बदल जाता है। यह क्षण भी हमारे लिए इतिहास का निर्माण करने वाला है।"

"ऐसा ही होगा केशव !" अर्जुन के स्वर में पूर्ण समर्पण का भाव था।

कृष्ण अपना रथ भीम के निकट ले गए।

"मध्यम !" वे अपना स्वर कुछ दबाकर बोले, "कौरवों के वध की चिंता मत करो। अपना रथ इस प्रकार दौड़ाओ कि कौरवों के अधिक से अधिक रथ गतिमान हों। कुछ ऐसा करो कि समरभूमि में असाधारण गतिविधि हो। बाण चाहे एक न चले, किंतु एक भी रथ अपने स्थान पर खड़ा न रहे।"

भीम ने उनकी बात सुनी। वह बहुत कुछ पूछना चाहता था, किंतु कृष्ण वहाँ रुके नहीं। आँखों से कहे अनुसार करने का आदेश देकर वे उससे दूर चले गए। भीम खड़ा देखता ही रह गया।

कृष्ण ने एक-एक कर वही संदेश सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु को भी दिया।

और अगले ही क्षण भीम ने शस्त्र छोड़कर रथ की वल्गा सँभाल ली। वह अपना रथ सीधे दुर्योधन के रथ पर चढ़ा ले गया। दुर्योधन की समझ में नहीं आया कि वह क्या करना चाहता है। क्या वह अपने रथ को उसके रथ से भिड़ाकर उसे कुचल डालना चाहता है ? वह कुछ भी चाहता हो। वह तो वही जाने। वह तो बैल है, उसमें बुद्धि ही कहाँ। शस्त्रास्त्रों का युद्ध छोड़कर रथ भिड़ाने पर आ गया है।... पर दुर्योधन को

तो अपना बचाव करना ही था।... वह तत्काल अपने स्थान से हटकर किसी सुरक्षित स्थान की खोज में निकल गया। दुर्योधन के इस प्रकार अकस्मात् हटने से उसके दाएँ-बाएँ और पीछे चलने वाले रथों में भी भगदड़ मच गई। किसी की समझ में नहीं आया कि यह क्या हो रहा है। दुर्योधन इस प्रकार डरकर भागा क्यों है।... पर उससे रथों की गतिविधि वहुत बढ़ गई थी।...

भीम को देखकर सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु ने भी कुछ वैसा ही किया। समरभूमि में रथों का जैसे बवंडर मच गया। पांडवों के तो पाँचों रथ उत्पात मचा ही रहे थे, साथ ही कौरवों का कोई भी रथ अपने स्थान पर खड़ा नहीं रह सका था। अश्वों की टापों और रथचक्रों से उठी हुई धूल आकाश को छूने लगी थी। समरभूमि में प्रकाश अत्यंत क्षीण हो गया था। जैसे सूर्यास्त हुआ ही चाहता था।

कृष्ण ने देखा कि कौरव असावधान थे और जयद्रथ अपनी व्याकुलता में सूर्य की ओर देख रहा था। क्या सत्य ही सूर्यास्त हो गया था ? वे अर्जुन की ओर मुड़े, "जयद्रथ तुम्हारा भय छोड़कर सूर्य की ओर ताक रहा है। इस दुरात्मा के वध का यही क्षण है। इसका मस्तक काटो और अपनी प्रतिज्ञा सफल करो।"

रथों की उस असाधारण हलचल में अर्जुन ने अपने तेजस्वी वाणों से कौरव सेना का विनाश आरंभ किया। उसने कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, दुःशासन, वृषसेन और जयद्रथ—सवको ही वाण मारे। जयद्रथ को सर्वाधिक बाण लगे थे। वह बौराया सा खड़ा था—सूर्यास्त हुआ था या नहीं ? यदि सूर्यास्त हो गया था तो अर्जुन वाण क्यों चला रहा था ? और यदि सूर्यास्त नहीं हुआ था तो सूर्य की ज्योति इतनी मंद क्यों हो गई थी ? यह अंधकार क्यों हो रहा था ? कुछ दिखाई क्यों नहीं देता था ?

अर्जुन अपने आक्रोश की पराकाष्ठा पर था। गांडीव से बाण ऐसे छूट रहे थे, जैसे ववंडर के वेग में रेणु कण उड़ते हैं। जयद्रथ के रक्षकों को जयद्रथ स्मरण ही नहीं रहा। वे तो अपने प्राणों के भय से ही उन्मत्त होकर कोई सुरक्षित स्थान खोजने के लिए इधर-उधर भाग रहे थे, किंतु अर्जुन के बाणों से कोई भी स्थान सुरक्षित नहीं था।

सेना भाग गई थी और अर्जुन को अपने सामने कृपाचार्य, कर्ण, शल्य, वृषसेन और दुर्योधन दिखाई दे रहे थे। अश्वत्थामा जाने कहाँ चला गया था। अर्जुन ने उन सब पर अपने बाणों से जैसे एक कुटीर बना दिया था, जिसमें उन सबके रथ वंदी हो गए थे। उसने कर्ण और वृषसेन के धनुष काट दिए, एक भल्ल से शल्य के सारथि को रथ की बैठक से नीचे गिरा दिया। कृपाचार्य को उसके बाणों से गहरी चोट पहुँची थी। उनके शरीर से रक्त बह रहा था।...

"इनको छोड़ो अर्जुन !" कृष्ण कुछ आवेश में वोले, "दुरात्मा जयद्रथ का मस्तक शीघ्र काटो। तत्काल। सूर्य अस्ताचल पर जाना ही चाहते हैं।"

अर्जुन ने गांडीव को जयद्रथ की ओर कर, दिव्य मंत्रों से अभिमंत्रित किया हुआ बाण तत्काल छोड़ दिया। गांडीव से छूटा वज्र से भी कठोर स्पर्श वाला वह शीघ्रगामी

बाण जयद्रथ का मस्तक काटकर श्येन पक्षी के समान उड़ गया।

सारे कौरवों ने देखा कि जयद्रथ का मस्तक उसके कबंध पर नहीं है। उसका कबंध लड़खड़ाकर भूमि पर गिर पड़ा है।''' अब आज और युद्ध का कोई अर्थ नहीं था। कौरव सेनाएँ हताश हो चुकी थीं। और युद्ध का अर्थ था प्रचंड अर्जुन के हाथों और योद्धाओं का वध।

पांडवों के पाँचों रथ भी जैसे रुक गए थे। भीम, सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु अश्वों की टापों और रथचक्रों से धूल उड़ाने का लक्ष्य समझ चुके थे। अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

रथों की गतिविधि रुकी तो आकाश की ओर उड़ती हुई धूल भी पृथ्वी पर आ गई। सबने देखा, न सूर्य की ज्योति मंद हुई थी, और न ही अभी सूर्यास्त ही हुआ था।

कृष्ण मुस्करा रहे थे। उन्होंने जैसे अपनी माया समेट ली थी।

22

धृतराष्ट्र अपना क्षोभ न रोक सका न छिपा सका। उसकी वाणी और उसकी अभिव्यक्ति जैसे उसके नियंत्रण से विद्रोह कर उठी थी। उसका चेहरा कुछ भयंकर हो उठा था। वह विकृत-सी वाणी में बोला, "तुम झूठ बोल रहे हो संजय ! यह किसी भी प्रकार संभव नहीं है।"

संजय चकित-सा बैठा उसे देखता रहा। वह एकटक धृतराष्ट्र के चेहरे को देख रहा था और समझ नहीं पा रहा था कि अगले ही क्षण धृतराष्ट्र रो पड़ेगा अथवा क्रोध से झाग थूकने लगेगा। इतना तो वह समझ ही रहा था कि यह उत्तेजना धृतराष्ट्र के हित में नहीं है; किंतु वह उसे दूर करने के लिए क्या करे ? कहीं ऐसा न हो कि उसका किया हुआ कोई उपाय धृतराष्ट्र को और भी उत्तेजित कर जाए।'''

"पर यह सत्य है महाराज !" वह धीरे से बोला।

"क्या प्रमाण है कि वह सत्य है ?" धृतराष्ट्र शायद बिना कुछ सोचे-समझे बोल रहा था।

"प्रमाण यही है कि यह घटित हुआ। सबने देखा कि वह सूर्य जो अस्त हो गया था, फिर से आकाश पर दिखाई दे रहा था।" संजय बोला, "आश्चर्य सबको हुआ, पर जो कुछ सब लोग अपने नेत्रों से देख रह थे, उसका तिरस्कार कैसे कर सकते थे।"

धृतराष्ट्र ने कुछ नहीं कहा।

"कल जब जयद्रथ ने चारों पांडवों और उनके सहयोगियों को चक्रव्यूह में प्रवेश करने से रोक दिया था, आश्चर्य तब भी हुआ था सबको, किंतु उसे अस्वीकार कैसे

कर सकते थे। वह सबके सम्मुख घटित हुआ था।" संजय बोला, "वही बात आज भी हुई है।"

"आकाश पर बादल छा गए होंगे। लोगों ने मान लिया होगा कि संध्या हो गई है। सेनाएँ लौटने की तैयारी कर रही होंगी।" धृतराष्ट्र ने स्वयं को कुछ सँभालकर कहा, "और तभी मेघ उड़ गए होंगे। कृष्ण ने घोषणा कर दी होगी कि सूर्यास्त अभी नहीं हुआ है। पर उस मूर्ख जयद्रथ को इतनी जल्दी क्या थी कि वह अपने गुप्त स्थान से ही प्रकट नहीं हो गया, आकर अर्जुन के ही सामने खड़ा हो गया। सदा का अहंकारी और झगड़ालू। अर्जुन को चिढ़ाने आया था। बहुत आतुर रहता है दुर्योधन भी पांडवों को चिढ़ाने के लिए। क्या पाया था उसने घोषयात्रा में ? और क्या पाया जयद्रथ ने अर्जुन को चिढ़ाने के लिए सम्मुख आकर ?"

संजय उसे ध्यान से देखता रहा : वह अपनी बात कहे या मौन रह जाए ? धृतराष्ट्र यही मानना चाहता है तो यही मानता रहे। उससे किसी को क्या अंतर पड़ेगा ?

"तुम स्वीकार करना नहीं चाहते कि आकाश पर बादल घनीभूत हो गए थे और लोगों ने उसे संध्या मान लिया था ?" धृतराष्ट्र ने संजय को चुप रहने नहीं दिया।

"नहीं महाराज ! कल संध्या समय आकाश पर मेघों का कोई भटका हुआ खंड भी नहीं था।" संजय बोला, "आकाश स्वच्छ था। वैसे मेघ कितने भी सघन हो जाएँ, उनसे सूर्यास्त का भ्रम तो नहीं हो सकता।"

धृतराष्ट्र के चेहरे पर जो खीज जन्मी, वह भयंकर थी। संजय को लगा कि इस आवेश में धृतराष्ट्र उस पर आक्रमण भी कर सकता है। पर यह भी स्पष्ट था कि धृतराष्ट्र अपने आपसे निरंतर लड़ रहा था। थोड़ी ही देर में उसने स्वयं को नियंत्रित कर लिया, "अच्छा नहीं होंगे मेघ। निरभ्र आकाश रहा होगा; किंतु क्या तुम लोगों ने पता किया है कि कल सूर्यग्रहण तो नहीं था ?"

संजय को हँसी आ गई, पर उसने स्वयं को संयत किया, "आप कहते हैं तो महाराज ! मैं ज्योतिषियों से पता कर लूँगा। किंतु चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण इत्यादि पर विचार तो कई-कई वर्ष पहले से कर लिया जाता है। उसकी सूचना सार्वजनिक होती है। लोग उस दिन पूजा-पाठ और दान इत्यादि करते हैं। प्रत्येक घाट पर सहस्रों लोग स्नान कर रहे होते हैं। सूर्यग्रहण कोई ऐसी गोपनीय घटना तो नहीं है कि उसका किसी को ज्ञान ही न हो।" क्षण भर चुप रहकर संजय पुनः बोला, "और यदि हम यह मान भी लें कि कल सूर्यग्रहण था और सिवाय श्रीकृष्ण के और किसी को उसका पता नहीं था तो हमें यह भी मानना पड़ेगा कि श्रीकृष्ण ने बहुत पहले यह योजना बनाई होगी कि किस दिन अभिमन्यु का वध हो, उस दिन अर्जुन प्रतिज्ञा करे और अगले दिन अर्जुन सिंधुराज का वध करे। यदि उन्हें इतना कुछ ज्ञात ही था तो उन्होंने अभिमन्यु का वध क्यों होने दिया ? उसे बचाने का प्रयत्न क्यों नहीं किया ? यदि वे जानते थे कि अगले दिन सूर्यग्रहण होने वाला है तो उन्होंने अर्जुन को ऐसी भयंकर प्रतिज्ञा करने से रोका

क्यों नहीं ?"

"इन सव प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नहीं है।" धृतराष्ट्र के स्वर में फिर से रोष प्रकट हुआ, "पर यदि यह सब न मानकर तुमसे सहमत हो जाऊँ कि कृष्ण और कोई नहीं, स्वयं नारायण हैं, तो फिर इतना समारोह करने की क्या आवश्यकता है। उनकी तो इच्छा मात्र से दुर्योधन की मृत्यु हो सकती है। उनकी इच्छा मात्र से अभिमन्यु जीवित हो सकता है। उनके एक संकेत पर यह युद्ध रुक सकता है। वे पांडवों को राज्य देने के लिए नई सृष्टि रच सकते हैं। सुदर्शन चक्र से सूर्य को ढँकने की क्या बात है, वे सूर्य को आदेश दे सकते हैं कि वह थोड़ी देर तक अस्त रहकर पुनः उदित हो जाए।"

"हाँ ! यदि नारायण की इच्छा हो तो यह सब हो सकता है।" संजय ने कहा।

"तुम मुझे डरा रहे हो, किंतु मैं इन बातों से न डरना सीख गया हूँ। झूठ है यह। न सूर्य किसी के कहने से छुप सकता है, न प्रकट हो सकता है। तुम भी विदुर के ही मार्ग पर जा रहे हो।" धृतराष्ट्र ने कहा, "मैं इस सारी मूर्खता में विश्वास नहीं कर सकता।"

संजय के मन में अनेक विचार आ रहे थे।''' वह समझ रहा था कि दुर्योधन की हठ के महावट की जड़ें कहाँ हैं। उसके सम्मुख धृतराष्ट्र वैठा था, जो अंधा था, अपंग था, असहाय था, किंतु उसका अहंकार अपनी इच्छा के प्रतिकूल किसी सत्य को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। दुर्योधन तो फिर शरीर से स्वस्थ था, सैन्य संचालन कर सकता था, मित्र बना सकता था, षड्यंत्र रच सकता था''' वह कैसे स्वीकार कर लेता कि कृष्ण स्वयं नारायण थे अथवा नारायण के अंशावतार थे ? अंधा धृतराष्ट्र भी था और अंधा दुर्योधन भी था।

"मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं कर रहा महाराज ! कि कृष्ण नारायण हैं।" वह नम्र स्वर में बोला, "मैंने तो आपके कहने पर कल की घटनाएँ आपको सुनाई हैं। यह युद्ध का समाचार है स्वामी ! मैं इस समय ब्रह्म-चिंतन नहीं कर रहा।'''"

"तुम ब्रह्म-चिंतन नहीं कर रहे, तुम कृष्ण को नारायण सिद्ध नहीं कर रहे; किंतु तुम मुझे डराने का प्रयत्न कर रहे हो, ताकि मैं दुर्योधन पर दवाव डालूँ कि वह पांडवों को उनका राज्य दे दे।" धृतराष्ट्र ने कहा, "तुम भी विदुर के मार्ग पर ही जा रहे हो। मुझसे मेरी संपत्ति छीनने का प्रयत्न कर रहे हो। तुम्हारे मन को मैं जानता हूँ।"

"नहीं ! मैं ऐसा कोई प्रयत्न नहीं कर रहा।" संजय बोला, "जहाँ तक मेरे मन की वात है, मैं तो केवल यह जानने का प्रयत्न कर रहा हूँ महाराज ! कि श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप क्या है। जिस प्रकार वे राजनीति का संचालन करते हैं, उससे वे कुशल राजनीतिज्ञ लगते हैं। ऋषियों से चर्चा करते हैं तो ऋषि लगते हैं। द्रौपदी के सम्मान की रक्षा के लिए जो कुछ उन्होंने किया, कुरुओं की सभा में दुर्योधन इत्यादि को जिस प्रकार अचेत कर वे निकल गए और अर्जुन को जो उपदेश उन्होंने रणभूमि में दिया''' और अव अस्त सूर्य को पुनः उदित कर दिया''' इन सबसे उनको क्या समझें हम ?

क्या मानते हैं आप उनको ?"

"दुर्योधन मानता है कि वह एक तांत्रिक है।" धृतराष्ट्र बोला।

"दुर्योधन उन्हें तांत्रिक मानता है, पर मेरा प्रश्न है कि आप क्या मानते हैं ?" संजय बोला, "यद्यपि अपने समय के, अपने निकट के किसी हाड़-मांस के मनुष्य को ईश्वर अथवा ईश्वर का अवतार मानना बहुत कठिन है। हमारा अपना अहंकार उसमें आड़े आता है। उसकी सीमाएँ हमारा विश्वास जमने नहीं देतीं, किंतु कृष्ण क्या हैं… इसको समझने का प्रयत्न तो हमें करना ही होगा।"

"मैं कृष्ण को नारायण मान लूँगा तो तुम्हें उससे क्या लाभ हो जाएगा ?" धृतराष्ट्र ने एक चिड़चिड़ाए हुए वृद्ध के समान कहा।

"मुझे कोई लाभ नहीं होगा राजन् !" संजय बोला, "किंतु संभव है कि आपको कोई लाभ हो जाए। आपका अहंकार विगलित हो, आपका लोभ कम हो जाए। आपके मन में यह बात आ जाए कि इस संसार में जो कुछ भी है, वह ईश्वर से व्याप्त है। इसीलिए हमें त्यागपूर्वक भोग करना चाहिए। धन किसी का भी नहीं है। हमें उसका लोभ नहीं करना चाहिए।"

"तुमने लोभ किया होता तो तुम भी किसी राजवंश के प्रवर्तक होते संजय। अपने पीछे अपनी संतान के लिए तुम भी एक साम्राज्य छोड़ जाते।" धृतराष्ट्र ने कहा, "यह लोभ नहीं है, उपलब्धि है। उसे तुम नहीं समझ पाओगे।"

"तुम भी इसे समझ नहीं पाओगे राजन् !" संजय ने मन-ही-मन कहा, "ईश्वर की कृपा नहीं हुई है अभी तुम पर। अभी उसने तुम्हें सद्बुद्धि नहीं दी है। तुम्हें क्यों दिखाई नहीं देता कि जिसे तुम अपनी संतान के लिए साम्राज्य समझ रहे हो, वह उनकी मृत्यु ही नहीं, उनकी आत्मा के पतन का मूल कारण है।"

23

दुर्योधन का सारा उत्साह भंग हो गया था।

वह तो आज युद्ध को समाप्त करने पर ही तुला हुआ था। उसने विश्वास कर लिया था कि अर्जुन आज जयद्रथ का वध नहीं कर पाएगा और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चितारोहण कर मृत्यु को प्राप्त होगा। अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् पांडवों के लिए युद्ध का अर्थ ही क्या रह जाता।

सहसा वह चौंका… वह अपनी इच्छा को प्रकृति का सत्य क्यों मान लेता है। वह चाहता है कि अर्जुन की मृत्यु हो जाए, तो क्या अर्जुन की मृत्यु हो जाएगी ? वह चाहता है कि अर्जुन की मृत्यु के पश्चात् उसके सारे भाई आत्महत्या कर लें, तो क्या वे आत्महत्या कर लेंगे ? वह समझता है कि भीम उससे प्रतिशोध नहीं लेगा, आत्महत्या कर लेगा ?…

वह आज समझ पाया था कि इस संसार में अर्जुन से बड़ा योद्धा कोई नहीं है। विराटनगर में गोहरण के समय अकेले अर्जुन ने जो किया था, वही उसने आज यहाँ भी संभव कर दिखाया। विराटनगर में तो कुछ ही महारथी थे, उनके पास इतनी बड़ी संख्या में सेनाएँ भी नहीं थीं।''' आज यहाँ उससे भी कहीं अधिक विकट युद्ध हुआ था।''' फिर भी दुर्योधन ने कैसे मान लिया था कि कर्ण अर्जुन को पराजित कर देगा ? उसका वध कर देगा ? या फिर उसे संध्या समय तक कहीं भी रोके रहेगा ? कर्ण को तो आज भीम ने ही अनेक बार पराभूत कर दिया।'''

आचार्य का भी बहुत भरोसा था उसे। आचार्य को तो भीम उनके रथ सहित उठाकर, कहीं दूर फेंक आया था।''' सात्यकि भी लाँघ गया था आचार्य को।''' पर सच्चे अर्थों में तो दुर्योधन ने न कभी द्रोण का विश्वास किया था, न भीष्म का। उसका तो सारा बल कर्ण पर ही आश्रित था। जिसका भरोसा कर उसने शस्त्रास्त्रों का ऐसा संग्रह किया था, वही कर्ण पराजित हो गया। जिस कर्ण के पराक्रम का विश्वास कर उसने कृष्ण को भी तृण समान तुच्छ समझकर, न केवल उसके संधि प्रस्ताव को ठुकराया, उसको बंदी करने का भी प्रयत्न किया था, वही कर्ण पराजित हो गया।''' तो कर्ण की दिग्विजय का सत्य क्या है ? कर्ण को दिग्विजयी मानकर ही तो दुर्योधन ने इस युद्ध की नींव रखी थी। क्यों स्मरण नहीं आया दुर्योधन को कि घोषयात्रा के अवसर पर भी युद्ध में पीठ दिखाकर सबसे पहले भागने वाला योद्धा, कर्ण ही था। उस युद्ध में तो वह फिर लौट कर आया ही नहीं। दुर्योधन ने कर्ण की बातों पर इतना विश्वास कैसे कर लिया ? जो पितामह से वाग्युद्ध कर ले, वह उनको युद्ध में भी पराजित कर दे, यह आवश्यक तो नहीं। जो सभा में उनका अपमान कर दे, वह उन्हें युद्ध में भी पराभूत कर सके, यह आवश्यक तो नहीं।''' दुर्योधन ने क्यों मान लिया कि पितामह से प्रतिस्पर्धा करने वाला कर्ण उनके समान समर्थ योद्धा भी है।''' अर्जुन ने कभी पितामह का अपमान नहीं किया, युद्ध में भी नहीं; किंतु उसने शस्त्रबल में उन्हें पराजित किया।''' कर्ण ने केवल उद्दंडता की। अपना सामर्थ्य कभी प्रदर्शित नहीं किया।'''

तो फिर कहाँ जाए दुर्योधन ? वह पांडवों की श्रेष्ठता तो स्वीकार नहीं कर सकता। किससे सहायता माँगे ? अपने भाइयों का क्या आश्रय ले। उनमें से जो भी युद्ध में गया, वह लौट कर ही नहीं आया। विकर्ण तक मारा गया। दुःशासन बचा हुआ है, क्योंकि वह अभी तक भीम के हत्थे नहीं चढ़ा।'''

दुर्योधन को आचार्य के पास ही जाना होगा, उस हठी बुड्ढे के पास। वह जैसा भी है, समर्थ है। फिर उसके साथ अश्वत्थामा है, कृपाचार्य हैं। वे तीनों मिलकर बहुत कुछ कर सकते हैं।''' द्रोण का मुख देखने की भी इच्छा नहीं होती, किंतु युद्ध में तो वे ही समर्थ हैं।''' जिस कर्ण के कंधे पर सिर रखकर वह रोना चाहता है, वह कुछ भी करने में समर्थ दिखाई नहीं देता। दुर्योधन को लगा, वह एक बड़े द्वंद्व में फँस गया है।''' क्या करे ? उसी अप्रिय बुड्ढे के पास जाकर सहायता माँगे। उसकी चाटुकारिता

करे ? उसके पौरुप और गौरव को जगाने का प्रयत्न करे ?···

और कोई मार्ग नहीं था। यदि द्रोण को त्याग देने पर अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसकी ओर से युद्ध करते तो वह द्रोण के पास कभी नहीं जाता। पर वैसा संभव नहीं है। दुर्योधन जानता है कि द्रोण की उपेक्षा की भनक भी पड़ जाए, तो अश्वत्थामा और कृपाचार्य एक किनारे होकर खड़े हो जाएँगे। अश्वत्थामा उसका मित्र अवश्य है किंतु वह अपने पिता का न त्याग कर सकता है, न उनकी उपेक्षा सहन कर सकता है···

दुर्योधन ने हाथ जोड़कर आचार्य को प्रणाम किया। उसने उनके चरणों का स्पर्श नहीं किया।

"कैसे हैं आचार्य ?"

"एक भयानक पराजय की असफलता को झेलता हुआ सेनापति कैसा हो सकता है राजन् !" द्रोण ने कहा।

"शिखंडी भी उत्साह से भर कर युद्ध के मुख पर खड़ा है। शिखंडी ! जो पूरा पुरुप भी नहीं है। और हम सब वीर पुरुष अपने चेहरे लटकाए हुए भयभीत मूषक के समान अपनी विलों में छिपे बैठे हैं।" उसका स्वर कठोर हो गया, "आप जानते हैं कि जो लोग मेरी सहायता करना चाहते हैं, वे भी क्यों सहायता कर नहीं पाते ?"

हताश आचार्य ने अवसादपूर्ण दृष्टि उस पर डाली, "क्यों ?"

"वे स्वयं को अरक्षित मानते हैं। वे भयभीत हैं।" दुर्योधन बोला, "यदि हम उनमें सुरक्षा का भाव जगा सकते तो वे हमारी सहायता को आते, किंतु हम···।"

आचार्य ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा, किंतु कुछ कहा नहीं।

"आचार्य !" दुर्योधन का स्वर बहुत कातर था, "यदि आपने भरोसा न दिलाया होता तो मैं यह युद्ध कदापि आरंभ न करता। आपको पांडव इतने ही प्यारे थे तो मुझे भ्रम में क्यों रखा ?"

द्रोण ने दुर्योधन को देखा : अपने जीवन को गँवा कर पाया गया अपना सत्य वे इसे कैसे समझाएँ कि स्वार्थी व्यक्ति मूर्ख होता है, वह अपना हित अनहित कुछ नहीं समझता। जिसे अपना लाभ मानकर वह दुराग्रहपूर्वक लपकता है, अंततः वह उसकी हानि ही करता है; किंतु विवेकशून्य, चिंतनविहीन मूर्ख यह कैसे समझ सकता है कि लाभ और हानि किसे कहते हैं। कीचड़ में बिलबिलाता कीट स्वच्छता को श्रेष्ठ कैसे मान सकता है। और दुर्योधन तो स्वार्थी ही नहीं हठी भी है।··· क्या यह मूर्ख समझ सकता है कि द्रोणाचार्य झूठ नहीं बोल रहे, वे अपने दायित्व में प्रमाद नहीं कर रहे, वे किसी को धोखा नहीं दे रहे। वे धर्मपूर्वक युद्ध कर रहे हैं···

"तुम विश्वास कर सको तो कहूँ कि मैं अपनी क्षमता भर पूरी निष्ठा से युद्ध कर रहा हूँ।" वे शांत स्वर में बोले, "किंतु तुम्हारे अपने मन का कपट तुम्हें मेरा विश्वास करने नहीं देगा···"

'बुड्ढा भड़का अब।' दुर्योधन मन-ही-मन सोचकर हँसा, पर प्रकट रूप से अत्यंत

दीन होकर बोला, "कैसा कपट गुरुदेव ?"

"तुम्हारा अपना आचरण सत्य वचन और सत्य कर्म से परिचालित नहीं होता, इसलिए तुम समझते हो कि अन्य लोग भी तुमसे झूठ बोल रहे हैं।···" उन्होंने रुककर उसे देखा, "अब तुम जाओ। मैं पांडवों की प्रभावकारी हानि किए बिना आज अपना कवच नहीं उतारूँगा।"

दुर्योधन प्रणाम कर उठ खड़ा हुआ। वह जानता था कि द्रोण ने सच्चे हृदय से उसे वचन दिया है और अपनी प्रतिज्ञा पर वे अडिग रहेंगे; फिर भी उसके भीतर का उद्धत राजा हँसा, 'बुड्ढा यहाँ से तो मन पक्का करके चलता है पर पांडवों को देखते ही ढीला पड़ने लगता है, अपनी सेना को बचाता भी है, शत्रु सेना का नाश भी करता है; किंतु इतने आवेश में कभी भी नहीं आता कि अपनी सुध-बुध भूल जाए। उसका धर्म और विवेक सो जाए। वह साकार और मूर्तिमंत विनाश बन जाए। उसे हत्या और विनाश में सुख का अनुभव होने लगे। प्रत्येक वध के साथ उसकी अमानुषिकता बढ़े। वह रक्तपिपासु हो जाए। विनाश हेतु विनाश करे और जितना अधिक विनाश करे, उतना ही उसका मद उसे चढ़े···'

और सहसा द्रोण जैसे आपे में आए।

"तुमने वचन तो दे दिया द्रोण !" उनके भीतर से स्वर उठा, "वचन तुमने पहले भी दिए हैं।··· पर तुमने कभी सोचा कि यह सब क्या है ? क्यों है यह युद्ध ? किसका है यह युद्ध ? तुम इसमें क्या कर रहे हो ?"

यह दुर्योधन का युद्ध है, द्रोण का युद्ध नहीं है।··· पर द्रोण ने कौरवों का अन्न खाया है··· वे उस अन्न को अपने रक्त से चुका रहे हैं।···

उनके भीतर कोई हँसा : क्या सीधा तर्क है··· अन्न ! और अन्न के स्थान पर रक्त··· ऐसा तर्क तो एक साधारण सैनिक भी नहीं करता··· क्षत्रिय का तो व्यवसाय ही शस्त्र व्यवसाय है—वह भी लड़ता है तो न्याय के लिए लड़ता है··· अपने देश के लिए, समाज के लिए, उनकी रक्षा के लिए, उनके अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ता है··· बिना सिद्धांत के, बिना आदर्श के, मात्र वेतनभोगी सैनिक बहुत सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता। वह तो भाड़े का सैनिक है।···

और तुम तो ब्राह्मण हो द्रोण ! शस्त्रव्यवसाय तुम्हारा व्यवसाय नहीं है। तुमने ज्ञान के रूप में शस्त्रविद्या सीखी थी। तुम आचार्य थे उस विद्या के।··· तुम गुरु के रूप में आए थे कुरुकुल में। पर तुम क्या हो यहाँ ? गुरु ? आचार्य ?··· क्या हो ? तुम इनमें से कुछ भी नहीं हो। तुम्हें पांडवों ने गुरु का सम्मान दिया हो, तो दिया हो, दुर्योधन ने तुम्हें न कभी गुरु का सम्मान दिया, न गुरु माना। उसने तुम्हें गुरु माना होता तो वह सच्चे मन से तुम्हारे चरणों में बैठकर तुमसे पूछता कि यह युद्ध छेड़ा जाए या नहीं ?··· वह तुम्हें इस प्रकार आदेश देने का साहस नहीं करता। वह तुम्हें संबोधित चाहे गुरु कह कर करे, या आचार्य कहकर; किंतु तुम्हारे प्रति उसका व्यवहार और तुमसे उसकी

अपेक्षाएँ वैसी ही हैं, जैसी कोई अपने वेतनभोगी सेनापति से करता है। आदेश पर आदेश, और फिर बलात् कराई गई प्रतिज्ञाएँ। फिर उपालंभ, अविश्वास ... क्या है यह सब—मधुवेष्टित धमकियाँ, अपमान... पदच्युत क्यों नहीं कर देता दुर्योधन उन्हें। सेनापति के काम से राजा संतुष्ट नहीं है तो उसे अधिकार है कि वह उनसे सेनापति के अधिकार छीन ले; और अपने विश्वास का, भरोसे का, सेनापति नियुक्त करे... पर क्यों करेगा वह ऐसा ! वह तो चाहता है कि द्रोण अपने दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर एक महाप्रलय मचा दें... दिव्यास्त्र... जिनका रहस्य ये राजा, सेनापति और सैनिक नहीं जानते;... जो असाध्य प्रयत्नों के बाद, आयु का एक बड़ा मूल्य चुका कर देवशक्तियों से प्राप्त किए गए हैं... उन दिव्यास्त्रों का प्रयोग द्रोण उन योद्धाओं पर करें, जो न उनका परिचालन जानते हैं, न निवारण। इसमें कहाँ है धर्म ? कहाँ है वीरता ? कहाँ है द्रोण का आचार्यत्व... किसलिए प्रभु की बनाई अमूल्य सृष्टि का नाश करें द्रोण... केवल इसलिए कि पापी और अन्यायी दुर्योधन अधर्मपूर्वक यह युद्ध जीत सके और अन्यायपूर्वक पांडवों और अन्य राजाओं का राज्य छीन सके। उनकी सत्ता और लक्ष्मी हथियाकर उसका अबाध भोग कर सके। किसी के भी साथ दुर्व्यवहार कर सके, जैसा उसने पांडवों के साथ किया था, सिंहासनारूढ़ किरीटधारी राजाओं को वैसा ही निरीह कर दे, जैसा उसने धृतराष्ट्र को कर रखा था; और किसी भी नारी को अपनी मदांधता के उल्लास के लिए भरी सभा में निर्वस्त्र कर दे, जैसे पांचाली को करने का प्रयत्न किया था, किसी भी ब्राह्मण को अपने टुकड़ों पर पलने वाला भृत्य बना दे, जैसे उसने द्रोण और कृप को बना रखा है... आचार्य राजा का आज्ञापालक कर्मचारी हो जाएगा तो राजा को अत्याचार करने से कौन रोकेगा ? उसके मद का प्रतिकार कौन करेगा ? प्रजा को राजा के अत्याचार से मुक्ति कौन दिलाएगा ?...

और यह सारा पाप क्यों करें द्रोण ?

क्या मिलेगा द्रोण को ?

राज्य ? सुख भोग ? सत्ता ? धन ? मद ? अहंकार ?

किसी जीव को सागर में उतार दिया जाए कि पी ले जितना जल पीना है। कितना जल पिएगा वह ? पात्र अपनी क्षमता भर ही तो जल समेटेगा।... और फिर जीव हो या पात्र। काल प्रवाह में खाली हो जाएगा। जल वापस सागर में पहुँच जाएगा।... अपने इस पचासी वर्ष के वय में क्या भोग पाएँगे द्रोण ?... जब समय था, तब या तो उपलब्ध ही कुछ नहीं था...या उन्होंने स्वयं को साधना के बंधनों में बाँध रखा था... प्रकृति कैसी लीला करती है मनुष्य के साथ।... कुछ ऊँचा उठना है, कुछ बड़ा बनना है तो अपने आसपास के उपलब्ध सुखों की उपेक्षा कर, पहले स्वयं को वंचित कर, फिर आगे बढ़। स्वयं को वंचित नहीं करेगा तो आगे भी नहीं बढ़ेगा।... और जब साधना का काल समाप्त हो जाए तो न भोग के लिए उपयुक्त वय रह जाता है, न मनःस्थिति।... और महानता की मर्यादा ?... बड़प्पन के बंधन ? वे कोई सुख भोग सहन नहीं करते... ऋषि,

स्त्री की कामना करे अथवा धन संपत्ति की, वह शासन की कामना करे या सत्ता की··· कितना हास्यास्पद हो जाता है वह ! जहाँ, जब और जिस किसी भी स्थिति में जिसने भोग किया, उसका पतन आरंभ हो गया।··· पांडव वनों में मारे-मारे फिरते रहे··· उनकी आत्मा का मल कटता गया, उनकी साधना वर्द्धमान होती गई, उन्हें सिद्धियाँ मिलती गई, उपलब्धियाँ होती गईं··· वह पांडवों का वंचना-काल था अथवा उपलब्धि-काल ?···और दुर्योधन अपने प्रासाद में बैठा सुख भोगता हुआ भी ईर्ष्या और द्वेष से जलता रहा, उसका मद और अहंकार बढ़ता गया, उसकी आत्मा कलुपित होती गई··· उसके मन में राज्य छिन जाने का भय और पांडवों के लौट आने का त्रास तांडव करते रहे। क्या सुख भोगा होगा दुर्योधन ने ? अपनी आत्मा, मन और हृदय में उसने मल का पहाड़ संचित कर लिया होगा··· फिर क्या पाया दुर्योधन ने ? क्या उपलब्धि है उसकी ?··· तो क्यों द्रोण छोड़ नहीं देते दुर्योधन को ? क्यों वे बार-बार उससे अपमानित होकर भी उसके पाप में भागीदार हो रहे हैं ?··· इस वय में अब सब कुछ उनके लिए यातना है—राज्य, सेना, सत्ता, संपत्ति, स्त्री··· सब कुछ ।··· तो क्या वे यह सब कुछ अश्वत्थामा के लिए चाहते हैं ?··· पर अश्वत्थामा तो स्वयं अपने लिए ही कर रहा है। वह अपना रक्त बहा रहा है, शत्रुओं का संहार कर रहा है, दुर्योधन को विजय दिला रहा है। वह अपने ज्ञान, कला कौशल, श्रम, स्वामिभक्ति, मित्रता—सबका फल पाएगा। तो उसके लिए क्यों चिंतित हों द्रोण ?

क्यों है फिर यह सब ? केवल द्रुपद के भय से ? या अपनी प्रतिहिंसा के कारण ?··· द्रुपद ने आश्रय तो दे ही दिया था। आश्रय ! हाँ ! द्रुपद एक राजा के रूप में एक तापस ब्राह्मण को आश्रय तो दे ही रहा था—अपने गुरु भाई, सहपाठी द्रोण को मित्रता देने को तैयार नहीं था।··· तो जाग उठी थी द्रोण की प्रतिहिंसा ! द्रोण का अपमान ! शस्त्रास्त्रों के अद्भुत ज्ञाता, युद्धकला के पंडित द्रोणाचार्य के साथ मित्रता नहीं कर सकता था द्रुपद।··· पर क्या अनुचित कहा था द्रुपद ने ? द्रोण को हस्तिनापुर में भी आश्रय ही मिला—आश्रयदाता चाहे भीष्म हों, धृतराष्ट्र हों, या दुर्योधन हों। पर यहाँ द्रोण की प्रतिहिंसा नहीं जागी। उनका अहंकार तो क्या, कभी स्वाभिमान भी पीड़ित होकर नहीं जागा··· क्यों ? क्या इसलिए, क्योंकि उनकी प्रतिहिंसा अपना लक्ष्य पाने के लिए कोई भी अपमान सहने के लिए द्रोण को तैयार कर चुकी थी···

वे द्रुपद को डराने के पश्चात् स्वयं भी डर गए। उसका राज्य छीनकर, अपने राज्य के छिन जाने के भय के कारण हस्तिनापुर से चिपककर रह गए। हर प्रकार के अन्याय, अत्याचार और अधर्म को देखते हुए भी इस राक्षसी नगरी में जीते रहे और इसी नगरी में, इसके इस पापी राजा दुर्योधन ने उनके पुत्र अश्वत्थामा को संस्कार दिए।··· आज अश्वत्थामा में ब्राह्मणपुत्र··· विशेष रूप से द्रोण जैसे आचार्य के पुत्र का तो एक भी संस्कार नहीं है··· और अब दुर्योधन चाहता है कि वे अपने सारे दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर अपने प्रिय शिष्यों··· पांडवों के साथ-साथ, अपने राजाओं के लोभ या भय की बलिवेदी

पर मिटने के लिए आए हुए उन असंख्य निरपराध निरीह सैनिकों का भी नाश कर दें। ईश्वर की सृष्टि का नाश··· व्यर्थ, अकारण, बिना किसी लाभ अथवा लोभ के ?

द्रुपद के एक शब्द 'आश्रय' से जागी प्रतिहिंसा के कारण पहले ही कम पाप नहीं हो चुका । अब यदि दुर्योधन की बातों में आकर अपनी क्षमता प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अपने दिव्यास्त्रों से नरसंहार किया तो जाने इस पाप का परिणाम क्या होगा ?···

द्रोण को लगा द्रुपद के जीवित रहते, द्रोण द्रुपद की विपक्षी सेना से पृथक् नहीं हो सकते। कोई यह न कह सके कि द्रोण, द्रुपद से डरकर युद्ध छोड़ गए··· तो क्यों न वे द्रुपद का वध कर युद्ध से अलग हो जाएँ। उनकी प्रतिहिंसा का जो अंश उनके मन में रह गया है, वह भी शांत हो जाए।··· हाँ ! अपने शत्रु पक्ष से लड़ते हुए द्रुपद का वध करने के बाद किस बात की लालसा रह जाएगी, उनके मन में ?··· राज्य, सत्ता, सुख-समृद्धि, वैभव और भोग—सबका रहस्य खुल गया है उनके सामने··· इस वय में, इस शरीर और मन को अब और कुछ नहीं चाहिए··· अहंकार के मद का विगलन ही उनका एकमात्र लक्ष्य रह जाएगा।···

··· हाँ ! अश्वत्थामा का ममता भी उनके मन में है।··· एक द्रुपद का वध कर दें और अश्वत्थामा को सब कुछ सौंपकर इस प्रपंच से अलग हो जाएँ।···

"पितामह ने स्वयं अपनी मृत्यु स्वीकार कर ली और आप भी हमारी उपेक्षा कर रहे हैं, क्योंकि आप अर्जुन से प्रेम करते हैं।" दुर्योधन बोला, "ऐसे में किसके बल के भरोसे कोई हमारी सहायता करेगा। पांडवों के पक्ष का एक भी योद्धा हमारा कल्याण नहीं चाहता, किंतु हमारे सारे योद्धा या तो मन से पांडवों का कल्याण चाहते हैं, या फिर संशय में हैं। एक कर्ण ही है, जो सच्चे हृदय से मेरी विजय चाहता है।"

"पर वह पराजित होता है और भाग जाता है।" द्रोण का स्वर अनचाहे ही वक्र हो गया।

"मैंने अपने मित्रों को परखे बिना ही उन्हें अपने कार्य पर नियुक्त करने की मूर्खता की है।" दुर्योधन रुआँसा हो गया, "जिन्हें मैंने अपने परम हितैषी माना, उन्होंने ही मेरा नाश कर डाला। अपने शत्रुओं से उनका मोह टूटता ही नहीं, तो वे करेंगे भी क्या।"

द्रोण ने ध्यान से उसकी ओर देखा। वे पूछना चाह रहे थे कि उसका संकेत उनकी ओर तो नहीं है ? पर उन्होंने पूछा नहीं।

"भीष्म स्वेच्छा से शरशैया पर लेट गए हैं। जयद्रथ मारे गए। कर्ण पराजित हो गया। कहीं बैठा अपने अश्रुओं को सुरा में डुबो रहा होगा।" दुर्योधन रुक गया और फिर उसने जैसे ब्रह्मास्त्र छोड़ा, "आप पांडवों के गुरु हैं। अपने शिष्यों का अहित कभी नहीं चाहेंगे। तो फिर मेरे लिए विकल्प ही क्या है ? केवल आत्महत्या ही तो। आप जानते हैं कि मैं पांडवों से संधि नहीं कर सकता।"

"क्यों नहीं कर सकते संधि ?" द्रोण जैसे तड़पकर बोले।

"क्योंकि मैं उनका दास बनकर नहीं रह सकता।" दुर्योधन के अश्रु प्रकट हो गए

और उसका स्वर रुँध गया, "आप समझते हैं कि मैं संधि स्वीकार कर लूँ तो भीम मेरे साथ संधि कर लेगा ? वह मेरी जंघा नहीं तोड़ेगा ? वह दुःशासन के वक्ष को फाड़कर उसका रक्त नहीं पिएगा। पांचाली चुपचाप अपनी वेणी बाँध लेगी ? वह अपने केशों को धोने के लिए दुःशासन के वक्ष का रक्त नहीं माँगेगी ?"

द्रोण स्तब्ध बैठे रह गए। कदाचित् दुर्योधन सत्य ही कह रहा था। भीम उससे कभी संधि नहीं करेगा।

"पर राजा तो युधिष्ठिर है।" वे सायास बोले, "भीम को उसकी आज्ञा का पालन करना होगा। पत्नी अपने पति के आदेश से बाहर कैसे हो सकती है ?"

"तो फिर न आप भीम को जानते हैं, न पांचाली को।" दुर्योधन बोला, "भीम तो उस दिन द्यूतसभा में ही नकुल को अग्नि लाने के लिए कह रहा था, ताकि वह युधिष्ठिर के हाथ जला सके।··· और पांचाली··· !" उसने अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया।

"और पांचाली ?"

"वह पत्नी होते हुए भी पांडवों की प्रेयसी है। यह भी आपको बताना पड़ेगा क्या कि पत्नी, अपने पति की आज्ञा का पालन करती है; किंतु प्रेमी अपनी प्रेयसी की इच्छाओं का दास होता है।"

द्रोण को लगा कि वे और दुर्योधन जैसे एक ही नौका में बैठे हैं। द्रोण भी चाहते हैं कि वे पांचालों को मार डालें और पांडव उन्हें स्वीकार कर लें। दुर्योधन भी कहीं चाहता है कि वह भीम और अर्जुन का वध कर दे और युधिष्ठिर उससे उसकी इच्छानुसार संधि कर ले। ऐसा संभव है क्या ?

"कृपाचार्य भी आज के युद्ध में क्षतविक्षत हो गए हैं।" दुर्योधन बोला, "पता नहीं जीवित भी बच पाएँगे या नहीं। वैद्यों और शल्यचिकित्सकों ने अभी ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया है। यदि जीवित बचेंगे तो जाने कब तक उनका उपचार होगा और कब वे युद्ध में लौट पाएँगे। ऐसे में मेरी ओर से युद्ध करने वाला है ही कौन। भीम की लात खाने से तो अच्छा है कि मैं अपने प्राण दे दूँ। मैं मर जाऊँ तो आप भी सुविधा से पांडवों के पक्ष में जा सकते हैं, जैसे युयुत्सु गया है।···"

द्रोण को लगा, दुर्योधन का यह वाक्य उनको बहुत भीतर तक चीर गया है। दुखी कर दिया दुर्योधन ने। ऐसे दीन तो वे सामान्यतः नहीं होते। असहायता की ऐसी मानसिकता—यह कदाचित् उनकी वृद्धावस्था के ही लक्षण हैं।

"ऐसे क्रूर वचनों से मुझे आहत क्यों कर रहे हो तुम। मैंने और भीष्म ने सदा यही कहा है कि अर्जुन अजेय है। उसके द्वारा सुरक्षित होकर शिखंडी भी भीष्म को धराशायी कर सकता है।" द्रोण ने रुककर एक दृष्टि दुर्योधन पर डाली, "तुम्हें अपने पापों का फल मिलना ही था। यहाँ नहीं मिलता तो परलोक में इससे भी कठोर होकर मिलता।"

"मुझे तो अपने पापों का फल मिलना था, पर आपको किसका फल मिल रहा

है ?" दुर्योधन का दर्प प्रकट हुआ, "अर्जुन आपको कैसे लाँघ गया। वह किसके पापों का फल था ?"

"तुमने अपने सर्वश्रेष्ठ महारथियों के साथ अर्जुन को घेर लिया था, तो फिर पराजित कैसे हो गए—मेरे पापों के कारण ?" द्रोण तड़प उठे, "तुम्हारे अपने बनाए अवरोध के भीतर से तुम्हारा आश्रित जयद्रथ कैसे मारा गया—मेरे पापों के कारण ? मुझे अपने पापों ने मृतप्राय कर दिया था, किंतु तुम और कर्ण तो नहीं मर गए थे। शल्य, कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा तो जीवित थे। तो कैसे मारा गया सिंधुराज ? जयद्रथ की रक्षा में असमर्थ रहे तुम और वाग्बाण मुझे मार रहे हो। मैं स्वयं कम संतप्त हूँ क्या ?"

आचार्य मौन हो गए। वे कहना चाह रहे थे कि उन्हें तो अब अपने ही जीवन की सुरक्षा का कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ रहा था। वे जानते थे कि अर्जुन उनका वध नहीं करेगा। भीम ने भी चाहे उनका रथ उठाकर फेंक दिया था; किंतु उनका वध करने की उसकी भी इच्छा नहीं होगी।... पर धृष्टद्युम्न अपने पिता के अपमान को कभी नहीं भूलेगा। वह उन्हें क्षमा नहीं करेगा। उसका वध नहीं हुआ तो वह आचार्य का वध अवश्य कर देगा।... और आचार्य इन पांचालों के वध में स्वयं ही असमर्थ होते जा रहे थे। दुर्योधन केवल अपने विषय में ही जानता था। वह अपने शत्रुओं को पहचानता था। वह अपने युद्ध और उसके लक्ष्य के विषय में जानता था। उसने कब सोचा था कि अन्य लोग किसका युद्ध लड़ रहे हैं। वह अपने शत्रुओं को मारना चाहता था और भूल जाता था कि द्रोण के भी कुछ शत्रु थे और उनका मरना, द्रोण के लिए भी आवश्यक था। यदि पांचाल नहीं मरेंगे तो द्रोण धृष्टद्युम्न के संकल्प में डूब जाएँगे। उनकी मृत्यु हो गई तो जाने अश्वत्थामा क्या करेगा।...

"मैं जानता हूँ कि आप संतप्त हैं आचार्य ! किंतु उसका प्रतिकार करने के लिए उद्यम भी तो आप ही को करना होगा।... आप कुछ नहीं करेंगे तो पांडव मुझे मार डालेंगे और पांचाल आपको।" उसने द्रोण की ओर देखा, "मैंने सेनापति के रूप में आपका अभिषेक किस प्रयोजन से किया था ?"

आचार्य के सम्मुख फिर वही धृष्ट दुर्योधन खड़ा था।

"तुम युद्ध की कठोरता को अभी क्या जानते हो।" द्रोण बोले, "जाकर कृपाचार्य से पूछो, जिन्होंने तुम्हारे लिए घाव खाए हैं। यदि वे जीवित हैं और जयद्रथ के मार्ग पर नहीं चले गए हैं तो मैं उनका अभिनन्दन करना चाहूँगा। उतने बाण तुमको लगे होते तो तुम कब के जाकर अपने रंगमहल में सो गए होते।"

दुर्योधन को लगा कि आचार्य बोल तो गए हैं; किंतु शायद अब उन्हें पश्चात्ताप हो रहा है।... पर आचार्य के मन ने अभी अपना सारा लावा नहीं उगला था। बोले, "तुमने कर्ण से बहुत कुछ सीख लिया है। जहाँ युद्ध कुछ कठोर हुआ अथवा परिस्थितियाँ कुछ विपरीत हुईं, तुम भी कहीं और चले जाते हो। फिर स्वयं को क्षत्रिय कहते हो।"

दुर्योधन की जिह्वा जैसे उसके नियंत्रण में नहीं रही, "आप स्वयं को ब्राह्मण कहते

हैं। कितनी बार वचन दिया आपने कि आप युधिष्ठिर को बंदी कर लाएँगे ? किया बंदी युधिष्ठिर को ? आप कौरव सेनाओं के संचालक हैं। आप उनके सेनापति हैं, पर क्या किया आपने ? हमने तीन-तीन दिन तक अर्जुन को युधिष्ठिर से दूर रखा, किंतु युधिष्ठिर को बंदी किया आपने ? मुझे मेरे क्षत्रियत्व की लाज स्मरण करा रहे हैं, सेनापति के रूप में आपने ही क्या कर दिखाया है ?"

इस बार द्रोण मौन खड़े दुर्योधन को देखते रहे।

"कुछ कहते क्यों नहीं ?"

"वह वचन मेरा नहीं था। तुमने बलात् मुझसे वचन उगलवाया था। अब मैं तुम्हें अपने मन से वचन देता हूँ।" द्रोण बोले, "सारे पांचालों को मारे बिना मैं अपना कवच नहीं उतारूँगा। अश्वत्थामा से कहना कि युद्ध में अपनी रक्षा करते हुए, जैसे भी हो, सोमकों को जीवित न छोड़े। मैंने पिता के रूप में उसे जो उपदेश दिया है, उसका पालन करे। दया, दम, सत्य और सरलता आदि सद्गुणों में स्थिर रहे।" उन्होंने स्थिर दृष्टि से दुर्योधन की ओर देखा, "तुममें साहस और सामर्थ्य हो तो तुम सेना की रक्षा करना। मैं निर्णायक युद्ध के लिए जा रहा हूँ। आज रात्रि हो जाने पर भी युद्ध बंद नहीं होगा। आज रात्रि में भी क्रुद्ध कौरव और सृंजय युद्ध करेंगे। जो तुमसे हो सके, तुम करो और जो तुम्हारा मित्र कर्ण कर सके, वह कर ले।"

दुर्योधन सोचता रहा कि उसने उचित किया अथवा नहीं। वह इससे पहले भी द्रोण से बहुत कुछ कह चुका था, किंतु उन्हें इतने आक्रोश में उसने कभी नहीं देखा था।... सत्य ही वे पांचालों का विनाश किए बिना कवच नहीं उतारेंगे ?... पर क्या पता है इस बुड्ढे का। रथारूढ़ होते ही उसे फिर से अपने प्रिय पांडवों का स्मरण हो आए।... कहीं ऐसा तो नहीं कि भीतर ही भीतर, वह पांडवों से मिल गया हो और इस प्रतीक्षा में हो कि दुर्योधन मारा जाए और वह पांडवों से जा मिले। भितरघात कर, दुर्योधन को पराजित करवाने का कोई पुरस्कार भी मिल सकता है उसको।

उसकी खिन्नता दूर नहीं हुई तो वह कर्ण के मंडप में चला आया।

कर्ण के चिकित्सक उसके घाव स्वच्छ कर उस पर औषधियाँ लगा रहे थे।

"आओ मित्र !" कर्ण ने कहा, "कुछ खिन्न लग रहे हो।"

दुर्योधन के मन में खीज उठी।... लोग अभी पूर्णतः रणभूमि से लौटे भी नहीं हैं; और कर्ण ने अपना कवच उतारकर उपचार भी आरंभ करवा दिया है। इतनी त्वरा किस बात की थी ? कोई ऐसा घातक घाव भी नहीं लगा है उसे, जिसके तात्कालिक उपचार की आवश्यकता होती।

"खिन्नता का कोई कारण नहीं है क्या ?" दुर्योधन कुछ मुखर हुआ, "जयद्रथ का मारा जाना, एक प्रकार से हम सबके लिए पराजय का पूर्व संकेत है।"

"नहीं ! ऐसा तो कुछ नहीं है।" कर्ण बोला, "एक से एक बड़ा योद्धा मारा जाता

है, युद्ध में। उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वह राजा भी हार जाएगा और सेना भी नष्ट होगी। हमने तो भीष्म के मरने पर भी यह स्वीकार नहीं किया कि दुर्योधन की पराजय होगी।"

दुर्योधन को आश्चर्य हुआ, कर्ण हताश नहीं लग रहा था। जयद्रथ के वध से वह वैसा दुखी भी नहीं था। तो फिर दुर्योधन ही इतना विचलित क्यों था ?

"ठीक है वह सब। पर मैं आचार्य की नीति से दुखी हूँ। मैं वर्षों से उनका और उनके परिवार का पालन-पोषण इसलिए तो नहीं कर रहा था कि युद्ध की स्थिति में वे मेरे साथ ऐसा व्यवहार करें।"

"ऐसा क्या कर दिया आचार्य ने ?" कर्ण ने कुछ विनोदी ढंग से पूछा, "आज तो उनके श्यालक कृपाचार्य ने तुम्हारे लिए बहुत रक्त बहाया है।"

"यदि द्रोण अपनी पूरी क्षमता से अर्जुन को रोकने का प्रयत्न करते तो वह उनके दुर्भेद्य व्यूह को कैसे तोड़ सकता था।"

"पर यह सत्य है कि अर्जुन ने उनका व्यूह तोड़ा।"

"नहीं ! सत्य यह है कि अर्जुन उनका प्रिय शिष्य है और उन्होंने युद्ध किए बिना ही उसे सेना में घुसने का मार्ग दे दिया।"

कर्ण ने कुछ नहीं कहा।

"इतना ही नहीं।" दुर्योधन अपने आवेश में बोला, "कल जयद्रथ सिंधुदेश लौट रहा था, इस ब्राह्मण ने उसे रक्षा का आश्वासन देकर रोक लिया और आज उसे मरवा डाला।"

"आचार्य की निन्दा मत करो।" कर्ण ने कहा, "वह ब्राह्मण तो अपने बल, शक्ति और उत्साह के अनुसार अपने प्राणों का भी मोह छोड़कर युद्ध करता है।"

दुर्योधन सावधान न होता तो आश्चर्य से उसका मुख अवश्य खुल जाता। कर्ण के मुख से ऐसी बात सुनने की वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। द्रोण ने कर्ण को अपना शिष्य स्वीकार नहीं किया था; और कर्ण ने आज तक द्रोण को उनके व्यवहार के लिए क्षमा नहीं किया था।

"द्रोण बूढ़े हुए।" कर्ण बड़ी सद्भावना से बोला, "वे बेचारे तो शीघ्रता से चलने में भी असमर्थ हैं। तुम्हारे लिए युद्ध कर रहे हैं, यही क्या कम है। भुजाओं द्वारा परिश्रमपूर्वक की जाने वाली चेष्टाओं में अब उनकी शक्ति उतना काम नहीं करती। अस्त्रवेत्ता और पांडवों के गुरु होने पर भी द्रोण पांडवों को युद्ध में जीत नहीं पाएँगे।"

दुर्योधन समझ रहा था कि कर्ण की सहानुभूति में भी आचार्य का तिरस्कार था। पर आज उसके स्वर में पांडवों की प्रशंसा का भाव भी था।

"युद्ध तो हम भी जी जान से कर रहे हैं, पर हमें निराशा ही क्यों हाथ लग रही है ?" दुर्योधन समझ नहीं पाया कि यह प्रश्न उसने कर्ण से पूछा है अथवा यह उसका वाचिक चिंतन मात्र था।

"अपना ही पूर्वकृत कर्म भाग्य बनकर हमारे सामने खड़ा हो जाता है।" कर्ण की मुद्रा कुछ दार्शनिक हो गई थी, "हमारे कर्म, छल, कपट और पराक्रम को दैव पीछे धकेल रहा है।"

दुर्योधन से जैसे यह कर्ण पहचाना ही नहीं जा रहा था। यह तो कोई और ही हो गया लगता था। आज क्या हो गया था उसको ? वह दुर्योधन का कहीं भी समर्थन करने को तैयार नहीं दीखता था।··· दुर्योधन ने तो द्रोण के पांडवों से मिल जाने की संभावना की चर्चा की थी। पर कर्ण··· वह आज दिन भर भीम और अर्जुन से पिटा था। उसके शरीर पर अनेक घाव लगे थे। वह बार-बार पराजित और अपमानित हुआ था। फिर, जिस जयद्रथ की रक्षा के लिए वह युद्ध कर रहा था, वह जयद्रथ भी मारा गया।··· उस पर भी यह न तो दुखी दीख रहा था, न ही इस समय उसका रक्त क्रोध से खौल रहा था।··· यह तो कर्ण के व्यवहार के अनुकूल नहीं था। पांडवों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष से कंठ तक भरा हुआ कर्ण आज द्रोण का बचाव कर रहा था, पांडवों की वीरता की प्रशंसा कर रहा था; और अपने ही कृत्यों को छल, कपट और पाप बता रहा था।··· अवश्य ही कहीं कोई बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है।···

दुर्योधन बाहर निकल आया। उसका विषाद बढ़ता जा रहा था। द्रोण के सम्मुख तो उसने अपने मन की भड़ास ही निकाली थी। वह उनको कुछ भी करने में असमर्थ मान चुका था। पर आज तो उसे कर्ण से भी कोई सहारा नहीं मिला था। उसका अहंकार इस प्रकार आहत और अपमानित होकर नहीं जी सकता था।··· उसका अवसन्न मन इस समय या तो युधिष्ठिर का मस्तक काट लेना चाहता था या फिर अपने ही प्राण दे देना चाहता था। यह युद्ध बंद ही क्यों हुआ। अंधकार हो गया तो क्या ? संसार तो नष्ट नहीं हो गया, न ही कौरवों की सेना समाप्त हो चुकी है।··· और यदि ऐसा हो भी जाए तो दुर्योधन क्या पांडवों की विजय को स्वीकार कर चुपचाप अपने शिविर में लौट जाएगा। उससे पहले ही आत्महत्या कर लेगा।···

पर तब क्यों ? उस स्थिति की प्रतीक्षा ही क्यों ? वह आज ही अपने प्राण क्यों नहीं दे देता ? इस प्रकार की अपमानजनक पराजय के पश्चात् वह पांडवों के सम्मुख कैसे पड़ सकता है। किसी और के लिए यह युद्ध समाप्त हो गया होगा, किंतु उसके लिए अभी यह समाप्त नहीं हुआ है। तब तक समाप्त नहीं होगा, जब तक या तो ये सारे पांडव मर न जाएँ अथवा स्वयं दुर्योधन ही वीरगति को प्राप्त न कर ले।

पांडवों की सेना अभी युद्धक्षेत्र से पूरी तरह हटी नहीं थी। उनकी गति पर्याप्त मंथर थी। जाने वे किस कारण से क्रमशः लौट रहे थे।··· पर वे अभी तक समरभूमि में थे। दुर्योधन की मनःस्थिति इस समय इतनी आक्रामक हो रही थी कि यदि पांडव युद्धक्षेत्र में न भी होते, तो वह उनके स्कंधावार पर आक्रमण कर सकता था।

दुर्योधन अपना रथ दौड़ाता हुआ कलिंग राजकुमार के शिविर में पहुँचा।

कलिंग राजकुमार ने शायद अपना कवच अभी खोला ही था। उसने दुर्योधन को आया देखा तो चकित रह गया, "युवराज आप ?"

"राजकुमार ! तुम अपने पिता की मृत्यु से दुखी हो ?"

"बहुत दुखी हूँ।" राजकुमार ने कहा, "प्रतिशोध की ज्वाला से जल रहा हूँ।"

"तो अपनी गजसेना लेकर अभी, इसी समय पांडवों की सेना पर आक्रमण कर दो।"

"अभी ?" कलिंग राजकुमार ने आश्चर्य से पूछा, "अंधकार हो चुका है। सूर्यास्त के पश्चात् युद्ध करना आर्य मर्यादा के अनुकूल नहीं है।"

"न हो। जय उसकी होती है, जो अपने शत्रुओं को मार डालता है। उससे कोई पूछने नहीं आता कि उसने अपने शत्रुओं को कैसे मारा। मुझे मर्यादा नहीं, विजय चाहिए।" दुर्योधन बोला, "तुम्हें अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेना है तो आक्रमण करो। पांडवों की सेना अभी युद्धक्षेत्र से हटी नहीं है। यदि हट गई होती तो हम उनके स्कंधावार पर आक्रमण करते।" दुर्योधन ने उसके चकित मुख को देखा, "चकित मत होओ। आचार्य द्रोण भी या तो कहीं युद्ध कर रहे होंगे अथवा अभी युद्ध करने आ जाएँगे। महावीर कर्ण भी आता ही होगा।"' और मैं तो पांडव सेना में प्रवेश करने ही वाला हूँ, चाहे मेरी मृत्यु ही क्यों न हो जाए। मुझे पराजित जीवन नहीं चाहिए।" वह मुड़ा और सहसा रुककर बोला, "युद्ध के नियमों का पालन वहीं तक करो, जहाँ तक वे तुम्हें विजय दिला सकते हैं। युद्ध का एक ही नियम है—विजय !"

कौरवों की गजसेना पांडव सेना का उल्लंघन कर सब ओर से प्रहार करने लगी। पांडवों को पहले तो समझ में ही नहीं आया कि युद्ध का यह पुनरारंभ कैसे हो गया। पर उनकी सेना अभी युद्धक्षेत्र में ही थी। उन्होंने न अभी कवच खोले थे और न ही शस्त्र रखे थे। वे सन्नद्ध हो गए। तत्काल संदेशवाहक दौड़ने लगे। आदेश और समाचार भेजे जाने लगे। सेनाओं का आगमन और स्थानांतरण आरंभ हो गया।

अंधकार इतना सघन हो चुका था कि योद्धा पहचाने नहीं जाते थे। नाम, गोत्र और कुल परिचय सुनकर ही पता चलता था कि कौन कहाँ और किससे लड़ रहा है। दुर्योधन ने पांचाल सेना पर आक्रमण किया था। वह इतना प्रचंड हो रहा था कि दिन भर के युद्ध से शिथिल सैनिक उसका प्रहार झेल नहीं पा रहे थे। कोई आश्रय न देखकर पांचाल सैनिकों ने समरभूमि छोड़ दी। उनका पलायन देखकर भीम ने आकर दुर्योधन को रोका।

दुर्योधन विजय की नहीं, मृत्यु की कामना से युद्ध कर रहा था। उसने नहीं देखा कि कौन सामने आया है और किसको उसके शस्त्र ने घायल किया है। उसने अपने घावों की चिंता किए बिना, सामने पड़ने वाले प्रत्येक योद्धा को आहत किया। जब उसने घटोत्कच के शरीर से रक्त बहते देखा तो जैसे वह चैतन्य हुआ। उसने अपने क्रोध

में पांडव सेना को पर्याप्त क्षति पहुँचाई थी। उसका अवसाद कुछ कम हो गया था। अब उसका क्रोध ही बढ़ता जा रहा था। उसने प्रसन्नता से सिंहनाद किया।

पांडव सेना उसके सामने से भागने लगी थी।

अर्जुन वहाँ उपस्थित नहीं था और भीम जाने क्या कर रहा था। युधिष्ठिर को दुर्योधन का प्रतिकार करने के लिए स्वयं ही जाना होगा। यदि दुर्योधन इसी प्रकार लड़ता रहा तो दिन भर की पांडवों की विजय इस समय पराजय में परिणत हो जाएगी।

युधिष्ठिर ने जाकर दुर्योधन को सावधान किया, "दुर्योधन ! तुम घिर गए हो। दिन भर के थके हुए हो। यह युद्ध का समय भी नहीं है। अब तुम लौट जाओ।"

दुर्योधन ने वचनों का उत्तर बाणों से दिया। युधिष्ठिर अभी सँभल भी नहीं पाए थे कि दुर्योधन के बाण से घायल हो गए। दुर्योधन ने उनके अश्वों को मार दिया। सारथि इंद्रसेन को भी ललाट पर चोट पहुँचाई। ध्वज भी काट कर फेंक दिया। और अंततः युधिष्ठिर के धनुष की प्रत्यंचा भी काट दी।

पर युधिष्ठिर ने अपना स्थान नहीं छोड़ा। उन्होंने दूसरा धनुष उठाया और दुर्योधन को अपने बाणों से ढँक दिया। दुर्योधन के शरीर से रक्त बहता हुआ देखकर पांडव सैनिक लौटे।

इस बार युधिष्ठिर ने सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी बाण निकाला। प्रत्यंचा पर रखा और प्रत्यंचा को खींच कर छोड़ दिया, "हाय, तुम मारे गए।"

दुर्योधन खड़ा रह सकने की अवस्था में नहीं था। उसे मूर्च्छा आ रही थी। वह रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

पांचाल सैनिकों ने जैसे आकाश को सिर पर उठा लिया, "राजा दुर्योधन मारा गया। राजा दुर्योधन मारा गया।"

चारों ओर अंधकार था। प्रकाश की क्षीण रेखाएँ कहीं-कहीं आ रही थीं। युद्धभूमि की रेणु उड़कर आकाश की ओर जा रही थी। कोलाहल इतना था कि कुछ ठीक से सुनाई नहीं देता था। जब सामने खड़ा योद्धा ही दिखाई नहीं दे रहा था तो ध्वनि का कोई क्या विश्वास करता।...

द्रोण ने पांचाल सैनिकों का जयघोष सुना।...'राजा दुर्योधन मारा गया।'... क्या सचमुच ही दुर्योधन मारा गया ? वह जिस प्रकार विक्षिप्त हो रहा था, उसमें वह किसी भी प्रकार की कोई मूर्खता कर सकता था।... पर कोई संदेशवाहक आकर क्यों नहीं बताता कि क्या हुआ है। इस अराजक स्थिति में युद्ध कैसे होगा ? जो जहाँ है, वहीं है। युद्धक्षेत्र के अन्य भागों की किसी प्रकार की कोई सूचना नहीं है। प्रधान सेनापति को भी नहीं।... पर वे न तो इस उद्घोष को सत्य मानते हैं और न ही उसकी सर्वथा उपेक्षा कर सकते हैं। कोई प्रामाणिक व्यक्ति आकर समाचार दे तो वे निश्चित रूप से जान सकें कि वस्तुतः हुआ क्या है।... यदि सूचना ही न आई ? किसी योजना के अनुसार तो यह युद्ध हो नहीं रहा। न कहीं व्यूह है, न आदेश लाने, ले जाने की कोई

व्यवस्था। जहाँ जिसने चाहा, युद्ध आरंभ कर दिया और जिसने चाहा, युद्ध बंद कर दिया।

पर सूचना आने, न आने के द्वंद्व में द्रोण अनन्तकाल तक जड़ से खड़े तो नहीं रह सकते। उन्हें दुर्योधन के निकट पहुँचना होगा।''' दुर्योधन के मरते ही द्रोण पांचालों की कृपा पर होंगे। द्रोण की अपनी सुरक्षा के लिए दुर्योधन का जीवित रहना बहुत आवश्यक है।'''

कुछ उल्काओं का प्रबंध कर अश्वारोहियों और धावकों के पीछे-पीछे, बाधाओं से लड़ते-भिड़ते और व्यूहों को रौंदते हुए, द्रोण उस जयघोष के स्थान पर पहुँचे। उनका वेग इतना था कि पांडव सैनिक उसे दूर से ही अनुभव करने लगे थे।

द्रोण दुर्योधन के रथ के पास पहुँच गए। दुर्योधन भी उठकर बैठ गया। दुर्योधन और द्रोण ने एक सम्मिलित आक्रमण युधिष्ठिर पर किया। पांचाल सैनिक युधिष्ठिर की सहायता को आए, किंतु द्रोण ने उन्हें नष्ट करने में देर नहीं लगाई।

अब तक अर्जुन और सात्यकि भी आ गए थे। उन्होंने द्रोण पर आक्रमण किया। युधिष्ठिर और भीम भी द्रोण पर झपटे। नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, विराट, घटोत्कच, शिखंडी, कैकेय राजकुमार, मत्स्य, प्रभद्रक—सब ही द्रोण की दिशा में चल पड़े, जैसे सारी नदियाँ सागर की ओर भागती हैं।

रात का प्रथम प्रहर बीत रहा था। उस भयंकर रात्रि में पता नहीं लगता था कि अश्वों के पगों, रथों के चक्रों, और पैदल सैनिकों के पैरों से उड़ी हुई धूल ने अंधकार को ढाँक लिया था या अंधकार ने उस धूल को ढाँक लिया था। उल्काओं से प्रकाश की कोई किरण आती तो आभूषण, मणियाँ और तीक्ष्ण शस्त्रों के चमकने का कुछ आभास होता।

भीम ने द्रोण को देखा तो वह उग्र होकर आगे आया। पर द्रोण तक पहुँचने से पहले ही दुर्योधन के भाई उसके मार्ग में आ गए। भीम उन सबका वध कर, द्रोण की ओर बढ़ा।

कलिंग राजकुमार ने अपना रथ लाकर भीम के रथ के सम्मुख खड़ा कर दिया। उसके पिता का हत्यारा उसके सामने खड़ा था। वह उसको कैसे जीवित देख सकता था। उसने भीम और विशोक पर बाण चलाए।

भीम ने उग्र दृष्टि से कलिंग राजकुमार को देखा। इस अंधकार में भीम के बाण भटक जाते थे। लक्ष्यवेध हो नहीं रहा था तो फिर इस प्रकार बाण व्यर्थ गँवाने का क्या लाभ। उसने अपना धनुष रख दिया और अपने रथ से उसके रथ पर कूद गया। जब तक कलिंग राजकुमार समझता कि भीम क्या करना चाहता है, भीम ने वज्र के समान कठोर एक मुक्का उसकी नाक पर दे मारा। राजकुमार को सँभलने का तनिक भी अवसर नहीं मिला। भीम के मुक्के इस प्रकार चल रहे थे, जैसे किसी दक्ष धनुर्धारी के धनुष से बाण छूटते हैं। राजकुमार की हड्डियाँ चूर हो गई। उसके प्राण पखेरू उड़ गए।

कर्ण अपने भाइयों सहित आ गया था। उसने भीम को रोकने के लिए उस पर आक्रमण किया। भीम को कई बाण लगे, किंतु उसने उन बाणों की कोई चिंता नहीं की और वह ध्रुव के रथ पर कूद गया। वह भीम पर बाणों की वर्षा करता रहा और भीम ने उसे अपने मुष्टिकाप्रहारों से ही मार गिराया। वहाँ से वह कलिंग राजकुमार जयरात के रथ पर जा कूदा। जयरात उसके पहले थप्पड़ से ही नीचे गिर गया। भीम इतने उत्साह में था कि स्वयं ही आकर कर्ण के सम्मुख खड़ा हो गया। कर्ण ने बाण का प्रयोग न कर एक शक्ति उठाकर भीम पर दे मारी। यद्यपि उस समय भी कुंती को दिया हुआ वचन उसका हाथ रोक रहा था; किंतु भीम को वह इस प्रकार कैसे छोड़ सकता था कि भीम हाथ भी हिलाए तो एक कौरव योद्धा धराशायी हो जए। भीम ने उछलकर शक्ति को अपने हाथ से पकड़ लिया और वही शक्ति कर्ण पर दे मारी। शकुनि ने बड़ी सावधानी से वह शक्ति अपने बाण से काट दी, अन्यथा कर्ण को वह कोई गंभीर घाव दे जाती।

भीम की चेतना लौटी। वह अपने शत्रुओं से क्रमशः घिरता जा रहा था। कर्ण के साथ-साथ अन्य कौरव योद्धा भी आ जुटे थे। अब उसे भी अपने रथ में सुरक्षित बैठकर शस्त्र उठाना चाहिए था।

वह अपने रथ में लौट आया। पहले ही वाण में उसने दुर्मद के सारथि को मार दिया। दुर्मद तत्काल दुष्कर्ण के रथ पर जा बैठा।

भीम ने देखा, कर्ण के साथ ही अश्वत्थामा, दुर्योधन, सोमदत्त और बाह्लिक भी आ गए थे। भीम तो सोमदत्त को ही समरभूमि में देखकर चकित हो रहा था और यहाँ बाह्लिक भी आ गए थे। देवापि के पुत्र और शांतनु के भाई। पितामह भीष्म के भी पितृव्य। क्या अवस्था होगी इनकी ? इस अवस्था में तो मनुष्य शैया से उठकर अपने आँगन में टहल ले तो वही बहुत होता है और ये यहाँ युद्ध करने आ गए। क्यों ? क्या आवश्यकता थी ? दुर्योधन के प्रेम के कारण ? नहीं ! कदाचित् भूरिश्रवा का मोह खींच लाया होगा सोमदत्त को; और सोमदत्त के मोह में बाह्लिक आ गए होंगे। वृद्धावस्था में मोह कुछ अधिक ही प्रबल हो उठता है।''' कृपाचार्य भी आ गए थे। वे घायल थे। कोई भी वैद्य उन्हें अभी युद्ध से दूर रहने का परामर्श देता; किंतु वे अपने रथ में खड़े होकर बाण संधान कर रहे थे।

भीम को कुछ विनोद सूझा। कुछ ऐसा किया जाए कि ये सब खड़े देखते रहें कि इस जमघट का कोई लाभ नहीं है।

उसने विशोक को संकेत किया। उसका रथ दुष्कर्ण के रथ से सट गया। भीम ने शस्त्र प्रहार न कर पूरी शक्ति से दुष्कर्ण के रथ को लात मारी। रथ उलट गया।

भीम ने कुछ विस्मय से देखा : उसके इस प्रहार से रथ कैसे उलट गया ?

संभवतः उसका रथ अपने रथ से सटते देख दुष्कर्ण का सारथि वैसे ही घबरा गया था। प्रहार तो वहाना हो गया।''' किंतु अब रथ उलट ही गया था और दुर्मद और दुष्कर्ण

उसके निकट भूमि से उठने का प्रयत्न कर रहे थे। पता नहीं ये धृतराष्ट्रपुत्र समरभूमि में भी इतने अलंकार धारण कर क्यों आते हैं। इनके पास शस्त्र कम और आभूषण अधिक हैं। लगता है, यहाँ भी वे अपनी वेशभूषा से अपने साथ आई नर्तकियों का मन जीतने का प्रयत्न करते हैं। अब उन्हीं आभूषणों में उलझ रहे थे दोनों। भीम ने छलाँग लगाई और उनके निकट पहुँच गया। जब तक कोई समझ पाता कि उसकी योजना क्या थी, उसने अपने मुष्टिकाप्रहारों से दुर्मद और दुष्कर्ण को भूमि से उठने के अयोग्य कर दिया।

कौरव महारथियों के मुख खुले रह गए। भीम का यह कृत्य ऐसा था कि जिस दिशा में उसकी आँखें उठीं, उस ओर के सैनिक तो सैनिक, महारथी भी भाग गए।

तब तक दोनों ओर की सेना के लिए सहायता आ पहुँची थी। द्रोण अपनी सेना के साथ आ गए थे और उन्होंने भीम को घेर लिया था। दूसरी ओर से नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, द्रुपद, विराट्, सात्यकि तथा घटोत्कच आ गए थे।

सात्यकि को अपने सम्मुख देख सबसे पहले सोमदत्त तड़पकर बोले, "महात्माओं तथा देवताओं ने जिस क्षत्रिय धर्म का साक्षात्कार किया है, उसे छोड़कर तुम लुटेरों के धर्म में प्रवृत्त हो गए। कभी सोचा भी है कि कितने नीच हो तुम ? क्षत्रिय वीरों के मध्य खड़े होने योग्य भी हो तुम ? जो युद्ध से विमुख हो, दीनतापूर्वक शस्त्र त्याग चुका था, उस भूरिश्रवा पर कोई क्षात्रधर्मपरायण विद्वान् पुरुष कैसे प्रहार कर सकता है ?"

सात्यकि का मुख भी तमतमा गया। कड़ककर बोला, "तो क्षात्रधर्मपरायण विद्वान् अपनी कुलवधू को सभा में निर्वस्त्र होते कैसे देख सकते हैं ? ऐसे अनोखे क्षत्रिय तो संसार में केवल तुम ही लोग हो। कोई नीच दस्यु भी ऐसा नहीं करता। वे भी स्त्री मात्र की मर्यादा का सम्मान करते हैं। वह न भी कर सकें तो अपनी कुलवधुओं को तुम्हारे समान सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र करने का मनोरंजन नहीं करते। तुमने कभी यह भी सोचा कि तुम्हारा पाप प्रत्यावर्तित होकर आएगा और तुम्हारे संपूर्ण कुल का नाश कर जाएगा।"

पर सोमदत्त ने न सात्यकि की बात सुनी, न उसका उत्तर दिया। बोले, "वृष्णियों में दो ही विख्यात महारथी हैं—प्रद्युम्न और तुम। तुम भी ऐसे नीच, कायर और अपदार्थ निकले कि आमरण अनशन पर बैठे, मेरे पुत्र को मार डाला।"

"जब तुम लोगों ने अकेले बालक अभिमन्यु को व्यूह में घेर कर निःशस्त्र कर मिलकर प्रहार किया था, जैसे वह कोई बाड़े में घिरा पशु हो, तब नहीं सोचा था कि दूसरे लोग भी निःशस्त्र पर प्रहार कर सकते हैं।" सात्यकि ने कहा, "अपने लिए तो तुम लोगों को सारी मर्यादाओं के उल्लंघन का अधिकार चाहिए और दूसरों को धर्म का पाठ पढ़ाते हो।"

सोमदत्त का स्वर और भी ऊँचा हो गया, "मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि रात्रि व्यतीत होने से पूर्व ही, तुम्हें तुम्हारे भाइयों और पुत्रों सहित न मार डालूँ, तो यमराज

मुझे नरक में स्थान दें।"

सात्यकि के चेहरे पर एक क्रूर हँसी प्रकट हुई, "इस शपथ का क्या अर्थ ? कौन तुम्हारे पीछे देखने जाएगा कि तुम नरक में गए अथवा नहीं। अपने दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप तुम्हें वैसे ही सदा के लिए नरक में वास करना चाहिए। अपने लोभ और स्वार्थ के लिए धृतराष्ट्र के अंधे शासन का समर्थन करने वाले विलासी और अधर्मी लोग और जा भी कहाँ सकते हैं।" सात्यकि ने रुककर उसकी ओर देखा, "मैं तुम्हारे पुत्र के समान शस्त्र त्यागने का नाटक नहीं करता। मैं शस्त्र धारण कर खड़ा हूँ, तुम मुझ पर प्रहार करो, मैं तुम्हें भी तुम्हारे बंधु-बांधवों सहित मार डालूँगा।"

सोमदत्त प्रहार करे, उससे पूर्व ही उसकी रक्षा के लिए दुर्योधन ने उसको घेर लिया। उस समय शकुनि भी आ गया था।

सोमदत्त अपने आपे में नहीं था। उसके युद्ध कौशल को उसके क्रोध ने आच्छादित कर रखा था। उसने पहले ही झटके में अनेक बाणों से सात्यकि को ढँक दिया। अनेक बाण सात्यकि के शरीर में आ धँसे।

सात्यकि का क्रोध जैसे उछलकर उसके हाथों में आ गया। उसने अपने धनुष से धारा के रूप में बाण चलाए। सोमदत्त को कोई गंभीर घाव लगा था। उसके हाथ से धनुष छूट गया और वह रथ की बैठक में आ गिरा।

सोमदत्त को मूर्च्छित देखकर उसका सारथि अपना रथ युद्धक्षेत्र से हटा ले गया।

वृद्ध सोमदत्त की यह अवस्था देखकर द्रोण का मन जैसे पिघल गया। वह युद्ध नहीं कर रहा था, वह तो अपने पुत्र का प्रतिशोध लेने आया था। पर वह यह भूल गया कि सात्यकि उसके वश का नहीं था। इस प्रकार का आत्मघाती युद्ध लड़ने का क्या लाभ, जिसमें तनिक भी सामर्थ्य और युद्ध कौशल न हो।''' तो फिर द्रोण सात्यकि का वध कर ही डालें। प्रातः तो वह भी अर्जुन के ही समान उनको प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा कर आगे बढ़ गया था। द्रोण उसके पीछे नहीं गए थे। उन्हें अपना व्यूह सँभालना था। फिर सात्यकि अर्जुन की सहायता के लिए जा रहा था। किंतु अब जयद्रथ मारा जा चुका था। अर्जुन के प्राणों पर कोई संकट नहीं था। सात्यकि ने भूरिश्रवा का वध कर दिया था और अब शायद सोमदत्त के भी प्राण न बचें। उन्हें सात्यकि बहुत क्रूर लग रहा था। वह ऐसी ही और हत्याएँ भी कर सकता है।

द्रोण ने सात्यकि पर प्रहार किया और उन्होंने देखा कि सात्यकि की सहायता के लिए युधिष्ठिर आ गया है। युधिष्ठिर को सात्यकि पर बहुत भरोसा था, तभी तो उसने भीम से भी पहले सात्यकि को अर्जुन की सहायता के लिए भेजा था। वह सात्यकि का कृतज्ञ भी होगा, उसने अर्जुन की सहायता के लिए बहुत बड़े संकट का सामना किया था।''' वैसे भी कृतवर्मा को रोके रखने के लिए सात्यकि ही युधिष्ठिर की ढाल था।

तो पहले युधिष्ठिर ही सही। द्रोण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। बाण युधिष्ठिर की बाईं भुजा में लगा। युधिष्ठिर घायल हो गए। अपने राजा को इस प्रकार आहत

होते और द्रोण का रौद्र रूप अपने सम्मुख खड़ा देख, पांडव सेना भाग चली। वे जानते थे कि धर्मराज, आचार्य को रोक नहीं पाएँगे।

पर अर्जुन का रथ प्रकट होते ही उनकी सेना लौट आई।

अर्जुन सोच रहा था... उसने युधिष्ठिर की बहुत उपेक्षा की थी। द्रोण ने उन्हें जीवित बंदी करने की प्रतिज्ञा कर रखी थी और अर्जुन संशप्तकों से लड़ने चला गया था। एक दिन में वह युद्ध समाप्त नहीं हुआ तो वह दूसरे दिन भी चला गया। फिर जयद्रथ को मारने की अपनी प्रतिज्ञा के कारण भी वह धर्मराज को असुरक्षित छोड़ गया। धर्मराज ने अपनी रक्षा की चिंता न करते हुए, सात्यकि और भीम को उसकी रक्षा के लिए भेज दिया था।... अब और अधिक उनको आचार्य की कृपा पर छोड़ना उचित नहीं था। कहीं कोई गंभीर दुर्घटना ही न हो जाए।...

इस समय आचार्य वैसे ही बहुत उग्र हो रहे थे। जाने दुर्योधन ने उन्हें क्या कह दिया था या वे ही उसे क्या वचन दे कर आए थे। नहीं तो सूर्यास्त के पश्चात् युद्ध का क्या अर्थ। पहले दुर्योधन की गजसेना ने आक्रमण किया और फिर नियमित युद्ध ही आरंभ हो गया। अब उसके रुकने का कोई आभास भी नहीं हो रहा। पांडवों को तब तक लड़ना होगा, जब तक दुर्योधन युद्ध बंद नहीं कर देता। पांडव युद्ध समाप्ति का एकांगी निर्णय नहीं कर सकते। आचार्य यदि अपनी सेनाएँ लौटा ले जाएँगे तो पांडव सेनाएँ उन पर आक्रमण नहीं करेंगी।

आचार्य का धनुष मंडलाकार घूम रहा था और वे किसी तरुण से भी अधिक स्फूर्ति दिखा रहे थे। वैसे अर्जुन समझ रहा था कि उनकी यह स्फूर्ति अनियंत्रित आवेश की ही देन थी। यह किसी प्रकार का उन्माद ही था, अन्यथा अपनी इस अवस्था में वे इस प्रकार अंग संचालन नहीं कर सकते थे।... और यदि कर सकते थे तो करना नहीं चाहिए था। यदि किसी अस्थि में कहीं कोई दरक भी पड़ गई तो उसे जोड़ना किसी भी वैद्य के लिए संभव नहीं होगा।... अर्जुन को अनेक बार यह भय सताता था कि इस अवस्था में ऐसी तीव्र गतिविधि कहीं आचार्य के वृद्ध शरीर को हानि ही न पहुँचाए। अश्वत्थामा को इस बात का ध्यान रखना चाहिए था।... अंततः आचार्य वीरगति तो पाएँगे ही। और कोई विकल्प ही नहीं था। अर्जुन उनका वध नहीं करेगा तो कोई और कर देगा। इस युद्ध से वे जीवित बचकर नहीं जाएँगे। या... कहा जाए कि उनके जीवित रहते, दुर्योधन ही इस युद्ध को समाप्त नहीं होने देगा, जैसे उसने पांडवों के पास कुछ भी रहते द्यूत बंद नहीं होने दिया था। ... पर वह और बात है। युद्ध में अपनी अस्थियाँ तुड़वाकर अपंग के समान बिस्तर पर पड़े रहने का कष्ट आचार्य को न ही हो तो अच्छा है।

"गोविन्द !" अर्जुन बोला, "रथ को आचार्य के रथ के निकट ले चलें।"

अर्जुन ने देखा, विशोक भी भीम का रथ आचार्य की ओर ही ले जा रहा था। पांचाल, सृंजय, मत्स्य, चेदि, कारूश और कैकेय योद्धा भी द्रोण के निकट घिर आए

थे। अर्जुन, आचार्य की सेना के दक्षिण भाग और भीम उनके वाम भाग की ओर चला गया था। तभी धृष्टद्युम्न और सात्यकि भी आचार्य के सम्मुख आ गए।

अश्वत्थामा ने सात्यकि को देखा तो उसे भूरिश्रवा का वध स्मरण हो आया।

"इसका वध तो अब हो ही जाना चाहिए।" अश्वत्थामा ने कहा और बाण चला दिया।

घटोत्कच ने अश्वत्थामा के बाणों की ही नहीं, स्वयं अश्वत्थामा की गति भी रुद्ध कर दी। उसके बाण अश्वत्थामा की सेना को पीड़ित कर रहे थे। तभी उसकी दृष्टि कर्ण पर पड़ी''' इस कर्ण ने आज प्रातः उसके पिता को निःशस्त्र कर अपमानित किया था और उन्हें वीरों से लड़ने के अयोग्य बताया था।

घटोत्कच ने अपने सैनिकों को संकेत किया और कर्ण पर बाणों के साथ ही पत्थर पड़ने लगे। उसके सैनिकों के हाथों में जो कुछ आया, उन्होंने उसे कर्ण की ओर उछाल दिया। कर्ण घायल हो चुका था। वह घटोत्कच की इस माया के सम्मुख नहीं टिका और युद्धक्षेत्र छोड़कर भाग गया।

कर्ण के भाग जाने से अब पुनः घटोत्कच और अश्वत्थामा आमने-सामने थे। अश्वत्थामा उसके बाणों से तनिक भी व्यथित नहीं लग रहा था। उसने पत्थर फेंकने की माया करने वाले उसके सैनिकों को भी भगा दिया था। इसलिए पत्थरों की वर्षा भी समाप्त हो गई थी। घटोत्कच एक से एक भयंकर बाण छोड़ रहा था किंतु अश्वत्थामा विचलित नहीं हो रहा था। उसने घटोत्कच के सारे बाण काट ही नहीं दिए थे, उसे घायल भी कर दिया था।

अंततः घटोत्कच ने व्यथित हो एक भयंकर चक्र चलाया; किंतु अश्वत्थामा ने उस चक्र को भी मार्ग में ही काट गिराया।

लगा कि अश्वत्थामा के सम्मुख घटोत्कच ही नहीं उसकी माया भी जैसे असहाय हो गई है। अपने पिता को संकट में देखकर अंजनपर्वा ने आकर अश्वत्थामा को रोका। पर अंजनपर्वा ने अपने और अश्वत्थामा, दोनों के ही सामर्थ्य का भ्रमित मूल्यांकन किया था। अश्वत्थामा के सम्मुख पड़ना उसके लिए घातक हो गया। अश्वत्थामा ने पहले तो उसके अश्वों और दो सारथियों को मार डाला। फिर उसके त्रिवेणु को काट डाला। उसके खड्ग के दो टुकड़े कर दिए। अंजनपर्वा ने और कोई उपाय न देखकर अपनी भारी गदा उठाकर दे मारी। अश्वत्थामा ने उसकी गदा भी काट दी। अंजनपर्वा कुछ अपनी रक्षा और कुछ माया की दृष्टि से आकाश की ओर उछला, किंतु अश्वत्थामा ने उसे ऊपर ही अपने बाणों से बींध दिया।

अंजनपर्वा निष्प्राण होकर भूमि पर आ गिरा।

घटोत्कच जैसे अभी कुछ समझ ही नहीं पाया था कि उसका पुत्र युद्धक्षेत्र में उतरा भी लड़ा भी और संसार छोड़कर चला भी गया।''' उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि पुत्रशोक कैसा होता है। उसके उदर के नीचे के किसी भाग में जैसे कोई अनाम-सी

पीड़ा हो रही थी। मस्तिष्क जल रहा था और इच्छा होती थी कि इस अश्वत्थामा के अभी टुकड़े कर फेंक दे।

उत्तेजित और दुस्साहसी घटोत्कच अश्वत्थामा की ओर पलटा, "द्रोणपुत्र ! खड़े रहो। अब कर्ण के समान समरभूमि छोड़कर भाग मत जाना।"

अंजनपर्वा को मारकर अश्वत्थामा का आवेश कुछ कम हुआ था कि घटोत्कच आ गया। अश्वत्थामा के मन में एक विचित्र-सा अवसाद घिर आया था। उसने घटोत्कच को देखा और बोला, "तुम जाओ घटोत्कच ! युद्ध की बहुत लालसा है तो किसी और से लड़ लो। पुत्र के लिए उचित नहीं है कि वह पिता को सताए। मुझे कुपित मत करो, अन्यथा जीवित नहीं बचोगे।"

घटोत्कच अपनी पीड़ा से हँस पड़ा। विचित्र है यह अश्वत्थामा ! भीम के पुत्र को अपना पुत्र बता रहा है, और अंजनपर्वा कौन था इसका ? उसके विषय में कुछ नहीं सोचा।

"पुत्र के लिए तो उचित नहीं है कि वह पिता को सताए, किंतु तुम्हारे लिए उचित है कि अपने पौत्र सरीखे अंजनपर्वा को मार गिराओ ? पुत्र प्रिय है और पौत्र ? और फिर यहाँ तो सब किसी न किसी के पुत्र और पौत्र ही हैं। क्यों लड़ रहे हैं फिर ये सब लोग ?" उसका स्वर कुछ ऊँचा हो गया, "द्रोणपुत्र ! मैं कायर नहीं हूँ कि तुम्हारी नीचतापूर्ण बातों से डर जाऊँ। मैं भी कुरुवंशी भीम का पुत्र हूँ।"

दुर्योधन ने इधर-उधर दृष्टि घुमाई। उसे सब ओर अपनी सेना भागती ही दिखाई पड़ रही थी। पांडवों और पांचालों का हर्षनाद उसके मन में भय की सिहरन जगा जाता था। प्रातः से कितनी ही बार वह द्रोण से प्रार्थना कर चुका था, किंतु उन्होंने न अपनी नीति बदली और न ही उसके मनोनुकूल युद्ध किया। अब उनके पास जाना व्यर्थ था। वह अड़ियल बुड्ढा उसकी समझ से बाहर होता जा रहा था।...

दुर्योधन ने अपना रथ कर्ण के रथ के पास रुकवाया।

"कर्ण !" दुर्योधन बोला, "मित्रों के कर्तव्यपालन की परीक्षा का उपयुक्त अवसर आ गया है।"

"क्यों क्या हुआ मित्र ?" कर्ण ने प्रसन्न भाव से पूछा।

दुर्योधन मन-ही-मन जलभुन कर रह गया।... इस कर्ण को कुछ दिखाई नहीं देता क्या ? देख नहीं रहा कि कौरवों की क्या दुर्दशा हो रही है। पूछ रहा है कि क्या हुआ। जब ऐसे सेनानायक होंगे तो सेना की दुर्दशा तो होनी ही है। सोचता होगा कि त्रिगर्त मर रहे हैं तो उसे क्या ? मद्र मर रहे हैं तो उसे क्या ? पर यह नहीं सोचता कि मर तो कौरव सेना रही है।...

"क्रोध में भरे हुए पांचाल, मत्स्य, कैकेय तथा पांडव महारथी फुफकारते हुए सर्पो के समान भयंकर हो उठे हैं। मेरे सारे महारथी घिर गए हैं। तुम्हें नहीं लगता कि कौरव

सेना का कोई रक्षक नहीं है ?" दुर्योधन ने पांडव सेना की ओर संकेत किया, "वह देखो, पांडव और पांचाल अपने विजयगर्व से उत्फुल्ल होकर कैसे सिंहनाद कर रहे हैं।"

कर्ण ने पांडव सेना पर दृष्टि डाली। अंधकार के कारण वहाँ दिख कम रहा था, सुनाई ही अधिक पड़ रहा था। हाँ ! पांडव सेना की दिशा में हर्ष का उन्माद सुनाई पड़ रहा था।

"चिंता मत करो मित्र !" कर्ण बोला, "थोड़ा धैर्य धारण करो। इस अंधकार में क्या पता चलेगा कि कोई जीता भी है, अथवा अपने भ्रम में हमें भ्रमित करने के लिए चिल्ला ही रहा है। तुम जानते ही हो कि उनका घटोत्कच अपनी माया ऐसे ही फैलाता है।"

कृपाचार्य का रथ उनके पास आकर रुक गया। अश्वत्थामा भी उनके साथ ही था।

कर्ण ने कृपाचार्य को देखा तो उन्हें सुनाकर दुर्योधन से बोला, "मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ कि युद्ध में आए हुए पांडवों और पांचालों को निश्चय ही मार डालूँगा। मुझे तुम्हारा मनभावन करना है, इसी के लिए मैंने यह जीवन धारण कर रखा है। मैं तुम्हें विजय ही नहीं दिलाऊँगा। पांडवों को मारकर सारी पृथ्वी का राज्य तुम्हें दूँगा।"

कृपाचार्य ने सुना और जैसे कोई शूल उनके मन में चुभा··· कह तो इस प्रकार रहा है, जैसे पृथ्वी का राज्य कोई कंकड़ पत्थर हो कि कोई भी उठाए और किसी की भी हथेली पर रख दे।··· लबाड़िया कहीं का···

कर्ण ने कह तो दिया, किंतु उसके अपने ही मन का कोई कोना जैसे उसकी बात से सहमत नहीं था।··· वह दुर्योधन को वचन दे रहा है कि वह पांडवों को मार देगा; और कुंती को वचन दिया है कि वह पांडवों में से चार का वध नहीं करेगा।··· तो ये दोनों प्रतिज्ञाएँ कैसे पूरी हो सकती हैं।··· एक पूरी होगी तो दूसरी झूठी हो जाएगी। तो क्या वह चाहता है कि यदि पाँचों पांडव मारे जाएँ तो दुर्योधन को दिया हुआ वचन पूरा हो जाए और यदि किसी कारण से वह पांडवों को न मार सके तो कुंती को दिया हुआ वचन सत्य प्रमाणित हो।··· वह तो दोनों ही स्थितियों में सच्चा प्रमाणित हो जाएगा··· नहीं ! वह यह सोचकर दोनों को वचन नहीं दे रहा है।··· पर यदि ऐसा हो भी जाए तो केवल अर्जुन का वध कर ही तो वह पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को नहीं दे सकता। उसके लिए तो सारे पांडवों और पांचालों का ही नहीं वृष्णिवंशियों का भी वध करना होगा। कर पाएगा वह ?··· या वह केवल वह सब कह देता है, जो सुनना दुर्योधन को अच्छा लगता है ? कुंती को दिया गया वचन भी क्या उस समय उसे टालने अथवा सामयिक रूप से सुखी करने का प्रयत्न मात्र था ? उसकी प्रतिज्ञा···

"पर यह कैसे संभव होगा मित्र !" दुर्योधन का स्वर कुछ हताश था, "युद्ध के इन सारे दिनों में अर्जुन एक दिन भी किसी से पराजित नहीं हुआ है। तुम उसे कैसे पराजित करोगे।"

दुर्योधन का अभिप्राय कर्ण की समझ में आ रहा था। वह उससे पूछ नहीं रहा था कि वह अर्जुन को कैसे पराजित करेगा, वह तो अपनी निराशा प्रकट कर रहा था। अपना निर्णय सुना रहा था कि कर्ण अर्जुन को पराजित नहीं कर पाएगा।

कर्ण का अहंकार कुछ ऐसा पीड़ित हुआ कि उसने कृपाचार्य और अश्वत्थामा की उपस्थिति की भी चिंता नहीं की। कुछ आवेश में बोला, "आज मैं इंद्र की दी हुई अमोघ शक्ति वैजयंती, अर्जुन पर छोड़ दूँगा। अर्जुन के मारे जाने पर उसके सारे भाई तुम्हारे वश में हो जाएँगे, या स्वयं ही वन में चले जाएँगे। उन्हें मारने की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी। मैं पांचालों, कैकेयों, वृष्णिवंशियों के टुकड़े-टुकड़े कर, यह सारी पृथ्वी तुम्हें दे दूँगा।"

कृपाचार्य को कर्ण का यह सब कहना बहुत अखर रहा था। उनके मन में दो ही चित्र उभर रहे थे… पहला किसी चाटुकार द्वारा अपने स्वार्थ के लिए अपने राजा के सम्मुख झूठ पर झूठ बोलते चले जाना; और दूसरा किसी असमर्थ पिता द्वारा अपने अबोध बालक को झूठे आश्वासनों के द्वारा बहलाना।… पर कर्ण वैसा असहाय पिता नहीं था और न ही दुर्योधन वैसा अबोध बालक था।… यह कर्ण धूर्तता कर रहा था और दुर्योधन को बहका रहा था।… सारे पांडवों, पांचालों, कैकेयों, मत्स्यों और वृष्णियों को मारने की बात कोई योद्धा सोच-समझकर नहीं कह सकता।… और पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को देने का वचन तो कोई विक्षिप्त भी नहीं दे सकता। आज कर्ण की चाटुकारिता कुछ अधिक ही बढ़ गई थी… या यह उसका अहंकार था ? क्या वह सचमुच यह मानने लगा था कि वह इन सारे योद्धाओं को युद्ध में जीत सकता है ?…

कृपाचार्य स्वयं को रोक नहीं पाए। बोले, "बातें बनाने से ही पृथ्वी का साम्राज्य मिल जाता, तो तुम जैसा सहायक पाकर कुरुराज दुर्योधन कृतार्थ हो जाते। बोलते तुम बहुत हो किंतु तुम्हारा पराक्रम तो कभी दिखाई नहीं पड़ता। रणभूमि में पांडवों से तुम्हारा अनेक बार आमना-सामना हुआ है, पर सर्वत्र तुम ही परास्त हुए हो। पांडवों से सामना न हो तो भी क्या करते हो तुम। घोषयात्रा के समय सारी सेना गंधर्वों से युद्ध कर रही थी और तुम भाग गए थे। विराटनगर में अकेले अर्जुन ने ही हम सबको परास्त कर दिया था। कहाँ थे तुम तब ? अपने ब्रह्मचारी जीवन में भी तुम गुरुकुल में सदा स्वयं को अर्जुन से श्रेष्ठ बताते रहे किंतु सिद्ध कभी नहीं कर पाए।"

कर्ण स्तब्ध-सा सब सुन रहा था।… हस्तिनापुर की रंगशाला में भी, जब कर्ण ने अर्जुन को ललकारा था, तो इसी कृपाचार्य ने उसकी जाति पूछी थी।… यह क्यों हर बार उसके आड़े आता है ?…

कृपाचार्य ने उसकी ओर देखा तो जैसे बिना सोचे-समझे ही उसके मुख से निकल गया, "क्या चाहते हो तुम ?"

कृपाचार्य ने उसे घूरकर देखा। वह उन्हें 'तुम' कह रहा था। उद्दंडता की चरमसीमा भी पार कर गया था वह। वह उन शिष्यों में से था जो गुरुकुल से निकलते ही अपने

गुरु को भी आँखें दिखाने लगते थे।... पर जो शिष्य गुरु से अपना संबंध न माने, उसे कहा भी क्या जा सकता है। कर्ण में कृतज्ञता नहीं है। वह केवल दुर्योधन का ही कृतज्ञ है कि उसने उसे अंगराज घोषित कर दिया। पता नहीं कृतज्ञता है, अथवा दुर्योधन से चिपके रहने का एक बहाना मात्र।

"चुपचाप युद्ध करो।" कृपाचार्य कुछ आवेश में बोले, "बातें बहुत करते हो। कुछ करना तुम्हारे वश का नहीं है। जब तक अर्जुन सामने नहीं है, गर्जना कर लो। अर्जुन के सम्मुख आते ही सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है तुम्हारी। आज से नहीं, गुरुकुल के दिनों से देखा है मैंने तुमको। अर्जुन से सदा अनावश्यक स्पर्धा की है तुमने। दुर्योधन का सहारा लेकर सदा पांडवों का अपमान करने का प्रयत्न किया है। शरद के मेघों के समान व्यर्थ गर्जना करते हो, बरसते कभी नहीं। पर दुर्योधन समझता ही नहीं है कि कर्ण केवल वाग्वीर है। बातें ही बना सकता है। तुम्हारी बातों ने उसके कान सी दिए हैं और मस्तिष्क को स्तब्ध कर दिया है।"

कर्ण के मन में आया कि वह उन्हें स्मरण दिला दे कि अब वह उनके गुरुकुल का ब्रह्मचारी नहीं है कि वे उसे उपाध्याय के समान डाँट रहे हैं। गुरुकुल छोड़े एक युग बीत गया है। जब वह उनके गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण कर रहा था, तब भी उसने उन्हें कभी अपना गुरु नहीं माना। वे राजा के उस गुरुकुल में केवल एक शिक्षक थे। जब वे तब उसका कुछ नहीं बिगाड़ सके तो अब क्या बिगाड़ लेंगे। वे दोनों एक-दूसरे को भली प्रकार जानते हैं। उन दोनों का कभी तादात्म्य नहीं हुआ। कभी अनुकूल नहीं रहे, वे एक-दूसरे के। वह उनका प्रिय छात्र कभी नहीं रहा; और उसे भी वे कभी अच्छे नहीं लगे।

कर्ण का आक्रोश कुछ इस प्रकार बढ़ा कि उसके मस्तिष्क में कोई तर्क नहीं उपजा। बोला, "विप्रवर ! मैं कृष्ण और सात्यकि सहित सारे पांडवों को युद्ध में मारने का निश्चय कर, गरज रहा हूँ, तो आपके पेट में शूल क्यों उठ रहा है ? क्या कष्ट है आपको ? क्या नष्ट हो रहा है आपका ? मैं अब भी कह रहा हूँ कि मैं अर्जुन, सात्यकि और कृष्ण को मारकर पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को दे दूँगा।..."

कृपाचार्य ने ध्यान दिया, कर्ण ने उन्हें इस बार 'तुम' नहीं कहा था, पर वह उन्हें 'गुरु' न कहकर 'विप्र' कह रहा है। विप्र—जो चिंतन कर सकता है, युद्ध नहीं कर सकता। इतने तटस्थ संबोधन का क्या अर्थ ? वह उनसे अपने संबंध को स्वीकार नहीं कर रहा।...

"तुम कृष्ण को मारोगे ?" कृपाचार्य वितृष्णा से हँस दिए, "निरर्थक प्रलाप कर रहे हो तुम। विजय उसी पक्ष की होगी, जिस पक्ष की ओर से युद्धविशारद श्रीकृष्ण और वीरवर अर्जुन लड़ रहे हैं। धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध त्याग दें और एक रोषभरी दृष्टि भी डालें तो इस पृथ्वी को भस्म कर दें। तुम उन सबको जीत कर पृथ्वी का राज्य दुर्योधन को दे दोगे, जैसे पृथ्वी का राज्य तुम्हारी संपत्ति ही तो है।"

कर्ण ने कृपाचार्य को एक कंटकित दृष्टि से देखा और अपने शब्दों को चबाता हुआ, उनका परिहास-सा करता हुआ बोला, "बाबा जी ! आज मैं अर्जुन पर वैजयंती छोड़ दूँगा। अब उसे और सँभालने की आवश्यकता नहीं है, न ही अर्जुन के वध को टालने का कोई लाभ है।"

कृपाचार्य कुछ नहीं बोले।··· तो कर्ण अपने प्रयत्न में सफल हो गया है। बहुत दिनों से वह इस प्रयत्न में लगा हुआ था कि किसी प्रकार वह इंद्र से वैजयंती प्राप्त कर ले। पर कैसे प्राप्त कर ली उसने ? किसके माध्यम से ? चाटुकारिता की तो कोई सीमा नहीं है। उसने अपनी त्वचा छील कर तो नहीं दी होगी, किंतु उसी प्रकार का कोई कार्य किया होगा।··· बहुत दानवीर बनाकर प्रस्तुत किया गया है कर्ण को—कहते हैं कि कर्ण के लिए ब्राह्मण को कुछ भी अदेय नहीं था। पर कृपाचार्य ने उसे उसके शैशव से देखा है। कृपाचार्य भी तो ब्राह्मण ही हैं। द्रोण भी ब्राह्मण हैं। कैसा व्यवहार था कर्ण का उनके प्रति। जिसे अपना गुरु मानकर वह गया था परशुराम के पास, वे भी ब्राह्मण ही हैं। उनके प्रति कैसा व्यवहार था उसका—झूठ बोल कर उनसे उनके ज्ञान का हरण करने गया था। इतना ही सम्मान था उसके मन में गुरु के प्रति और ब्राह्मण के प्रति। कभी उन्हें 'तुम' कहकर अपमानित करने का प्रयत्न करता है, कभी विप्र और कभी बाबा जी कहकर···

पर यदि उसके पास वैजयंती है तो उसने उसका प्रयोग क्यों नहीं किया ? आज दिन में भी कितनी ही बार वह अर्जुन के सम्मुख से हार कर भागा है ?··· उसके पास वैजयंती है ही नहीं, या फिर उसने उसे किसी अति विशिष्ट अवसर के लिए सँभाल कर रखा था ? इस समय इस सारी चर्चा से वह उन्मत्त हो उठा था और वैजयंती की चर्चा कर बैठा था ?···

24

अर्जुन को लग रहा था कि कृष्ण अपना रथ कर्ण से बचाए-बचाए घूम रहे हैं। अर्जुन को कुछ आश्चर्य हुआ।

"केशव ! कर्ण पांडव सेना का संहार कर रहा है।" उसने कहा, "उसकी उपेक्षा करते रहेंगे तो हमारी सेना की बहुत हानि होगी।"

कृष्ण मुस्कराए, "सत्य है; किंतु इस समय तुम्हारा उससे भिड़ना हितकर नहीं है। वह दिन भर में बहुत पिटा है, बहुत पराजित हुआ है, बहुत अपमानित हुआ है। उसे भी कुछ देर अपने अहंकार की तुष्टि कर लेने दो।"

अर्जुन को कृष्ण की बात समझ में नहीं आई। अनेक बार कृष्ण उसकी बुद्धि से परे चले जाते हैं। उनके मन की थाह पाना बहुत कठिन है। जाने वे कितने स्तरों पर

देखते और कितने धरातलों पर सोचते हैं। वैसे तो अर्जुन यह मानकर भी चुप रह सकता था कि कृष्ण कह रहे हैं तो इस समय कर्ण को भूल जाने में ही कोई हित होगा; किंतु कर्ण को युद्धक्षेत्र में इस प्रकार उन्मुक्त छोड़ देना तो किसी भी समस्या का समाधान नहीं था।...

"अपनी सेना का नाश करवा, कर्ण की क्षतिपूर्ति आवश्यक है क्या ?"

"नहीं ! मैं उसकी क्षतिपूर्ति नहीं करवा रहा।" कृष्ण हँसे, "मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि हमें कर्ण के सामर्थ्य का पता चल जाए।"

"क्यों क्या अभी तक हमें उसके सामर्थ्य का पता नहीं लगा ?"

"तुम्हें स्मरण होगा अर्जुन ! कि युद्ध से पूर्व ही कर्ण द्वारा इंद्र से शक्ति प्राप्त करने की एक कथा बहुत प्रचारित हुई थी।"

"किंतु हमने उसका कभी विश्वास नहीं किया। जब कवच ही नहीं देखा, तो उस शक्ति का विश्वास कैसे करें।" अर्जुन हँसा, "दिव्य कवच के होते हुए भी युद्ध से भागता रहा तो फिर कर्ण के समान भीरु कौन होगा।"

"ठीक कहते हो।" कृष्ण बोले, "पर इस कथा के पीछे कुछ थोड़ा-सा सत्य भी है।"

"सत्य ?"

"सत्य यह है कि कर्ण अपनी त्वचा बेच कर भी कोई ऐसा शस्त्र पा लेना चाहता है, जिससे वह तुम्हारा वध कर सके।" कृष्ण बोले, "मुझे कुछ ऐसा आभास हो रहा है कि कर्ण के पास वैसा कोई शस्त्र आ गया है।"

"उसके पास ऐसा शस्त्र होता तो वह जयद्रथ को मरने नहीं देता।" अर्जुन ने कहा, "जब वह भीम से बार-बार पराजित हो रहा था, वह तब उसका प्रयोग अवश्य करता। जिस समय वह भीम को अपमानित कर रहा था और मैं भीम की रक्षा के लिए पहुँचा था, वह तब भी उसका प्रयोग कर सकता था। अंतिम समय में जब वे छह योद्धा जयद्रथ की रक्षा का प्रयत्न कर रहे थे, वह तब भी उसका प्रयोग कर सकता था। उसके पास वैसा कोई शस्त्र होता, तो जयद्रथ के वध के पश्चात् भी वह उसका प्रयोग मुझ पर कर सकता था।... पर जब यह सब कुछ नहीं हुआ तो इसका स्पष्ट अर्थ है कि उसके पास वैसा कोई शस्त्र नहीं है और वह कथा असत्य है।"

"तुम्हारा तर्क ठीक है। तब तक उसके पास वह शस्त्र नहीं था। होता तो वह अवश्य ही उसका प्रयोग तुम पर करता।" कृष्ण मुस्कराए, "किंतु तुम्हारा ध्यान इस ओर नहीं गया कि जयद्रथ के वध जैसी पराजय के पश्चात् भी कौरव इस रात्रि के अंधकार में युद्ध क्यों चलाए चल रहे हैं ? इस पराजय के पश्चात् तो उन्हें चुपचाप अपने शिविर में लौट जाना चाहिए था। गंभीरता से विचार करना चाहिए था कि उन्हें यह युद्ध आगे चलाना चाहिए अथवा नहीं।"

अर्जुन ने कृष्ण की ओर देखा। वे ठीक ही कह रहे थे, उसका ध्यान उस ओर

नहीं गया था।

"मैं देखना चाहता हूँ कि उनके पास ऐसा कौन-सा बल है, जिसके सामर्थ्य पर वे दिन भर की क्लांत सेना को इस रात्रि में भी लड़ा रहे हैं।"

"क्या आपके पास कोई निश्चित सूचना है ?"

"नहीं ! कुछ आभास है और शेष अनुमान ही है।" कृष्ण बोले, "मैं चाहता हूँ कि मेरे इस आभास की कुछ पुष्टि हो ले। कर्ण किसी ऐसे संकट में पड़ ले, जिसमें से उसके प्राण किसी भी प्रकार न बच सकते हों—भाग कर भी नहीं।"

अर्जुन ने एक गंभीर दृष्टि कृष्ण पर डाली। कृष्ण का तात्पर्य उसकी समझ में आ रहा था।

"आपका विचार है कि उसके पास ऐसा शस्त्र है; किंतु वह उसे उस समय के लिए बचाए हुए है, जब उसके अपने प्राणों को वास्तविक संकट हो ? किसी दूसरे की रक्षा के लिए वह उसका उपयोग नहीं करेगा ?"

"यदि वह संकट से भाग सके तो कदाचित् अपने प्राणों के लिए भी नहीं करेगा; और दुर्योधन की विजय के लिए तो कभी भी नहीं करेगा।"

अर्जुन मौन रहा।

"तुम सहमत नहीं हो ?"

"अभी सहमति और असहमति की बात नहीं कह सकता; किंतु सोच रहा हूँ कि जिस सेना की रक्षा का दायित्व मुझ पर है, उसकी रक्षा न कर मैं स्वयं को बचाता रहूँ और देखता रहूँ कि कौन अपने प्राणों पर खेल कर कर्ण का वह शस्त्र निकलवाता है, जिससे मेरे प्राणों को संकट है।" अर्जुन बोला, "यह तो अधम कोटि का स्वार्थ होगा।"

कृष्ण हँसे। अर्जुन ने उनकी ओर देखा तो कृष्ण उसे अश्वों की वल्गा थामे हुए बैठे दिखाई नहीं दिए। उसको कुछ ऐसा आभास हुआ कि उनका आकार युद्ध के पहले दिन के ही समान विराट हो गया था। उनके सहस्रों मुख हो गए थे, जिनमें से अनेक में से अग्नि निकल रही थी और कुरुक्षेत्र की समरभूमि से योद्धाओं की भीड़ की भीड़ उन मुखों में समाती जा रही थी। कुछ उनमें प्रवेश करने को खड़े थे, कुछ उन मुखों की दाढ़ों के नीचे दबे हुए थे। कुछ...

"मैं समझ गया केशव ! जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु निश्चित है।" अर्जुन बोला, "किंतु ये सारे योद्धा मेरे आश्रित हैं। मैं उनका रक्षक हूँ। यदि मैं अपनी रक्षा के लिए छिपता रहूँगा और उनको मरते देखता रहूँगा तो मेरे क्षत्रिय धर्म की रक्षा कैसे होगी ?"

"तुम अपनी सेना के रक्षक हो और मैं तुम्हारा रक्षक हूँ। धर्मराज ने तुम्हें महासेनापति धृष्टद्युम्न का रक्षक नियुक्त किया था और मुझे तुम्हारा।" कृष्ण बोले, "किंतु वह एक पृथक् बात है। वस्तुतः तुम सेना को खंडों में बाँट कर व्यक्ति के रूप में सोचते हो,

तुम्हें पूरी सेना की एक जीव के रूप में कल्पना कर, समग्र रूप में चिंतन करना चाहिए।"

"मैं समझा नहीं केशव !"

"क्या कभी सोचा है कि वक्ष की रक्षा के लिए तुम अपने हाथों को किस प्रकार संकट में डालते हो ?" कृष्ण बोले, "सोचा है कि शरीर को उठाए रखने का सारा बोझ अपनी टाँगों पर ही डालते हो ? हाथों के बल तो कभी खड़े नहीं रहते।"

"नहीं ! ऐसा नहीं सोचता। खाता तो मुख है किंतु लड़ते हाथ हैं।" अर्जुन बोला।

"वैसे ही सेनापति पूरी सेना को एक शरीर मानकर चलता है। इसका निर्णय वह करता है कि कौन हाथ है, कौन पैर, कौन वक्ष और कौन केश।" कृष्ण बोले, "हम धर्मराज की रक्षा के लिए किसी भी योद्धा की वलि दे सकते हैं। दे सकते हैं या नहीं ?"

"दे सकते हैं।"

"वैसे ही मैं तुम्हारे विषय में भी सोचता हूँ।" कृष्ण मुस्कराए, "मान लो कि कर्ण के पास वैजयंती आ गई है। अपनी सेना की रक्षा के लिए तुम उससे युद्ध करने गए तो वह तुम्हारा वध कर देगा। उसके पश्चात् कौन बचाएगा पांडव सेना को कर्ण से ?... और यदि कोई और योद्धा उसे इतने संकट में डाल दे कि वह वैजयंती चलाने को बाध्य हो जाए, तो उस योद्धा के प्राण तो जाएँगे, किंतु उसके पश्चात् कर्ण तुम्हारा सामना नहीं कर पाएगा और पांडव सेना सदा के लिए सुरक्षित हो जाएगी।" उन्होंने रुककर अर्जुन की ओर देखा, "इसे तुम स्वार्थ कहोगे, कायरता कहोगे अथवा युद्धनीति ? यह क्षात्रधर्म का पतन है अथवा सैन्य-संचालन की दक्षता ?"

धृष्टद्युम्न का रथ नष्ट हो गया। क्षण भर के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रह गया। रात के इस अंधकार में यह भी पता नहीं लगता था कि युद्धक्षेत्र में कौन कहाँ है। कहीं उल्काओं का प्रकाश था और कहीं विभिन्न वाहिनियाँ अंधकार में ही व्यूह वनाए बैठी थीं। जहाँ उल्काएँ थीं भी, वहाँ भी ध्वज दिखाई नहीं देते थे कि कोई समझ सके कि किसका रथ कहाँ था।

कर्ण की ओर बढ़ने के स्थान पर धृष्टद्युम्न अंधकार का लाभ उठाकर वृक्षों के पीछे दुवक गया। उसे यहाँ छुपे नहीं रहना था। यह तो केवल वाहिनियों और योद्धाओं की स्थिति जानने मात्र के लिए था। अपने पक्ष के किसी योद्धा का रथ दिखाई देते ही वह उसके निकट चला जाएगा।

कुछ ही देर में सहदेव का रथ दिखाई दिया। धृष्टद्युम्न उसकी ओर भागा। सहदेव के पार्श्वरक्षकों ने अपनी उल्काएँ ऊपर उठाईं, "कौन है ?"

धृष्टद्युम्न उनके सम्मुख आ गया।

"क्षमा करें सेनापति !"

"कोई वात नहीं।" धृष्टद्युम्न रथारूढ़ हुआ।

"हमें सूचना मिली थी कि आपका रथ नष्ट हो गया है।" सहदेव ने कहा, "वस्तुतः

मैं आपको खोज ही रहा था। आपके सैनिक कहाँ गए ?"

"संभव है धर्मराज की सेना में जा मिले हों।" धृष्टद्युम्न ने कहा।

सहसा धृष्टद्युम्न को लगा कि उसने अब तक अपनी ओर ध्यान नहीं दिया था। वह बहुत थका हुआ था। उसे विश्राम की बहुत आवश्यकता थी। पर युद्ध में विश्राम...।

"मेरा विचार है सहदेव ! मुझे धर्मराज के निकट पहुँचा दो। वहाँ से नया रथ लेकर मैं कर्ण पर आक्रमण करना चाहता हूँ।" धृष्टद्युम्न ने कहा, "वह हमारे लिए महाकाल सिद्ध हो रहा है। दूसरी ओर द्रोण हैं। दोनों ही इस समय बहुत प्रचंड हो रहे हैं। कर्ण को न रोका गया तो वह और द्रोण पांडव सेना को नष्ट कर देंगे।"

धर्मराज ने सब कुछ सुना।

"नहीं ! तुम कर्ण से युद्ध मत करो महासेनापति ! इस समय वह तुम्हारे लिए घातक है। पूरे दिन और आधी रात के इस युद्ध के पश्चात् हम सब इतने थक गए हैं, किंतु कर्ण और भी प्रचंड हो उठा है। लगता है जैसे वह भी निशाचरों में से ही एक है।"

"पर उस निशाचर को भी रोकना तो होगा धर्मराज !"

"ठीक कहते हो राजकुमार ! किंतु आत्महत्या का कोई लाभ नहीं है।" युधिष्ठिर बोले, "दुर्योधन अपने लाभ के लिए युद्ध चलाए चल रहा है, अन्यथा अंधकार के साथ ही सेनाओं को अपने शिविरों में लौट जाना चाहिए था। युद्ध की सारी मर्यादाओं का हनन कर दुर्योधन ने अंधकार के पश्चात् भी हमारी सेना पर आक्रमण किया है। पता नहीं क्यों आचार्य भी उसी दुर्बुद्धि की इच्छानुसार चल रहे हैं। ऐसे में हम उनके वचन का क्या विश्वास करें। यदि हम एकांगी युद्धविराम कर, शिविर में लौट जाते हैं और वे युद्ध बंद नहीं करते तो हमारी और भी हानि होगी। संभव है कि वे युद्धभूमि और शिविर की मर्यादा का भी पालन न करें और हमें युद्धभूमि में न पाकर हमारे शिविर पर आक्रमण कर दें।"

"तो क्या सोचते हैं आप ?" सहदेव ने पूछा।

"हमारे सैनिक जिस प्रकार भाग रहे हैं, उससे स्पष्ट है कि वे बेचारे बहुत थक गए हैं और इस अंधकार में कर्ण और द्रोण की प्रचंडता का सामना करने में असमर्थ हैं। ऐसे में उन्हें युद्ध के लिए बाध्य करना अत्याचार है।" युधिष्ठिर ने कहा, "मैं तो स्वयं भी समरभूमि से हट जाने का विचार कर रहा हूँ, पर अभी इस बात से आश्वस्त नहीं हूँ कि दुर्योधन हमारे शिविर पर भी आक्रमण नहीं करेगा।"

तभी अर्जुन का रथ दूर से उनकी ओर आता दिखाई दिया।

"अर्जुन !" रथ निकट आने पर युधिष्ठिर ने पुकारकर कहा, "कर्ण को देखो। इस आधी रात में भी वह सूर्य के समान तप रहा है। उसके बाणों से घायल होकर अनाथों के समान चीखते-चिल्लाते तुम्हारे सहायक बंधुओं का आर्तनाद निरंतर सुनाई पड़ रहा है। मैंने धृष्टद्युम्न को रोक लिया है। तुमको कर्ण के वध के लिए जो समयोचित

कर्तव्य जान पड़े वही करो।"

कृष्ण और रुके नहीं। वे रथ को आगे बढ़ा ले गए।

"धर्मराज इतने भीरु तो नहीं हैं किंतु आज वे कर्ण के पराक्रम से कुछ भयभीत हो गए लगते हैं।" अर्जुन बोला।

"प्रातः से युद्ध करते हुए थक भी गए हो सकते हैं।" कृष्ण ने कहा।

"जो भी हो, समरभूमि में कर्ण जिस प्रकार निर्भय विचर रहा है और भागते हुए श्रेष्ठ रथियों पर पीछे से बाणवर्षा कर उनको अपमानित कर रहा है, उसे मैं सहन नहीं कर सकता।" अर्जुन बोला, "आप रथ उसी के सम्मुख ले चलिए। आज या तो मैं उसे मार डालूँगा या वह ही मुझे मार डाले।"

"तुम्हें आवेश में देखता हूँ तो जैसे मैं तृप्त हो जाता हूँ। यही तो चाहता रहा हूँ मैं कि तुम सच्चे क्षत्रिय के समान अपने सात्विक रजोगुण को धारण करो।" कृष्ण मुस्कराए, "किंतु युद्ध के उन्माद में भी सोचो। विचार करो।"

"क्या विचारूँ केशव ! युद्ध का समय कर्म का समय होता है, विचार का नहीं।"

"पर कोई कर्म बिना विचार के नहीं होना चाहिए। शत्रु की नीति पर विचार किए बिना युद्ध नहीं करना चाहिए।" कृष्ण बोले, "विचार करो कि युद्ध में से सबसे पहले भाग जाने वाला कर्ण आज युद्धभूमि छोड़ना ही नहीं चाहता। क्यों ? अकस्मात् ही ऐसा क्या हो गया है कि कर्ण इतना वीर हो गया है ? जयद्रथ के वध से पहले उसका व्यवहार कुछ और था और इस समय उसका व्यवहार कुछ और है।"

अर्जुन उनकी बात समझ रहा था किंतु...

"युद्ध के लिए लगातार मचलने पर भी स्वयं को दुर्बल पाने वाला व्यक्ति जब कोई ऐसा शस्त्र पा जाता है, जिससे वह स्वयं को शत्रु से प्रबल मानने लगता है तो वह प्रतीक्षा नहीं कर सकता। कल के लिए भी नहीं। वह तत्काल युद्ध चाहता है।" कृष्ण बोले।

"पर यदि उसके पास वैजयंती है तो युद्ध के पहले से होगी। यह कथा तो युद्ध के पूर्व से चल रही है।"

"ठीक कहते हो। चर्चा थी किंतु कर्ण का व्यवहार उसके अनुरूप नहीं था।" कृष्ण बोले, "संभव है कि वैजयंती प्राप्त करने का प्रयत्न युद्ध आरंभ होने से पहले से ही चल रहा हो। उसका शुल्क, उसका मूल्य निश्चित हो रहा हो।"

अर्जुन ने कुछ कहा नहीं। कृष्ण की ओर देखता भर रहा।

"दिव्यास्त्रों को प्राप्त करने के अनेक माध्यम हैं धनंजय !" कृष्ण बोले, "और अनेक सोपान भी।"

"जैसे ?"

"तपस्वी लोग अपनी तपस्या से दिव्यास्त्र प्राप्त करते हैं। कुछ लोग दिव्यास्त्रों की चोरी करते हैं।" कृष्ण ने कहा, "कुछ उसके लिए मूल्य चुकाते हैं। युद्ध से पहले तुमने

कथा सुनी थी कि कर्ण ने इंद्र को अपना दिव्य कवच कुतरकर दे दिया है। फिर भी उसके शरीर पर किसी को कोई घाव नहीं दिखा। रक्त नहीं बहा कर्ण का। मैंने आज थोड़ी देर पहले सुना है कि कर्ण को वैजयंती उसके कुंडलों के विपर्यय में मिली है। इसका अर्थ है कि वे कुंडल बहुत मूल्यवान रहे होंगे। हमने कभी उनका कोई मूल्य नहीं आँका। न कभी जानना चाहा कि वे कुंडल उसे कहाँ से प्राप्त हुए हैं। किंतु आज लगता है कि वे अत्यधिक मूल्यवान रहे होंगे, अन्यथा कुंडलों के मूल्य के रूप में दिव्यास्त्र नहीं मिला करते।''

''और दिव्यास्त्रों के मिलने के सोपान ?''

''कभी चर्चा हो रही होती है, कभी भाव तौल, कभी अस्त्र लाने के लिए कोई जाता है और कभी अस्त्र वहाँ से भेजा जाता है।'' कृष्ण रुके, ''बहुत संभव है कि वैजयंती की चर्चा युद्धारंभ से पूर्व आरंभ हुई हो, वहाँ से भेजी युद्ध के मध्य गई हो और वह कर्ण के हाथों में पहुँची आज हो।''

''तभी। वह उसकी घोषणा तो करता रहा है किंतु उसका प्रयोग उसने कभी नहीं किया।'' अर्जुन बोला, ''पर इसका भी क्या प्रमाण है कि इस समय उसके पास वैजयंती है ?''

''इसका परीक्षण होना चाहिए।'' कृष्ण बोले।

''पर कैसे ?''

''इस समय तुम्हारा कर्ण से भिड़ना ठीक नहीं है। घटोत्कच के पास दिव्यास्त्र भी हैं और राक्षसी माया भी।'' कृष्ण ने कहा, ''उसमें शारीरिक बल भी है और अस्त्र कौशल भी। राक्षस है तो उसे रात्रि युद्ध का अभ्यास भी है। उसे कर्ण का सामना करने दो। वह कर्ण को जय कर सकता है। यदि कर्ण के पास वैजयंती होगी तो वह उसको प्रकट किए बिना नहीं रहेगा। उस बीच आचार्य द्रोण को रोकने के लिए तुम्हारी आवश्यकता है।''

कृष्ण ने अर्जुन की सहमति की प्रतीक्षा नहीं की। वे रथ को घटोत्कच के निकट ले आए।

''घटोत्कच ! तुम्हारे बंधु संकट में हैं। तुम्हारे पराक्रम को प्रकट करने का समय आ गया है।'' कृष्ण बोले, ''कर्ण पांडवों की सेना के श्रेष्ठ क्षत्रियों को नष्ट करता जा रहा है। दूसरी ओर द्रोण हैं। उन दोनों को तुम और अर्जुन ही रोक सकते हो। मैं चाहता हूँ कि द्रोण को अर्जुन रोकें और कर्ण को तुम। ठीक है ?''

''ठीक है केशव !'' घटोत्कच हँसा, ''मुझे द्रोण से प्राणों का संकट है, धनंजय को कर्ण से। फिर आचार्य के पास जितने दिव्यास्त्र हैं, मेरे पास नहीं हैं। उनका सामना तो धनंजय ही कर सकते हैं।''

''तुमने तो बहुत दूर तक देख लिया घटोत्कच !'' कृष्ण हँसे, ''किंतु कर्ण इस समय सूर्य के समान तप रहा है और धर्मराज उससे भयभीत हैं। तुम रात्रि युद्ध में उससे

प्रवल सिद्ध हो सकते हो। पर उसके पास इंद्र की दी हुई कोई अमोघ शक्ति भी बताई जा रही है, जिसे उसने अर्जुन के लिए बचाकर रखा है।"

"या तो वह स्वयं को बचा ले या फिर उस अमोघ शक्ति को।" घटोत्कच जोर से हँसा, "यदि मुझसे युद्ध करते हुए भी उसे बचाकर रखेगा तो धनंजय पर उसका प्रहार करने के लिए, वह स्वयं नहीं बचेगा; और यदि मुझ पर उसका प्रहार करेगा तो धनंजय पर प्रहार करने के लिए शक्ति नहीं बचेगी।" घटोत्कच ने अपने सारथि विरूपाक्ष को रथ हाँकने का संकेत किया, "दोनों ही स्थितियों में धनंजय सुरक्षित हैं।"

"दुःशासन ! यह घटोत्कच जिस गति से कर्ण पर आक्रमण कर रहा है, वह हमारे लिए घातक हो सकता है। आचार्य भी कर्ण की रक्षा के लिए चिंतित नहीं होंगे।" दुर्योधन ने चिंतित स्वर में कहा, "जाओ, इस घटोत्कच को रोको। कर्ण की रक्षा करो। कहीं हमारे प्रमाद के कारण कर्ण मारा ही न जाए।"

दुःशासन चल पड़ा। कर्ण की उसे भी चिंता रहती थी, यद्यपि वह मानता था कि कर्ण अव पहले जैसे पांडव विरोधी नहीं रह गया था। वह बहुत कोमल हो गया लगता था उनके प्रति। फिर भी कौरव सेना के लिए वह बहुत आवश्यक था। पितामह ने तो उसे युद्ध से बाहर ही रखा था, आचार्य भी उसे कोई बहुत महत्त्व नहीं देते थे। यह बुड्ढा द्रोण सदा चिड़चिड़ाया ही रहता है। किसी की रक्षा की बात करो तो खौंखिया कर मारने को दौड़ता है।

दुःशासन को भेज कर भी दुर्योधन को संतोष नहीं हुआ।... दुःशासन उसका आज्ञाकारी तो था किंतु घटोत्कच का तोड़ नहीं था।... और फिर दुःशासन के प्रति जो दृष्टिकोण भीम का होगा, वही उसके पुत्र घटोत्कच का भी होगा। घटोत्कच उसे अपना सबसे भीषण शत्रु मानेगा। वह भी उसका वक्ष फाड़कर उसका रक्त पीना चाहेगा। भीम फिर भी मनुष्य था, घटोत्कच तो था भी राक्षस। रक्त पीने के प्रति उसकी रुचि भीम से कुछ अधिक ही होगी।... और कहीं वे पिता-पुत्र दोनों ही दुःशासन पर टूट पड़े तो दुःशासन को बचाना भी संभव नहीं होगा।

तभी जटासुर का पुत्र अलंवुश दुर्योधन के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। अलंवुश। जाने इतने सारे अलंवुश उसी की सेना में क्यों एकत्रित हो गए हैं—उसने सोचा—पहला अलंवुश, राक्षस ऋष्यशृंग का पुत्र था। उसे घटोत्कच ने ही मारा था। दूसरा क्षत्रिय राजा अलंवुश, जिसका वध सात्यकि के हाथों हुआ था। तीसरा अलंवुश अर्जुन से पराजित होकर भाग गया था। और जटासुर का पुत्र... यह चौथा अलंवुश है। युद्ध के आरंभ में जब वह दुर्योधन से मिलने आया था, उसने बताया था कि मध्यम पांडव भीम ने उसके पिता जटासुर का वध किया था। वह भीम से अपने पिता का प्रतिशोध लेने आया था।... वही अलंवुश आज फिर आकर उसके सम्मुख खड़ा हो गया था।

दुर्योधन ने उसकी ओर देखा।

"यह रात्रि युद्ध है युवराज ! इसमें हम राक्षसों की विशेष गति होती है।" वह बोला, "आपकी अनुमति हो तो मैं भीम से अपना ऋण वसूल कर लूँ।"

दुर्योधन के मन में तत्काल एक योजना बनने लगी थी। फिर भी बोला, "प्रधान सेनापति के पास क्यों नहीं गए ?"

"आपके लिए वे प्रधान सेनापति हैं, हमारे लिए तो वे पांडवों के गुरु हैं।" वह बोला, "वैसे भी युवराज ! धर्म का प्रचार करने वाले त्यागी तपस्वियों और जीवन का भरपूर भोग करने वाले राक्षसों में कभी अनुकूलता नहीं हो सकती। हम इसे आपका युद्ध मानकर लड़ने आए हैं। आचार्य से हमें क्या लेना-देना।"

दुर्योधन उसे देखता रहा। ठीक कह रहा है, आचार्य से इसे क्या लेना-देना।

"तुम भीम से प्रतिशोध चाहते हो ?"

"हाँ ! युवराज !"

"भीम को तो मैं, कर्ण और द्रोण ही मिलकर मार डालेंगे।" वह बोला, "तुम इस घटोत्कच को सँभालो, जो सदा पांडवों के हित में तत्पर रहता है।"

अलंबुश खड़ा कुछ सोचता रहा।

"वैसे भी भीम मरेगा तो घटोत्कच और प्रचंड हो जाएगा। घटोत्कच के मारे जाने से भीम पुत्रशोक में ही मर जाएगा।" दुर्योधन बोला, "एक के वध से दोनों से ही मुक्ति मिल जाएगी। तुम्हारा प्रतिशोध पूरा हो जाएगा।"

अलंबुश की समझ में दुर्योधन की बात आ गई। वह सीधा वहाँ पहुँचा, जहाँ कर्ण और घटोत्कच लड़ रहे थे। कर्ण के निकट उल्काओं का पर्याप्त प्रकाश था। घटोत्कच को शायद प्रकाश की उतनी आवश्यकता नहीं थी। वह तो बिना उल्काओं के ही युद्ध का अभ्यस्त था।

अलंबुश ने कर्ण से लड़ते घटोत्कच पर बाणों की वर्षा आरंभ की, "आ मुझसे युद्ध कर हिडिंबा के पुत्र।"

घटोत्कच ने अविलंब कर्ण को छोड़ दिया। कर्ण कहीं भागा नहीं जा रहा। अलंबुश का क्या पता है कहाँ जा छुपे।

उसने पहले ही झपाटे में अलंबुश के सारथि और घोड़ों को मार गिराया। अलंबुश को जैसे पता ही नहीं लगा कि यह क्या हो गया। वह अपने कीलित रथ में खड़ा कुछ सोचता रहा और फिर उसने धनुष भी वहीं छोड़ दिया और रथ से उतर आया। रथ में बैठकर धनुष बाण से लड़ना वैसे भी उसे अपनी प्रकृति के अनुकूल नहीं लग रहा था।

वह दौड़कर घटोत्कच के रथ पर चढ़ गया। उसने घटोत्कच पर मुक्के का कठोर प्रहार किया।

तो यह बड़े सैनिक युद्धों में लड़ने वाला, युद्धशास्त्र में प्रशिक्षित, योद्धा नहीं था घटोत्कच ने सोचा—यह तो अपने शारीरिक बल से दूसरों को डराने वाला साधारण गुंडा

था। वन में निहत्थे लोगों से मल्लयुद्ध करने का ही अभ्यस्त था।

घटोत्कच ने धक्का देकर उसे रथ से नीचे गिरा दिया; और स्वयं भी धनुष बाण छोड़कर उस पर कूद गया। उसने अलंबुश को मुक्कों से पीटना आरंभ किया। उससे संतोष नहीं हुआ तो उसे धरती पर पटककर अच्छी तरह रगड़ा। पर जाने कैसे वह घटोत्कच की पकड़ से निकल गया और उसने घटोत्कच को भूमि पर गिरा लिया। उसने भी घटोत्कच को उसी प्रकार धरती पर रगड़ा, जैसे घटोत्कच ने उसे रगड़ा था। वह उससे युद्ध नहीं कर रहा था, अपने धरती पर रगड़े जाने का प्रतिशोध ले रहा था।

घटोत्कच का क्रोध एक प्रकार के मनोरंजन के स्तर पर उतर आया था। उसने ठीक ही सोचा था। यह वन की किसी बस्ती का गुंडा ही था। प्रतिशोध ही उसके जीवन का मंत्र था। जो कुछ विपक्षी दल करेगा, वही यह भी करेगा। यदि घटोत्कच इसे लात से मारेगा तो यह भी उसे लात मारेगा और यदि वह इसे पत्थर से मारेगा तो यह भी पत्थर खोजने लगेगा। ऐसे-ऐसे लोगों को दुर्योधन ने इस युद्ध में योद्धा के रूप में उतार दिया है। घटोत्कच ने भी सुना था कि यह उसके पिता से अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने आया था। किस बात का प्रतिशोध ? वन में जटासुर पांडवों के अस्त्र-शस्त्र ही नहीं महारानी पांचाली को भी लेकर भाग रहा था। ऐसे में भीमसेन ने न केवल उन लोगों को छुड़ा लिया था, जटासुर का वध भी कर दिया था। पापी को दंडित किया तो उसका भी प्रतिशोध। स्त्री का अपहरण करने वाले दस्यु का वध नहीं किया जाएगा क्या ?

घटोत्कच ने उसे धक्का देकर परे धकेल दिया और धरती से उठ खड़ा हुआ। इस बार अलंबुश उस पर कूदा तो घटोत्कच ने उसे अपनी भुजाओं में पकड़कर अपने सिर से भी ऊपर उठा लिया। कुछ चक्कर दिए और उसे धरती पर पटक दिया। अलंबुश फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखता रहा; किंतु उठने का साहस नहीं कर सका।

घटोत्कच ने अपना खड्ग निकाला और अलंबुश के मस्तक को काटकर उसके धड़ से पृथक् कर दिया। रक्त से भीगे हुए, अलंबुश के उस मस्तक को उसने उठाकर दुर्योधन के रथ में फेंक दिया।

"लोग कहते हैं कि राजा, ब्राह्मण और स्त्री के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। इसलिए तेरे लिए यह उपहार लाया हूँ। यह है तेरा बंधु। इसे मैंने मार डाला है।" घटोत्कच बोला, "बहुत पराक्रमी मानता था तू इसको। स्वयं और कर्ण को भी बहुत पराक्रमी मानता है न। अब तू कर्ण और अपनी भी ऐसी ही अवस्था देखेगा। तब तक प्रसन्नतापूर्वक कुछ श्वास ले ले, जब तक कि मैं कर्ण को मारकर तुझे मारने के लिए लौटता हूँ। श्रीकृष्ण ने कर्ण को रोकने को न कहा होता तो पहले तेरा ही मस्तक काटकर तेरे रथ के ध्वज पर टाँग देता।"

"चलो विरूपाक्ष !" घटोत्कच रथारूढ़ होकर कर्ण की ओर चला गया।

दुर्योधन उसकी ओर देखता ही रह गया, 'क्या वस्तुतः वह इतनी ही सुविधा से

कर्ण और उसका मस्तक भी काटकर लुढ़का देगा ? अलंबुश को तो उसने उतनी ही सुविधा से काटकर फेंक दिया है, जितनी सुविधा से कोई बधिक राजा की आज्ञा से अपराधी को सूली पर चढ़ा देता है।'

कर्ण ने अपनी ओर बढ़ते हुए घटोत्कच को रोका। किंतु घटोत्कच कोई दो-चार बाणों से रुकने वाला नहीं था। कर्ण जल्दी से उसे निपटाकर अर्जुन की खोज में निकलना चाहता था; किंतु घटोत्कच को किसी प्रकार की कोई जल्दी नहीं थी। दोनों ओर से बाण चलने लगे। कर्ण ने घटोत्कच को पर्याप्त घायल कर दिया था; किंतु वह स्वयं भी कम घायल नहीं हुआ था। दोनों के शरीरों से निरंतर रक्त बह रहा था। किंतु घटोत्कच जिस स्फूर्ति से बाणवर्षा कर रहा था, उसे देखकर लगता था कि जैसे वह रक्त उसका अपना न हो, किसी और का हो।

कर्ण का धैर्य चुक गया। नहीं यह साधारण बाणों से मानने वाला नहीं था। उसने अपना दिव्यास्त्र प्रकट किया। किंतु उससे घटोत्कच रुद्ध होने के स्थान पर कुछ और प्रचंड हो गया। वह अपने सैनिकों की सहायता से निरंतर लोहे के चक्र, भुशुण्डी, शक्ति, तोमर, शूल, शतघ्नी तथा पट्टिश की वर्षा कर रहा था। वे किसी योद्धा द्वारा चलाए गए नहीं लग रहे थे। लगता था कि घटोत्कच अपनी माया से शस्त्रों की धाराप्रवाह वर्षा कर रहा है।

उसका वेग इतना प्रबल था कि कौरव सेना के पाँव उखड़ गए। अनेक महारथी भागने में सैनिकों का नेतृत्व करते दिखाई पड़े। किंतु कर्ण आज अपने स्थान पर ऐसा दृढ़ खड़ा था कि स्वयं दुर्योधन को आश्चर्य हो रहा था। कर्ण के बाणों के प्रबल वेग ने जैसे घटोत्कच की माया नष्ट कर दी थी। किंतु घटोत्कच के अनेक बाण कर्ण के शरीर में समा गए थे। कर्ण उसकी पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सकता था। कर्ण ने घटोत्कच को दस बाण मारे। घटोत्कच ने उसकी ओर देखा और धनुष के स्थान पर दिव्य सहस्रसार चक्र उठा लिया। चक्र की परिधि पर तीव्र क्षुर लगे हुए थे। घटोत्कच ने वह चक्र कर्ण पर चला दिया, "जा कर्ण ! अब तू जीवित नहीं रह सकता।"

किंतु घटोत्कच की इच्छा पूरी नहीं हुई । कर्ण ने चक्र को अपने बाणों से काट कर भूमि पर फेंक दिया, जैसे वह भयंकर सहस्रसार चक्र न हो, किसी भाग्यहीन का संकल्प हो।

घटोत्कच की समझ में आ गया। यह कर्ण था, अलंबुश नहीं कि धनुष बाण की उपेक्षा की जाए। उसने पुनः अपना धनुष उठा लिया। उसने बाणवर्षा से कर्ण को ढँक दिया। कर्ण तनिक भी नहीं घबराया। उसने घटोत्कच पर वैसी ही बाणवर्षा कर उसे आच्छादित कर दिया। घटोत्कच ने बाणों के बीच अपनी भारी गदा चला दी। कर्ण ने उसे भी काट दिया। और उसके पश्चात् कर्ण ने उसके घोड़ों को भी मार दिया।

घटोत्कच रथ से नीचे नहीं उतरा। किंतु वह रथ में नहीं था।

कर्ण चकित होकर इधर-उधर देखता रहा। कहाँ गया घटोत्कच ? रथ में ही छुप

गया होगा।...कर्ण ने अपने बाणों से रथ के टुकड़े कर दिए। किंतु घटोत्कच वहाँ नहीं था।

सहसा कर्ण के रथ पर ऊपर से वृक्ष की एक मोटी टहनी गिरी। पर टहनी से रथ की छत में छेद कैसे हो गया ? कर्ण समझ गया। घटोत्कच अपने घोड़ों के मारे जाने पर, रथ से नीचे उतरने के स्थान पर, अंधकार का लाभ उठाकर, ऊपर के किसी वृक्ष पर चला गया था; और अब वहाँ से ही उसने वृक्ष के पत्तों में गूँथकर बाण मारा था।

कर्ण डर गया। इस बाण से तो वह बच गया था; किंतु प्रत्येक बाण से इसी प्रकार बचना तो संभव नहीं था। यह भी पता नहीं चलेगा कि कौन-सी मात्र शाखा है और किसमें बाण छिपा है। घटोत्कच की माया से लड़ने का अर्थ था कि वह कर्ण की ओर चार पत्ते भी फेंके तो कर्ण उसको अपने बाणों से काटे। यह युद्ध होगा या बच्चों का खेल।

कर्ण ने अपने रथ के ऊपर के ही नहीं, उसके आसपास के वृक्षों में भी अंधाधुंध बाण मारे। सहसा ऊपर से एक शरीर गिरा। कर्ण प्रसन्न हो गया। अंततः घटोत्कच मारा गया था; अथवा इतना घायल तो हो ही गया था कि ऊपर से नीचे आ गिरा था। किंतु अंधकार में अभी उसे पहचाना भी नहीं गया था कि घटोत्कच ने अनेक बाण बरसाकर अपने जीवित होने का प्रमाण दे दिया। जाने वह किस अज्ञात सैनिक का शव था, जिसे घटोत्कच के राक्षस सैनिक कहीं से उठाकर ऊपर ले गए थे और वहाँ से भ्रम उत्पन्न करने अथवा सैनिकों को डराने के लिए उन्होंने उसे नीचे फेंक दिया था।

कर्ण ने बौखलाकर अपने अनुमान के अनुसार, घटोत्कच के होने के संभावित स्थानों पर दिव्यास्त्रों से आक्रमण किया। पर घटोत्कच जैसे उन सबको अपने असंख्य अज्ञात मुखों से निगलता जा रहा था। कभी युद्धक्षेत्र में उसका एक भी सैनिक दिखाई नहीं पड़ता था और कभी वे युद्धक्षेत्र के कोने-कोने से सहस्रमुख बनकर प्रकट होने लगते थे।

और तब कर्ण ने देखा कि घटोत्कच उससे कुछ ही दूरी पर झाड़ियों के बीच खड़ा उस पर बाण चलाने की तैयारी में था। वह लुप्त हुआ था तो उसके पास धनुष बाण नहीं थे और यह अकस्मात् ही उसके पास शस्त्र कहाँ से आ गए ? कर्ण अपने आवेश को नियंत्रित नहीं कर सका। उसने बिना रुके, अनेक बाण चला दिए। किंतु न तो घटोत्कच की मृत्यु का कोई प्रमाण मिला और न ही उसके आहत होकर तड़पने का ही कोई दृश्य दिखाई दिया। कर्ण के सैनिकों ने उन झाड़ियों को छान मारा। घटोत्कच वहाँ नहीं था। धरती में समा गया क्या ? अंधकार का लाभ भी उसने उठाया ही होगा; किंतु गया कहाँ।... क्या करता कर्ण—वह उसके पीछे धरती में तो समा नहीं सकता था।... तभी घटोत्कच निकट के सरोवर में से प्रकट हो गया।... निश्चित रूप से वह झाड़ियों में से रेंगता हुआ सरोवर में उतर गया था और अब कर्ण के रथ के एकदम निकट

जल से बाहर निकल आया था।

"सूतपुत्र ! खड़ा रह। आज मैं युद्ध में तेरी श्रद्धा को तृप्त कर दूँगा।"

वह भूमि से उछलकर सीधा कर्ण पर आ रहा था। कर्ण ने उस पर अनेक बाण चलाए, किंतु वह कर्ण के रथ पर आया ही नहीं। जाने उछलकर कहाँ अदृश्य हो गया था।

"खोजो ! उसे खोजो।" कर्ण ने चिल्लाकर अपने सैनिकों को आदेश दिया। सैनिक अपने हाथ में पकड़ी उल्काएँ उठा-उठाकर देख रहे थे किंतु उससे घटोत्कच तो क्या मिलता, वे अपनी और अन्य सैनिकों की छायाओं को घटोत्कच समझकर भय से चीत्कार कर उठते थे। लगता था योजनों तक केवल घटोत्कच ही घटोत्कच था। जहाँ वह नहीं था, वहाँ उसकी छाया थी।...

घटोत्कच रथारूढ़ होकर सामने से आ रहा था। इस बार वह अकेला नहीं था। उसकी सेना ने उसे घेर रखा था। वे लोग रथों, हाथियों तथा अश्वों पर आरूढ़ थे। कर्ण के बाण चलाने से पूर्व ही घटोत्कच ने पाँच बाण मारकर उसे घायल कर दिया। अंजलिक नामक बाण से उसके धनुष को भी काट दिया।

यह तो अच्छा ही हुआ कि इस समय उसके हाथ में परशुराम का दिया हुआ जय धनुष नहीं था—कर्ण ने सोचा—अन्यथा वह भी क्षतिग्रस्त हो सकता था।

घटोत्कच इस समय मायावी रूप त्याग कर आया था। उसके नेत्रों से अग्नि बरस रही थी।

"विरूपाक्ष ! रथ को कर्ण के और निकट ले चलो।" उसने कहा, "एकदम निकट। जहाँ से कूदकर मैं उसके रथ में जा सकूँ।"

कर्ण समझ नहीं पाया कि घटोत्कच क्या करना चाहता है। उसने उसके आक्रमण की प्रतीक्षा कर लेना ही उचित समझा। और फिर उसने देखा कि घटोत्कच ने आठ चक्रों से युक्त अशनि उठा ली और पूरे वेग से कर्ण पर चला दी।

कर्ण ने रथ से उछलकर अशनि को हाथ से पकड़ लिया और धरती पर खड़ा हो गया। धरती पर खड़े-खड़े ही उसने उसे वापस घटोत्कच पर फेंक दिया।

घटोत्कच अशनि को आते देखकर अपने रथ से कूद गया। अशनि के प्रभाव से उसका रथ पूर्णतः ध्वस्त हो गया था।

कर्ण पुनः अपने रथ पर आ बैठा था किंतु घटोत्कच का युद्धक्षेत्र में कहीं पता नहीं था।

कर्ण और घटोत्कच के युद्ध का बहुत सारा भाग दुर्योधन ने स्वयं देखा था और बहुत कुछ संदेशवाहकों से सुना था। वह कर्ण की ओर से तनिक भी निश्चिंत नहीं हो पा रहा था। कभी तो घटोत्कच उसके सामने एकदम शिशु लगने लगता था, जिसे कर्ण किसी भी समय समाप्त कर सकता था; और कभी वह इतना भयंकर हो उठता था कि दुर्योधन

का मन कर्ण का परिणाम सोचकर काँप जाता था।

सहसा उसे राक्षस अलायुध का स्मरण हो आया। बकासुर का भाई अलायुध ! उसने कहा था कि कभी रात्रि युद्ध हो तो वह भीम का वध करने की इच्छा रखता है। कारण पूछने की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी दुर्योधन ने उससे पूछ ही लिया था। अलायुध ने जो कारण बताया वह दुर्योधन की अपेक्षा के अनुसार ही था। उसने कहा कि भीम ने अनेक राक्षसों का वध किया था। उसने हिडिंब का वध किया था, बकासुर को मारा था, जटासुर की हत्या की थी और अंततः किर्मीर को भी जीवित नहीं छोड़ा था। और"

"और क्या ?" दुर्योधन ने पूछा था।

"उसने राक्षस कन्या हिडिंबा के साथ बलात्कार किया था।" अलायुध ने कहा था, "इससे बड़ा अपराध और क्या हो सकता है।"

दुर्योधन उसकी बात सुनकर मन-ही-मन हँसा था। अलायुध स्वयं को प्रत्येक राक्षस कन्या का अभिभावक समझता है क्या। परम स्वतंत्र राक्षस कन्याओं के प्रेम को भी यह नियंत्रित करेगा।

"पर पांडव तो कहते हैं कि हिडिंबा ही भीम से प्रेम करने लगी थी। उसने हिडिंब के वध में भीम की स्वयं सहायता की थी।" दुर्योधन ने कहा था।

"पांडव तो यही कहेंगे, किंतु इसका प्रमाण क्या है ?"

"घटोत्कच उनके पक्ष से युद्ध करने आया है। हिडिंबा भीम को अपना पति मानती है।"

"कोई हिडिंबा से पूछने तो गया नहीं कि उसके मन में क्या था।" अलायुध ने रोषपूर्वक कहा था, "परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने भीम को अपना पति स्वीकार कर लिया तो उससे भीम निर्दोष तो सिद्ध नहीं हो जाता।"

"घटोत्कच की क्या बाध्यता है ? वह तो अपनी माँ का पक्ष ले सकता है।"

"होते हैं कुछ मूर्ख। समझता होगा कि उसे हस्तिनापुर का राज्य मिल जाएगा।" अलायुध ने कहा था।

दुर्योधन की इच्छा हुई थी कि पूछे कि कहीं अलायुध भी कोई ऐसी ही अपेक्षा लेकर तो नहीं आया कि वह भीम का वध कर देगा तो हस्तिनापुर का साम्राज्य उसका हो जाएगा।

"भीम और अन्य पांडवों को तो वह अपने पिता मानता ही है, पांडवों की सारी रानियों को भी अपनी माताएँ मानता है। पांचाली की सेवा कर तो वह परम प्रसन्न होता है। राक्षस कुलकलंक।" अलायुध बहुत आवेश में था, "हिडिंबा यदि भीम से प्रेम करने लगी थी तो वह भी हमारी वध्य है। कोई राक्षस कन्या किसी राक्षसेतर पुरुष से प्रेम करे, इससे बड़ा कोई अपराध नहीं हो सकता।"

उस दिन दुर्योधन मन-ही-मन मुस्कराकर रह गया था, किंतु आज दुर्योधन को

अलायुध का वह आक्रोश बहुत उपयोगी लगा। उसने अलायुध को संदेश भेजा।

अलायुध अपना रथ दौड़ाता आया और बोला, "मैं सैन्यसमूह, घोड़े, हाथी और रथों सहित भीम को तथा मंत्रियोंसहित हिडिंबापुत्र घटोत्कच को मार डालूँगा। आप अपनी सारी सेना को रोक दीजिए। पांडवों के साथ हम युद्ध करेंगे।"

दुर्योधन समझ नहीं पाया कि वह उसकी बात को वचकानी मानकर, उस पर हँसे अथवा उसको उतना ही समर्थ मान ले जितना कि वह कह रहा है। घटोत्कच भी तो स्वयं को समर्थ सिद्ध कर रहा है, संभव है, अलायुध में भी कुछ वैसा ही सामर्थ्य हो। पर वह बिना परीक्षा किए अलायुध की बात का विश्वास कर इतना बड़ा संकट नहीं मोल लेना चाहता था। बोला, "तुम अपनी इच्छानुसार युद्ध करो। हम तुम्हारे युद्ध में बाधा नहीं बनेंगे। सैनिकों सहित तुम्हें आगे रखकर, हम लोग भी शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे। हमारे सैनिक विरोधियों से इतने विचलित हैं कि वे न शांत रह पाएँगे न निष्क्रिय।" दुर्योधन अपने लक्ष्य पर आया, "कर्ण के प्राण इस समय भारी संकट में हैं। जाने अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य और कृतवर्मा कहाँ हैं। इस अँधेरे में शकुनि और शल्य भी कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। वे सब भी कहीं न कहीं जूझ रहे होंगे। हम सबको अपना-अपना दायित्व निभाना है। मैंने इस समरांगण में घटोत्कच को तुम्हारा भाग नियत कर दिया है। तुम अपना पराक्रम दिखाओ और यथाशीघ्र उसे मार डालो।"

अलायुध को जैसे अपना मनभावन मिल गया था। उसने एक बार अपनी वाहिनी का निरीक्षण किया। उन्हें कुछ आदेश दिए और घटोत्कच पर आक्रमण कर दिया।

घटोत्कच ने कर्ण को छोड़ दिया। कर्ण से पहले अलायुध से निबटना आवश्यक था। उसने वेग से अपनी ओर बढ़ते हुए अलायुध पर बाणों की धाराप्रवाह वर्षा की। पर वह जानता था कि बाणों का युद्ध न अलायुध को रास आएगा और न ही उसे। वे जब तक स्वतंत्र रूप से मतवाले हाथियों के समान लड़ नहीं लेंगे, तब तक उनको संतोष नहीं होगा।

कर्ण ने देखा कि घटोत्कच उसे छोड़कर अलायुध की ओर चला गया है। उसका मन खिन्न हो उठा : घटोत्कच ने उसकी तुलना में अलायुध को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा ? नहीं, कदाचित् राक्षस होने के नाते उसने अलायुध को रोकना आवश्यक समझा।''' जो भी हो, अब कर्ण के पास यह विकल्प था कि वह घटोत्कच से ही जूझे या फिर भीम पर आक्रमण करे। अंततः कर्ण ने भीम से ही लड़ना निश्चित किया। उसने भीम पर आक्रमण किया। किंतु इस समय भीम के लिए कर्ण तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं था। उसे घटोत्कच की चिंता थी। अलायुध जिस वेग के साथ आया था, उससे घटोत्कच उसका ग्रास बनता दिखाई दे रहा था। भीम अलायुध पर झपटा।

अलायुध ने देखा, भीम अपने आप ही उसके सामने आ गया था। वह तो भीम के वध की ही इच्छा लेकर आया था। दुर्योधन ने उसका भाग निश्चित करते हुए, घटोत्कच उसे सौंप दिया था। अन्यथा एक राक्षस से युद्ध करने के स्थान पर वह राक्षसों का

वध करने वाले इस भीम का मस्तक काट कर ही अधिक प्रसन्न होता।

अलायुध ने भीम को ललकारा। भीम ने उसके उत्तर में उसे अपने बाणों से ढँक दिया। अलायुध हँसा, "तेरे प्राण लेने के लिए मैं आ गया हूँ भीम। तेरे इन बाणों से क्या होगा।"

उसने भीम पर अपने भारी और अनघड़ बाण चलाए। अपने पुत्र की रक्षा में भीम इस समय तक अत्यंत प्रचंड हो चुका था। भीम के बाणों की मार खाकर अलायुध हँस नहीं सकता था। वह चीत्कार करता हुआ दसों दिशाओं में भागने लगा था। किंतु तत्काल ही उसे स्मरण हो आया कि इस प्रकार भाग कर तो वह भीम का वध नहीं कर सकता। उसने स्थिर होकर भीम पर कुछ बाण फेंकें।

भीम ने देखा, उसके बाणों ने अलायुध को क्षतविक्षत कर दिया था। अब उसका अंत कर ही देना चाहिए। भीम ने अपनी भारी गदा उस पर वेग से फेंकी।

गदा को अपनी ओर आते देखकर अलायुध ने मुक्ति का श्वास लिया। बाणों को वह रोक नहीं सकता था किंतु गदा को तो वह रोक सकता था। उसने अपनी गदा से अपनी ओर आती हुई भीम की गदा को रोका।

भीम की समझ में आ गया कि गदा से मारना उसकी भूल थी। अलायुध को बाणों से ही छेदना चाहिए था। भीम ने पुनः अपना धनुप उठा लिया। किंतु इस बीच जाने क्या हो गया कि अलायुध कुछ और ही हो गया। भीम ने बाण छोड़े और अलायुध ने उन्हें व्यर्थ कर दिया। उसके सैनिक भी पांचालों पर कुछ भारी पड़ रहे थे। राक्षसों का दबाव निरंतर बढ़ता ही जा रहा था। कौरवों की सहायता से वे निरंतर प्रबल होते जा रहे थे।

और सहसा अलायुध के एक बाण ने भीम का धनुष काट दिया। भीम का ध्यान उसकी ओर से हटा ही था कि उसने भीम के रथ के सारथि और घोड़ों को भी मार डाला।

अब भीम के लिए बाण-युद्ध संभव नहीं था। भीम रथ से नीचे उतर आया और उसने एक भयंकर गदा दे मारी। अलायुध ने अपनी गदा से उस पर प्रहार किया और गदा को व्यर्थ कर दिया। अलायुध के उस भयानक कर्म को देखकर, भीम निराश होने के स्थान पर युद्धोत्साह से भर गया। उसने तीसरी गदा हाथ में ली। वह भाग कर अलायुध के सम्मुख पहुँचा और अपनी गदा से उसके रथ पर प्रहार किया। अपने अति उत्साह में अलायुध भी हाथ में गदा लेकर रथ से उतर आया।

"तूने मेरे भाई बक का वध किया।" अलायुध बोला, "आज मैं उसका प्रतिशोध तो लूँगा ही, तुझे मारकर तेरे भाइयों को भी एक-एक कर मार डालूँगा।"

भीम की जिह्वा के स्थान पर उसके हाथ चले। उसने अपनी गदा से अलायुध पर वेगपूर्ण प्रहार किया।

थोड़ी देर उनमें गदायुद्ध चलता रहा और फिर एक भयंकर टकराहट से दोनों की

गदाएँ ही उनके हाथों से छूट गईं। अब मल्लयुद्ध के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं था। वे परस्पर गुँथ गए थे; किंतु यह आरंभ से ही स्पष्ट था कि अलायुध की मल्लयुद्ध में अधिक रुचि नहीं थी। अलायुध ने भीम की पकड़ से छूटते ही भूमि से टूटे हुए रथ का एक पहिया उठाकर भीम को दे मारा। और फिर उन दोनों के हाथ में जो कुछ आया, उन्होंने उससे ही अपने शत्रु पर प्रहार किया।

कृष्ण ने युद्ध की स्थिति देखी और बोले, "अर्जुन ! लगता है कि भीमसेन अलायुध के वश में पड़ गए हैं। अलायुध न तो शस्त्रों का विशेष जानकार है और न ही दक्ष योद्धा। किंतु दुर्योधन ने उसके मन की प्रतिशोध की अग्नि को भड़का दिया है। तमोन्मुखी रजोगुणी यह राक्षस युद्ध तो नहीं जीत पाएगा, किंतु अपने प्राण देकर भी वह हमारी भारी क्षति कर सकता है। ऐसे लोग न तो धर्म को जानते हैं और न ही अपने लक्ष्य को। वे तो अपनी ऊर्जा का अपव्यय कर संसार का अकल्याण कर जाते हैं।"

"तो हम वहीं चलें ?"

"नहीं। वहाँ घटोत्कच को ही जाना चाहिए। तुम आचार्य द्रोण को रोको। कहीं इन राक्षसों को आचार्य की सहायता मिल गई तो सर्वनाश हो सकता है।" कृष्ण बोले, "धृष्टद्युम्न, शिखंडी, युधामन्यु, उत्तमौजा तथा पाँचों द्रौपदेय मिलकर कर्ण पर आक्रमण करें। नकुल, सहदेव और सात्यकि अन्य राक्षसों का वध करें।"

कृष्ण ने अपना रथ घटोत्कच के निकट रोका, "हिडिंबापुत्र ! लगता है कि अलायुध ने भीमसेन को अपने वश में कर लिया है। कर्ण को छोड़कर पहले तुम अलायुध का वध करो।"

धृष्टद्युम्न और शिखंडी आ गए थे। उन्होंने कर्ण पर बाण वर्षा आरंभ की। घटोत्कच कर्ण को छोड़कर अलायुध की ओर चला गया। भीम और घटोत्कच दोनों को सामने पाकर अलायुध का वेग मंद पड़ गया था। उसके सैनिक भी उसे कुछ सहायता नहीं पहुँचा पा रहे थे। नकुल, सहदेव और सात्यकि राक्षस सैनिकों के काल बने हुए थे। वे अपने बाणों से निरंतर उनको काटते जा रहे थे। द्रोणाचार्य ने बहुत प्रयत्न किया किंतु अर्जुन ने उन्हें कर्ण की सहायता के लिए नहीं आने दिया। अर्जुन के बाणों के वेग से वे अपनी वाहिनी के साथ पीछे हटने को बाध्य हो गए थे।

धृष्टद्युम्न, शिखंडी तथा अन्य पांचालों ने कर्ण पर आक्रमण तो कर दिया; किंतु वे लोग उसका वेग झेल नहीं पाए। कर्ण उन्हें निरंतर पीछे धकेलता जा रहा था। भीम से यह देखा नहीं गया। उसने अलायुध को घटोत्कच पर छोड़ा और कर्ण पर आक्रमण कर दिया। आज कर्ण ने उसे अपने बाणों और वाग्बाणों—दोनों से ही बहुत पीड़ित किया था। अपनी आँखों के सामने वह कर्ण को पांचालों को इस प्रकार नष्ट करने की अनुमति नहीं दे सकता था।

राक्षस सैनिकों से विशेष प्रतिरोध न पाकर नकुल, सहदेव और सात्यकि भी भीम की सहायता के लिए आ गए थे। कर्ण को उनसे उलझे हुए पाकर धृष्टद्युम्न तथा अन्य

पांचालों ने द्रोण पर आक्रमण कर दिया।

घटोत्कच और अलायुध फिर से अकेले रह गए थे। अलायुध का मनोबल बहुत बढ़ गया। उसे लगा कि सारे पांडव उससे भयभीत होकर उसे छोड़कर इधर-उधर भाग गए थे। एक घटोत्कच ही अपनी मूर्खतावश उससे उलझा हुआ था। अलायुध ने एक विशाल परिघ उठाकर घटोत्कच के मस्तक पर मारा। घटोत्कच लड़खड़ाकर कुछ पग पीछे हट गया। लगा कि वह अभी मूर्च्छित होकर गिर पड़ेगा। किंतु वह तत्काल सँभल गया। उसने अपनी गदा उठा ली और उन्मत्त की भाँति बिना रुके, अलायुध के रथ पर एक के पश्चात् एक कर अनेक प्रहार किए।

अलायुध का रथ चरमराकर धरती पर आ रहा तो घटोत्कच ने अपना हाथ रोक लिया। अलायुध का सारथि मारा जा चुका था। घोड़े भी मृत अथवा मृतप्राय होकर धरती पर पड़े थे।

अलायुध ने अपना भयंकर खड्ग उठाया और घटोत्कच पर टूट पड़ा। घटोत्कच ने भी अपना खड्ग उठा लिया। कुछ क्षणों तक खड्ग एक-दूसरे से टकराकर रण संगीत उत्पन्न करते रहे और फिर जैसे किसी चमत्कार से दोनों के खड्ग हाथ से छूटकर दूर जा गिरे। दोनों परस्पर गुँथ गए और एक-दूसरे के केश पकड़कर शत्रु को पीड़ा पहुँचाने का प्रयत्न करने लगे। दोनों के शरीर से रक्त बह रहा था।

और सहसा घटोत्कच ने अलायुध को ठीक वैसे ही पकड़ लिया, जैसे उसने अलंबुश को पकड़ा था। उसने उसे अपने सिर से ऊपर उठाया और चक्कर दे कर धरती पर बलपूर्वक पटक दिया ।

दुर्योधन देख रहा था। घटोत्कच ने यही अलंबुश के साथ किया था। यही वह अलायुध के साथ कर रहा था। घटोत्कच ने वैसे ही अलायुध के केश पकड़े और भूमि से अपना खड्ग उठाकर उसका मस्तक काट दिया।

घटोत्कच अलायुध का रक्त में भीगा मस्तक पकड़कर दुर्योधन के रथ की दिशा में आया; और सहसा उसने वह मस्तक दुर्योधन के सम्मुख फेंक दिया।

दुर्योधन को लगा, उद्विग्नता से उसका मस्तक फट जाएगा। अलायुध ने स्वयं आकर प्रतिज्ञा की थी कि वह भीम का वध कर देगा। दुर्योधन के मन ने कहीं भीतर ही भीतर उसका विश्वास भी कर लिया था। उसने अपने और अपने भाइयों के जीवन को सुरक्षित ही नहीं, चिरस्थायी मान लिया था।... किंतु अलायुध की प्रतिज्ञा पूरी नहीं हुई थी। घटोत्कच ने अलायुध का वध कर दिया था। तो अब भीम को कौन रोकेगा ? कोई नहीं ! भीम भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ही लेगा।...

दुर्योधन को लगा कि उसकी जंघाओं में असहनीय पीड़ा हो रही है।

कर्ण ने धृष्टद्युम्न और शिखंडी, दोनों को ही अत्यंत घायल कर दिया था। युधामन्यु, उत्तमौजा और सात्यकि भी उसके सामने कुछ विशेष नहीं कर पा रहे थे। पांडव सेना

किसी भी प्रकार स्वयं को सुरक्षित नहीं समझ सकती थी। वे सब युधिष्ठिर की सुरक्षित सेना में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे। पांडव सेना को हताश और युद्धविमुख देखकर घटोत्कच का रोष आकाश को छूने लगा।

घटोत्कच ने नया रथ लिया और कर्ण पर आक्रमण किया। कर्ण का मनोबल भी बहुत ऊँचा था। आज वह कुछ ऐसा अद्‌भुत करने वाला था कि दुर्योधन का विषादपूर्ण मन भी हर्ष से उछल जाए।

वे दोनों ही कर्णी, नाराच, शिलीमुख, नालीक, दंड, असन, वत्सदंत, वाराहकर्ण, विपाठ, सींग तथा क्षुरप्रों की वर्षा करते हुए, अपनी गर्जना से आकाश को कँपाने लगे। पर तभी कर्ण ने अपने दिव्यास्त्र से घटोत्कच के रथ को सारथि और घोड़ों सहित नष्ट कर दिया। घटोत्कच रथ से नीचे नहीं उतरा। वह पुनः अदृश्य हो गया था। अंधकार में उसको खोज पाना कौरवों के लिए संभव नहीं हो पा रहा था। जाने वह कहाँ था और कहाँ से प्रकट होगा। वह कहीं से भी प्रकट होगा और कर्ण को मार देगा।

दुर्योधन बहुत डरा हुआ था। यदि आज का यह रात्रियुद्ध भी पांडवों को समाप्त नहीं कर पाया तो स्थिति और भी विकट हो जाएगी।''' उसे लगा कि उसके मन में कर्ण के प्रति भी गंभीर असंतोष पनप रहा था।''' पता नहीं, यह क्या कर रहा है। घटोत्कच दिखाई नहीं दे रहा है तो यह सभी दिशाओं में लक्ष्यहीन बाण क्यों चला रहा है। उस वैजयंती का प्रयोग क्यों नहीं करता कि वह घटोत्कच को खोज कर उसे मार डाले। पांडवों में से कोई एक तो समाप्त हो। अर्जुन नहीं मरता इससे तो भीम को मारे। भीम नहीं मरता तो घटोत्कच को मारे। पर किसी को तो मारे। यह अपना बाण संधान का अभ्यास ही करता रहेगा क्या, अथवा शत्रु का वध भी करेगा।'''

दुर्योधन को अपने ऊपर भी बहुत क्रोध आया। उसने अपना सारा जीवन इन लोगों को पालने और प्रसन्न करने में ही व्यतीत कर दिया। पितामह और आचार्य के पास दिव्यास्त्र और देवास्त्र थे। कृपाचार्य की चाटुकारिता भी इसी कारण की। अश्वत्थामा और कर्ण का पालन-पोषण करता रहा। क्यों उसने स्वयं दिव्यास्त्र और देवास्त्र प्राप्त नहीं किए ? स्वयं तपस्या कर लेता तो इन लोगों का मुँह तो नहीं देखना पड़ता।''' तपस्या ?''' यही तो उससे हो नहीं सकता था।'''

और तभी घटोत्कच ने अब तक की अपनी सबसे भयंकर माया प्रकट की। जाने वह स्वयं कहाँ था किंतु उसकी ओर से बाणों, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, मूसल, गदाओं और शतघ्नियों की वर्षा होने लगी।''' दुर्योधन के मन में अनेक बार आया था कि ये राक्षस भी तो कोई तपस्या नहीं करते थे; किंतु इनके पास कुछ और प्रकार के शस्त्र होते थे। तपस्वियों ने अपनी साधना से अपनी आत्मा को सूक्ष्म प्रकृति से एकाकार कर प्राकृतिक तत्त्वों से सूक्ष्म अस्त्रबल प्राप्त किया था तो इन राक्षसों ने उसी प्रकृति के स्थूल भौतिक तत्त्वों से विभिन्न प्रकार की मारक शक्ति प्राप्त की थी। घटोत्कच की इस अस्त्र वर्षा से सहस्रों दुंदुभियों के बजने की भयंकर ध्वनियाँ हो रही थीं, जैसे पर्वतों

के शिखर टूट कर गिर रहे हों। न तो राक्षस सैनिक किसी पर दया करते थे और न ही उनके द्वारा प्रयुक्त भुषुंडी, शतघ्नी, लोहे के पत्रों से मढ़े हुए स्थूणाकार शस्त्र।''' कर्ण निरंतर बाण चला रहा था किंतु उसके बाण घटोत्कच की उस शस्त्र वर्षा को रोक नहीं पा रहे थे।

दुर्योधन की सेना में पलायन ही पलायन था। सैनिक एक दिशा से दूसरी और दूसरी से तीसरी दिशा में भाग रहे थे। उनका हाहाकार ही सुनाई दे रहा था। न कहीं कोई वीर हुंकार और न कहीं कोई क्षात्र तेज। चारों ओर विषाद की मूर्तियाँ और कायर पलायन।''' क्यों नहीं कर्ण वैजयंती का प्रयोग करता ?''' कर्ण अपने स्थान पर दृढ़ता से खड़ा था। घटोत्कच की शस्त्रवर्षा को अपने वक्ष पर झेल रहा था और निरंतर बाणवर्षा कर रहा था; किंतु उसका लाभ क्या ?

और सहसा घटोत्कच ने एक शतघ्नी छोड़ी। वह आकार में पहले से कहीं बड़ी तो थी ही, उसमें रथ के समान पहियों को लगाया गया था। वह अपने बल पर भूमि पर अपने पहियों के ऊपर चल रही थी। मार्ग में आए प्रत्येक विघ्न को पीस कर उसके ऊपर से चलती जा रही थी। अंततः आकर उसने कर्ण के रथ को टक्कर मारी। रथ के चारों घोड़े एक साथ ही धराशायी हो गए।

कर्ण रथ से उतर आया।

दुर्योधन और धैर्य नहीं कर सका। कर्ण के निकट आकर रोषपूर्वक बोला, "वैजयंती का प्रयोग क्यों नहीं करते ? घटोत्कच मारा नहीं गया तो हममें से कोई नहीं बचेगा। तुम भी नहीं। क्या करोगे उस वैजयंती का अपनी मृत्यु के पश्चात् ? अरे भीम और अर्जुन हमारा क्या कर लेंगे। रात्रियुद्ध में सारी सेना को इस प्रकार त्रास देने वाले इस पापी राक्षस को पहले मारो। हममें से कोई बचेगा तो पांडवों से युद्ध करेगा न।"

घटोत्कच ने पहियों वाली दूसरी शतघ्नी छोड़ दी।

क्रोध से कर्ण के दाँत भिंच गए। यह घटोत्कच सामने क्यों नहीं आता। दिखाई पड़े तो वह एक बाण से उसका मस्तक काटकर पृथ्वी पर गिरा देगा। पर यदि वह अदृश्य रहकर इस प्रकार शतघ्नियाँ छोड़ता रहा तो सेना के साथ-साथ कर्ण की अस्थियों का भी चूर्ण बन जाएगा।''' दुर्योधन ठीक कह रहा है उसे वैजयंती का प्रयोग करना चाहिए; किंतु फिर अर्जुन ?''' दुर्योधन ने उसे इस रात्रियुद्ध के लिए बाध्य किया ही क्यों ? न रात्रियुद्ध होता, न इस राक्षस को इस प्रकार अदृश्य रहकर युद्ध करने की सुविधा मिलती। पर अब ? सामने से वह शतघ्नी आ रही थी।''' अनायास ही कर्ण का हाथ वैजयंती पर जा पड़ा ।

दुर्योधन प्रसन्न हो गया, "यही तो। यही तो कह रहा हूँ मैं।"

कर्ण के हाथ से छूटकर वैजयंती, घटोत्कच का वक्ष गहराई तक चीरती हुई अंधकारपूर्ण आकाश में कहीं विलीन हो गई।

अर्जुन ने हाथों से अपना मस्तक थाम लिया... तो यह सत्य ही था कि कर्ण के पास वैजयंती थी। पर अर्जुन ने यह क्या किया : घटोत्कच को मरने दिया। उसके हाथ से गांडीव छूटा-छूटा जा रहा था।

कृष्ण ने लपककर अर्जुन को अपने वक्ष से लगा लिया, "तुम बच गए अर्जुन ! अब कर्ण तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसे युद्ध में मारा गया ही समझो।"

"मैं तो बच गया केशव ! किंतु घटोत्कच !" अर्जुन ने उनकी ओर देखा, "आपको तनिक भी शोक नहीं है घटोत्कच के मरने का।"

"वह पापी राक्षस था।" कृष्ण का स्वर कठोर हो गया, "युद्ध में न मरता तो मुझे भविष्य में किसी समय, अपने हाथों से उसका वध करना पड़ता।"

अर्जुन स्तब्ध रह गया, "क्या कह रहे हैं माधव ! वह हमारा पुत्र था। हमारे पक्ष का महारथी योद्धा।"

"मेरा न कोई पुत्र है और न कोई पक्ष।" कृष्ण बोले, "मेरा तो बस एक धर्म है। कोई हमारा स्वार्थ सिद्ध कर दे तो वह हमें प्रिय नहीं हो जाना चाहिए। कोई हमारे परिवार में जन्म ले ले तो वह हमारा रक्षणीय नहीं हो जाता। मेरे लिए तो जैसे जरासंध, शिशुपाल, और एकलव्य थे, उसी प्रकार घटोत्कच भी था। जैसे वे अधर्मी मारे गए, वैसे ही घटोत्कच को भी मरना ही था।"

अर्जुन ने कुछ नहीं कहा। वह जानता था कि कृष्ण को समझना सरल नहीं था। उनके मन की थाह को कौन पा सकता था। पर सारे चराचर जीवों को अपनी ममता देने वाले कृष्ण इतने निर्मम कैसे हो जाते हैं ?

कौरवों का वेग बहुत बढ़ गया था। घटोत्कच के मारे जाने से वे अति उत्साहित हो उठे थे। इधर लगता था कि धर्मराज अचेत ही हो जाएँगे। उनकी आँखों से अश्रु बह रहे थे।

"महाराज ! शत्रुओं की सेना में भयंकर गर्जना का शब्द बढ़ता जा रहा है। वे आपकी सेना का सर्वनाश कर रहे हैं। द्रोण भी बहुत प्रचंड हो उठे हैं।" कृष्ण बोले, "मूढ़ मनुष्यों के समान ऐसी व्याकुलता आपको शोभा नहीं देती। शोक के लिए अवकाश नहीं है। उठिए। युद्ध कीजिए। महासंग्राम का भार सँभालिए। आप ही घबरा जाएँगे तो हमें विजय कैसे मिलेगी।"

युधिष्ठिर ने कृष्ण की ओर देखा, "मैं, आप और भीम जैसा धैर्य कहाँ से लाऊँ। घटोत्कच के मारे जाने से मुझ पर मोह छा गया है और फिर कर्ण का पराक्रम देखकर मैं चिंता में पड़ गया हूँ।"

अर्जुन का ध्यान भीम की ओर चला गया। जब धर्मराज ही इतने व्याकुल हैं तो भीम भी कम प्रभावित नहीं हुआ होगा।

"भीम तो अपने अश्रु पी कर आँखों से अंगारे बरसाता हुआ, दुर्योधन को रोकने के लिए चला भी गया है; किंतु मेरा मन धनुष उठाने का भी नहीं हो रहा।" युधिष्ठिर

बोले, "हम वन में थे तो घटोत्कच ने हमारी कितनी सहायता की थी। अर्जुन अस्त्र प्राप्ति के लिए अन्यत्र गया हुआ है, यह जानकर वह काम्यक वन में हमारी रक्षा के लिए, अर्जुन के लौटने तक हमारे साथ रहा। और आज कर्ण ने उसे मार दिया।" सहसा उन्होंने रुककर कृष्ण की ओर देखा, "अभिमन्यु का वध हुआ, तब भी मैंने कहा था कि उसके लिए बड़े अपराधी कर्ण और द्रोण हैं। किंतु अर्जुन ने उसके लिए जयद्रथ को दंडित किया। यदि तब अर्जुन ने कर्ण का वध कर दिया होता तो आज घटोत्कच जीवित होता।"

वे रथारूढ़ हो गए, "भीमसेन आचार्य से युद्ध कर रहा है। मुझे कर्ण के वध का प्रण कर युद्धभूमि में जाना चाहिए।"

युधिष्ठिर ने शंख बजाया और अपने धनुष की टंकार से युद्धभूमि को गुँजाते हुए चल पड़े।

कृष्ण ने अर्जुन को देखा, "समझ रहे हो धनंजय ! धर्मराज तुमसे रुष्ट हैं कि तुमने आज तक कर्ण का वध नहीं किया। कर्ण मारा गया होता तो न अभिमन्यु का वध होता, न घटोत्कच का।"

"पर क्या यह सत्य है केशव !"

"उसकी चिंता छोड़ो।" कृष्ण बोले, "अब धर्मराज की चिंता करो। उनका इस प्रकार अकेले कर्ण से युद्ध करने जाना उचित नहीं है।"

"तो ?"

"प्रभद्रकों की सेना को साथ लेकर शिखंडी जाएँ धर्मराज की सहायता के लिए। प्रयत्न करें कि धर्मराज और कर्ण का सीधा टकराव न हो। भीम की सहायता के लिए धृष्टद्युम्न, द्रोण पर आक्रमण करें।" कृष्ण बोले, "और देखो अर्जुन ! सैनिक और वाहन कैसे थक चुके हैं। महारथी निद्रा से अंधे हो रहे हैं। संग्राम में कोई विशेष चेष्टा भी नहीं हो रही है। यह तो दुर्योधन की हठ ही है।"

अर्जुन ने देखा : कुछ सैनिक अपने शस्त्रों सहित भूमि पर शवों के बीच ही स्थान बनाकर, सो गए थे, कुछ योद्धा रथों में निद्रा से अचेत होकर गिर पड़े लगते थे। और तो और हाथियों और अश्वों पर भी कुछ लोग सो गए थे। इतने संकट में, इस प्रकार के कोलाहल के होते हुए भी योद्धा सो गए हैं, तो वे कितने थक गए होंगे।... कर्ण और आचार्य का प्रतिकार करने की व्यस्तता में इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया था। यह तो अत्याचार है सैनिकों के साथ।...

"पर दुर्योधन तो युद्ध नहीं रोकेगा।" अर्जुन ने कहा।

"सेनापति युद्ध रोकना नहीं चाहते किंतु सैनिकों को तो विश्राम चाहिए।" कृष्ण ने कहा, "तुम अपनी ओर से प्रयत्न करके देखो।"

"कौरव सैनिको !" अर्जुन ने उच्च स्वर में कहा, "तुम सब लोग अपने वाहनों सहित अत्यधिक थक चुके हो। सारी सेना अंधकार और धूल से ढँक गई है। लोग

अपने शस्त्रों के साथ सो गए हैं अथवा नींद से अंधे होकर अपने ही पक्ष पर प्रहार कर रहे हैं। तुम्हारे सेनापति नहीं चाहते कि युद्ध थमे किंतु तुम लोग ठीक समझो तो युद्ध रोक दो और दो घड़ी के लिए इस रणभूमि में ही सो लो। विश्राम हो जाए, तुम्हारी आँखें कुछ खुल जाएँ, शरीर की जड़ता दूर हो जाए, तो फिर से युद्ध आरंभ कर देना। मैं तुम्हें अपने सेनापतियों की अवज्ञा करने को नहीं कह रहा; किंतु यदि तुम लोग पांडव सेना के भय से युद्ध स्थगित नहीं कर रहे हो तो मैं पांडव सेना की ओर से तुम्हें वचन दे रहा हूँ कि जब तक तुम लोग स्वयं ही युद्ध के लिए प्रस्तुत नहीं हो जाओगे, हम तुम पर आक्रमण नहीं करेंगे।''

अर्जुन की बात का सीधा प्रभाव दिखाई दिया। पहले तो सारे रणक्षेत्र पर जैसे स्तब्धता छा गई। कोलाहल क्षीण हो गया। हर प्रकार की गतिविधि रुक गई; और फिर किसी मूक समझौते के अंतर्गत कौरव सैनिकों के बढ़ने की दिशा बदल गई। वे पांडवों की ओर बढ़ने के स्थान पर वापस अपने सेनापतियों की ओर बढ़ गए, ''राजा दुर्योधन ! महावीर कर्ण ! युद्ध बंद करो।''

''यह षड्यंत्र है।'' दुर्योधन ने चिल्लाकर कहा।

''नहीं !'' किसी सैनिक ने उत्तर दिया, ''यह अर्जुन का धर्म और जीव-दया है। हम उसका कल्याण चाहते हैं।''

''तुम युद्ध नहीं करोगे और वे तुम्हें मार डालेंगे।'' दुर्योधन बोला।

''हम युद्ध करेंगे तो भी मारे ही जाएँगे।'' उत्तर आया।

''मेरी बात मानो, वे थक गए हैं। युद्ध में असमर्थ हो चुके हैं। हम लड़ते रहे तो प्रातः तक युद्ध जीत भी जाएँगे।''

कौरव सैनिकों में अब कोई गतिविधि नहीं थी।

25

युधिष्ठिर ने घमासान युद्ध में से कृष्ण, अर्जुन, भीम, धृष्टद्युम्न और शिखंडी को अपने पास बुला लिया था। सात्यकि कहीं दूर दुर्योधन से उलझा हुआ था। उसका इस समय युद्ध छोड़कर आना संभव नहीं था।

''आपको सूचना मिल गई होगी कि प्रातः से अब तक में आचार्य द्रोण के हाथों हमारे पूज्य महाराज द्रुपद और महाराज विराट् दोनों ही महारथी वीरगति को प्राप्त हुए हैं। आचार्य ने महावीर धृष्टद्युम्न के पुत्रों के भी प्राण हर लिए हैं।'' युधिष्ठिर बोले, ''और उसके पश्चात् भी आचार्य प्रलय की अग्नि के समान धधक रहे हैं। हमारे सैनिक उनके ताप को सहन नहीं कर पा रहे। ऐसे में हम विजय की क्या सोचें, हमारे प्राण भी बच जाएँ तो बहुत है।''

"धर्मराज ठीक कह रहे हैं।" कृष्ण बोले, "विजय की इच्छा हो तो पांडवों को भूलना होगा कि आचार्य द्रोण उनके गुरु हैं। युद्ध में विजय के लिए विरोधी पक्ष से लड़ने वाले गुरु का भी वध करना पड़ता है।"

"मैं तो सहमत हूँ किंतु आपका यह शिष्य..." युधिष्ठिर ने अपना वाक्य अधूरा छोड़ दिया। सबकी दृष्टि अर्जुन पर जा टिकी; किंतु अर्जुन सिर झुकाए पूर्ववत् ही बैठा रहा।

"आचार्य को सिवाय धनंजय के और कौन रोक सकता है ?" युधिष्ठिर ने कहा, "किंतु धनंजय मन लगाकर उनसे युद्ध करेगा नहीं। अब बताइए, मैं किसके पास जाऊँ ?"

"आप ठीक कह रहे हैं।"

कृष्ण ने अर्जुन की ओर देखा। अर्जुन अब भी सर्वथा उदासीन-सा बैठा था, जैसे इस चर्चा से उसका कोई संबंध ही न हो। कृष्ण कुछ देर मौन रहे और फिर बोले, "धनंजय आचार्य का वध नहीं करना चाहता, न करे। उससे आचार्य अमर नहीं हो जाएँगे। महाकाल को तो अपना कार्य करना ही है। बस ऐसे में हमें युद्ध के स्थान पर युक्ति का आश्रय लेना होगा। शस्त्रों से भी बलवान होती है नीति।"

अर्जुन ने चौंककर कृष्ण की ओर देखा, किंतु अब वे उसकी ओर नहीं देख रहे थे। कदाचित् वे जानबूझकर उसकी ओर से मुँह फेरे हुए थे।

"कृष्ण ! यदि तुम कोई ऐसा प्रस्ताव करने वाले हो, जिसमें हम अपनी चतुराई से आचार्य को पराजित कर सकें, तो यह मुझे प्रिय नहीं है।" अर्जुन ने कोमल स्वर में कहा।

कृष्ण ने अर्जुन की ओर अब भी नहीं देखा। अर्जुन को उनके चेहरे का भाव देखकर कुछ आश्चर्य हुआ। ऐसा नहीं लगता था कि भयंकर युद्ध की स्थिति में वे पांडवों के मध्य बैठे किसी गंभीर चर्चा में संलग्न हैं। वे तो जैसे आत्मलीन से होकर कुछ विचार कर रहे थे।

"धर्मराज ! अर्जुन को विभाजित समर्पण का रोग हो गया है।" कृष्ण बोले, "वह उस ईश्वरीय संदेश को भूल बैठा है।"

"कौन-सा संदेश ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव।।"[1] कृष्ण बोले।

अर्जुन को स्मरण हो आया... युद्ध के आरंभ में भी कृष्ण ने उससे यह बात कही थी। वे उन्हीं पंक्तियों को दुहरा रहे थे। इस समय यह अर्जुन को उनका उत्तर था। अर्जुन ने उन्हें बताया था कि उसे क्या प्रिय नहीं है तो उन्होंने भी उसे बता दिया था कि उन्हें क्या प्रिय है।... पर वे तो कह रहे हैं कि जो प्राणी निर्वैर होकर रहता है, वही उनको प्राप्त करता है, तो फिर वे उसे क्यों बाध्य कर रहे थे कि वह अपने ही गुरु

से शत्रुता करे ?...

"मैं स्वीकार करता हूँ कि हमें गुरु से वैर नहीं करना चाहिए।" कृष्ण मुस्कराए, "मैं तो उससे भी आगे वढ़कर यह स्वीकार करता हूँ कि हमें किसी से भी वैर नहीं करना चाहिए। हमें अपने मन में वैर का भाव ही नहीं पालना चाहिए।..."

"पर जब लोग हमसे वैर करेंगे...।" भीम ने उनकी बात वीच में ही काट दी।

किंतु कृष्ण ने भी भीम को अपनी बात पूरी नहीं करने दी। उन्होंने अपना हाथ उठाकर उसे बीच में ही रोक दिया, "किंतु हमें किसी का मोह भी नहीं पालना चाहिए। हमें निष्काम भाव से अपना कर्तव्य करना चाहिए। हम युद्ध में खड़े हैं तो हमारे सामने केवल दो ही पक्ष होने चाहिए, अपना और शत्रु का। जो हमारे पक्ष में लड़ रहा है, वह इस समय रक्षणीय है और जो हमारे विरुद्ध युद्ध कर रहा है, वह वध्य है। इससे आगे कुछ भी सोचना अनुचित है। अतः युद्ध में उतरना और जय की इच्छा मन में न रखना अथवा जय के लिए पूर्ण प्रयत्न न करना, पाप है। जीत के लिए जो भी युक्ति आवश्यक होगी, हम वह करेंगे। यह युद्धशास्त्र का आदेश है।"

अर्जुन मौन ही रहा।... कृष्ण कह तो ठीक ही रहे थे। पर अर्जुन अपने गुरु को न तो मार सकता था, न उन्हें मरता हुआ देख सकता था। वह कृष्ण के समान योगी नहीं हो सकता। उन्हें तो न किसी से किसी प्रकार का मोह है, न किसी से शत्रुता। फिर भी युद्ध कर रहे हैं। उनका कर्म बाधित होता ही नहीं...

अर्जुन ने सिर झुका लिया... तभी तो वे कृष्ण हैं, और वह अर्जुन ! वह उनका शिष्य होकर भी कृष्ण नहीं हो सकता। अपने कर्तव्य को समझकर भी अपने मोह से छूट नहीं पाता...

"कैसी युक्ति केशव ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"युद्ध केवल कौशल और शौर्य से ही तो नहीं जीते जाते धर्मराज ! उनके लिए युक्ति भी आवश्यक होती है। दुर्योधन ने युक्ति से शल्य का हरण कर लिया और महाराज शल्य उनके हो गए...।" कृष्ण बोले।

"और दुर्योधन ने युक्ति से ही कृष्ण की नारायणी सेना का भी अपहरण कर लिया। वह सेना भी दुर्योधन की हो गई।" भीम ने अत्यंत अवोध भाव से कहा।

"वह तो मैंने ही नारायणी सेना के स्थान पर कृष्ण को माँगा था।" अर्जुन ने तत्काल कृष्ण का वचाव किया।

"नहीं ! मैंने ही युक्ति से नारायणी सेना दुर्योधन को सौंप दी थी। जिस-जिसका नाश निकट आ गया है, वह दुर्योधन के पक्ष का हो गया है।" कृष्ण वोले, "युद्ध को आरंभ हुए इतने दिन हो गए। कहाँ है वह नारायणी सेना आज ? कहाँ है उनका शौर्य ?"

"केशव ! हम उस युक्ति की वात कर रहे थे।" धर्मराज कुछ उतावले से होकर वोले।

"ओह ! हाँ !" कृष्ण मुस्कराए, "हमें स्मरण रखना चाहिए कि योद्धा के लिए

शस्त्र भी आवश्यक हैं और उसका आत्मबल भी।…"

"हाँ ! और अपने पक्ष के योद्धाओं को धराशायी होते देख हमारा आत्मबल ही तो क्षीण होता जा रहा है।" शिखंडी ने कहा।

"आप आचार्य को उनके शस्त्रज्ञान से वंचित नहीं कर सकते। आप उनकी दक्षता का हरण नहीं कर सकते। आप उनके दिव्यास्त्र उनसे छीन नहीं सकते। आप केवल एक काम कर सकते हैं।"

"क्या ?" भीम ने पूछा।

"आप उनके आत्मवल का हरण कर सकते हैं। एक बार उनका आत्मबल क्षीण कर दिया जाए तो वे स्वयं ही अपने शस्त्र त्याग देंगे।" कृष्ण बोले।

"उनका आत्मबल !" धृष्टद्युम्न ने जैसे अपने आपसे कहा। उसकी आँखों में अग्नि धधक रही थी; किंतु उसके चेहरे पर एक प्रकार की असहायता का भाव भी था।

"जहाँ तक मैं समझता हूँ, आचार्य की आत्मा एक तपस्वी की आत्मा है। उन्हें अपने लिए कदाचित् कुछ नहीं चाहिए। किंतु उनके मन में बैठा पिता सांसारिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वाकांक्षी है। उन्होंने जीवन में जब भी किसी भी प्रकार की भौतिक संपदा चाही है, अपने एकमात्र पुत्र अश्वत्थामा के लिए ही उसकी इच्छा की है। अब, यदि अश्वत्थामा ही न रहे…?"

"यदि अश्वत्थामा ही न रहे…।" शिखंडी ने दोहराया।

"पर अश्वत्थामा कैसे न रहे ?" धृष्टद्युम्न ने पूछा।

"कैसे की चिंता हम बाद में करेंगे।" कृष्ण मुस्कराए, "पहले हम विचार करें कि यदि अश्वत्थामा न रहे तो क्या आचार्य इसी वेग से लड़ सकेंगे ?"

"मैं कृष्ण से सहमत हूँ।" भीम ने गंभीर स्वर में कहा, "द्रोण के ही नहीं कृपाचार्य के प्राण भी अश्वत्थामा में ही बसते हैं। अश्वत्थामा का वध हो जाए तो आचार्य के लिए युद्ध का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाएगा।"

"पर अश्वत्थामा को कौन मारेगा ?" सहसा अर्जुन ने कहा।

भीम जैसे तड़पकर अर्जुन की ओर मुड़ा, "तुमसे नहीं कहेंगे उसे मारने को। तुम आचार्य का ही वध करना नहीं चाहते तो उनके प्राणों के प्राण अश्वत्थामा का वध कैसे करोगे।"

भीम के क्रोध को अर्जुन समझ रहा था। पर वह नहीं चाहता था कि भीम की बातों से उत्तेजित होकर वह किसी भी एक पक्ष में कुछ कह दे।

"मैं तुम्हारे क्रोध को समझता हूँ मध्यम ! किंतु तुम भी तो मेरे मन को समझो।"

"समझ गया हूँ तुम्हारे मन को, तभी तो यह सब कह रहा हूँ।" भीम ने कहा, "द्रोण ने अभिमन्यु का वध किया। तुम उससे क्षुब्ध हुए, किंतु द्रोण से प्रतिशोध न लेकर, जाकर जयद्रथ को मार आए। अब घटोत्कच का वध हुआ है, तो मैं कर्ण से प्रतिशोध न लेकर, उसकी सेना के किसी अश्व को मार आऊँ ?"

"निश्चिंत रहो मध्यम ! अभिमन्यु का प्रतिशोध लिया गया हो या न लिया गया हो, किंतु घटोत्कच का प्रतिशोध अवश्य लिया जाएगा। मैं कर्ण का वध अवश्य करूँगा। घटोत्कच ने मेरे लिए प्राण दिए हैं। मैं उसका ऋण अवश्य चुकाऊँगा।"

"हम विषय से भटक रहे हैं।" युधिष्ठिर ने कहा, "प्रश्न है कि यदि अश्वत्थामा मारा गया तो आचार्य युद्ध से निरस्त हो जाएँगे ?"

"यह निश्चित है धर्मराज !" कृष्ण बोले, "अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार पाकर द्रोण युद्ध नहीं कर पाएँगे। वे कितने भी दुर्द्धर्ष योद्धा क्यों न हों, उनका मन ऐसा नहीं है कि वे पुत्र के वध का समाचार सुनकर स्थिर रह सकें। आप अश्वत्थामा के वध का प्रबंध कीजिए।"

"अश्वत्थामा का वध तो होगा ही।" युधिष्ठिर ने कहा, "उसके बिना युद्ध समाप्त ही नहीं हो पाएगा, किंतु तत्काल यह कैसे हो ? हमारे पास ऐसा योद्धा कौन है कि जो इसी क्षण जाए और उसका वध कर आए ?"

"आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊँ।" शिखंडी ने उनकी ओर देखा।

"मेरा विचार है कि महावीर शिखंडी को जाने दिया जाए।" भीम ने कहा।

"पर शिखंडी तत्काल अश्वत्थामा का वध नहीं कर पाएँगे। उनको कुछ समय तो लगेगा ही।" धृष्टद्युम्न ने कहा।

सबने उसकी ओर देखा : क्या था उसके मन में ?... किंतु धृष्टद्युम्न ने और कुछ कहा ही नहीं।

"और उतनी देर में द्रोण हमारी सेना को पूर्णतः नष्ट कर देंगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इस कार्य में विलंब न हो, इसी का प्रबंध हमें करना है। शिखंडी अश्वत्थामा को मारने को प्रस्तुत हैं। शिखंडी उसका वध कर सकें तो बहुत अच्छा, अन्यथा अश्वत्थामा को पूर्णतः अवरोध में रखने का कार्य शिखंडी करें। पूर्ण अवरोध का अर्थ जानते हैं न आप ?" कृष्ण ने रुककर शिखंडी की ओर देखा, "अश्वत्थामा किसी भी प्रकार उस अवरोध से निकल न सके। उसका कोई समाचार न आचार्य को मिल सके, न दुर्योधन को। उसकी वाहिनी से कोई संदेशवाहक भी बाहर न निकल सके। कोई न जान पाए कि वह कहाँ है और किस स्थिति में है। कर पाएँगे शिखंडी ?"

"आप कहें तो उधर से कोई पक्षी भी इस ओर आने नहीं दूँगा।" शिखंडी ने कहा।

"तब महाराज ! आप आचार्य तक यह सूचना पहुँचा दें कि अश्वत्थामा मारा गया है।" कृष्ण बोले, "अश्वत्थामा यदि शिखंडी के अवरोध में होगा तो आचार्य यह जान तो पाएँगे नहीं कि अश्वत्थामा जीवित है अथवा मारा जा चुका।...कर पाएँगे ?"

सबने एक-दूसरे को देखा।

"यह उचित नहीं है।" अर्जुन ने कहा, "यह धर्म के प्रतिकूल है और यह क्षत्रिय

का आचरण भी नहीं है।"

"तुम चुप रहो। कृष्ण से अधिक नहीं जानते हो, धर्म को तुम।" भीम ने कहा, "हम धर्म पर ही चलते रहें और वे हमारे योद्धाओं का वध करते रहें। आचार्य ने कितनी वार लघु ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया है और किन लोगों पर ? उन पर, जिन्हें दिव्यास्त्रों का तनिक भी ज्ञान नहीं था। यह धर्म है ? वे धर्मसंगत युद्ध कर रहे हैं ? युद्ध के किसी भी नियम का पालन किया है कौरवों ने ? जब हम कुछ करने की सोचते हैं तो तुम हमारे हाथ बाँध देना चाहते हो। तुम अपने गुरु के मोह में यह भी भूल जाते हो कि इन्होंने ही अभिमन्यु का वध करवाया है और वह भी अधर्म से।"

अर्जुन ने भीम की ओर देखा। वह कुछ कहना चाहता था, पर भीम ने उसे कहने नहीं दिया। बोला, "और तुम धर्म पर चल रहे हो ?"

"क्यों ? मैंने क्या किया है ?" अर्जुन के स्वर में आश्चर्य था।

"तुम युद्ध कर रहे हो और शत्रु का वध नहीं कर रहे। यह धर्म है ?" भीम ने कहा, "तुम पितामह का वध नहीं करना चाहते थे। परिणामतः हमारे सहस्रों योद्धा कटवा दिए। अब तुम आचार्य का वध नहीं करना चाहते और अपने मित्रों का वध करवा रहे हो। प्रकारांतर से आचार्य की सहायता कर रहे हो तुम ! अप्रत्यक्ष सहायता।"

"पर असत्य भाषण···" युधिष्ठिर को भी अपने सम्मुख संकट खड़ा लग रहा था।

"धर्मराज !" कृष्ण बोले, "यदि आप इस असत्य वचन को स्वीकृति नहीं देंगे तो हम सबके प्राण जाएँगे। हमारे प्राणों की रक्षा के लिए तो आप अनृत वचन बोल ही सकते हैं। उसमें कोई दोष नहीं है। किसी के प्राणों की रक्षा के लिए अनृत वचन बोलना पाप नहीं है; और यहाँ तो हम सबके प्राणों का प्रश्न है।···"

युधिष्ठिर के मन का असमंजस नहीं गया। वे मौन बैठे रहे। अर्जुन प्रसन्न था। धर्मराज इसकी स्वीकृति नहीं देंगे।··· किंतु कृष्ण इसका समर्थन ही नहीं कर रहे, इसका प्रस्ताव भी कर रहे हैं। मध्यम ठीक कह रहा था कि अर्जुन धर्म को कृष्ण से अधिक नहीं जानता था। पर···

"यदि शिखंडी सचमुच ही अश्वत्थामा को अवरोध में रखें तो मैं द्रोण को अश्वत्थामा के वध की वास्तविक सूचना दूँगा।" भीम ने कहा।

कृष्ण ने भीम को बहुत रुचि से देखा, "अश्वत्थामा के वध की वास्तविक सूचना ? आप तत्काल वध करेंगे अश्वत्थामा का मध्यम ?"

"हाँ ! मालवा के राजा इंद्र वर्मा के पास एक भयंकर गज है, उसका नाम अश्वत्थामा है।" भीम ने कहा।

"हाँ ! है तो ।" युधिष्ठिर ने समर्थन किया।

"मैं उसी का वध कर द्रोण को सूचना दूँगा कि मैंने अश्वत्थामा को मार दिया है।" भीम ने कहा।

अर्जुन सहम-सा गया। युधिष्ठिर चिंतन की मुद्रा में थे। धृष्टद्युम्न और शिखंडी प्रसन्न

लग रहे थे।

"यही उचित है।" कृष्ण बोले, "धनंजय ! इस असत्य के लिए दोषी तुम हो।"

आचार्य के हाथ-पैर जैसे जड़ हो गए थे। मस्तक के स्थान पर एक प्रस्तर खंड आकर बैठ गया था। सारी सृष्टि निस्पंद होकर एक स्थान पर ठहर गई थी।...

किसके लिए युद्ध कर रहा है तू द्रोण ? क्या प्रयोजन है तेरा इतनी निरीह हत्याएँ करने का ? धन के लिए लड़ रहा है ? राज्य के लिए ? धर्म के लिए तो तू नहीं ही लड़ रहा। किसके लिए धन चाहिए तुझे ? किसके लिए राज्य चाहिए ? जिसको दूध के स्थान पर आटे का घोल पीते देख तूने धन प्राप्त करने का संकल्प किया था। अब वह ही इस संसार में नहीं है।... तो फिर क्यों निरीह सैनिकों की हत्याएँ कर रहा है तू ? जिनके हाथ में धातु का एक साधारण-सा खड्ग है, और जिन्हें किसी अच्छे शस्त्र गुरु से ढंग का सैन्य प्रशिक्षण भी नहीं मिला है, उनके प्राणों का हरण कर रहा है तू, अपने दिव्यास्त्रों से। क्या मिल जाएगा तुझे ? और किसके लिए ? इस वृद्धावस्था में क्या करना है तुझे इस राज्य का ? और क्या करना है, धन और संपत्ति का ? तू जिसके रूप में अपनी जाया के गर्भ से जन्मा था, वह अब संसार में नहीं है ? तेरा यह शरीर और कितने दिन चलेगा ? और तेरे जीवन का विस्तार अब नहीं है। अश्वत्थामा ही नहीं रहा तो किसके माध्यम से अब तू भोगेगा इस संसार के भोगों को ? एक ही पुत्र था तेरा। वह भी नहीं रहा।

उनकी चेतना लौटी... उनके सम्मुख खड़ा भीम अब भी अपनी विजय के उपलक्ष्य में, पूरे वेग से अपना शंख फूँक रहा था। पौंड्र की ध्वनि से कान बहरे हो रहे थे। उसने अभी-अभी घोषणा की थी कि उसने अश्वत्थामा को मार गिराया है...

किसने मारा अश्वत्थामा को ? भीम ने ? पर भीम अश्वत्थामा का वध करने में समर्थ है ? उसने कहा तो यही है।... उसने नहीं भी किया तो और कौन वध कर सकता है अश्वत्थामा का ? अश्वत्थामा... पर अश्वत्थामा कैसे मारा जा सकता है ? कौन मार सकता है अश्वत्थामा को ? उसके पास एक से बढ़कर एक दिव्यास्त्र हैं। उसके पास नारायणास्त्र है, जिसका तोड़ इस युद्ध में किसी के भी पास नहीं है। उस अश्वत्थामा का वध कैसे हो सकता है ?... पर भीम यह घोषणा कर रहा है कि उसने अश्वत्थामा का वध कर दिया है। कर भी सकता है वह ! उसने द्रोण का रथ घुमा कर परे फेंक दिया था। वह अश्वत्थामा को भी कुचल सकता है।...

पर दुर्योधन कहाँ है ? उसने इस घटना की सूचना आचार्य को क्यों नहीं दी ? भीम के यहाँ पहुँचने से पहले ही कौरवों की ओर से द्रोण को यह सूचना मिल जानी चाहिए थी। इतनी महत्त्वपूर्ण सूचना और कौरवों के प्रधान सेनापति को भी कुछ पता नहीं। कौरवों का इतना महत्त्वपूर्ण योद्धा मारा जाए और कौरव सेना में किसी को इसकी सूचना तक नहीं है ? भीम ही आकर घोषणा कर रहा है। कुरुओं के संदेशवाहक और

धावक मर गए हैं क्या कि आचार्य को उनके पुत्र के हत्यारे से उसकी हत्या की सूचना मिल रही है ?...

विचित्र स्थिति थी आचार्य के मन की। एक ओर मन कह रहा था कि यह संभव ही नहीं है; और दूसरी ओर वही इस संभावना से आतंकित हो थर-थर काँप रहा है।...

उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई... दूर-दूर तक कहीं कोई कौरव महारथी दिखाई नहीं पड़ रहा था। किससे पूछते वे ? पांडव सेना ने उनको पूरी तरह से आवृत कर रखा था... और उनके चारों ओर तो पांचाल सेनाएँ ही दिखाई पड़ रही थीं। अन्य कौरव महारथियों और उनकी वाहिनियों से सर्वथा असंपृक्त हो चुके थे द्रोण। यह पांडवों की रणनीति थी ?... अथवा कौरव सेना इस सीमा तक ध्वस्त हो चुकी थी कि वह अपने प्रधान सेनापति से भी संपर्क करने में असमर्थ हो गई थी ?... कहीं कोई कौरव महारथी नहीं है। क्या यह ही इसका प्रमाण नहीं है कि कौरव सेनाओं की दुर्गति हो गई है। और उस दुर्गति का ही एक अवश्यंभावी परिणाम था—अश्वत्थामा का वध। पांडव सेनाएँ उन पर छा गई हैं। स्वयं प्रधान सेनापति के निकट कोई संदेशवाहक नहीं है, कोई विश्वसनीय योद्धा नहीं है। पराजित होती हुई सेना का और क्या लक्षण हो सकता है ? यह घोर अव्यवस्था ही तो उसका प्रमाण है।... यह अव्यवस्था है भी या दुर्योधन ने उनसे यह सूचना छुपाए रखने के लिए ऐसी व्यवस्था की है ?... जो भी हो... इस समय वे दुर्योधन अथवा किसी कौरव महारथी से संपर्क नहीं साध सकते थे। पांडव उन्हें इसकी अनुमति नहीं देंगे। उन्हें पांडवों की सूचनाओं पर ही निर्भर रहना होगा।...

पर वे पांडवों की सूचनाओं पर कैसे विश्वास कर सकते हैं ? शत्रु की सूचनाएँ भ्रामक भी हो सकती हैं। यह सायास फैलाया गया प्रवाद भी तो हो सकता है। युद्ध में माया का प्रयोग हो सकता है तो झूठी सूचना क्यों फैलाई नहीं जा सकती। दुर्योधन ने अपना माया जाल फैलाकर शल्य को अपने पक्ष में लड़ने को बाध्य कर दिया था। युधिष्ठिर के आह्वान पर युयुत्सु तो पांडवों से जा मिला; किंतु शल्य ने अपने भांजों का नाम भी नहीं लिया।... पर नहीं ! यह सूचना झूठी नहीं हो सकती।...

सहसा द्रोण का स्वर ऊँचा हो गया, "मैं तुम्हारा विश्वास नहीं करता भीम ! तुममें अश्वत्थामा का वध करने का सामर्थ्य नहीं है।"

भीम का रहा-सहा संकोच भी उसकी उत्तेजना की ज्वाला में जल गया। भीम वध नहीं कर सकता अश्वत्थामा का ? समय नहीं था, नहीं तो वह उसका वध करके ही यह समाचार देता आचार्य को। अब तो वह उसका वध करेगा ही।...

द्रोण ने स्पष्ट रूप से उसकी अविश्वसनीयता की बात कही है। यदि वह बलपूर्वक अपनी बात की पुष्टि नहीं करता तो उनको सत्य का आभास हो जाएगा।

"मेरे सामर्थ्य का पता तुम्हें उस दिन भी नहीं लगा, जिस दिन मैंने तुम्हारा रथ उठाकर फेंक दिया ? ऐसा क्या है अश्वत्थामा में कि मैं उसका वध नहीं कर सकता ? समरभूमि में इस प्रकार शवों के पहाड़ न बने होते तो मैं उसका शव ला कर तुम्हारे

सामने पटक देता। भूल मुझसे ही हुई है कि उसका मस्तक काटकर मैं प्रमाण के लिए यहाँ तक नहीं लाया।"

द्रोण का हृदय फट गया। भीम के शब्दों ने उनके सम्मुख अत्यंत बीभत्स दृश्य प्रस्तुत कर दिया था। अपने एकमात्र पुत्र के वध और फिर उसके शव से उसका मस्तक कटने की कल्पना भी उनके लिए कितनी दुखदायी थी। भीम नहीं जानता था कि उसने क्या कर दिया है।...

उनका मन हो रहा था कि धनुष पर एक क्षुरप्र रखकर इस भीम का मोटा कंठ ठीक बीच से काट दें। काट दें ?... नहीं ! यदि उन्होंने किसी पांडव का वध किया तो अर्जुन उनको जीवित नहीं छोड़ेगा।... भीम की सूचना भ्रामक हो सकती है। अश्वत्थामा जीवित हो सकता है। ऐसी स्थिति में द्रोण मरना नहीं चाहते।...

"युधिष्ठिर से कहो कि वह यहाँ आकर अपने मुख से कहे कि अश्वत्थामा अब जीवित नहीं है।"

भीम कुछ सहम गया। कहीं धर्मराज ने द्रोण के सम्मुख ऐसा कुछ कहना स्वीकार न किया तो ?... पर यदि अब भीम कोई बहाना करता है तो द्रोण को संदेह हो जाएगा कि यह सूचना सत्य नहीं है। इस समय धर्मराज को बुलाना और उनसे यह कहलवाना बहुत आवश्यक था।

भीम ने अपने सारथि को संकेत किया। सारथि ने रथ मोड़ लिया। मुड़ते-मुड़ते ही भीम ने उद्घोष किया, "अब तुम्हारा काल भी दूर नहीं है द्रोण ! मैं जा रहा हूँ धर्मराज को बुलाने, ताकि वे आकर तुम्हें सूचना दे सकें कि मैंने वस्तुतः अश्वत्थामा का वध कर दिया है। अश्वत्थामा का वध न हुआ होता तो वह स्वयं ही आकर तुम्हें बताता कि वह जीवित है।... तुम भाग मत जाना, न ही मेरे आने तक आत्महत्या करना।"

वह युधिष्ठिर को बुलाने चला गया था।

द्रोण का मन हताश हो गया। क्या पाप किया था द्रोण ने कि उनका एकमात्र पुत्र भी इस अवस्था में काल के गाल में समा गया ? पर क्या यह उनके पापों का ही परिणाम था ?... और नहीं तो इस वृद्धावस्था में एकमात्र पुत्र का इस प्रकार चला जाना पुण्य का फल हो सकता है। अब जब वे सोच रहे थे कि यह युद्ध समाप्त हो ले। वे गुरुकुल और अहिछत्र का राज्य अश्वत्थामा को सौंपकर किसी शांत वन में जा बैठेंगे, अश्वत्थामा ही चला गया। उसकी पत्नी का क्या होगा ? उसकी संतान का क्या होगा ? कौन पालन-पोषण करेगा उनका ? अभी छोटे हैं उसके बच्चे। पिता के ही समान अश्वत्थामा ने विवाह में विलंब किया तो अभी से बच्चे पलकर बड़े कैसे हो जाते। मनुष्य की संतान को समय लगता है बड़े होने में।...

इस अवस्था में अब द्रोण अपने पौत्र और पौत्रियों का पालन-पोषण करेंगे ! फिर से गृहस्थ बनेंगे। कृपी उनके समान वृद्ध न सही, किंतु उसकी अवस्था भी इतनी कम तो नहीं है कि अब वह संतान के पालन-पोषण का दायित्व सँभाले।... द्रोण अब स्वयं

अपने से ही असमर्थ हो रहे थे, उन्हें अपने लिए एक अवलंब की अपेक्षा थी। पुत्र की आवश्यकता थी। इस समय उनका एकमात्र पुत्र छीन लिया ईश्वर ने ?''' किस अपराध का दंड दिया था यह ? यह कर्म गति है ?''' कर्म गति ही होती तो आज भी धृतराष्ट्र सिंहासन पर न बैठा होता। जीवन का इस प्रकार सुख न भोग रहा होता। दुर्योधन ने आजीवन इतना सुख न पाया होता। अपने भाइयों को मरवाकर भी अभी वह अपने स्थान पर किसी धृष्ट शिला के समान अड़ा है।''' दंड ही देना था तो प्रभु ! तो दुर्योधन को देते। द्रोण का एकमात्र पुत्र क्यों छीन लिया। नहीं ! यह न्याय नहीं था। ईश्वर भी अपने धर्म से डिग गया था क्या ?

धर्म ?''' सहसा द्रोण का मन पलटकर उनके विरुद्ध खड़ा हो गया''' वे जानते भी हैं कि धर्म क्या है ?'''

द्रोण को लगा कि एक ही उपालंभ से उनके मन में बहुत पहले पढ़े हुए मंत्र अंगड़ाइयाँ ले-लेकर जाग रहे हैं। उनके हृदय में अत्रि ऋषि के मंत्र गुंजन कर रहे थे और उनके हृदयाकाश पर ऋषि जैसे स्वयं उपस्थित हो गए थे।

"कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः।"[2]

हाँ ! यज्ञ करना, दान करना, स्वाध्याय और तप करना ब्राह्मणों के कर्म हैं।''' वे ही किया करते थे द्रोण हस्तिनापुर आने से पहले। पर तब उनके पुत्र को दूध के स्थान पर भी आटा घोलकर पीना पड़ा था।''' ब्राह्मण को उनके काम तो सब ही बताते हैं, किंतु उसकी आजीविका ?

अत्रि स्वयं अपने मुख से अपने शब्द उच्चरित कर रहे थे।

"प्रतिग्रहोध्यापनं च याजनं चेतिवृत्तयः।।"[3]

हाँ ! अत्रि ने उनकी आजीविका के विषय में भी विचार किया था।''' उनकी आजीविका के साधन हैं—दान ग्रहण करना, अध्यापन और यज्ञ कराना। तापस भिक्षुक हो सकता है ब्राह्मण, वह अध्यापक हो सकता है, पुरोहित हो सकता है, मंत्री हो सकता है, राजगुरु हो सकता है। पर वह योद्धा नहीं हो सकता।'''

"क्यों नहीं हो सकता वह योद्धा ?" द्रोण ने घूरकर आकाश की ओर देखा, "उसमें सामर्थ्य हो तो वह युद्ध क्यों नहीं कर सकता ?"

अत्रि जैसे मुस्कराए। उनके शब्द द्रोण के हृदय में गूँजः

"क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः।
शस्त्रोप जीवनं भूतरक्षणं चेतिवृत्तयः।।-"[4]

हाँ ! यज्ञ करना, दान करना, स्वाध्याय और तप करना—क्षत्रियों के भी कर्म हैं; किंतु वे अपनी आजीविका शस्त्र से कमाते हैं, जीवों की रक्षा करते हैं।''' द्रोण जीवों की रक्षा नहीं, मात्र दुर्योधन की रक्षा कर रहे थे। जीवों की तो वे हत्या ही कर रहे थे।''' तो क्या वे अपने धर्म का निर्वाह नहीं कर रहे थे ? वे केवल अपने और दुर्योधन के स्वार्थ की पूर्ति कर रहे थे ?'''

सामने के सैनिक कुछ हटे और युधिष्ठिर का रथ उनके सामने आ खड़ा हुआ।... तो भीम सचमुच ही बुला लाया था उसको। क्यों ? इस सूचना की पुष्टि करने के लिए कि अश्वत्थामा अब इस संसार में नहीं है। यदि युधिष्ठिर को इस सूचना की पुष्टि न करनी होती तो वह उनके निकट आता ही क्यों ?... उसे तो उनसे दूर ही रहना चाहिए था। उनका युधिष्ठिर को वंदी करने का संकल्प अभी पूरा नहीं हुआ था। न ही उन्होंने उसे त्यागने की घोषणा की थी।

"धर्मराज !" द्रोण अत्यंत अधीर स्वर में बोले, "तुम असत्य नहीं बोलते। बताओ क्या अश्वत्थामा ने युद्ध में वीरगति पाई है ?"

युधिष्ठिर का मन असत्य के भय से काँप रहा था। कैसे कहेंगे वे कि अश्वत्थामा मारा गया। पर कहना परम आवश्यक है। न कहने में हानि ही हानि है। उसमें संकोच की क्या आवश्यकता है।... और फिर अश्वत्थामा मारा तो गया ही है। यह दूसरी बात है कि वह आचार्य का पुत्र नहीं था। एक हाथी था वह। वे इतना ही तो कह रहे हैं कि अश्वत्थामा मारा गया। इसमें क्या असत्य है ? हाँ ! यदि आचार्य पूछें कि मरने वाला अश्वत्थामा मेरा पुत्र था क्या ? तब युधिष्ठिर नहीं कह सकेंगे कि वह उनका पुत्र ही था।...

"पर धर्मराज !" उनके अंतर्यामी ने कहा, "अनृत तो अनृत ही है। अनृत यह कहने में नहीं है कि अश्वत्थामा मारा गया, अनृत यह छुपाने में है कि जो मारा गया वह द्रोणपुत्र नहीं, एक युद्धक गज था।"

तो क्या वे कह दें कि जिसे भीम ने मारा है, वह मालवराज का हाथी था ?... पर नहीं ! भीम उन्हें यह कहने के लिए बुलाकर यहाँ नहीं लाया है। और कृष्ण ने क्या कहा था ? कृष्ण ने कहा था... धर्मराज ! यदि आचार्य इस प्रकार आधा दिन भी और लड़ते रहे तो पांडव सेना पूर्णतः नष्ट हो जाएगी। हमारी रक्षा करो धर्मराज ! किसी के प्राणों की रक्षा के लिए इतना-सा तथ्य छुपा जाना कोई पाप नहीं है।... यह भी कहा था कृष्ण ने कि राजा जब युद्धभूमि में आता है तो उसे विजय को अपना लक्ष्य मानना चाहिए। युद्ध के नियम विजय नहीं दिलाते, विजय प्राप्त होती है, रणकौशल से। युद्ध के नियम राजा का धर्म नहीं हैं, राजा का धर्म विजय है।... आचार्य की रक्षा करते रहने से तो पांडवों को विजय नहीं मिलेगी। युधिष्ठिर अपने धर्मपालन के लिए पांडव सेना में खड़े उनके प्रति निष्ठावान इन सारे योद्धाओं के प्राण तो नहीं ले सकते। नहीं ! अपने धर्म के लिए इन सबके प्राणों से मूल्य चुकाने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है।... पर आचार्य पूछ रहे हैं कि क्या अश्वत्थामा ने युद्ध में वीरगति पाई है ? उस युद्धक गज के लिए वे यह तो नहीं कह सकते कि उसने युद्ध में वीरगति पाई है। वह तो मारा ही गया था। तो वे आचार्य के प्रश्न का उत्तर सीधे सरल ढंग से हाँ कहकर तो नहीं दे सकते। और वे उसे पूर्णतः छिपा भी नहीं सकते।...

"आचार्य ! अश्वत्थामा मारा गया है।" युधिष्ठिर ने उच्च स्वर में कहा; किंतु उसके

पश्चात् न तो उनका स्वर उतना प्रबल ही रह पाया और न ही वे पूर्णतः मौन ही रह सके। धीरे से अस्पष्ट स्वर में बोले, "जो मारा गया, वह हाथी था··· ।"

उनके पहले वाक्य के पश्चात् ही भीम ने पौंड्र फूँक दिया था। उसके साथ ही चारों ओर युद्धरत पांडव वाहिनियों ने भी विजय का भयंकर गर्जन किया था। युधिष्ठिर अपना दूसरा वाक्य स्वयं ही नहीं सुन पाए थे।···

वे समझ रहे थे··· भीम ने जानबूझकर अपना शंख फूँका था। वह नहीं चाहता था कि युधिष्ठिर के पहले वाक्य खंड के पश्चात् का कोई भी शब्द द्रोण सुन पाएँ। किंतु सैनिकों को तो पता नहीं था कि मरने वाला युद्धक गज था, द्रोण का पुत्र नहीं। तो ?··· वे कदाचित् विजय के उन्माद में ही चिल्लाए थे। जो भी था। द्रोण तक यह सूचना नहीं पहुँची थी कि मरने वाला उनका पुत्र नहीं था।··· अब इसके पश्चात् उनके प्रश्नों का उत्तर देना और भी कठिन हो जाएगा।···

युधिष्ठिर का रथ मुड़ा और अपनी सेना के पीछे कहीं अदृश्य हो गया।

युधिष्ठिर के रथ का स्थान धृष्टद्युम्न के रथ ने ले लिया था। द्रोण ने उसे देखा, किंतु उनके मन में न उसका विरोध जागा, न युद्ध का उत्साह, न विनाश का उन्माद। उनके मन में अब किसी प्रकार का कोई उत्साह नहीं रह गया था। समरभूमि से अधिक उन्हें अपना हृदय दिखाई दे रहा था। धृष्टद्युम्न सामने खड़ा है, खड़ा रहे। उनके लिए अब वह महत्त्वपूर्ण नहीं रहा था। वे अपना संवाद किसी और धरातल पर करना चाहते थे।··· क्यों छीन लिया ईश्वर ने उनसे उनका एकमात्र पुत्र ? किस पाप का दंड है यह ?···

उनके अपने ही प्रश्न के उत्तर में मन में अत्रि के शब्द गूँजे :

"ये व्यपेताः स्वधर्मेभ्य पर धर्मे व्यवस्थिताः।
तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते।।"[5]

ठीक कह रहे थे अत्रि··· जो अपने धर्म का पालन नहीं करते और परधर्म में तत्पर हैं, उनको दंडित करने वाला राजा, स्वर्ग लोक में पूजा जाता है।··· तो धर्मराज युधिष्ठिर ने इसी रूप में उन्हें दंडित किया है। वे अपना धर्म त्याग कर किसी और ही लोक में आ गए थे। यहाँ भय था, लोभ था, मोह था, तृष्णा थी, हिंसा थी और अहंकार था।··· वे स्वयं को इस संसार का अंग मानने लगे थे। पर यह तो उनका संसार नहीं था। ये ब्राह्मण के लक्षण नहीं थे। उन्होंने अपनी शिक्षा के आरंभिक दिनों में अत्रि ऋषि के शब्दों को पढ़ा था :

"शौचं मंगलमायासंअनसूयाअस्पृहा दमः।
लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च।।"[6]

हाँ ! ब्राह्मण के लक्षण ये नहीं थे कि वह राजा का तिरस्कार सहता हुआ, अपने मोह में सेनाओं का संचालन करे और ईश्वर के बनाए हुए जीवों की निरीह हत्या करे। ब्राह्मण के गुण हैं ··· पवित्रता, मंगल, परिश्रम, अन्य लोगों के गुणों में छिद्र न ढूँढना,

कामना न करना, इंद्रियों को विषयों से रोकना, दान देना, और दया।''' पर द्रोण ने तो कहीं भी दया नहीं दिखाई। अपने प्रिय शिष्यों के साथ होते हुए अन्याय को केवल इसलिए सहन करते रहे, क्योंकि उससे वे अपना स्वार्थ साध सकेंगे। फिर समरभूमि में आ खड़े हुए और उन लोगों को दिव्यास्त्रों से मारा, जिन्हें दिव्यास्त्रों का तनिक भी ज्ञान नहीं था। पाप किया''' पर क्या करते। हस्तिनापुर में रहकर तो यही संभव था।'''

"हस्तिनापुर में ही रहना क्यों आवश्यक था ?" सहसा उनके अंतर्यामी ने पूछा।

"तो और कहाँ रहता ?" वे बोले, "कहीं तो आश्रय चाहिए ही था।"

वे मौन हो गए। अंतर्यामी भी मौन ही रहा। उनके प्रश्न के उत्तर में ऋषि हारीत बोले :

"कृष्णसारो मृगो यत्र स्वाभावेन प्रवर्त्तते।
तस्मिन् देशे वसेद्धर्मः सिद्ध्यति द्विजसत्तमाः।।"[7]

ठीक तो कह रहे हैं हारीत !''' ब्राह्मण को अपने धर्म का पालन करना है तो उसे हस्तिनापुर में रहने की आवश्यकता ही क्या है। ब्राह्मण वहाँ वास करे, जिस देश में कृष्णसार मृग सहज भाव से विचरण करे। जहाँ हिंसा न हो, उग्रता न हो, रजोगुण का बाहुल्य न हो।''' और द्रोण ने सदा वास किया शस्त्रों में। आज भी वे खड़े हैं, जहाँ चारों ओर हिंसा और हत्या है। क्रोध और घृणा है। तो वे कैसे आशा कर सकते हैं कि उन्हें धर्म प्राप्त होगा ? पुण्य प्राप्त होगा ?''' ब्राह्मण तो ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है। उसका उपकरण वाणी है, माँ सरस्वती का वरदान। वह बिना काँटों का निरुपम खेत है। उसको उसी में कृषि करनी है। उसी में सब बीजों को बोना है, वही सब कामनाओं को पूर्ण करने वाली खेती है उसकी।''' पराशर ने कहा है न :

"ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकंटकम्।
वापयेत् सर्व्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका।।"[8]

''' उग्रता ब्राह्मण के लिए नहीं है। वह क्षत्रिय का काम है। वह हाथ में शस्त्र धारण करता है। शस्त्र को हाथ में धारण करने वाला, प्रकर्प दंड वाला क्षत्रिय, प्रजा की रक्षा करता हुआ शत्रु सेनाओं को जीत कर धरा का धर्म के साथ पालन करता है :

"क्षत्रियो हि प्रजारक्षन् शस्त्रपाणिः प्रचंडवत्।
विजित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत्।।"[9]

द्रोण ने प्रजा के पालन की बात कभी नहीं सोची, तो फिर उन्होंने शस्त्र क्यों धारण किया ? इसीलिए तो कि वे रणभूमि में दूसरों की हत्या करें और फिर उनके पुत्र की हत्या हो''' अश्वत्थामा मारा गया। युधिष्ठिर ने यह भी नहीं कहा कि अश्वत्थामा ने वीरगति पाई है। उसने कहा अश्वत्थामा मारा गया। हाँ ! मारा ही तो जाना था।''' अपनी निर्धनता से बहुत दुखी हुए थे द्रोण ! पर तब उन्होंने पराशर के वचनों को स्मरण नहीं रखा था''' "न श्रीः कुलक्रमायाता स्वरूपाल्लिखितापि वा।"[10] ''' कुलक्रम से आई हुई लक्ष्मी स्थिर नहीं होती न ही आलेखन की हुई लक्ष्मी स्थिर होती है।''' लक्ष्मी की चंचलता

को स्वीकार क्यों नहीं किया उन्होंने। क्षत्रिय उसे तलवार से प्राप्त करके भोगता है। पृथ्वी का राज्य वीरों द्वारा ही भोगा जाता है।··· "खड्गेनाक्रम्य भुंजकीत वीरभोग्या वसुंधरा।।"[11] ··· पर वह क्षत्रिय, दुर्योधन के समान प्रतिदिन अपने भाइयों और बेटों को युद्धभूमि में कटवाता है। द्रोण के समान नहीं कि पुत्र के मारे जाने का समाचार पाकर हाथ से शस्त्र छूटकर गिर जाता है।··· इरावान को मरते देखा था अर्जुन ने। अभिमन्यु का भी वध हुआ। उससे अर्जुन का गांडीव नहीं छूटा। वह और भी प्रचंड होकर लड़ने आया और उसने जयद्रथ का वध किया।··· नहीं द्रोण ! तुम उस क्षत्रिय जीवन के उपयुक्त नहीं ।··· व्यर्थ का लोभ किया। व्यर्थ का अहंकार किया। वे इस प्रकार के जीवन के योग्य नहीं हैं। उनका 'ब्रह्म' मोक्ष है। वे मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। तो फिर उन्होंने अपनी आजीविका रणभूमि में क्यों चुनी ? यह आजीविका उनके लिए है, जो उसके माध्यम से धर्म की स्थापना कर सकते हैं।··· भूल हुई द्रोण ! तुमसे भूल हुई। तुम्हें अपने मार्ग पर ही चलना चाहिए था।···

तो अब ही क्या बिगड़ा है ? अश्वत्थामा की मृत्यु ने उनके अज्ञान को छिन्न-भिन्न कर दिया है। कदाचित् उनकी आँखें खोलने के लिए ही अश्वत्थामा को यह बलिदान देना पड़ा है।···

धृष्टद्युम्न का रथ उनके सम्मुख खड़ा था। वे उसे अनुमति नहीं दे सकते थे कि वह युद्धभूमि में उनका वध कर सारे क्षत्रिय समाज में द्रोणहंता के रूप में गौरवान्वित हो। उससे युद्ध करेंगे वे··· उन्होंने धनुप पर बाण चढ़ाया और बाण वर्षा आरंभ कर दी।···

पर उनका मन वहाँ नहीं था। अव युद्ध उनके लिए तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया था। आसपास का सारा परिवेश न केवल धूमिल हो गया था, वह कहीं अदृश्य-सा भी हो गया था।··· वे तो जैसे किसी निभृत एकांत में खड़े ईश्वर से पूछ रहे थे··· पाप उन्होंने किया था। अधर्म उन्होंने किया था। तो फिर उसका मूल्य अश्वत्थामा को क्यों चुकाना पड़ा ? उसे क्यों पूर्णायु प्राप्त नहीं हुई ? क्या ईश्वर का विधान एक के कर्म का दंड दूसरे को दे सकता है ? क्या नियति की आँधी नेत्र मूँदकर चलती है ?··· या वे मान लें कि अश्वत्थामा भी उनके ही समान पापी था और उसने अपने कर्मो का फल पाया था ?··· उसने अपने प्राण खोए थे और द्रोण ने अपना एकमात्र युवा पुत्र खोया था।··· दोनों को दुख मिला, तो क्या वे पिता पुत्र दोनों ही पूर्व जन्म के पापी थे ?···

सहसा उनके मन ने उन्हें डाँटा, "इसमें कर्मों का फल क्या है ? जो युद्धक्षेत्र में खड़ा है, उसका प्रवल शत्रु किसी भी क्षण उसे मारकर गिरा सकता है।"

··· पर मन की इस डाँट से वे सहमे नहीं।··· नहीं ! वे नियति को अस्वीकार नहीं कर सकते। युद्धक्षेत्र में तो सभी खड़े हैं, किंतु अपना समय आने से पहले कोई नहीं मरता। वे स्वयं अव तक जीवित हैं। कौरव पक्ष और पांडव पक्ष के इतने लोग अब

तक जीवित हैं किंतु भीष्म शर-शैया पर लेटकर समरभूमि से हट गए हैं। अर्जुन की सी क्षमताओं वाला योद्धा अभिमन्यु, पांडवों के सारे वल के होते हुए भी वीरगति को प्राप्त हो गया।''' नहीं ! अपने समय से पहले कोई नहीं मरता।''' क्या अश्वत्थामा अपने कर्मो के कारण ही अल्पायु लेकर आया था ?''' पर इस रूप में ही क्यों सोचा जाए ? कर्म अपने स्थान पर हैं। किंतु सुख और दुख को समझने में भी तो भूल करता है मनुष्य। उससे अपने सौभाग्य और दुर्भाग्य को समझने में भी तो भूल हो सकती है। एक पुत्र ही था, जिसकी सुख-सुविधाओं के लिए वे सांसारिकता की दलदल में धँसते गए थे।''' आज उन्हें समझ जाना चाहिए कि कोई किसी का नहीं होता। उपनिपदों ने ठीक ही कहा है इदम न मम। मेरा कुछ नहीं है।''' सव कुछ उस ईश्वर का ही है। अश्वत्थामा के प्रति उनकी आसक्ति उनका भ्रम था, उनका अज्ञान था। कोई जीव किसी दूसरे जीव का कैसे हो सकता है। जीव तो ईश्वर का ही हो सकता है। जो ईश्वर का था, वह अव भी ईश्वर का है, भविष्य में भी ईश्वर का ही रहेगा। उसे द्रोण ने अपना मान लिया और उसकी सुख-सुविधाओं के लिए माया के संसार में धँसते चले गए।''' अव मुक्त कर दिया है प्रभु ने उनको उस भ्रमजाल से। उन्हें उनके मोह से मुक्त करने वाला ईश्वर न तो कठोर हो सकता है, न अन्यायी। वह दयालु है, कृपालु है, वह करुणासागर है।

उनके हृदयाकाश पर एक-एक कर अनेक ऋपि प्रकट हो रहे थे। उनके शव्द द्रोण के मन में वार-वार गूँज रहे थे।''' किस माया जाल में पड़ा है द्रोण ? क्या जीतना चाहिए और तू क्या जीतने का प्रयत्न कर रहा है। शत्रुओं को ही मारना है तो मन में वैठे अपने शत्रुओं को मार। अहंकार को मार, राग और द्वेष को मार। ईर्ष्या, लोभ, मोह और क्रोध को मार। युद्धक्षेत्र में खड़े, ईश्वर के वनाए इन जीवों का वध करने से कहीं तू मोक्ष पा सकेगा ? पांडवों को मत जीत। तू धर्म को जीत। राज्य, धन, संपत्ति, सत्ता और अधिकारों का संचय मत कर। धर्म को पाने के लिए सात्विकता का संचय कर, निर्मलता का संचय कर। करुणा और प्रेम का संचय कर, दया और उदारता को अपना आभूषण वना। दूसरों के प्राणों का हरण मत कर, उनकी रक्षा के लिए अपने प्राणों का विसर्जन कर।''' सोच ! अब भी सोच ! तेरा शत्रु द्रुपद है, या तेरा अपना अहंकार ? तेरे ज्ञान ने तुझे विनीत वनाया या अहंकारी। तेरे ज्ञान ने तुझे मुक्त किया या तुझे बंधनों में बाँधा। व्यर्थ है धनुष वाण। फेंक दे इन्हें और समाधि में वैठ जा। जो सुख उस सच्चिदानंद में विलीन होने में है, वह मनुष्यों और पशुओं का रक्त वहाने में नहीं है।'''

द्रोण को पता ही नहीं चला कि कब उनके हाथ से धनुष वाण छूट गया और वे पद्मासन लगाकर वैठ गए। उनका मन जैसे पहले से ही आत्मलीन हो रहा था। तत्काल उसका ऊर्ध्वगमन आरंभ हो गया। उन्हें लग रहा था वे किसी लंवी नींद से जागे हैं। उनके सारे बंधन जैसे खुल गए हैं। जिस साँकल ने उन्हें मृत्तिका से बाँध दिया था, वह साँकल खुल गया था। वे बहुत हल्के हो गए थे। उनके मन में कोई कामना

नहीं रह गई थी। किसी के प्रति कोई रागद्वेष नहीं था। मन बहुत निर्मल हो आया था। वे जैसे अपनी देह तक सीमित नहीं थे। किसी अत्यंत विराट सत्ता का अंग हो गए थे। वे इस ब्रह्मांड में कहीं भी—किसी भी लोक में, किसी भी काल में—विचरण कर सकते थे। सब सुन सकते थे, सब देख सकते थे।··· अब उन्हें न सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता थी, न चंद्रमा की प्रभा की, न ही अग्नि की आवश्यकता रह गई थी। वे किसी ऐसे लोक में पहुँच गए थे, जहाँ सब कुछ स्वयं प्रकाशित था।··· सब ओर प्रकाश था, सब ओर सत्य था, सब ओर आनंद था।···

26

अर्जुन का मन बहुत अशांत था। एक विचित्र प्रकार की व्याकुलता उसे निरंतर विचलित कर रही थी। मन-ही-मन जैसे वह ऐंठ रहा था। उसके वक्ष में एक अजान-सी पीड़ा की लहरें उठ रही थीं। इधर पीड़ा की लहर उठती थी और उधर आचार्य का वध करते हुए धृष्टद्युम्न का चित्र मन पर छा जाता था। धृष्टद्युम्न ने उसके गुरु के केश पकड़कर उनका मस्तक काट लिया था। अर्जुन चिल्लाता ही रह गया था कि यह पाप है। ऐसा मत करो। धिक्कार है तुम्हें। अरे गुरु को जीवित ही पकड़ लो, उन्हें बंदी बना लो। उनका वध मत करो।··· पर धृष्टद्युम्न ने वध किया और वह भी कैसे ? शस्त्र त्याग कर चुके, ध्यान में बैठे, आचार्य का जटाजूट पकड़कर उनका मस्तक काट लिया और उस मस्तक को उसने कौरव सेना की ओर उछाल दिया। कौरवों में भगदड़ मच गई और यह भी पता नहीं चला कि आचार्य द्रोण का धड़ कहाँ है और उनका मस्तक कहाँ गया। किसी झंझावात के पश्चात् किसी वन में से एक झड़े हुए पत्ते को खोजने जैसा असंभव था, आचार्य के शरीर को खोजना।

अर्जुन के अपने मन में अनेक प्रश्न उठ रहे थे।··· वह इतना व्यथित क्यों था ? वे लोग युद्ध कर रहे थे। युद्ध में तो कोई कभी भी मर सकता है। उसके अपने पुत्रों का वध हुआ तो क्या वह युद्ध छोड़कर भाग गया ? द्रुपद मारे गए, विराट ने वीरगति प्राप्त की—तो न आकाश टूटा, न धरती फटी।··· आचार्य तो लड़ ही विरोधी पक्ष से रहे थे। उनका वध तो होना ही था। कोई भी करता।··· स्वयं कृष्ण कितनी ही बार उसे आचार्य के वध के लिए प्रेरित कर चुके थे। धर्मराज उसे उपालंभ दे चुके थे। भीम उत्तेजित कर चुका था।··· पर अर्जुन का मन था कि मानता ही नहीं था।··· वह आचार्य का वध कैसे कर सकता था। निश्चय ही आचार्य को भी पूर्ण विश्वास रहा होगा कि कुछ भी हो जाए, वह उनका वध नहीं करेगा।··· पर क्या हुआ उस विश्वास का और क्या हुआ अर्जुन के संकल्प का···

इससे तो कहीं अच्छा था कि वह ही अपने दिव्यास्त्रों से आचार्य के प्राण हर लेता।

वे एक गौरवपूर्ण मृत्यु को प्राप्त होते। यह तो एक पशु के समान कटने जैसा था। धृष्टद्युम्न कूदकर उनके रथ में जा पहुँचा था। वे पद्मासन में बैठे थे। उनके हाथ में शस्त्र नहीं थे।...

अर्जुन का मन रोने-रोने को हो रहा था... धृष्टद्युम्न के इस पाशविक कृत्य के कारण वने थे स्वयं धर्मराज। उन्होंने आज तक कभी मिथ्या भाषण नहीं किया था, पर आज आचार्य के सम्मुख कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया है।... सत्य है कि अश्वत्थामा मारा गया था। पर धर्मराज जानते थे कि द्रोण कभी कल्पना भी नहीं कर पाएँगे कि उनको जो समाचार दिया जा रहा है, वह उनके पुत्र के विषय में नहीं है। इस सारे युद्ध में उनको कभी सूचना दी गई कि कौन-सा गज मारा गया, कौन-सा अश्व मारा गया अथवा किस-किस सैनिक और किस-किस सेनानायक के प्राण निकल गए।... उनको अश्वत्थामा के विषय में बताया गया तो इसलिए, क्योंकि वह उनका पुत्र था।...

क्यों किया धर्मराज ने ऐसा ? केवल राज्य के लिए ? राज्य के लोभ से ? विजय की आसक्ति में बँधकर ?... पर कृष्ण तो कह रहे थे कि यदि वे मिथ्या कथन नहीं करेंगे तो पांडवों के प्राण नहीं बचेंगे।... तो क्या कृष्ण और अपने भाइयों के प्राणों की रक्षा के लिए किया ऐसा कृत्य ?

अर्जुन के मन में एक विचित्र प्रकार की वितृष्णा जागी।... क्या रखा था इन बातों में ? वे लोग अपने जीवन का एक बड़ा भाग जी चुके हैं। अब शेष बचा ही कितना है। कहीं ऐसा तो नहीं कि वार्द्धक्य के कारण उन लोगों का अपने मन पर नियंत्रण शिथिल हो रहा है ? लोभ और तृष्णा को उन्होंने अपने यौवन काल में तो दवाए रखा, अब वे भाव उनकी क्षमता को चुनौती देते हुए उद्दंड हो रहे हैं। वह न भी हो तो क्या वृद्धावस्था के कारण उनका मस्तिष्क विकृत हो रहा है। उनसे निर्णय की भूल हो रही है ? वे नहीं समझ पा रहे हैं कि वे लोग क्या कर रहे हैं ।...

भीम ने तो कभी समर्थन नहीं किया अर्जुन की नीति का। उसने कहा कि वे लोग क्षत्रिय कर्म कर रहे हैं, इसलिए अर्जुन उन्हें मुनियों का-सा उपदेश न दे।... भीम सदा से ऐसा ही रहा है। वह बहुत भिन्न है, अर्जुन से। वह धर्मराज से भी भिन्न है। वह अर्जुन को कहता है कि अर्जुन एक समर्थ क्षत्रिय होकर भी मूर्खों के समान बातें कर रहा है।... रजोगुण बहुत है भीम में ? क्यों ? उसने भी तो वही शिक्षा प्राप्त की है, अपने गुरुओं से।... पर नहीं। लोग शिक्षा प्राप्त तो करते हैं, किंतु उसे ग्रहण नहीं करते। और शिक्षा से ही तो सब कुछ नहीं होता, नहीं तो अच्छी शिक्षा से संसार में सब कुछ सुधर जाता। शिक्षा तो दुर्योधन ने भी वही पाई है, पर उसके व्यवहार में शिक्षित मनुष्य का कोई भी गुण है क्या ?... शिक्षा से लोकमत तो बनेगा, किंतु उससे प्रत्येक मनुष्य में इच्छित गुण उत्पन्न नहीं होंगे। गुण तो जन्मजात ही हैं—ईश्वर प्रदत्त; पूर्व जन्मों के कर्मों और संस्कारों के अनुरूप। ...

कृष्ण ने युद्धारंभ के समय ही उससे दैवी और आसुरी संपदा की चर्चा की थी।

उन्होंने कहा था, "भय, क्रोध, द्वेष, लोभ तथा सम्मान पाने की लालसा का अभाव, अंतःकरण की निर्मलता, दिव्य ज्ञान का सेवन, दान, आत्मसंयम, यज्ञ, वेदों का अध्ययन, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, त्याग, शांति, दया, कोमलता, लज्जा, दृढ़ निश्चय, तेज, क्षमा, धैर्य तथा पवित्रता—ये सब गुण दैवी प्रकृति के लक्षण हैं।··· " मध्यम पांडव भीम इन सबसे अछूता तो नहीं है। भय का सर्वथा अभाव है उसमें। किसी बात का भय नहीं है उसको।··· पर क्रोध का अभाव नहीं है उसमें। वह क्रोध चाहे सात्विक ही हो, किंतु क्रोध तो है ही। सब समय वह सात्विक भी नहीं होता, कभी-कभी अपने बल के अहंकार से भी जन्मता है। तब भीम को रोकना कठिन हो जाता है। द्यूतसभा में द्रौपदी को अपमानित होते देखकर भीम का क्रोध सर्वथा उच्छृंखल हो गया था। वह धर्मराज के हाथों को जलाने की बात कह उठा था।··· पर लोभी नहीं है वह। हाँ ! सांसारिक भोग की इच्छा उसमें अपने दूसरे भाइयों से कुछ अधिक है। रजोगुण का बाहुल्य है उसमें। उसके अंतःकरण की निर्मलता पर अर्जुन को कभी संदेह नहीं हुआ। वह सरल भी है। कई बार तो लगता है कि बहुत भोला है, बहुत अबोध है। इसीलिए अर्जुन के मन में बहुत प्रेम है, अपने उस उद्दंड भाई के लिए। उसमें सत्य, दया और कोमलता भी है, किंतु वह कठोर और हिंस्र भी हो उठता है। नहीं ! शायद वह हिंस्र नहीं है, किंतु प्रतिशोध की भावना बड़ी भयंकर है उसमें। उसका प्रतिशोध और दंड बड़ा कठोर होता है।···

भीम ने अर्जुन से कहा था कि अर्जुन मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता, यह प्रशंसनीय है। तेरह वर्षों के संचित अमर्ष को भूलकर अर्जुन धर्म की बात कर रहा है, अतः वह पूजनीय है।··· यह भी कहा था कि अर्जुन की बुद्धि क्रूरता को त्याग, दया में रमती है, यह सौभाग्य की बात है।··· पर स्वयं भीम अपना राज्य अपहरण करने वाले और द्रौपदी का अपमान करने वाले कौरवों को क्षमा नहीं कर सकता। वह उनको उनके भाई-बंधुओं सहित मार डालेगा।

पर अर्जुन की पीड़ा उससे शांत नहीं हुई थी। किसी का कोई तर्क उसके मन को शांत नहीं कर पा रहा था। उसे जैसे ही स्मरण आता कि धृष्टद्युम्न ने आचार्य के केश पकड़े थे, उसे एक प्रकार का उन्माद चढ़ आता था। उसे भय लगने लगता था कि कहीं उसका हाथ ही न उठ जाए, धृष्टद्युम्न पर।··· युद्ध अभी समाप्त नहीं हुआ था। कौरव अभी निःशेष नहीं हुए थे। कर्ण अभी जीवित था। अश्वत्थामा जीवित था। ऐसे में पांडवों का परस्पर लड़ना उचित नहीं था। उनकी एकता और अखंडता बनी रहनी चाहिए।···

युधिष्ठिर ने आकर उन सबको सूचना दी थी कि शिखंडी के अवरोध को तोड़कर अश्वत्थामा अपने शिविर में लौट आया है और उसने पांडवों को समाप्त करने का संकल्प किया है। अब तक वह दुर्योधन का युद्ध लड़ रहा था, किंतु अब वह अपना युद्ध लड़ेगा।···

सबने युधिष्ठिर की ओर देखा, "इसका क्या अर्थ ?"

"सूचना आई है कि उसने यह भी कहा है कि उसके पास कोई ऐसा अस्त्र है,

जिसका प्रतिकार न कृष्ण को ज्ञात है, न अर्जुन को।" युधिष्ठिर ने कृष्ण की ओर देखा।

कृष्ण कुछ नहीं बोले, मुस्कराकर रह गए।

"तुम क्या कहते हो धनंजय !"

"मैं कहता हूँ कि द्रुपदपुत्र ने अन्याय किया है।" अर्जुन जैसे अपनी मर्यादा भूल गया था, "अश्वत्थामा की प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही है। साहस है तो जाइए, जाकर अश्वत्थामा से द्रुपदपुत्र की रक्षा कीजिए।"

"क्या अन्याय किया है धृष्टद्युम्न ने ?" कृष्ण बोले, "क्या उसे युद्ध में अपने शत्रु का वध नहीं करना चाहिए था ?"

"वध करता, किंतु उस समय, जब वे युद्ध कर रहे थे।" अर्जुन बोला, "उसने उनका वध तब किया है, जब वे शस्त्र डाल चुके थे। नहीं तो मैं देखता, धृष्टद्युम्न उनका वध कैसे करता। हमने नीचता की है। हमने राज्य के लोभ में वृद्ध आचार्य के साथ छल किया है।"

"यह सत्य नहीं है।" धृष्टद्युम्न ऊँचे स्वर में बोला, "उनके पास शस्त्र थे। वे युद्ध कर रहे थे। उन्होंने मेरे धनुष को काटा था। मेरे सारथि का वध किया था। मैं मध्यम पांडव भीम के रथ में आरूढ़ होकर नए रथ तक पहुँचा था। नए रथ में जब मैं युद्ध करने आया तो उन्होंने मेरा धनुष काटा, मेरी गदा को काटा, मेरे खड्ग को काटा। तो भी मुझसे कहा जा रहा है कि वे युद्ध नहीं कर रहे थे।"

"तुमने जब उनका मस्तक काटा, तब उनके हाथ में कोई शस्त्र नहीं था।" अर्जुन ने अपना विरोध जताया।

"अपने रथ के ईषा दंड पर पैर रखकर मैं उनके घोड़ों की पीठ पर से होता हुआ, उनके रथ में कूदा था। मुझे इतना निकट देखकर उनके हाथ से शस्त्र छूट गया हो सकता है। उस समय मेरे वध के लिए उनके अंतःकरण में दिव्यास्त्र प्रकट नहीं हुए, तो इसमें मेरा क्या दोष है। उसके लिए पापी दुर्योधन है, जो अपने वृद्ध आचार्य से उतना श्रम करवा रहा था, जितना कोई किसी युवा अश्व से भी नहीं करवाता।" तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि उन्हें अनवरत बाण चलाते हुए चार दिन हो चुके थे। पिछली रात भी पूरी व्यतीत हो चुकी थी। एक वृद्ध मनुष्य से और कितना युद्ध अपेक्षित है। उन्होंने मुझे आहत किया, मेरा रक्त बहाया। फिर भी तुम कह रहे हो कि उनके हाथ में शस्त्र नहीं था।" धृष्टद्युम्न बोला, "सात्यकि ने उनका बाण काटा था और मुझे मृत्यु के मुख से निकाला था। द्रोण यदि युद्ध ही नहीं कर रहे थे तो वह बाण किसने मारा था और किसको मारा था ?" धृष्टद्युम्न ने अर्जुन की ओर देखा, "यदि मैंने द्रोण को मारकर पांडवों का कोई हित नहीं किया था तो मध्यम पांडव भीम ने क्यों मुझे अपने कंठ से लगा लिया था। क्यों कहा था उन्होंने कि जब पापी दुर्योधन और कर्ण मारे जाएँगे तो वे तब भी ऐसे ही मुझे अपने कंठ से लगा लेंगे।"

"पर जब तुमने उनके केश पकड़कर उनका मस्तक काटा तो उनके हाथ में शस्त्र

नहीं था। वे पद्मासन में बैठ चुके थे, वे ध्यान कर रहे थे।" अर्जुन ने कहा।

"यदि मृत्यु को अपने सामने देखकर किसी के हाथ से शस्त्र छूटकर गिर जाए और वह अपने अंतिम समय में प्रभु को स्मरण करने बैठ जाए तो हम उसका वध न करें ?" धृष्टद्युम्न ने आवेशमय स्वर में कहा, "कल तुम कर्ण को मारने के लिए जब उसके कंठ पर पैर रखोगे तो वह पद्मासन लगाकर बैठ जाएगा। तब तुम उसे जीवित छोड़ देना, उसको मुक्त कर देना, उसके पास से अपने सैनिक हटा लेना, ताकि वे उसकी उपासना में विघ्न न डालें।"

अर्जुन ने आक्रोशपूर्ण दृष्टि से धृष्टद्युम्न की ओर देखा, "धिक्कार है तुम्हें।"

उसका कंठ रुँध गया। कैसी बाध्यता थी कि न तो वह अपने गुरु के हत्यारे को दंडित कर पा रहा था और न ही उसे शब्दों में ही पूरी तरह धिक्कार सकता था। किस-किस को धिक्कारता वह—भीम को, धर्मराज को, धृष्टद्युम्न को ?··· और प्रस्ताव तो यह स्वयं श्रीकृष्ण का था।···

धृष्टद्युम्न ने अर्जुन से जैसे निराश होकर अपनी दृष्टि भीम पर टिका दी।

भीम उसकी मूक भाषा समझ ही नहीं रहा था, उसकी असहायता के प्रति उसके मन में सहानुभूति भी अंकुरित हो चुकी थी।··· द्रोण के वध के लिए जिस धृष्टद्युम्न का अभिनन्दन होना चाहिए था, अर्जुन उसकी भर्त्सना कर रहा था।

"हमें मुनियों के समान धर्मोपदेश मत दो और न ही मूर्खता की बातें करो। स्वयं समर्थ होकर भी कुछ करते नहीं हो; और हमें वाग्वाणों से छलनी कर रहे हो।" भीम ने उसे डाँटा, "बहुत ज्ञान हो गया है, धर्म का तुमको, तभी तो कृष्ण का कहा नहीं मान रहे हो। कृष्ण के सामने भी धर्म के मर्म की व्याख्या कर रहे हो। अपने पक्ष के दोषों का वर्णन करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ? कौरवों में कोई नहीं बचा है क्या हमारे दोष निकालने को कि तुमने यह दायित्व अपने सिर ले लिया है।" भीम ने रुककर उसे देखा, "और तुम अश्वत्थामा से भय मत करो। तुम अपने भाइयों के साथ यहीं रहो। मैं अकेला ही जाकर अश्वत्थामा को ठिकाने लगा दूँगा। बहुत दंभ है उसे अपने शस्त्र ज्ञान का। उसको उसके सारे शस्त्रों के साथ उठाकर रक्त की धारा में बहा दूँगा।"

अर्जुन ने अपने जबड़े कस लिए थे, फिर भी वह कह ही गया, "इतना ही सरल था अश्वत्थामा को मारना तो क्यों गज को मारकर घोषणा की कि अश्वत्थामा मारा गया है। क्यों नहीं तब ही वध किया अश्वत्थामा का।"

"वध तो मैं उसका तब ही कर देता।" भीम बोला, "कृष्ण ने कहा था कि अश्वत्थामा का वध तत्काल होना चाहिए। उसमें समय नहीं लगना चाहिए। यदि मैं अश्वत्थामा का वध घोषित रूप से करने जाता तो द्रोण सहित सारी कौरव वाहिनियाँ अश्वत्थामा की रक्षा के लिए आतीं। अश्वत्थामा का वध तत्काल नहीं हो सकता था। तब यदि हमने कृष्ण के परामर्श के अनुसार एक युक्ति का सहारा लिया तो कौन-सा अनर्थ हो गया।"

"मैं अश्वत्थामा से नहीं डरता।" धृष्टद्युम्न बोला, "अच्छा है कि वह अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिए मुझसे लड़ने आए। अपनी साध पूरी कर ले वह। मेरी भी साध पूरी हो जाएगी। द्रोण ने मेरे पिता, मेरे वंधु-बांधवों और मेरे पुत्रों का वध किया है। मैंने उसका मस्तक काट लिया किंतु अभी मेरा क्रोध और संताप शांत नहीं हुआ है। अश्वत्थामा को मारकर कदाचित् मेरे मन को थोड़ी शांति मिले। शत्रुओं का वध न करना पाप है और वह पाप तुम करते रहे हो धनंजय ! उस पर भी तुम अपने पितामह को मारकर धर्मात्मा बने रहना चाहते हो और अपने शत्रु को मारने के कारण मुझे पापी बता रहे हो ?"

"मुझे मत सिखाओ कि पाप किसने किया है।" अर्जुन ने कटु स्वर में कहा, "मैं पांडव सेनाओं की एकता और अखंडता बनाए रखना चाहता हूँ, इसलिए चुप हूँ।"

धृष्टद्युम्न की त्यौरियाँ चढ़ गईं। उसके आँखों की लालिमा बढ़ गई, "मैं भी तुमसे अपने संबंध के कारण ही तुम्हारे सामने नतमस्तक हूँ। तुमसे भयभीत नहीं हूँ। अपनी भगिनी और भागिनेयों का ध्यान है मुझे।''' पर तुम्हें क्या कहूँ। तुम तो धर्मराज को भी असत्यवादी ठहरा रहे हो। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि न धर्मराज असत्यवादी हैं और न मैं अधर्मी। द्रोण ही पापी और शिष्यद्रोही थे, इसलिए मारे गए। अब तुम युद्ध करो। शत्रुओं में कोई समर्थ योद्धा नहीं बचा है। विजय तुम्हारे हाथ में है।"

भीम को धृष्टद्युम्न का संयम देखकर आश्चर्य हो रहा था। सत्य ही वह अपने संबंध के कारण अत्यंत संतुलित और मर्यादित व्यवहार कर रहा था, अन्यथा उसका क्रोध भीम से किसी प्रकार कम तो नहीं था।''' भीम को स्वयं अपने और धृष्टद्युम्न के चिंतन में बहुत सारी समानताएँ दिखाई देती थीं। तभी तो उसने द्रोण के वध पर धृष्टद्युम्न को कंठ से लगाया था।''' पर अर्जुन के कथन से उपजी उसके हृदय की पीड़ा उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी।'''

भीम का मन द्रौपदी के विषय में सोचने लगा, उसे ज्ञात होगा कि अर्जुन और धृष्टद्युम्न में मनमुटाव हुआ है, तो कैसा लगेगा उसे ? धृष्टद्युम्न उसे बहुत प्रिय था और उसी प्रकार अर्जुन उसके हृदय में बसता था। वह धर्मराज की उनके धर्म के लिए पूजा करती थी। अर्जुन के रूप और गुणों के कारण वह उसकी प्रेमिका थी।''' पर यह तो सब ही जानते थे कि वे दोनों ही अपने स्वभाव के कारण द्रौपदी की अनेक इच्छाएँ पूरी नहीं कर पाते थे। कीचक को मारना हो अथवा दुःशासन के वक्ष के रक्त की इच्छा। न अर्जुन उसकी ये माँगें पूरी करता, न धर्मराज ! ये तो भीम ही कर सकता था।''' भीम को प्रायः लगता था कि वह और द्रौपदी बहुत समान थे। उन दोनों के स्वभाव में बहुत-सी समानताएँ थीं। दोनों को ही धर्मराज और अर्जुन आदर्श लगते थे; किंतु व्यवहार की बात आते ही भीम और द्रौपदी उनसे एकदम भिन्न धरातल पर सोचने लगते थे। धृष्टद्युम्न का व्यवहार भी भीम की इच्छाओं के बहुत अनुरूप था। उसे द्रोण का इस प्रकार मारा जाना बहुत अच्छा लगा था। द्रौपदी को भी इस सूचना को पाकर

बहुत सुख मिलेगा।''' किंतु अर्जुन रूठा बैठा है। अर्जुन और धृष्टद्युम्न दोनों एक-दूसरे के विरोधी से प्रतीत हो रहे हैं। द्रौपदी किसका समर्थन करेगी ?'''

भीम की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी''' वह दुख और क्षोभ में डूबा वैठा था। उसकी आँखों में अश्रु आ गए थे। वह धृष्टद्युम्न से लड़ना नहीं चाहता था, किंतु वह उसे क्षमा भी तो नहीं कर पा रहा था।'''

"धिक्कार है।"

पता नहीं वह धृष्टद्युम्न को धिक्कार रहा था अथवा स्वयं अपने आपको। पर वह बहुत कष्ट में था। उसे अपना आत्मसंयम काफी भारी पड़ रहा था।

सात्यकि से अर्जुन की यह अवस्था देखी नहीं गई। अर्जुन के प्रति उसकी सहानुभूति ने धृष्टद्युम्न के प्रति आक्रोश का रूप धारण कर लिया। वह दाँत पीसकर बोला, "यहाँ ऐसा कोई पुरुष नहीं है, जो इस अभद्र, पापी, नराधम को मार डाले।" और फिर उसकी दृष्टि सीधे धृष्टद्युम्न पर जा टिकी, "तेरे इस पाप कर्म के कारण सारे पांडव अत्यंत घृणा प्रकट करते हुए तेरी निन्दा कर रहे हैं; और तू लज्जित होने के स्थान पर अपना यशगान कर रहा है। तेरी जिह्वा के टुकड़े क्यों नहीं हो जाते। तेरा मस्तक फट क्यों नहीं जाता। तू अर्जुन पर भीष्म के वध का आरोप लगा रहा है। भीष्म ने तो स्वयं ही अपनी मृत्यु का ऐसा विधान किया था। भीष्म का वध करने वाला भी तेरा ही पापी भाई है। ऐसे पाप कर्म करने वाला पांचाल पुत्रों के समान इस पृथ्वी पर और है ही कौन। तुम दोनों को पाकर सारे पांचाल धर्मभ्रष्ट नीच, मित्रद्रोही और गुरुद्रोही हो गए हैं। यदि तू फिर इस प्रकार की बात करेगा तो मैं अपनी इस गदा से तेरा सिर कुचल दूँगा। तू मेरे सम्मुख मेरे गुरु और उनके गुरु पर आक्षेप कर रहा है। तुझे लज्जा नहीं आती।'''"

युधिष्ठिर विचित्र ऊहापोह में फँसे हुए थे। वे तो स्वयं अर्द्धसत्य बोलकर एक प्रकार की ग्लानि का अनुभव कर रहे थे। अर्जुन के इस धिक्कार ने उनका आत्मबल और भी कुंठित कर दिया था। और अब उनके सबसे प्रबल दोनों सहायक परस्पर उलझ गए थे। उन्हें भय था कि कहीं वे दोनों शस्त्र ही न उठा लें। क्षत्रियों का अपने क्रोध पर कोई नियंत्रण नहीं था। और क्रोध आते ही उनके हाथों में शस्त्र भी प्रकट हो जाते थे।''' वे सात्यकि को जानते थे। वह न कृष्ण के विरुद्ध कुछ सुन सकता था और न ही अर्जुन के विरुद्ध। कृष्ण का अपमान करने पर तो वह उपप्लव्य में बलराम से उलझ पड़ा था। उस बलराम से जिनके विरोध में बोलने से स्वयं कृष्ण और पांडव भी वचते थे''' और धृष्टद्युम्न का क्रोध कौन-सा कम था। इस समय उसका दोप भी विशेष नहीं था। द्रोण का वध करने पर तो कृष्ण, भीम, और स्वयं धर्मराज सहमत थे।''' उसका अपराध तो इतना ही था कि उसने वध करते हुए आचार्य के सम्मान का ध्यान नहीं रखा था। पर उसके मन में वर्षों से क्रोध संचित हो रहा था। उस क्रोध को भी तो कहीं प्रकट होना ही था।'''

पर धृष्टद्युम्न ने वड़े धैर्य से सात्यकि की बात सुनी थी, जैसे स्वेच्छा से उसे बोल

लेने का अवसर दे रहा हो। जब वह बोला तो भी उसका स्वर अनियंत्रित नहीं था, "मैं तुझे क्षमा कर देता, क्योंकि अनार्य पुरुप साधुओं पर ऐसे आक्षेप करते ही रहे हैं। पर मेरी क्षमा को तू मेरी उदारता न मानकर मेरी दुर्बलता समझेगा। इसलिए केवल तुझे स्मरण रखने के लिए कह रहा हूँ कि युद्धभूमि में भूरिश्रवा की बाँह पार्थ ने काट ली थी। भूरिश्रवा आमरण अनशन पर बैठ गया था, तब तूने उसका मस्तक काट लिया था। द्रोण की स्थिति वह नहीं थी। वे मुझसे लड़ रहे थे। सारे शस्त्रास्त्र उनके पास थे। उनके सारे अंग समर्थ और सबल थे।"

"तो तू उनको तब मारता, जब वे बाण चला रहे थे।" सात्यकि चिल्लाकर बोला।

"तुम भूरिश्रवा को तब मारते जब वे तुम्हें भूमि पर घसीट रहे थे और लात से तुम्हें मार रहे थे।" धृष्टद्युम्न ने कहा, "पर तुमने उन्हें तब मारा, जब अर्जुन ने उनकी भुजा काट ली थी।"

सात्यकि कुछ कहने को हुआ, पर धृष्टद्युम्न ने कुछ कहने नहीं दिया। डपटकर बोला, "चुप बैठा रह नीच ! यदि अपनी मूर्खतावश ऐसी बातें कहेगा, तो बाणों के रथ पर बैठा कर अभी तुझे यमपुर भेज दूँगा।" उसने सात्यकि की ओर अपनी तर्जनी उठाई, "और सुन ! केवल धर्म से युद्ध नहीं जीते जाते। कौरवों ने आज तक अधर्म ही अधर्म किया है। पांडवों ने भी भीष्म और भूरिश्रवा को धर्मपूर्वक नहीं मारा है। धर्म के ज्ञाता पांडवों को भी समरभूमि में अपनी विजय सुरक्षित रखने के लिए अधर्म का सहारा लेना पड़ा है। अब तू पूर्ववत् कौरवों से युद्ध कर, मुझसे विवाद कर यमलोक जाने की तैयारी मत कर।"

सात्यकि क्रोध से काँपने लगा। उसने अपना धनुष रख दिया और गदा उठा ली, "अब तुझसे विवाद नहीं करूँगा, तुझे मार ही डालूँगा।"

युधिष्ठिर, कृष्ण, अर्जुन, भीम सब ही देख रहे थे कि अनर्थ होने वाला है। कृष्ण ने संकेत किया और भीम ने झपटकर सात्यकि को पकड़ लिया। किंतु इस समय सात्यकि इतने क्रोध में था कि भीम भी उसके साथ-साथ कुछ दूर चलता चला गया। छठे पग पर जाकर भीम ने सात्यकि को पूर्णतः नियंत्रित किया और उसकी गति थम गई।

सहदेव ने निकट आकर कहा, "वीर सात्यकि ! अंधक और वृष्णि वंश के यादवों और पांचालों से बढ़कर हमारा कोई मित्र नहीं है। सत्य यह है कि अंधकों और वृष्णियों का भी हमसे बड़ा सहायक इस पृथ्वी पर नहीं है। पांचाल भी सारी सृष्टि में खोज लें तो उन्हें पांडवों और वृष्णियों जैसा मित्र नहीं मिलेगा। उस मित्रता का स्मरण कर अपने धर्म का निश्चय कीजिए। व्यक्तिगत आक्षेपों का समय नहीं है यह। आप और धृष्टद्युम्न परस्पर एक-दूसरे के अपराध क्षमा करें।..."

धृष्टद्युम्न अपने स्थान पर खड़ा विष में डूबी मुस्कान के साथ बोला, "भीमसेन ! छोड़ दो इसे। अपने युद्ध कौशल पर बहुत घमंड है इसको। छोड़ दो इसे। यह आकर मुझसे भिड़े। अभी अपने तीखे बाणों से मैं इसका क्रोध उतार देता हूँ। एक बार भिड़कर

देख ले, युद्ध के प्रति सारा उत्साह ही नहीं इसका जीवन भी समाप्त हो जाएगा।"

सात्यकि कुछ कहता, उससे पूर्व ही कृष्ण ने आकर धृष्टद्युम्न की भुजा थाम ली, "मैं अभी सात्यकि को मध्यम पांडव से छुड़वा देता हूँ। तुम दोनों अपनी-अपनी साध पूरी कर लेना। पर पहले यह निर्णय कर लो कि तुम्हारा बड़ा शत्रु कौन है—सात्यकि अथवा अश्वत्थामा ? पहले किसको शांत करना है—सात्यकि को अथवा अश्वत्थामा को ? सात्यकि को तो भीम ने पकड़ रखा है, अशवत्थामा को पकड़ने वाला कोई नहीं है। बोलो, क्या कहते हो ? पहले अश्वत्थामा को पकड़ें अथवा पहले सात्यकि को छोड़ें ?"

धृष्टद्युम्न का भाव तत्काल बदल गया, "नहीं ! कौरवों से युद्ध अधिक आवश्यक है केशव ! वह बड़ा काम है।"

"तो वही करो।" कृष्ण बोले, "जाओ, अपना रथ सँभालो।"

वे सात्यकि के निकट आए, "धृष्टद्युम्न ने अधिक अपमान किया है तुम्हारे गुरु का अथवा दुर्योधन ने अधिक अपमान किया है तुम्हारी गुरुपत्नी का। धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे गुरु का सर्वस्व हरण कर वन भेजा था अथवा दुर्योधन ने ? पहले दुर्योधन का वध करना है अथवा पहले धृष्टद्युम्न का निर्णय करना है ?"

सात्यकि ने सिर झुका लिया।

"अपने शत्रुओं को पहचानना सीखो सात्यके !" कृष्ण के स्वर में वेणु का स्वर गूँज उठा, "क्रोध बुद्धि को भ्रष्ट करता है। उससे बचो।"

अंत में वे एक ओर उदासीन से खड़े अर्जुन के निकट आए, "रथ लाऊँ अथवा पहले गुरु की अंत्येष्टि करके ही युद्ध की बात सोचोगे ?"

अर्जुन ने कृष्ण की ओर देखा··· कृष्ण की बात उसने नहीं मानी थी। किंतु उन्होंने उसका त्याग नहीं किया था। अर्जुन ने धृष्टद्युम्न को बार-बार धिक्कारा था, पर उसके लिए कृष्ण ने अर्जुन को एक बार भी नहीं टोका था। जाने उनके मन में क्या था। इतना बड़ा कांड हो गया था किंतु कृष्ण ने एक क्षण को भी अपनी अप्रसन्नता प्रकट नहीं की थी।··· जो विवाद शस्त्रों से भी समाप्त होने वाला नहीं था, कृष्ण के संक्षिप्त वाक्यों से इस प्रकार विलीन हो गया था, जैसे उसका कभी कोई अस्तित्व ही नहीं था। शस्त्र तो शस्त्र, कृष्ण का वाणी पर भी ऐसा अधिकार था कि ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न किसी ब्रह्मवादी ब्राह्मण का भी क्या होगा।··· कैसी लीला है प्रभु की कि क्षत्रियों में कृष्ण जैसा कोई क्षत्रिय नहीं है और ब्राह्मणों में कृष्ण जैसा कोई ब्राह्मण नहीं है।···

27

कौरवों की भागती हुई सेना फिर से संगठित होकर समरभूमि में लौट आई थी। कौरवों ने बड़े वेग से पांडवों पर आक्रमण किया था।

युधिष्ठिर देख रहे थे।''' इस समय कौरव सेना का नेता अश्वत्थामा था।''' क्या कौरवों ने अश्वत्थामा का अपने नए प्रधान सेनापति के रूप में अभिषेक कर दिया था ? पर कर्ण उसे अपना सेनापति मान लेगा क्या ?''' नहीं ! शायद ऐसा नहीं है। इस समय तो अश्वत्थामा विना कुछ सोचे-समझे अपने आवेश में प्रतिशोध के भाव से ही लड़ रहा है। दुर्योधन की तो नीति ही रही है कि विनाश के लिए आतुर व्यक्ति को और भी उत्तेजित किया जाए। अश्वत्थामा अपने पिता के वध से अथवा उनके अपमान से पीड़ित होकर अपना संतुलन खो वैठा था और किसी भी प्रकार पांचालों का सर्वनाश करने पर तुला हुआ था। उसने दुर्योधन से पूछा भी नहीं होगा कि नया प्रधान सेनापति कौन है या किसको होना है। गुरुपुत्र में न धैर्य है न विवेक। वह तो वस पशु वृत्तियों से ही संचालित होता है। यदि धृष्टद्युम्न ने उसके पिता का वध किया है तो वह सारे पांचालों का विनाश करेगा। उसके ध्यान में यह कभी नहीं आएगा कि आचार्य ने भी तो धृष्टद्युम्न के पिता, भाइयों और पुत्रों का वध किया था।'''

अश्वत्थामा का रथ पांडव सेना से कुछ दूर ही रुक गया था। उसने अपने धनुष पर कोई दिव्यास्त्र रखा और योगस्थ होकर उसे पांडव वाहिनियों की ओर परिचालित कर दिया। वह अस्त्र ऊपर आकाश की ओर उठा और फिर जैसे वहाँ ठहर गया।''' उस दिव्यास्त्र का प्रभाव विचित्र था। उसमें से असंख्य वाण प्रकट हो रहे थे। उनके अग्र भाग पर अग्नि प्रज्वलित थी। वे वाण अश्वत्थामा के धनुष से मुक्त हो स्वतःचालित ढंग से स्वतंत्र यात्रा कर रहे थे। वे कहीं भी सीधे आघात नहीं करते थे। वे जैसे पहले अपने लक्ष्य को खोजते थे। फिर निर्णय करते थे कि किस पर आघात करना है; और तव उस पर जा गिरते थे। उनके आसपास अग्नि का प्रकोप दिखाई देता था। यह पता ही नहीं चल रहा था कि वे वाण किसी के शरीर को चीरते हैं अथवा उनसे उत्पन्न अग्नि ही सैनिकों को दग्ध कर रही है।''' उस अस्त्र का आघात सेना के उस भाग में हुआ था, जहाँ पांचाल सैनिक बहुत बड़ी संख्या में थे। कदाचित् अश्वत्थामा का विरोध भी उन्हीं की ओर से सबसे प्रवल रूप से हो रहा था।

युधिष्ठिर ने देखा कि कौरवों की सेना आगे नहीं बढ़ रही थी। उन्होंने जैसे अपनी सारी गतिविधि रोक ली थी। केवल वह दिव्यास्त्र ही लड़ रहा था पांडव सेना के विरुद्ध। जहाँ-जहाँ पांडवों की सेना प्रवल थी, प्रचंड युद्ध कर रही थी, वहीं वह अस्त्र भी अधिक क्रूर होता जा रहा था। वहाँ अग्नि का तांडव होने लगता था। पांडव सेना के प्रहारों का उस पर कोई प्रभाव ही नहीं हो रहा था। पांडवों का कोई भी महारथी उसका सामना करने के लिए आगे नहीं आ रहा था। कदाचित् अभी उस अस्त्र की पहचान भी नहीं हो पाई थी।'''ऐसे में परिणाम निश्चित था या तो सैनिक मरने लगते थे या भाग जाते थे।

अपने सैनिकों को मरते और कुछ वाहिनियों को पलायन करते देख, युधिष्ठिर की दृष्टि अर्जुन और कृष्ण को खोजने लगी। अर्जुन तटस्थ भाव से अपने रथ में निष्क्रिय

खड़ा था। कृष्ण भी हाथों में अश्वों की वल्गा थामे अपनी सेना का विनाश देख रहे थे।

युधिष्ठिर का हृदय रो पड़ा।''' भीष्म और द्रोण जैसे अतिरथियों को धराशायी कर वे अश्वत्थामा सरीखे एक साधारण महारथी से पराजित हो जाएँगे ?''' अर्जुन को भी कभी-कभी जाने क्या हो जाता है। आचार्य के वध की आकांक्षा युधिष्ठिर ने भी कभी नहीं की थी। पर उन्होंने आचार्य की कल्पना अपने विपक्षी योद्धा के रूप में भी तो नहीं की थी। जव वे विपक्षी योद्धा वनकर आए तो यह तो निश्चित ही था कि पांडव उनके वध का प्रयास करेंगे।''' अव अर्जुन इसी वात से रूठा खड़ा रहेगा क्या ? अर्जुन का युद्ध उनकी समझ में नहीं आ रहा था। वह जिनके विरुद्ध लड़ रहा था, उनकी ही हत्या से रुष्ट हो जाता था।'''

वे अर्जुन के रथ के निकट पहुँचे।

"तुम्हारे इस रोष का अंत कहाँ होगा धनंजय ! क्या मैं सारे महारथियों से कह दूँ कि वे अपनी वाहिनियों को लेकर अपने-अपने राज्य में लौट जाएँ—क्योंकि मेरा भाई धनंजय मुझसे रुष्ट हो गया है ?" युधिष्ठिर बोले, "धनंजय को युद्ध नहीं करना है, तो फिर इन सारे सैनिकों को अश्वत्थामा के अस्त्रों की अग्नि में झोंक देने का क्या लाभ ? वे भी सुरक्षित अपने घर ही चले जाएँ। मैंने युद्ध आरंभ किया है तो मैं ही अपने भाइयों के साथ इस अग्नि में प्रवेश करूँगा।"

"वह वात नहीं है धर्मराज !" कृष्ण बोले।

"तो और क्या वात है केशव ! अर्जुन खड़ा-खड़ा पांडव सेना का विनाश देख रहा है और उसका मन तनिक-सा भी द्रवित नहीं हो रहा ?" युधिष्ठिर अर्जुन की ओर मुड़े, "मुझे जो दंड देना है दे लो अर्जुन ! क्योंकि सदा अपने ही कल्याण में लगे रहने वाले तुम्हारे गुरु द्रोण को मैंने युद्ध में मरवा दिया है। उन द्रोण को मरवा दिया है, जिन्होंने युद्ध कौशल से रहित वालक अभिमन्यु को अनेक क्रूरकर्मा शक्तिशाली महारथियों के सम्मुख आखेट के जीव-सा परोस दिया था; जिन्होंने सभा में लाई गई द्रौपदी के प्रश्न का उत्तर न दे कर, उसकी उपेक्षा की, क्योंकि वह हमें दासता से मुक्त करवाने का प्रयत्न कर रही थी; जिन्होंने अर्जुन की मृत्यु निश्चित करने के लिए जयद्रथ की रक्षार्थ अपना सारा वल झोंक दिया था; जिन्होंने दुर्योधन को उस समय दिव्य कवच पहना दिया, जव वह थके हुए अश्वों वाले अर्जुन पर आक्रमण कर उसे मार डालना चाहता था; जिन्होंने मेरी रक्षा के लिए प्रयत्नशील सत्यजित तथा अन्य पांचालों को अपने व्रह्मास्त्र से नष्ट कर दिया; जिन्होंने दुर्योधन को उस समय भी कुछ नहीं कहा, जव वह अधर्मपूर्वक हमें हमारे राज्य से निष्कासित कर रहा था। आचार्य हमें ही समझाते रहे, रोकते रहे।''' उन द्रोण को अव मैंने युद्ध में मरवा दिया है। उनका प्रतिशोध लेने के लिए तुम मेरे भाइयों सहित मुझे भी मार डालो।"

"धर्मराज ! आप शस्त्र त्याग दीजिए और अपने रथ से नीचे उतर आइए।" सहसा

कृष्ण रथ से नीचे उतर आए, "अर्जुन रुष्ट नहीं है। हम अभी अश्वत्थामा के दिव्यास्त्र का स्वरूप समझने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

युधिष्ठिर समझ नहीं पाए कि यह कौन-सा दिव्यास्त्र है, जिसका ज्ञान अश्वत्थामा को तो है किंतु कृष्ण और अर्जुन—दोनों ही अभी उसके विषय में जानने का प्रयत्न ही कर रहे हैं।... और फिर कृष्ण उन्हें शस्त्र त्यागने और रथ से नीचे उतर आने के लिए क्यों कह रहे हैं ?...

तभी कृष्ण अपनी सेना की ओर घूमे और उच्च स्वर में आदेश देते हुए बोले, "सैनिको ! अश्वत्थामा और उसके इस अस्त्र का विरोध मत करो। अपने अस्त्र-शस्त्र डाल दो और अपने वाहनों से नीचे उतर आओ। भूमि पर निःशस्त्र खड़े हो जाओ। मन में विरोध मत रखो। हिंस्र भावों का त्याग कर दो। मन में श्रद्धा लाओ। यह नारायणास्त्र है। प्रभु का अंश मानकर इस अस्त्र को नमस्कार करो। प्रेम भाव से अस्त्र का स्वागत करो।"

युधिष्ठिर के मन में अर्जुन को लेकर चाहे शंका रही हो; किंतु कृष्ण के प्रति किसी भी प्रकार का कोई संशय नहीं था। उन्होंने अपना धनुष तो त्याग दिया; किंतु वे अब भी समझ नहीं पा रहे थे कि इस भयंकर युद्ध में, जब चारों ओर शस्त्रों की आग बरस रही थी, प्रधान सेनापति और राजा से पूछे बिना कृष्ण सारी सेना को इस प्रकार निःशस्त्र क्यों करवा रहे थे ? श्रीकृष्ण को अधिकार था कि वे पांडव सेना को कोई भी आदेश दें। वे सारी सेना के रक्षक थे।... पर यह आदेश...

उधर भीम की घोषणा सुनाई दी, "हम शस्त्रसमर्पण नहीं करेंगे। कोई भी योद्धा शस्त्र न त्यागे। मैं अश्वत्थामा से भयभीत नहीं हूँ। तुम्हें भी उससे डरने का कोई कारण नहीं है। मैं उसके इस अस्त्र का निवारण करूँगा। इस एक अस्त्र के कारण हम शत्रु के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। यदि इस अस्त्र का निवारण करने वाला कोई योद्धा संसार में नहीं है, तो भी मैं इसका सामना करूँगा। अर्जुन ! कहीं तुम अपना गांडीव मत डाल देना, नहीं तो तुम्हारा निर्मल यश कलंकित हो जाएगा। तुम आज तक अजेय रहे हो। आज शत्रुओं के सामने अपना गांडीव समर्पित कर सदा के लिए अपयश मत मोल लेना। कृष्ण कुछ भी कहे, हम पराजित नहीं हुए हैं। हम शस्त्र समर्पित नहीं करेंगे।"

भीम ने अर्जुन की ओर देखा।

"नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मण के सामने मेरा गांडीव नहीं उठता।" अर्जुन ने ऊँचे स्वर में कहा।

भीम निराशा की आग में जल उठा।... अश्वत्थामा ब्राह्मण है, इसलिए उसके सम्मुख गांडीव नहीं उठेगा ? तो वह द्रोण के सम्मुख क्यों उठा था ? कृपाचार्य से क्यों युद्ध करता है अर्जुन ?... इस मूर्खता का क्या उत्तर है कि शत्रु के सम्मुख गांडीव इसलिए नहीं उठेगा, क्योंकि शत्रु किसी विशेष वर्ण से संबंध रखता है। ऐसे तो कोई भी राजा अपनी सेना के सामने ब्राह्मणों को खड़ा कर देगा और अर्जुन अपना शस्त्र त्याग कर

पराजय स्वीकार कर लेगा...

इससे पूर्व भी ऐसे अनेक अवसर आए हैं, जब कृष्ण की नीतियाँ उसकी समझ से बाहर रही हैं; किंतु यह तो उसने कल्पना भी नहीं की थी कि युद्ध के इस सोपान पर आकर कृष्ण कौरवों के सम्मुख उनका आत्मसमर्पण करवा देंगे।... धर्मराज और अर्जुन अंधभक्त हैं कृष्ण के। कृष्ण जो भी कहेंगे, वे लोग उसे अपना हित मानकर स्वीकार कर लेंगे, उनके प्रत्येक आदेश का पालन करेंगे। पर भीम उनके समान श्रद्धालु नहीं है। कुछ भी हो जाए, वह अपना शस्त्र नहीं त्यागेगा। वह दुर्योधन के सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं करेगा। वह फिर उसका दास बनकर उसके सम्मुख सिर झुकाकर खड़ा नहीं होगा, वह उसे अपना अपमान नहीं करने देगा। इससे तो कहीं अच्छा है कि वह युद्ध में अपने प्राण दे दे।...

भीम ने अपने सारथि को संकेत किया और उसका रथ अश्वत्थामा के रथ की ओर दौड़ पड़ा। भीम ने अपने चारों ओर नहीं देखा। उसको केवल और केवल अश्वत्थामा ही दिखाई दे रहा था—जैसे आज समरभूमि में और कोई योद्धा ही न हो। भीम उसका यह दर्प सहन नहीं कर सकता।...

भीम ने धनुष परिचालन में अपनी स्फूर्ति दिखाते हुए, अश्वत्थामा को अपने बाणों से ढँक दिया।... किंतु तब उसका ध्यान इस ओर भी गया कि अश्वत्थामा के धनुष से छूटे हुए, नारायणास्त्र से अभिमंत्रित प्रज्वलित मुख वाले सारे बाण उसी की ओर प्रेरित होते जा रहे हैं। वे बाण छेदते नहीं थे, दग्ध करते थे। उनमें तीक्ष्णता नहीं थी, दाहकता थी।...

वह अग्नि में घिरता जा रहा है। वह उस अस्त्र का निवारण करने के लिए जैसे-जैसे बाण मारता जा रहा था, वैसे-वैसे ही वह अस्त्र प्रचंड होता जा रहा था। उसका ताप बढ़ता जाता था और सारी दिशाओं में ज्वाला फैलती जा रही थी, जैसे भीम ने बाण न मारा हो, पवन का वेग बढ़ाया हो... । उसने एक बार मुड़कर देखा : पांडव सेना ने अपने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिए थे और उनमें से अधिकांश लोग अपने रथ, गज और अश्व छोड़कर भूमि पर खड़े हो गए थे। जो भूमि पर नहीं भी उतरे थे, वे जैसे अपने मानसिक द्वंद्व से जड़ हो चुके थे। सब किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े थे। युद्ध कोई भी नहीं कर रहा था।...

सहसा उसका ध्यान नारायणास्त्र से उत्पन्न उस अग्नि की ओर गया, जो उसके अत्यन्त निकट आ गई थी। उसने उसके चारों ओर अग्नि और धुएँ का एक आवरण-सा बनाकर उसे ढँक लिया था। वह उस अग्नि के पार कुछ भी नहीं देख पा रहा था।... अग्नि प्रचंड होती जा रही थी... और भीम पांडव सेना से कटता जा रहा था ...

पांडव सेना में हाहाकार मच गया। धर्मराज अपने सारे योद्धाओं के साथ असहाय से खड़े भीम को आग में जलते हुए देख रहे थे।...

अर्जुन ने भी भीम को अग्नि में घिरते देखा। उसके ध्यान में था कि कृष्ण शस्त्र

त्यागने को कह चुके हैं। पर वह भीम को इस प्रकार अग्नि में जलने नहीं दे सकता था। कृष्ण भी भीम को बचाने के इच्छुक होंगे। अर्जुन ने गांडीव उठाया और नारायणास्त्र पर प्रहार करने के स्थान पर उसने भीम के शरीर को वारुणास्त्र का कवच दे दिया। अर्जुन ने नारायणास्त्र का विरोध नहीं किया था। उसने उस पर प्रहार नहीं किया था। इसीलिए उसके अर्जुन की ओर आकृष्ट होने की कोई संभावना भी नहीं थी।...

"आओ अर्जुन !"

कृष्ण ने अर्जुन की बाँह पकड़ी और वे लोग दौड़ते हुए भीम के पास पहुँचे। भीम के रथ के चारों ओर धधकती अग्नि की उपेक्षा कर वे उसमें प्रवेश कर गए। भीम को उसकी भुजा से पकड़कर रथ से नीचे उतारा। सारथि को भी नीचे उतर आने के लिए कहा।

भीम पूरे वेग से अपना विरोध प्रकट कर रहा था। वह गर्जन कर रहा था और हाथों से भी शस्त्र को नहीं छोड़ना चाहता था। किंतु कृष्ण और अर्जुन ने उसके उस विरोध और गर्जन-तर्जन की चिंता नहीं की।

"मध्यम ! अब ध्यान से मेरी बात सुनो," कृष्ण बोले, "हठ छोड़ो और मन से क्रोध तथा आक्रोश को भी निकाल फेंको। हमारा विरोध अश्वत्थामा से है, नारायणास्त्र से नहीं। नारायणास्त्र हमारा शत्रु नहीं है। हम नारायण के सम्मुख नमन करते हैं तो इसका अर्थ अश्वत्थामा के सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं है। हम नारायणास्त्र पर प्रहार नहीं करेंगे तो वह हम पर प्रहार नहीं करेगा। वह मैत्री का सम्मान करता है। सारी सेना अपने शस्त्र त्याग चुकी है। सबने इस अस्त्र के प्रति अपनी मैत्री दर्शाई है। नारायणास्त्र ने किसी ऐसे योद्धा का अनिष्ट नहीं किया है, जिसने उसका विरोध नहीं किया है। तुम भी अपना विरोध छोड़ दो, नहीं तो तुम्हें इस अस्त्र से कोई नहीं बचा पाएगा।..." वे रुके, "यदि युद्ध से ही इसे जीता जा सकता तो हम सब भी युद्ध ही कर रहे होते।"

अब तक भीम की समझ में भी बहुत कुछ आ गया था। उसने अपना धनुष भूमि पर रख दिया। मन को शांत किया और देखा कि नारायणास्त्र का वेग कम होने लगा है। अग्नि उसे चारों ओर से घेरे हुए थी; किंतु न वह उसकी ओर लपक रही थी और न ही भीम को उसके ताप का अनुभव हो रहा था।

"यह क्या है केशव ?" भीम ने कुछ चकित स्वर में पूछा।

"आओ। पहले धर्मराज के पास चलें।" कृष्ण बोले, "वहीं बताता हूँ। उन्हें इस समय अकेले छोड़ना उचित नहीं होगा; और फिर नारायणास्त्र के शांत हो जाने से युद्ध समाप्त नहीं हो जाएगा। अश्वत्थामा कोई दूसरा अस्त्र छोड़ेगा।"

नारायणास्त्र का तेज शांत हो गया था। लगता था किसी ने वह धधकता हुआ दावानल समेटकर उसे किसी सुरक्षित स्थान पर बंद कर दिया था। वातावरण पर्याप्त निर्मल हो गया था।...

भीम को लेकर कृष्ण और अर्जुन, धर्मराज के निकट आए।

"तुम सुरक्षित तो हो भीम ?" युधिष्ठिर ने भीम के शरीर पर हाथ फेरा, जैसे उसकी कुशलता के प्रति स्वयं को आश्वस्त कर लेना चाहते हों।

"मैं पूर्णतः सुरक्षित हूँ और युद्ध के लिए पूरी तरह समर्थ हूँ।" भीम हँसा, "आप तनिक भी चिंता न करें।"

तभी सात्यकि भी वहाँ आ पहुँचा, "यह क्या था केशव ?"

"यह नारायणास्त्र था।" कृष्ण बोले, "जब अश्वत्थामा ने उसका प्रयोग किया तो उसका स्वरूप मेरी भी समझ में नहीं आ रहा था। पर फिर मैंने देखा कि जहाँ-जहाँ से उसका प्रतिरोध और विरोध हो रहा है, वहाँ ही वह प्रचंड आक्रमण कर रहा था। दूसरी ओर जहाँ उसका विरोध नहीं हो रहा था, वहाँ उसका कोई भी प्रभाव नहीं था। उसके व्यवहार से उसका सिद्धांत मेरी समझ में आया और तब उसका स्वरूप भी स्पष्ट हो गया।"

"इससे पहले आप और धनंजय भी उसके विषय में नहीं जानते थे ?" सात्यकि ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

"हाँ ! नहीं जानते थे।" कृष्ण मुस्कराए, "इससे तुम्हारी यह भ्रांति भी मिट जाएगी कि तुम्हारे गुरु सर्वज्ञ हैं।"

"पर क्या है वह सिद्धांत, जिससे नारायणास्त्र परिचालित होता है ?" धृष्टद्युम्न ने पूछा।

"हम सब ही जानते हैं कि जो कुछ इस पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है।" कृष्ण बोले, "इसका अर्थ है कि हमारे अपने मन का स्वरूप ही बाहर के संसार का निर्माण करता है।"

"इसका क्या अर्थ हुआ ?" भीम कुछ झपटकर बोला।

"इसका अर्थ हुआ कि हमारे अपने मन में प्रेम हो तो वह बाहर से भी प्रेम को आकृष्ट करता है। हमारे मन में शत्रुता हो तो वह अन्य लोगों के मन में भी हमारे लिए शत्रुता को जन्म देती है। वस्तुतः हमारा मन अपना प्रतिबिंब ही संसार में पाता है।" कृष्ण बोले, "इसी सिद्धांत का प्रयोग है नारायणास्त्र। वह सूक्ष्म जगत् को स्थूल में बदल देता है। एक प्रकार से युद्धशास्त्र में यह योग का प्रयोग है। जैसे चुंबक लोहे को आकृष्ट करती है, प्रज्वलनशील पदार्थ अग्नि को निमंत्रित करते हैं, वैसे ही एक शस्त्र दूसरे शस्त्र को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। यह स्थूल जगत् का सिद्धांत है। साधारणतः इसका प्रयोग भी स्थूल जगत् में ही हुआ है।... किंतु नारायणास्त्र के माध्यम से सूक्ष्म जगत् का संपर्क स्थूल जगत् से करा दिया गया है। अश्वत्थामा ने अपने योगबल से अपने हृदय की ईर्ष्या, द्वेष, हिंसा और घृणा को एक अस्त्र से जोड़ दिया। उसका विक्षेपण योग के क्षेत्र में न कर युद्ध के क्षेत्र में किया। अश्वत्थामा के मन की वह हिंसा, नारायणास्त्र के रूप में सारे स्थानों पर अपनी समकक्ष हिंसा को खोजती फिरी। जहाँ कहीं हिंसा दिखाई देती, नारायणास्त्र की आधारभूत हिंसा उस पर प्रहार करती।

ऐसे में हम अपने भौतिक शस्त्रों से नारायणास्त्र का निवारण नहीं कर सकते थे। उसके लिए तो हमें भी अपने मनोजगत् में ही जाना पड़ेगा। इस तथ्य को समझते ही मैंने सेना द्वारा शस्त्रसमर्पण का प्रस्ताव किया था। मेरा आकलन ठीक निकला।"

"मेरे मन में एक प्रश्न है·केशव !" अर्जुन ने कहा, "यदि बाह्य संसार हमारे अपने ही मन का प्रतिबिंब है तो धर्मराज को दुर्योधन के रूप में इतना भयंकर शत्रु क्यों मिला। उनके मन में तो दुर्योधन के लिए कभी वैर विरोध नहीं रहा।"

"ठीक कह रहे हो।" कृष्ण बोले, "इसकी व्याख्या कई प्रकार से हो सकती है। सबसे पहले तो यह कि दुर्योधन के मन में जो होगा, वही तो बाहर स्थूल जगत् में प्रकट होगा। दुर्योधन के मन में प्रेम है ही नहीं। धर्मराज का सर्वप्रेम भी उसमें से प्रेम आकृष्ट नहीं कर सकता था, क्योंकि उसमें प्रेम था ही नहीं। आप भाव को आकृष्ट कर सकते हैं, भाव उत्पन्न नहीं कर सकते। किंतु धर्मराज के मन में जो अविरोध का भाव है, उसमें आवृत होने के कारण, दुर्योधन का विरोध उनका अहित नहीं कर सका। प्रेम की सूक्ष्म शक्ति सदा ही सारे पांडवों की सहायता करती रही है। तुम्हारे वारुणास्त्र ने भीम को आवृत कर रखा था, इसलिए नारायणास्त्र की ज्वाला ने भी उसको दग्ध नहीं किया। वैसे ही धर्मराज के धर्म ने अपने भाइयों को भी आवृत कर रखा है। यही कारण है कि संसार की भौतिक शक्तियाँ जब आक्रमण करती हैं तो उस सूक्ष्म शक्ति से पराजित होकर लौट जाती हैं। हमारी शारीरिक आँखें देखती हैं और चकित होती हैं कि यह कैसे हो गया।..."

"पर उन्होंने हमारी हानि तो की है। अनेक बार की है।" सहदेव ने कहा, "हमें वंचित किया है, अपमानित किया है। हमें पीड़ित किया है।"

"हमें मान लेना चाहिए कि उतना विरोध पांडवों के मन में भी कौरवों के लिए था कि वे इतनी क्षति पहुँचा सके।" कृष्ण बोले, "यदि उतना भी विरोध न होता तो शायद स्थिति कुछ और ही होती। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास के मन में किसी का विरोध नहीं है, इसीलिए उनका कोई विरोधी नहीं है। मैं यह नहीं कहता कि किसी के मन में उनके प्रति विरोध नहीं है। संभवतः दुर्योधन के मन में उनके प्रति भी विरोध होगा, किंतु दुर्योधन न तो उनका विरोध करने का साहस कर पाएगा और न ही उनका कुछ अहित कर पाएगा।"

"महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यास ही क्यों ? कृष्ण क्यों नहीं ? कृष्ण के मन में भी तो किसी के प्रति घृणा नहीं है।" अर्जुन ने कहा।

"पर कृष्ण युद्ध तो करता है। घृणा न करे किंतु वध तो वह भी करता है।" कृष्ण मुस्कराए, "इसीलिए उसके चारों ओर सदा ही युद्ध और संघर्ष घिरे रहते हैं।"

"अश्वत्थामा नारायणास्त्र का प्रयोग दूसरी बार भी तो कर सकता है।" सहसा धृष्टद्युम्न ने कहा।

"नहीं ! पुनः नहीं।" कृष्ण मुस्कराए, "दुर्योधन उसको कहेगा, आदेश देगा, आग्रह

करेगा, किंतु नारायणास्त्र का प्रयोग दूसरी बार नहीं हो सकता।"

दुर्योधन की विचित्र स्थिति थी। नारायणास्त्र का प्रभाव देखकर वह अपनी विजय के विषय में इतना निश्चित हो चुका था कि उसके मन में अपने विजयोत्सव का प्रारूप भी बनने लगा था। उसने मन-ही-मन यह भी निश्चय कर लिया था कि किस प्रदेश का राजा किसको नियुक्त करना है; और इस युद्ध में दिखाई गई वीरता के लिए किसको क्या पुरस्कार देना है। पर अकस्मात् ही नारायणास्त्र शांत हो गया और पांडव सेना सुरक्षित ही नहीं बच गई, पुनः रणसज्जित होकर कौरवों के सामने आ गई थी। जो पांचाल अब तक मर चुके होने चाहिए थे, वे कौरवों को मारने के लिए अत्यंत उत्साहित होकर दौड़ते हुए उनकी ओर बढ़ते चले आ रहे थे।

दुर्योधन की समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो गया। जो विमान उसे आकाश की ओर ऊपर ले जा रहा था, उसकी गति अकारण ही नीचे की ओर क्यों हो गई ? बल्लियों उछलने वाला उसका हृदय अचानक ही डूबने लगा था।... पर तभी उसके मन में एक नया उत्साह जागा।

"गुरुपुत्र ! देख रहे हो। यह क्या हो गया।" वह बोला, "ये पांचाल तो फिर बच गए। गुरुघाती पांडवों में से भी कोई नहीं मरा है।"

अश्वत्थामा कुछ नहीं बोला।

उसके मौन का अर्थ दुर्योधन के लिए स्पष्ट नहीं था, किंतु इतना तो माना ही जा सकता था कि वह अपनी असफलता से निराश था। उसे भी प्रोत्साहन की आवश्यकता थी।

"तुम इसी अस्त्र का पुनः प्रयोग करो।" दुर्योधन बोला, "इस बार उनमें से कोई भी नहीं बच पाएगा।"

अश्वत्थामा ने निराशा में सिर हिलाया, "नारायणास्त्र की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती।"

दुर्योधन को निराशा हुई... पता नहीं ये लोग कैसे-कैसे अस्त्र-शस्त्र रखते हैं, जो एक बार तो प्रहार करते हैं और दूसरी बार युद्धक्षेत्र से कहीं दूर भाग जाते हैं। पर यह समय अश्वत्थामा से विवाद करने का नहीं था। इस समय तो उसे किसी भी प्रकार प्रसन्न ही रखना होगा।... इतना तो दुर्योधन समझ ही गया था कि द्रोण के पश्चात् अब द्रोणपुत्र ही उसका सहारा हो सकेगा। आचार्य के मन में पांचालों के लिए जितना वैमनस्य था, आचार्यपुत्र के मन में उससे कम नहीं था। आचार्य अपने अपमान से पीड़ित थे; तो आचार्यपुत्र अपने पिता के अपमानजनक वध से।...

"पर गुरुपुत्र ! तुम्हारी क्षमता का अंत नहीं है। तुम्हारे पास दिव्यास्त्रों और देवास्त्रों का कोई अभाव तो है नहीं। मुझे तो लगता है कि सारे देवास्त्र या तो भगवान शंकर में प्रतिष्ठित हैं या फिर तुममें। यदि तुम मारने पर ही आ जाओ तो तुमसे देवराज इंद्र भी बचकर नहीं जा सकते। शस्त्रास्त्रों के क्षेत्र में तो तुम स्वयं भगवान शंकर के

समकक्ष हो।"

"कैसी बातें कर रहे हो राजन् ! कहाँ भगवान शिव और कहाँ मैं। हाँ ! मेरे पिता…"

दुर्योधन देख रहा था कि इस मनःस्थिति में भी अश्वत्थामा को अपनी प्रशंसा का दर्प चढ़ा था। वह बोला, "तुम्हें उन अस्त्रों का भी ज्ञान है, जिनका नाम भी कभी उस अज्जू ने नहीं सुना। पता नहीं तुम अपनी मुनिवृत्ति के कारण महत्त्वाकांक्षी नहीं हो या क्या है कि स्वयं को तुमने उस अर्जुन के समान प्रचारित नहीं किया। नहीं तो तुम इस समय संसार के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर कहलाते।…" वह रुका, "अब तुम ऐसा करो कि नारायणास्त्र जैसा ही कोई दूसरा अस्त्र निकालो। इस बार दिव्यास्त्र के स्थान पर किसी देवास्त्र का प्रयोग करो। तुम देख रहे हो कि वे गुरुघाती न केवल अभी जीवित हैं, वरन् वे तुम्हारी और मेरी हत्या करने के लिए अपनी सेना समेत हम पर चढ़े चले आ रहे हैं। ऐसे तो न आचार्य के अपमान का प्रतिशोध लिया जा सकेगा, न हमारे शत्रु समाप्त होंगे।"

अश्वत्थामा ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी दृष्टि धृष्टद्युम्न पर लगी हुई थी। उसे आता देखकर वह स्वयं को रोक नहीं पाया। उसने अपने सारथि को संकेत किया और उसका रथ धृष्टद्युम्न की ओर दौड़ चला।

दुर्योधन को उसका उत्तर चाहिए भी नहीं था। वह जो चाहता था, वह हो रहा था। जिस उतावली से अश्वत्थामा झपटकर धृष्टद्युम्न की ओर गया था, उससे ही स्पष्ट था कि वह उसे जीवित नहीं छोड़ेगा।…

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर पूरे वेग से आक्रमण किया था; किंतु धृष्टद्युम्न उससे तनिक भी आतंकित नहीं था। धृष्टद्युम्न का धनुष कुछ अधिक ही गतिशील हो उठा था।… द्रोण के वध के पश्चात् भी उसे स्मरण था कि उसने किस शपथ को ग्रहण कर द्रुपद के घर यज्ञकुंड में से जन्म लिया था। वह शपथ तो पूरी हुई, किंतु अभी सारा वैर नहीं चुका था। द्रोण ने उसके पिता, भाइयों और पुत्रों का वध कर दिया था। उसका प्रतिशोध तो अभी शेष था। अश्वत्थामा मान रहा था कि उसे धृष्टद्युम्न से अपना प्रतिशोध लेना है। उसके ध्यान में यह बात नहीं आ रही थी कि अभी तो धृष्टद्युम्न को भी अपना शेष प्रतिशोध लेना है।…

धृष्टद्युम्न के वाणों ने अश्वत्थामा को बींध दिया था। आज धृष्टद्युम्न के उत्साह का अंत नहीं था। उसने मन-ही-मन में संकल्प किया था कि आज अश्वत्थामा के वध के पश्चात् ही उसके युद्ध की समाप्ति होगी। उसने अश्वत्थामा के मस्तक पर वाणों का प्रहार किया।

कहाँ तो अश्वत्थामा ने कल्पना की थी कि धृष्टद्युम्न उसे देखते ही काँप जाएगा और कहाँ धृष्टद्युम्न उसके वध पर उतारू था। अश्वत्थामा ने क्रोध से दाँत पीसे और धृष्टद्युम्न के सारथि और घोड़ों को मार डाला। उसके मन में आज पहली बार आ रहा था कि इन युद्धों में योद्धा की एक वहुत बड़ी दुर्बलता, उसके सारथि और अश्वों का

असुरक्षित होना है। यदि रथों का निर्माण कुछ इस प्रकार का हो, जैसे अर्जुन का रथ है, जिसमें सारथि की रक्षा का भी समुचित प्रबंध किया गया है, और अश्वों के कवच का भी प्रबंध है, तो निश्चय ही योद्धा को इस असुविधा का सामना नहीं करना पड़ता, जिसका सामना इस समय धृष्टद्युम्न को करना पड़ रहा है।''' तो क्या यह केवल रथ की ही विशेपता है, कृष्ण के सारथ्य और अर्जुन के शौर्य की नहीं कि न तो कृष्ण को अभी तक कोई घातक घाव लगा है और न ही अर्जुन के अश्व मारे गए हैं ?'''

'नहीं !' अश्वत्थामा के अपने मन ने ही यह तर्क अस्वीकार कर दिया। कृष्ण के दक्ष सारथ्य की उपेक्षा कौन कर सकता है। और फिर अर्जुन जैसा योद्धा हो, जिसके सामने आते ही साधारण योद्धाओं की टाँगें काँपने लगती हैं, तो कौन उसके सारथि पर प्रहार करेगा। अर्जुन किसी को इतना समय ही कहाँ देता है कि कोई उसके सारथि अथवा अश्वों पर प्रहार करे। वह तो योद्धा को अपने प्राण बचाने के अतिरिक्त कुछ सोचने ही नहीं देता।''' पर उसके रथ की विशेषता को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस युद्ध से निबट लें तो फिर अश्वत्थामा भी अपने और अपनी वाहिनियों के लिए कुछ इसी प्रकार के रथों का निर्माण करवाएगा।

धृष्टद्युम्न अपने निश्चल रथ में खड़ा था और अश्वत्थामा के बाणों की झड़ी लगी हुई थी।''' धृष्टद्युम्न समझ रहा था कि पांसा पलट गया है। किंतु अपने इस रथ में स्थिर रहकर वह युद्ध कर नहीं सकता था और यदि रथ को छोड़कर वह खुले में आएगा तो इस नाम मात्र के कवच से भी वंचित हो जाएगा। अश्वत्थामा उसको जीवित नहीं छोड़ेगा।'''

एक वार तो उसकी इच्छा हुई कि वह अपनी ढाल तलवार लेकर अश्वत्थामा के रथ पर जा कूदे, जैसे वह द्रोण के रथ में कूदा था।''' किंतु अगले ही क्षण उसका विचार वदल गया। तब भीम तथा अन्य पांडव योद्धा उसके निकट थे, जो उसे बाणों की बौछार से बचा सकते थे; किंतु इस समय ऐसा कुछ नहीं था। उसके खड्ग और ढाल को टुकड़े-टुकड़े कर देना अश्वत्थामा के लिए तनिक भी कठिन नहीं था।'''

अश्वत्थामा ने देखा : धृष्टद्युम्न असमंजस की स्थिति में अपने रथ में खड़ा था। वस्तुतः वह टूटे रथ की आड़ में खड़ा अश्वत्थामा के बाणों से बचने का प्रयत्न कर रहा था।''' अश्वत्थामा को हँसी आ गई। धृष्टद्युम्न अपने रथ की ओट में खड़ा स्वयं को सुरक्षित समझ रहा था, जैसे कोई साधारण शिशु किसी पारदर्शी ओट के पीछे खड़ा होकर स्वयं को परम गुप्त मान लेता है। ऐसे में जिस प्रकार कोई वयस्क क्रीड़ापूर्वक उस पारदर्शी ओट को धीरे-धीरे हटाता है, वैसे ही अश्वत्थामा भी करेगा। धृष्टद्युम्न के रथ के एक-एक खंड को वह हटाता जाएगा।'''

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न के रथ के टुकड़े करने आरंभ किए। क्रमशः धृष्टद्युम्न की आड़ समाप्त होती जा रही थी। यदि कुछ देर और ऐसे ही चला तो वह रथ से उतरे न उतरे, रथ स्वयं ही उसे भूमि पर उतार देगा। वह समझ रहा था कि अश्वत्थामा

उसके साथ वैसे ही क्रीड़ा कर रहा था, जैसे बिल्ली चूहे के साथ करती है। वह उसे खेला-खेला कर मारना चाहता था। धृष्टद्युम्न के पास कोई विकल्प नहीं था। इस प्रकार खड़े-खड़े मरने से तो अच्छा था कि वह धनुष बाण अथवा ढाल तलवार लेकर स्वयं कहीं बाहर खुले में आ जाए।''' पर वह एक प्रकार की आत्महत्या ही होगी''' और धृष्टद्युम्न अभी से—अश्वत्थामा को जीवित छोड़कर—मरना नहीं चाहता था।''' यदि इस समय कहीं से भी थोड़ी-सी सहायता आ जाए, धृष्टद्युम्न को नए रथ तक जाने का एक अवसर मिल जाए तो वह अपनी अतृप्त कामना पूरी कर लेगा। वह अश्वत्थामा का वध भी वैसे ही कर ले, जैसे उसने द्रोण का किया है तो फिर उसे मरने का तनिक भी दुख नहीं होगा।''' शायद सहायता तो आ रही थी। हाँ ! ये पांडव वाहिनियाँ ही थीं। पर यह किसका ध्वज था ? ओह ! यह तो सात्यकि था।''' पांडवों की ओर से आया भी तो सात्यकि। अभी थोड़ी देर पहले वह धृष्टद्युम्न के रक्त का प्यासा हो रहा था। अब धृष्टद्युम्न को इस प्रकार संकट में फँसा देखेगा तो वह हँसेगा नहीं ? जिह्वा से कहे न कहे, मन में तो अवश्य कहेगा कि थोड़ी देर पहले अपने ही मित्रों के सामने इतना अभिमान दिखा रहे थे, तो अब शत्रुओं के सामने भी थोड़ा शौर्य दिखाओ।''' 'हे प्रभु !' धृष्टद्युम्न के मन में हूक उठी, 'यम से साक्षात्कार के इस क्षण में पांडव पक्ष से किसी को आना ही था तो कोई मित्र भाव लेकर तो आता।'

सात्यकि ने देख लिया था कि धृष्टद्युम्न संकट में है। उसने अपना रथ अश्वत्थामा की ओर बढ़ा दिया।

अश्वत्थामा को भी सूचना मिल चुकी थी कि सात्यकि और धृष्टद्युम्न का भयंकर झगड़ा हुआ है।''' वह मन-ही-मन हँसा''' सात्यकि कहीं धृष्टद्युम्न का वध कर अश्वत्थामा की सहायता करने तो नहीं आया।'''

सात्यकि ने बिना रुके अश्वत्थामा पर बाणों की झड़ी लगा दी। अश्वत्थामा उसे देखता ही रह गया। सात्यकि ने उसके सारथि और घोड़ों को मार डाला; और तब उसने अश्वत्थामा के वक्ष में घातक प्रहार किया।

कहाँ अश्वत्थामा सोच रहा था कि सात्यकि उसकी सहायता करने आया है और कहाँ वह उसका काल बन गया। अश्वत्थामा की स्थिति इस समय धृष्टद्युम्न से भी बुरी हो गई थी। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा खड़ा रह गया।

धृष्टद्युम्न को कुछ आश्चर्य हुआ और कुछ प्रसन्नता भी। तो सात्यकि उससे इतना भी रुष्ट नहीं था कि उसके प्राणों की रक्षा न करता।

दुर्योधन की दृष्टि अश्वत्थामा पर ही थी। वह अकेला ही पांडवों का काल हो सकता था; किंतु सात्यकि ने यह क्या कर दिया। दुर्योधन अश्वत्थामा की सहायता के लिए दौड़ा।

जिस समय से कृपाचार्य ने अश्वत्थामा को द्रोण के वध का समाचार दिया था, वे तब से ही अश्वत्थामा के लिए चिंतित थे। वे समझ रहे थे कि अश्वत्थामा अपने पिता की मृत्यु को स्वीकार नहीं कर पाया है। युद्ध में जो मृत्यु को स्वीकार कर लेता

है, वह अपने शत्रु का सामना कर पाता है और वही अपने पक्ष के लोगों का प्रतिशोध भी ले सकता है। जो योद्धा मृत्यु को स्वीकार नहीं कर सकता, वह संतुलित नहीं रह पाता। अश्वत्थामा भी असंतुलित हो गया लग रहा था। वे जानते थे कि वह अधिक से अधिक क्रूर होने का प्रयत्न करेगा। सफलता को अंगीकार करेगा; किंतु असफलता का सामना होते ही उसके मस्तक में विस्फोट हो जाएगा।''' वे देख रहे थे कि वही हुआ था। उसका सारथि मर गया था, घोड़े धराशायी हो गए थे और वह अपने रथ पर स्तब्ध-सा खड़ा था, जैसे जीवन का स्पंदन ही रुक गया हो।

दुर्योधन, कृपाचार्य और कर्ण प्रायः एक साथ ही अश्वत्थामा की सहायता को आए और उन्होंने सात्यकि पर सामूहिक आक्रमण किया।

धृष्टद्युम्न की इच्छा हुई कि वह सात्यकि के साथ जा खड़ा हो और उसके कंधे से कंधा मिलाकर इन तीन महारथियों से उसकी रक्षा करे; किंतु उसका रथ चल नहीं सकता था और इस स्थिति में रथ को छोड़ना सुरक्षित नहीं था। कहीं से कोई नया रथ आ जाता या वह सात्यकि के रथ तक पहुँच पाता।'''

धृष्टद्युम्न ने एक आश्चर्य घटित होते देखा। सात्यकि ने कुछ ही क्षणों में उन तीनों महारथियों को रथविहीन कर दिया था। किंतु तब तक अश्वत्थामा भी सचेत हो गया था और उन सबके लिए नए रथ भी आ गए थे। उन्होंने सात्यकि पर आक्रमण किया। सात्यकि में जैसे कोई प्रचंड झंझावात चल रहा था। उसने पुनः उन सबको रथविहीन कर दिया। किंतु अश्वत्थामा इससे रुका नहीं। उसने सात्यकि पर अपना आक्रमण और भी उग्र कर दिया। उसके बाणों ने सात्यकि का कवच विदीर्ण कर उसके वक्ष में गंभीर घाव किया। सात्यकि के लिए खड़ा रहना भी कठिन हो गया। वह रथ की बैठक में गिर गया। सारथि ने उसकी वह स्थिति देखी तो रथ वहाँ से हटा ले गया।

धृष्टद्युम्न पुनः असहाय हो गया था। अब तो वह पूर्णतः कौरवों की दया पर आश्रित था। जाने क्यों पांडव सेना की ओर से किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं आ रही थी।

अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न पर बाणवर्षा की और उसकी भौहों के मध्य एक तीक्ष्ण बाण मारा। धृष्टद्युम्न पहले से ही बहुत घायल था। इस घाव के पश्चात् वह खड़ा भी नहीं रह सका। वह अपने भग्न रथ की बैठक में बैठ गया और ध्वजदंड से अपने शरीर को टिका दिया।

अश्वत्थामा प्रसन्न हो उठा। अब वह धृष्टद्युम्न से अपने पिता के वध का प्रतिशोध ले सकता था। किंतु तभी पांडव पक्ष के अनेक महारथी उसके मार्ग में आ गए। अर्जुन, भीम, वृद्धक्षत्र, चेदि युवराज तथा मालवनरेश सुदर्शन प्रायः एक साथ ही धृष्टद्युम्न की रक्षा के लिए आ गए थे।

अर्जुन आया है और वह भी धृष्टद्युम्न की रक्षा के लिए—अश्वत्थामा की शिराओं में जैसे अग्नि प्रवाहित होने लगी। उसने पहले मालवराज सुदर्शन का मस्तक काटा और

देखते ही देखते वृद्धक्षत्र और चेदि युवराज को भी काल के गाल में भेज दिया।

अर्जुन कुछ करता, उससे पहले ही क्रुद्ध भीम ने अश्वत्थामा को अपने बाणों से ढँक दिया। भीम का एक बाण, अश्वत्थामा के गले की हँसली छेद कर भीतर समा गया। अश्वत्थामा ने अपने रथ का ध्वजदंड थाम लिया और आँखें बंद कर लीं। किंतु वह अधिक देर तक इस स्थिति में नहीं रहा। वह सचेत होकर उठा और उसने भीम का धनुष काटकर उसकी छाती पर पैने बाणों से प्रहार किया। भीम पर्याप्त सावधान था। उसने अश्वत्थामा के बाणों को निरस्त कर दिया। भीम पर अश्वत्थामा का वश नहीं चला तो उसने बाण मारकर भीम के रथ के सारथि को मूर्च्छित कर दिया। वल्गा को शिथिल देखकर उसके घोड़े रथ को लेकर भाग गए। भीम के रथ को युद्धक्षेत्र से इस प्रकार भागते देखकर पांडव सेना में भगदड़ मच गई। पांचाल सैनिक भी धृष्टद्युम्न को वहीं छोड़कर दूर भाग गए।

चेदि युवराज, वृद्धक्षत्र तथा सुदर्शन का वध और धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा भीम की पराजय देखकर अर्जुन को बहुत कष्ट हुआ। धर्मराज की व्यंग्योक्तियाँ पहले ही उसका मन जला रही थीं। अब अश्वत्थामा के चेहरे पर खेलता दर्प अर्जुन को और भी चिढ़ा गया। उसने उच्च स्वर में कहा, "गुरुपुत्र ! तुममें जो शक्ति, ज्ञान, प्रशिक्षण, बल, पराक्रम और तेज हो वह मुझे दिखाओ। कौरवों के प्रति सारा प्रेम और हमारे प्रति जो ईर्ष्या है, वह सब मुझ पर उँडेल दो। वैसे तो पांचाल राजकुमार धृष्टद्युम्न ही तुम्हारी इस सारी उद्दंडता और अभिमान को चूर-चूर कर देंगे; किंतु नया रथ आने तक वे शांत हैं। अब तुम धृष्टद्युम्न, कृष्ण और मुझ पर अपनी शक्ति दिखाओ। आज मैं तुम्हारी युद्धलिप्सा तृप्त कर दूँगा। और तुम्हारा घमंड चूर-चूर कर दूँगा।"

अश्वत्थामा पहले ही क्रोध से जल रहा था। आज तक अर्जुन ने उससे इतनी कठोर बातें नहीं कहीं थीं। आज अर्जुन उसके प्रति कितना कठोर हो उठा था। उसने तत्काल आग्नेयास्त्र अपने हाथों में लिया। उसे मंत्रों से अभिमंत्रित किया और पांडव सेना पर छोड़ दिया।

चारों ओर अग्नि ही अग्नि दिखाई पड़ रही थी। पवन जैसे तपने लगा और आकाश से उल्काएँ गिरने लगीं। जहाँ-जहाँ पांडव सेना थी, उसे अग्नि ने घेर लिया था।

दुर्योधन का मन प्रसन्नता से खिल उठा। आचार्यपुत्र के पास बहुत कुछ है। यह पांडवों और पांचालों का सर्वनाश करके ही रहेगा। पहले ही इसका अधिक उपयोग किया गया होता तो कदाचित् यह युद्ध इतना लंबा नहीं खिंचता।… पर जाने क्यों अपने पिता के जीवित रहते अश्वत्थामा ने कभी इन अस्त्रों का प्रयोग नहीं किया।…

अर्जुन ने अपनी सेना को इस प्रकार जलते देखा तो उसने ब्रह्मास्त्र प्रकट किया और उसे आग्नेयास्त्र पर चला दिया।

अंधकार दूर हो गया। पवन में शीतलता आ गई। अग्नि की दाहकता समाप्त होने लगी और दिशाएँ जैसे स्वच्छ हो गईं।